प्रकाशक
मन्त्री-श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
रागड़ी मोहल्ला, बीकानेर (राज)

प्रथम-संस्करण : १९७०

प्रकाशनतिथि
स० २०२७, मिती आसोज शुक्ला २
दि० २ अक्टूबर, १९७०

मूल्य : पांच रुपये (अर्धमूल्य)

मुद्रक
जैन आर्ट प्रेस,
(श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ द्वारा संचालित)
रागड़ी मोहल्ला, बीकानेर (राज)

प्रकाशकीय

परमश्रद्धेय पूज्य गणेशाचार्य का जीवनचरित्र प्रस्तुत है।

यद्यपि जीवनचरित्र को यथाशीघ्र प्रकाशित करने के लिये पाठकों का आग्रह रहा। यह आग्रह रहना भी चाहिये और यथार्थ भी है। लेकिन महापुरुषो के सर्वांगीण जीवन की विशेषताओं को क्रमबद्ध रूप से एक सूत्र मे पिरोना सहज नही होता है और साथ ही उन विशेषताओं के यत्रतत्र बिखरे हुए कणो को संकलित करने के लिये भी समय की विशेष आवश्यकता होती है। इस प्रयास मे काफी समय लगता है। अत शीघ्रता की आकाक्षा रखने पर भी विलब होता रहा। फिर भी हमारी ओर से एतदर्थ सबल प्रयत्न किये गये और उन्ही का परिणाम है कि आज हम यह 'पूज्य गणेशाचार्य जीवन-चरित्र' प्रस्तुत करने मे सक्षम हुए है। पाठको के बार-बार के आग्रह से हमारे प्रयत्नों को वेग मिला, एतदर्थ हम उनका सधन्यवाद हार्दिक आभार मानते हैं।

परमश्रद्धेय चारित्रचूडामणि पूज्य गणेशाचार्य के जीवन की विशेषतायें प्रत्येक सद्धर्म, सदाचार एव सयम प्रेमी मानव-हृदय मे अकित हैं। यह विशेषतायें जन्मजात सस्कारो से अकुरित हुई और सुयोग्य गुरुओ के निर्देशन में पल्लवित, पुष्पित होकर रमणीय होती गई।

पूज्य आचार्य श्री जी ने मानव से महामानव, नर से नारायण होने के मार्ग का अनुसरण किया और अपने प्रयास से नितनूतन सफलताओं को समाजित कर गतव्य की ओर गतिशील रहे। यही कारण है कि वे मानव को मानवता का बोध कराने मे ध्रुव तारे की तरह सदैव अटल रहेंगे।

मानवजीवन की प्राप्ति सत्यान्वेषण की प्रक्रिया का सूत्रपात है और समग्र सत्य की उपलब्धि चरम लक्ष्य। इस लक्ष्यप्राप्ति के लिये आत्मिक शक्तियों के विकास का क्रम-क्रम से ऊर्ध्वीकरण करना पड़ता है। यह ऊर्ध्वीकरण भी तभी संभव है जब संयम, तप, त्याग साधना के माध्यम से प्रमाद-जन्य त्रुटियो का उन्मूलन होकर स्वानुभूति प्रकाशित होने लगती है। इस स्थिति मे रमण करने वाले मानव श्रमणपद के अधिकारी होते हैं।

उक्त सकेत के परिप्रेक्ष्य मे जब हम पूज्य गणेशाचार्य के जीवन पर दृष्टिपात करते है तो श्रमणधर्म का समग्र रूप परिलक्षित होता है। शम, दम और सम की त्रिवेणी के सगम स आचार्य श्री जी भव्य जीवों के लिये मार्ग के चिन्ह मे विभूषित है। उनके जीवन की विविध विशेषताओ एव साधनाओं मे से किसी एक को स्व-विकास का आधार बनाकर हेयोपादेय के विवेक से कल्याण कर सकते है।

आचार्य श्री जी ने आध्यात्मिक-साधना की अनुभूतियो का विवेचन किया है । उन्होने जो अनुभव किया, जनसाधारण के लिये उपयोगी मान वितरित कर दिया । इस कथन मे व्यक्ति और व्यक्ति के माध्यम मे समाज-जीवन मे आगत दुर्बलताओ, रूढियो आदि की निवृत्ति के लिये भी सकेत है ।

पूज्य गणेशाचार्य के जीवनचरित्र के आचार और विचार, चिन्तन और मनन, सयम और तप, करुणा और मैत्री, अनुशासन और विनयशीलता आदि विविध आयाम हैं । उनमे से प्रत्येक आयाम के बारे मे समग्ररूपेण प्रकाश डालना सहज नही है । अत प्रस्तुत ग्रन्थ मे यथाप्रसग विविध विशेषताओ का आशिक दिग्दर्शन कराने का प्रयास किया है और प्रयास की सफलता पाठको के निर्णय पर आधारित है ।

गुणपूजक और सयम के साधक पूज्य आचार्य प्रवर का जीवन जाज्वल्यमान प्रकाशपुज की तरह हमे सदसद्-विवेक की प्रेरणा देकर जीवन के उच्च आदर्शों को दैनदिनी व्यवहार मे उतारने की बुद्धि दे तो इसी मे ही जीवन-चरित्र के पठन-पाठन की सफलता है ।

पूज्य आचार्य श्री जी की विशेपताओ को क्रमवद्ध रूप मे अकित करने के लिये लेखक का प्रयास धन्यवादार्ह है । साथ ही इस कार्य मे प्रत्यक्ष एव परोक्षरूपेण सहयोग देनेवालो का अभिनदन करते हुए आभार मानते हैं ।

श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा कलकत्ता ने जीवनचरित्र-प्रकाशन के लिये ५००० ०० रु सहायतार्थ प्रदान किये थे और इस सहायता के फलस्वरूप पूरे मूल्य के बजाय अर्धमूल्य यानी १० ०० के बदले ५ ०० मे पाठको के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं । एतदर्थ हम सभा के पदाधिकारियो सहित समस्त सदस्यो का सधन्यवाद आभार मानते हैं । यह सहयोग सत्साहित्य प्रेमियो के लिये प्रेरणादीप बने, यही आकाक्षा है ।

सघसेवक

जुगराज सेठिया

मन्त्री

सुन्दरलाल तातेड, मोतीलाल मालू

उगमराज मूथा, पीरदान पारख

सहमन्त्री

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ

श्री गणेशाय नमः

विश्व के सचेतन प्राणधारियों में मानव एक श्रेष्ठ प्राणी है और श्रेष्ठता का कारण है उसकी विचारशीलता। वह विचारों से प्रेरणा लेता है और उन्हें प्रेरित भी करता है। उसके विचारों की उत्तेजना जगत में प्रतिशोध और विनाश का दृश्य भी उपस्थित कर सकती है और विचारों के बदलते ही समूचा जगत बदल सकता है। अतः जब मानव विचारों की इस विलक्षण शक्ति के प्रवाह को अंतर् की ओर मोड़ देता है तो उसमें अदम्य उत्साह, अनुपम शांति, धैर्य एवं विश्वास का विकास होता है और उनमें ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करता है कि वह स्वयं अपने लिये ही नहीं, अपितु प्राणिमात्र के लिये आदर्श बन जाता है।

जीवन के इतिहास में मानव एक सर्वोच्च पद है। इसमें अपने आपको परिस्थिति के अनुकूल ढाल लेने की एक विशिष्ट क्षमता है। जिससे यह अपने अनुभवों और स्मृति से जीवन के नये-नये पाठ सीखता है, जबकि अन्य–देव, पशु आदि जो भी जीवन बिताते हैं, उसे भूलते जाते हैं। उनके जीवन में प्राप्त को भोगना ही समाया हुआ है। अकर्मण्यता या लाचारी से जब जैसा कुछ भी प्राप्त हो गया, उसमें ही संतोष कर लिया। उनमें न तो अच्छे अवसर प्राप्त करने की आकांक्षा है और न प्रयत्न करने की इच्छा है। उनका जीवन गाड़ी के पहिये के समान घूमते हुए समाप्त हो जाता है।

अतएव-मानव जीवन ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा प्राणिमात्र के शाश्वत ध्येय की प्राप्ति होती है। उनमें सारासार, धर्माधर्म और आत्म अनात्म आदि तत्त्वों के निर्णय करने की बुद्धि है, जिसके द्वारा समस्त बंधनों से मुक्त होकर सच्ची और सर्वकालव्यापी स्वतंत्रता एवं सर्व दुःखों से मुक्त होकर चिर शान्ति प्राप्त की जा सकती है, जो प्राणिमात्र का चरम ध्येय है। इसी को परम पद, परमात्मपद या मोक्ष कहते हैं। इस पद को प्राप्त करने की सामर्थ्य मानव के सिवाय अन्य प्राणियों में नहीं है।

अतः मानव-जीवन अपने आप में महत्वपूर्ण है और चराचर विश्व के समस्त प्राणियों को प्राप्त करने योग्य है। इसकी अपनी कुछ ऐसी विशेषताएँ

हैं जो अन्य प्राणियों मे प्राप्त नहीं होती हैं। विश्व की संस्कृतियों का जन्मदाता मानव ही होता है। इसमें देवत्व भी है और दानवता भी है, योग भी है और भोग भी है। यदि सभी प्रकार की अच्छाईयो और बुराईयो को एक स्थान पर ही देखना हो तो मानव-जीवन मे देख सकते हैं।

परन्तु जब तक मानव-जीवन का उद्देश्य न समझा जाये, स्वरूप का भान न हो सके, जगत जिस रूप मे है, उस रूप मे परख न सके और शाश्वत लक्ष्य—मोक्ष - का यथार्थ मार्ग ज्ञात न कर सके, तब तक उसकी सार्थकता नहीं है। इसलिये प्रत्येक मानव का कर्तव्य है कि वह अपने जीवन की उपयोगिता का सदैव विचार करता रहे।

विचार के केन्द्रबिन्दु दो हैं— एक अंतर्जीवन और दूसरा बाह्यजीवन। अंतर्जीवन में वह धर्म का प्रकाश लेकर प्रवेश करता है। मानव अपने जीवन के प्रति जितनी भी धारणायें और विश्वास बनाता है, वे सब उसके हैं और उनके सहारे ही बाह्य जगत में पदार्थों को देखने, पाने की इच्छा करता है। उन्हीं के सहारे समाजो का निर्माण होता है, राष्ट्र और विश्व की व्यवस्था बनती है एवं महाविनाश व महाप्रलय की ओर न जाकर अंधकार से प्रकाश की ओर बढता है। लेकिन जब कभी भी मानव-जीवन के साथ विश्वासघात किया गया, तब-तब जीवन की उपलब्धियां नष्टभ्रष्ट होती रही हैं।

इसलिये यह सिद्ध है कि उसी मानव को महत्व दिया जाता है जो अपने शाश्वत लक्ष्य की ओर बढता है, जो सचाई और भलाई के अन्वेषण में प्रगति करता रहता है। इस अन्वेषण मे जो प्रयत्नशील रहते हैं, वे मानवीय सभ्यता के इतिहास मे स्थायी स्थान प्राप्त करते हैं। ऐसे मानव महापुरुष या महामानव के रूप मे जन-साधारण के मानस में सदा के लिये अपना स्थान बना लेते हैं। उनकी अनुभूति मानवमात्र के हृदयपटल पर एक विशेष छाप लगा देती है।

महापुरुषो का जीवन पवित्रता और निःस्वार्थ आस्तित्व का एक सुस्पष्ट अध्याय होता है। वे आध्यात्मिक सिद्धांतो और उनकी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे उपयोगिता का उपदेश देकर, अपने आचार-विचार द्वारा जीवन में प्रयोग कर मानवता को उत्कर्षोन्मुखी बनाने के लिये जीवित रहते हैं। उनका जीवन जन-साधारण के लिये देन है। उनके जीवन से हमे संसार रूपी सागर से तिरने की प्रेरणा मिलती है। अतएव इसी आशय को लेकर किसी कवि ने कहा है—

परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ।
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ॥

विश्व में उन मानवों का महत्व नहीं है जिन्होंने भौतिक सफलतायें प्राप्त कर बड़े-बड़े साम्राज्यों का निर्माण किया अथवा भौतिक स्मारकों द्वारा अपने आपको बनाये रखने का प्रयत्न किया । उन्होंने अपने नाम को अमर बनाये रखने के लिये नगर बसाये, दुर्ग बनाये, लेकिन काल के प्रवाह और प्राकृतिक कारणों से उनका नाम शेष न रह सका । जो भौतिक सफलताओं के लिये अपनी इच्छापूर्ति में बाधक बनने वालों का संहार करते हैं, जो सभ्यता और संस्कृति का विनाश कर अट्टहास करते हैं, जो दूसरों का ध्वंस कर हर्षित होते हैं और विश्व की सुखशांति को मिटा देना अपना कर्तव्य समझते हैं, वे महापुरुष नहीं हैं । ऐसे व्यक्तियों का अस्तित्व शरीर में क्षय के कीटाणुओं के समान विश्व के लिये महा भयंकर होता है ।

लेकिन जो आत्म विजेता महापुरुष होते हैं वे आत्मान्वेषण के प्रशस्त पथ पर अबाध गति से चलते रहते हैं । उन्हें भौतिक सफलतायें अपने लक्ष्य-ध्येय से विचलित नहीं कर पातीं और वे आध्यात्मिक जगत का साम्राज्य प्राप्त कर आत्मानुभूति का आदर्श विश्व के समक्ष प्रस्तुत करते हैं । काल उनका दास बन जाता है और उन कालविजेता मृत्युंजयी महापुरुषों का जीवनादर्श युग-युग तक मानव-समाज को प्रेरणा देता रहता है ।

उन महापुरुषों का युग-युगान्त में भी मानव मात्र ऋणी रहा है और रहेगा । उन्होंने अपने गहन आध्यात्मिक ज्ञान और तप, त्याग और संयम से अनेक परिषहों एवं परेशानियों का दृढ़तापूर्वक सामना करते हुए हिमालय की भांति अटल और अचल रहकर, विश्व को सही, सत्य एवं शाश्वत विचार प्रदान कर इस उक्ति को चरितार्थ किया— अध्यात्म तर्क का विषय नहीं, लेकिन हृदय की ध्वनि है ।

महापुरुष सेना, शस्त्र, धन, शरीर और ऐन्द्रिक विषयों पर निर्भर न रहकर मानव की मानवता और सर्वोच्च शक्ति को जगाना अपना कर्तव्य समझते हैं । अपना कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व संयम और तप द्वारा अपनी आत्मा को निर्दोष बना लेते हैं और जब कसौटी पर खरेपन की परीक्षा हो जाती है तो ससीम से असीम होकर जन-कल्याण के लिये निकल पड़ते हैं । उनकी यह अनुभूति आध्यात्मिक जीवन की पवित्रता और सर्वोच्चता, प्राणीमात्र के प्रति भ्रातृभाव और शांति, प्रेम की भावना के आदर्शों का निदर्शन देती है ।

ऐसे महापुरुष ही ससार के सच्चे हितचिन्तक है। वे किसी निर्धन को हीरा, पन्ना, मोतियो का दान नही करते है किन्तु उसकी आत्मा मे ऐसी शक्ति भर देते हैं जिससे वह बड़े-बड़े श्रीमानो की निधियो को ठुकरा सके। उनकी वाणी और उपदेश युग-युग तक जनता को मार्गदर्शन कराते रहते हैं। जब तक भव्य पुरुष आत्मविकास के लिये प्रयत्नशील रहेंगे, तब तक उन-उन महापुरुषो की सर्वत्र स्मृति बनी रहेगी।

ऐसे महापुरुष अज्ञानान्धकार का भेदन करते हुए अध्यात्म—गगन मे सूर्य के समान चमकते है। उनके उपदेश अन्तरात्मा को प्रकाशित कर देते हैं, जिससे पाशविकता के अधकार मे दबी हुई मानवता पुन चमकने लगती है। ऐसे महापुरुषो का जीवन ही ससार मे आदर्श की स्थापना करता है। उनके उपदेश नये ससार को घडते हैं और कार्य नव-निर्माण करते हैं।

यदि विश्व की प्रगति का इतिहास उठाकर देखें तो उसके पन्ने-पन्ने से मालूम होगा कि उसमें कुछ ऐसी थोडी सी विभूतियो का लेखा है जिनकी विचारधारा वाह्यरूप धारण करके विश्व की प्रगति का इतिहास बन गई है।

यहा विश्व की एक ऐसी ही विरल विभूति का जीवन-इतिहास अकित कर रहे हैं, जो आचार्य श्री गणेशलालजी म सा. के नाम से विख्यात है। वे जन-जन के श्रद्धेय और मार्गदर्शक हैं। वे एक संत हैं। उन्होंने ससार त्याग दिया था, अगलियो पर गिने जाने वाले कुछ एक पारिवारिकजनों को त्याग दिया था, लोकेषणा को त्याग दिया था, गृहस्थी के प्रपंचो को त्याग दिया था, अडोस-पड़ोस मे बसने वाले पुरजनो का त्याग कर दिया था, कतिपय व्यक्ति विशेषो से नेह—नाता तोड दिया था। परन्तु कुछ व्यक्तियो के बदले उन्होंने विश्व के प्राणिमात्र से सबन्ध जोड़ लिया था। 'सत्वेषु मैत्री' 'सर्वभूतात्मभूत' की भावना सजीव हो गई थी। ईंट—चूने से बने घर की चार दीवारियों का परित्याग कर लाखो मानवों के मन मदिर मे अपना डेरा जमा लिया था। उन्होने ससार का त्याग कर दिया था लेकिन अपने कर्तव्य से मुख नही मोडा था। उनकी निवृत्ति मे भी प्रवृत्ति का उदार घोष था। उनकी ममता मे समता का समावेश हो गया था, स्नेह मे रूपान्तरित हो गई थी। परिणामत उन्होंने ससार का बडे से बडा उपकार किया। उनका जीवन—इतिहास मानवीय—जीवन का इतिहास हैं। उनका आत्म-विकास जन-कल्याण का राजमार्ग हैं। उनका विचार सांस्कृतिक सुरक्षा का प्रयत्न करने वालों को प्रेरणा सूत्र है। उनका आचार साधको के लिये प्रोत्साहन है और उनका उपदेश प्रगति का शखनाद है।

अत परमश्रद्धेय आचार्यश्री श्री १००८ श्री गणेशलालजी म. सा. का पुण्यस्मरण करते हुए उनके जीवन-इतिहास का श्रीगणेश कर रहा हू। इसमें जो कुछ भी श्रेष्ठ और उत्तम है, वही ग्रहण कर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होते रहे। प्रमादजन्य त्रुटिया सदैव उपेक्षणीय है और विद्वद्वर्ग से इसकी अपेक्षा है। विज्ञेषु किमधिकम्।

स २०२७, आसोज शुक्ला २. चरणचचरीक
२ अक्टूबर, १९७०. देवकुमार जैन

श्रद्धा के दो प्रारंभिक शब्द

मुनि श्री सुशीलकुमारजी म.

श्रद्धेय आचार्यश्री गणेशलालजी म. की जीवन–गाथा के प्रकाशन का विचार वहुत ही स्तुत्य है । मेरा स्वय का विचार था कि मैं उनके मानवीय दृष्टिकोण, साधनापरक जीवन एव उनके विश्व–मगलमय सस्मरणो को रेखाकित करू और किसी समय सक्षिप्त रूप मे उनके दिव्य जीवन की झाँकी का अभिलेखन भी कर पाया था । किन्तु इस समय मेरी अपनी ही कार्य-व्यस्ततायें लिखने में असमर्थ करती रही । मुझे यह जानकर सन्तोष हुआ कि अब श्रद्धेय आचार्य श्री का जीवन प्रकाशित होने जा रहा है । मैं लेखक महोदय का आभारी हू, जिन्होने ऐसे पवित्र विचार और एक महात्मा की जीवन–गाथा को सम्पादित एव प्रकाशित करने का भार अपने ऊपर लिया ।

मैं मानता हू कि ससार में सबसे कठिन काम सस्कृति एव सभ्यता के क्षेत्र मे विखरे हुए आध्यात्मिक वीजों को वपित एव पोपित करने का है । विशेषकर जैन-सस्कृति की साधना ही सबसे अधिक सहज और दुष्कर है । क्योंकि जिस शून्यता मे जाकर आत्मा के प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा इस जगत एव आत्मतत्त्व का साक्षात्कार करना चाहते हैं, वही सबसे कठिन काम है । वास्तव मे जिसे हम सहज कहते हैं वही सबसे कठिन होता है ।

आत्मा ही हमारा मुख्य तत्व है किन्तु उसे ही जानना सबसे अधिक दुःसाध्य है । निर्विकार मन और विचार रहित अवस्था की प्राप्ति जितनी साहजिक है, उतनी ही अलभ्य है । अहिंसा, सयम और तप की त्रिवेणी मे गोता लगाये बिना उस परम शून्य अवस्था को नही पा सकते और न ही आत्मा के अपने निज गुणो जो स्वत प्राप्त है, उनको उपलब्ध कर सकते हैं ।

सन्तो का जीवन साहजिक जीवन होता है । मन की चचलता मे तो सारा ससार ही डावाडोल हो रहा है । किन्तु सन्त पुरुष निर्विकार, निश्चेष्ट और निश्चिन्तता से उस आत्मगुण को प्राप्त कर लेते हैं ।

भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के इस सारे प्रवाह को सन्त पुरुषों ने विवेक की मर्यादा में इस तरह प्रवाहित किया है कि वह मनुष्य के जीवन-विकास के लिए बहुत ही लाभकारी सिद्ध हो सका है । इसीलिए सन्तों की जीवन-गाथायें लिपिबद्ध करने की आवश्यकता पड़ती है । जिसमे सन्तो के देहातीत होने पर भी उनके बताए सिद्धान्त, उनके जीवन की अनमोल अनुभूतियां, मार्मिक प्रसंग और आत्मा को उद्बोधन देने वाले संस्मरण स्थायी रूप से रह सकें ।

मेवाड की वीर वसुन्धरा पर जन्म लेकर इस महापुरुष ने धर्म-दीप को जिस तेजस्विता के साथ प्रज्ज्वलित किया एवं डावाडोल होती हुई भारतीय अन्तरात्मा को अहिंसा एवं संयम का संबल प्रदान किया, वह युग-युग तक अविस्मरणीय रहेगा । साक्षात् आचार्यदेव के सान्निध्य मे आने का शुभ अवसर जिन्हे प्राप्त हुआ है, वह उनके गहरे प्रभाव और मार्मिक वचन को कभी भूला नही सके हैं । उनकी ताम्रवर्णी काया, उद्दीप्त तेजस्वी ललाट, मुस्कान भरा चेहरा किसी को भी अपनी ओर आकर्षित कर सकता था ।

मुझे भी उनके सान्निध्य मे रहने का अवसर प्राप्त हुआ है । मैं उनके बाल-सुलभ, निष्कपट जीवन, सादगी और प्रेम से भरे हुये वचन कभी भूला नही सका । पहले ही साक्षात्कार का मेरे मन पर जो असर हुआ उसको मैं विद्युत के ए सी करंट की उपमा दे सकता हू । मैं जैसे-जैसे निकट होता चला गया, उनकी आत्मीयता और उनके प्रेम ने मुझे सदा के लिए अपना बना लिया । बहुत-सी बातें ऐसी थीं जिनके सम्बन्ध मे मेरे और उनके विचार मेल नही खाते थे । वे पुराने विचारो के प्रतिनिधि माने जाते थे और मैं प्रगतिशील नये विचारो का सदा पक्षपाती । दोनो मे कितना वैषम्य, किन्तु मैंने यह देखा कि उनका सरल एवं सच्चा प्रेम इतना शक्तिशाली था कि विचारभेद मनभेद का कभी कारण नही बनते थे । मैं उनकी बात को कभी टाल नहीं सकता था ।

एक बार एक तेरापन्थी सन्त ने मेरे से पूछा कि उपाचार्य श्री गणेश-लालजी म. और आपके विचारों मे पूर्ण समानता है या कुछ अन्तर है । मैंने कहा कि बहुत-से विचारो मे बिल्कुल भी मेल नही खाता तो तपाक से वे सन्त बोल उठे "तो ये आपके उपाचार्य कैसे और आपका संगठन कैसे चलता है ? " मैंने कहा बुद्धि बेचकर अनुशासन का नियम भारतीय-संस्कृति ने कभी पनपने नहीं दिया । वैचारिक स्वतन्त्रता और आचार की मर्यादा ही हमारे

मयम साधना की शर्त रही है । हम अपने विचार प्रकट कर सकते हैं और नितान्त स्वतंत्र रूप से सोच सकते हैं, किन्तु हम करते वह हैं जो हमारे अनुशास्ता का आदेश होता है । अनुशास्ता हमारे उपाचार्य हैं । उनके आदेश मे और आज्ञा मे सारा सगठन चलता है, किन्तु प्रजातत्र की तरह विचार-स्वतंत्रता का अपहरण नही किया जाता है । मुझे ख्याल है वे साधु सकपका-मे गए, किन्तु उन्हे अन्तरात्मा मे प्रसन्नता हुई । मैंने कहा कि महात्माओ के जीवन मे सच्चरित्रता और निर्भयता ही सब मे दिव्य गुण होते हैं और आप यह मानते ही हैं कि भयग्रस्त जीवन कभी सच्चरित्र नही होता और कोई दुश्चरित्र निर्भय नही होता । इसका एक मात्र कारण आसक्ति है । आसक्ति से भय पैदा होता है और भय मे मानवीय सद्‌गुणो का नाश हो जाता है । वैराग्य से निर्भयता का सूत्र-पात होता है और वही सच्चरित्रता एव वैचारिक स्वतत्रता मे कारणभूत होता है ।

मैं उपाचार्य श्री में देख रहा हू कि उन्होंने कभी भी वैचारिक स्वतत्रता का विरोध नहीं किया, क्योंकि वे सच्चे वैराग्यवान सत पुरुष है । मुझे उनके सात्विक सान्निध्य से जो अनुभूति प्राप्त हुई है और मेरे मानस पर जो उनका उज्ज्वल चित्र खिचा है वह सगठन को बनाए रखने मे काफी सहायक है ।

मुझ से उस सत ने उपाचार्य श्री जी म की विशेषताओ की जान-कारी चाही तो मैंने कहा कि उनके तपपूत जीवन मे ब्रह्मचर्य की ऊर्जस्विता एव सत्य की अगाध श्रद्धा का अलौकिक समिश्रण हुआ है । उनके व्यक्तित्व की स्निग्ध शालीनता और सयम—साधना के प्रति अडिग निष्ठा प्रत्येक आगन्तुक पर प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकती । राष्ट्र-प्रेम एव राष्ट्र—कल्याण की मगल-भावना उन्हे परम पूज्य जवाहराचार्य से प्राप्त हुई एव विश्वप्रेम तथा मानवोत्थान की सतत जिज्ञासा वीतरागता के निरतर चितन से उद्‌भूत हुई है । उनमें वैराग्य की जो अटूट भावगगा बह रही है, उसी ने उन्हे गम्भीर होते हुये भी, सरल, कठोर सयमी होते हुये भी, सहिष्णु, परम-विरक्त होते हुये भी अनुशासनप्रेमी और आत्मतत्ववेत्ता होते हुये भी समाजहितैषी बना दिया है ।

सत कहने लगे कि अनुशासन और सगठन कैसे चलता है, क्या उसमें विघटनकारी लोग नये-नये प्रपच नहीं करते, जब कभी गुटबदिया सग-ठन के सामने खड़ी हो जाती हैं तब उपाचार्यश्री क्या करते हैं ? मैंने कहा कि हमारे उपाचार्यश्री संगठन के बहुत हामी है किन्तु सगठन का रथ

अनुशासन के पाहियों पर चलना है और कभी-कभी संगठन के हित में कड़े अनुशासन की बात की जाती है या व्यवस्था में अनुशासनार्थ कोई कार्रवाई करनी पड़ती है तो मैं देखता हूं कि उनके चारों ओर भी दुर्भिसंधियां होने लग जाती हैं। ऐसे अनेकों प्रसंग उनके जीवन के साथ लिपटे पड़े हैं। कितने ही संतजन एवं श्रावक समुदायों का उन्हें कोपभाजन बनना पड़ा है। किन्तु वे मानते हैं जबतक संगठन में पक्षपात नहीं आता है और व्यक्तिगत स्खलनाओं की छिछालेदर न कर आत्मशुद्धि की बात ही की जाती है तब तक संयम-साधक और संगठन दोनों ही सुचारु रूप से चलते रहते हैं। किन्तु जब किसी संगठन में पक्षपात घुसता है, बुराइयों को शुद्ध करने की जगह छिपाने की बात की जाती है, तब मानसिक सद्भाव विकृत होने लगता है।

ये बात १९५६ के प्रारम्भ की है। उसी समय धनी प्रदेश में मुझे वे संत मिले थे और उसमें गम्भीर विचारणा हुई थी। किन्तु उसके बाद तो कितने ऐसे प्रसंग आये हैं जिन्होंने मेरे संगठन को झकझोर दिया, जिसका कुछ स्वरूप आपको इस जीवन-गाथा में पढ़ने को मिलेगा। किन्तु मैं इस बात पर सहमत नहीं हूं कि महात्माओं की जीवन-गाथा में ऐसे प्रसंग जिनमें किसी साधक की स्खलना का संकेत किया गया हो, वे प्रसंग इसमें नहीं आने चाहिये थे। भूल हो जाना सम्भव है। समय-प्रवाह अथवा कर्मोदय से कई प्रकार के दोष-प्रसंग उत्पन्न हो सकते हैं, किन्तु उन्हें ऐसी पवित्र जीवन-गाथा में स्थायी होने का अवसर देकर शुद्ध एवं विकसित जीवन की संभावना से अछूता रखना मैं हितकर नहीं मानता।

मैं मानता हूं कि आचार्य श्री गणेशलालजी म. आध्यात्मिक महल के स्तम्भ की तरह थे। उनके स्वल्पकालिक जीवन ने समग्र मानवजाति के सामने जिन अनावृत सत्य के द्वारों को उद्घाटित किया है और अनेकान्तात्मक समन्वय पद्धति का मार्ग प्रशस्त किया है, यह उनकी अमर देन है। खादी-प्रेम और वीतरागता की साधना दोनों का समन्वय ही उनका राष्ट्रोपहार है। वैराग्य की उत्कट भावना एवं संगठन प्रेम ही साधु समाज के लिए उनका प्रेरक संदेश है। अनुशासन और सच्चरित्रता ही साधु-संगठन के प्राण हैं। अगर विषय-विरक्ति और आत्मशक्ति साधु जीवन से निकल जाता है तो वह संसार पर भारस्वरूप है। जितना जल्दी उसे धो दिया जायेगा उतना ही लाभ है। आचार्य श्री गणेशलालजी म. दृढ़ अध्यवसाय के महाप्राण व्यक्ति थे। जो भी कार्य उन पर डाला गया और जिस कार्य को उन्होंने हाथ में लिया उसे

सत्सकल्प की तरह पूरा करने मे जुटे रहे । दिवगत आचार्य श्री गणेश-लालजी म की प्रतिछवि, प्रतिच्छाया एव प्रतिकृति वर्तमान आचार्य श्री नाना-लालजी म. मे आभान्वित पाकर मन गद्‌गद हो जाता है । आशा है दिवगत आचार्यदेव की श्रमण-सगठन के निमित्त ठोस योजनायें एव विश्वकल्याण की भावनायें साकार रूप लेंगी और मानव-जाति उनके पथचिन्हो पर चलकर आत्म-लाभ का मार्ग प्राप्त करेगी । इसी मगल कामना के साथ —

— मुनि सुशीलकुमार

गणाचार्य : गणेशाचार्य

श्रेष्ठतम परम विज्ञाता-स्वरूप की वास्तविक शुद्ध चरमसीमा की उपलब्धि मानव-तन से ही हो सकती है। मानव-तन अनेकानेक प्राणियो को प्राप्त है पर इसको सार्थक करने वाली विरल ही विभूतिया मिलती हैं। वे विभूतिया प्रारम्भ में साधारण मानव के रूप में होते हुए भी सही ज्ञान के साथ ऐसा पुरुषार्थ करती है कि जिससे साधारण जन की पक्ति से सर्वथा ऊपर उठ जाती है। जिसके सहारे वे असाधारण रूप में परिलक्षित होती है, वह सहारा रत्नत्रय का होता है।

पंचम काल मे जो कि ह्रासता की स्थिति के उन्मुख है, अधिकाश दुःख, दौर्मनस्य, स्वार्थान्धता, पदलिप्सा, सत्ता और सम्पत्ति के कुहरे की प्रबलता में मानव की वृत्ति दानवता की ओर शीघ्रगति से ताण्डव नृत्य कर रही है। महातृष्णा की ज्वाला मे नैतिकता एवं धार्मिकता मानो भस्मसात की स्थिति को प्राप्त हो रही है। व्यक्ति, परिवार, समाज तथा राष्ट्र आदि समग्र विश्व मे प्राय. कामुकता की काली छाया परिव्याप्त हो रही हो, वहां पर वीतराग-वाणी ही एकमात्र जीवनदायिनी बन सकती है। वह वीतराग-वाणी निर्ग्रन्थ-श्रमणसंस्कृति की परम्परा मे जिनको सहज ही उपलब्ध हो पाई है, अपने इस मानव तन को सार्थक क्यो नही बनायेगा? क्यो नहीं अपनी आत्मज्योति को परिस्फुटित कर ससार के अज्ञानान्धकार को नष्ट करने की चेष्टा करेगा? अर्थात् अवश्य वह वैसा करेगा और जनसाधारण की स्थिति मे वह एक आराध्य देव के रूप मे उपस्थित होगा।

ऐसे महामानवों के सत्पुरुषार्थों से ही ससार चमका है और भविष्य में भी चमकता रहेगा। ऐसे पुरुष ही ससार मे शान्त क्रान्ति को जन्म देकर विश्वशान्ति की अमोघ साधिका निर्ग्रन्थ-श्रमणसंस्कृति के गौरव को अक्षुण्ण रखेंगे। भूतकाल मे भी समय-समय पर किसी

भी क्षेत्र मे शैथिल्य परिव्याप्त हुआ तो महान् विभूतियो ने अपने मानापमान की परवाह न करते हुए उत्क्रान्ति का बिगुल बजाया। जिनकी गुणगाथाओ से इतिहास के पृष्ठ स्वर्णाक्षरो में अंकित हैं और उससे इतिहास के अभ्यासी भलीभाति परिचित है। लेकिन जिन पुरुषो का कृतित्व आधुनिक इतिहासकारो की लेखनी मे लिपिबद्ध नही हुआ है, उनका आगम-वाणी आदि अपुट्ठवागरणा मे उपलब्ध हो पाया है। ऐसे तो अनेक महापुरुषो की जीवन घटना का यथास्थान उल्लेख है ही, उन सबका यहा उद्धरण रूप मे लेने से विस्तार की स्थिति बढ सकती है। अतः जिज्ञासुओ को यथास्थान ही अवलोकन करने की आवश्यकता है। पर हमारे चरितनायक के जीवन की उत्क्रान्ति का सामजस्य जिन महापुरुप के साथ किया जा सकता है उन महापुरुष का यहा उल्लेख आवश्यक होने से किया जा रहा है। वह हैं गर्ग नाम के आचार्य।

यह गर्गाचार्य बडे ही क्रान्तिकारी थे। निर्ग्रन्थ-श्रमणसस्कृति के सजग प्रहरी थे। इनको शिष्यो का लालच भी नही हो पाया था। शिथिलता को बर्दाश्त नही करते थे। जब कभी भी शिष्यो मे शिथिलता का प्रवेश आता हुआ देखते तो उनको सुधारने की कोशिश करते थे। लेकिन जब उन्होने अनुभव किया कि ये शिष्य गलियार बैल की तरह शिथिल हो चुके हैं, इनके साथ रहने से मेरी सयमयात्रा समाधियुक्त नही रह सकेगी। सख्या की विपुलता से शासन की शोभा नही। शासन की शोभा सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना मे सन्निहित है। वह आराधना सुचारित्री अल्पसख्या मे भी की जा सकती है। उसी में समाधिभाव व निर्ग्रन्थसस्कृति की रक्षा है आदि कई दृष्टिकोणो को सन्मुख रख कर दुष्ट शिष्यो का सग छोड दिया। इस आशय के भाव उत्तराध्ययन सूत्र के २७वे अध्ययन मे परिलक्षित होते हैं।

उत्तराध्ययन सूत्र अपुट्ठवागरणा के रूप में माना जाता है, जो कि भगवान महावीर ने अपने निर्वाण के पहले अर्थरूप मे फरमाया। गर्गाचार्य का समय क्या है, इसका उल्लेख तो नही हो पाया है लेकिन इतना अवश्य सोचा जा सकता है कि भगवान महावीर के पहले के तीर्थंकरो के समय मे होना चाहिए, क्योकि भगवान महावीर का शासन तो भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् आचार्य की परम्परा के रूप मे सुधर्मास्वामी का उल्लेख है। अत यह अन्य तीर्थंकरो के समय

के कहे जा सकते हैं और उनका उल्लेख अन्तिम तीर्थंकर के अन्तिम समय में बिन पूछे होना तीर्थंकरो के आशय की अभिव्यक्ति भलीभाति स्पष्ट हो जाती है—वह यह है कि निर्ग्रन्थश्रमणसस्कृति में शुद्ध आचार-विचार को महत्त्व दिया गया है, न कि सख्या को और न आचार-विचार-शून्य सगठन को। मानो इसी बात का द्योतन करने के लिए गर्ग नाम के आचार्य का वर्णन बिना किसी के प्रश्न पर उल्लेख किया गया है।

ऐसे तो यह बात मगलपाठ के शब्दों से भी भलीभाति व्यक्त हो जाती है। जैसे कि अरिहत सरण पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरण पवज्जामि, केवली पन्नतं धम्मं सरण पवज्जामि अर्थात् अरिहत सिद्ध, साधु और धर्म की शरण बताई गई है, न कि संगठन की शरण।

यदि निर्ग्रन्थ-श्रमणसस्कृति मे आचार-विचार-शून्य संगठन को ही महत्त्व दिया होता तो "संघं शरण गच्छामि' इस तरह का पाठ जैसा बौद्ध ग्रन्थों मे है, वैसा इस मगलपाठ मे भी प्रयोग होता। लेकिन वीतराग परम्परा मे आचार-विचार-सम्पन्न सघ, सगठन एवं साधु-संस्था को महत्त्व दिया गया है। यह बात गर्गाचार्य के चरितानुवाद वर्णन से सुस्पष्ट है।

उक्त सकेत से पाठकगण सहज ही यह समझ पायेंगे कि गर्गाचार्य के चरित्र के साथ आचार्य श्री गणेशलालजी म सा. का चरित्र कितना साम्य रखता है। एक दृष्टि से देखा जाये तो कई बातें अधिक विशिष्टता रखती हैं। अनुमानत. गर्गाचार्यजी ने जितने मुनियों का त्याग किया उससे भी अधिक संख्या को छोड़ने का प्रसग चरित्रनायक को आया है। उन्होंने शायद सशक्त अवस्था में यह कार्य किया होगा लेकिन चरित्रनायक ने तो रोगाक्रांत अवस्था मे भी इस प्रकार की शांत क्रान्ति का गंभीर समाधि भावना के साथ कदम उठाया। जहां रोगाक्रान्त स्थिति मे मानव अपने संयम का भी ध्यान नही रख पाता वहां आचार्य श्री गणेशलालजी म सा. ने वृद्धावस्था और डाक्टरो को भी आश्चर्य मे डालने वाले भयंकर रोग का प्रादुर्भाव रूप असातावेदनीय मे भी शरीर के ध्यान को छोड कर संयम का पूरा ध्यान रखते हुए सारे समाज के सम्मान को पीठ पीछे रखकर अपमान के कंटीले मार्ग को सामने रखते हुए अनन्त तीर्थंकरो की परम्परा को सुरक्षित रखने वाली निर्ग्रन्थ श्रमणसस्कृति के सरक्ष-

णार्थ शान्त क्रान्ति का कदम उठाया । इससे सहज ही उस महानुभाव के अन्तस्तल की प्रगाढ साधना की स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है ।

हमारे चरित्रनायक आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. सुसगठन के हिमायती थे और सुसगठन का आधार मानते थे सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना । इसके लिये उन्होने जो प्रयास किया, वह सर्वविदित ही है ।

सादडी वृहत्साधुसम्मेलन में आचार्यपद की नियुक्ति के लिए सर्वप्रथम आचार्य श्री गणेशलालजी म सा का नाम आया और प्रतिनिधि मुनिवर आपश्री को आचार्यपद के स्थान पर प्रतिष्ठित करने के लिए एक स्वर से समर्थन कर रहे थे तब आपश्री ने उन प्रतिनिधि मुनियो से कहा कि आप लोगो ने मेरी अनुमति लिए बिना ही जो समर्थन किया है, इसके लिए मैं आप लोगों के धर्मस्नेह का आभारी हू । लेकिन मैं इस पद को मेरे लिए पसन्द नही करता । क्योकि अब मेरी अवस्था ढल रही है और मैं अपने जीवन को अधिक आत्म-साधना मे लगाना चाहता हू । इसी भावना को ध्यान मे रख कर मैं इस स्थल पर आया हू और चाहता हू कि निर्ग्रन्थ-श्रमणसस्कृति की रक्षा करते हुए सगठन बनाया जाये और मैं उस सगठन के लिए सबसे पहले अग्रसर होना चाहता हूं, जिसका सकेत मैंने पहले ही कर दिया है । यदि यह सघऐक्य-योजना अखड रहे और निर्ग्रन्थ श्रमणसस्कृति की रक्षा होती हो तो मैं अपना सर्वस्व त्याग करके वीतराग परम्परा को सुरक्षित रखने के लिए सगठन में तत्पर हू । बिना पद लिए ही मैं अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र की वृद्धि के साथ सघ का सदस्य रहकर यथाशक्ति कार्य कर सकता हूं । इस पद पर किसी योग्य लघुवयस्क मुनि को भी शासन-सत्ता से सम्पन्न प्रतिष्ठित कर दिया जाये तो मैं अनुशासन के नाते तीर्थंकरो की आज्ञा की तरह उनकी आज्ञा में रहता हुआ विचरण करने को तत्पर हूं, आदि आशय को स्पष्ट करते हुए आचार्यश्री ने ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि के साथ सगठन का आदर्श उपस्थित किया ।

प्रतिनिधि मुनिवर आचार्यश्री के तलस्पर्शी सगठन सम्बन्धी हार्दिक उद्गारो को सुनकर गद्गद हो गये और कहा कि भगवन् इस चुनाव मे आपकी अनुमति हम क्या लें, हम तो सर्वसम्मति से

आपको चयन कर चुके हैं । किसी का कहने पर चयन नही होता, वह तो चयन करने वाले के हृदय मे चयन होता है आदि विपयक कार्रवाई चलते हुए रात्रि का काफी समय चला गया और आचार्यश्री अपनी ही बात दोहराते हुए उठ गये तो सभा भी विसर्जित हो गई।

इसके पश्चात् पिछली रात्रि के लगभग तीन बजे से प्रमुख मुनिवरो का एक के बाद एक आचार्य श्रीजी के पास आवागमन हुआ और प्रार्थना की गई कि यदि आप भी इस पद को स्वीकार नही करेंगे तो यह सगठन भी नही बनेगा और सारे देश के स्थानकवासी सघ की हसी होगी कि संघ का नेतृत्व सम्हालने वाला कोई योग्य व्यक्ति ही नही है । अत आपको हर हालत में यह पद स्वीकार करके हमे अनुगृहीत करना चाहिये आदि बाते हुईं, जो यथाप्रसग पाठकों को पढने को मिलेगी ।

तदनन्तर आचार्यश्री ने सशत श्रमणसघ मे प्रवेश किया । शर्त यह थी "सघ-ऐक्य योजना अखड रहे तब तक के लिये मैं बाध्य हू ।" इसका तात्पर्य यह है कि सघऐक्य की स्थिति खडित हो जाये तो मैं इस श्रमणसघ के अन्दर बधा हुआ नही हूं । यह शर्त आचार्यश्री की दीर्घदृष्टि की सूचक है । सादडी मे जैसा श्रमणसघ बना, उसका विभेद (विघटन) मूर्घन्य मुनिराजों द्वारा हो जाने पर आचार्य श्री गणेशलालजी म अपनी उस शर्त के अनुसार उसमे पृथक् हो सकते थे । जिसका उल्लेख आचार्य श्रीजी ने श्रमण सघ से पृथक् हो जाने के बाद अपनी २२, सितम्बर '६२ की घोषणा में किया है ।

स्वतन्त्र बनने पर भी ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि पूर्वक सुसंगठन की भावना आचार्य श्रीजी ने पृथक् नही की । यही कारण है कि आचार्य श्रीजी ने निग्रन्थ श्रमण वर्ग का आह्वान किया कि—

मैं सुसगठन का किसी से कम हिमायती नही हूं । मैं अब भी यह चाहता हूं कि मेरा सतोषजनक समाधान होकर मेरी कल्पना और उद्देश्य के अनुसार जैसा कि मैं पूर्व मे व्यक्त कर चुका हूं (जिसको श्रमण सघ ने सादडी मे स्वीकार किया था) एक के नेतृत्व मे श्रमण-सगठन साकार रूप होकर सुदृढ बने अथवा मेरा सतोषजनक समाधान पूर्वक समस्त मुनिमण्डल या यथासभव जितने भी मुनिवृन्द शास्त्रसम्मत एक समाचारी मे आबद्ध होकर अपने मे से किसी एक शास्त्रज्ञ श्रद्धावान एव चारित्रनिष्ठ मुनिवर को आचार्य मानें

और शिक्षा, दीक्षा, चातुर्मास, विहार व शिष्यसंग्रह आदि सब उन्ही आचार्य के अधीन रहे । ऐसी स्थिति बनती हो तो मैं सदैव तैयार हूँ और अन्य सत, सतियों से भी मैं यही अपेक्षा करता हूं कि जब भी ऐसी स्थिति का निर्माण हो, उसमें अपना विलीनीकरण करने को तैयार रहे ।

इस प्रकार आचार्यश्री ने ज्ञान-दर्शन-चारित्र की सुरक्षा के साथ सगठन को महत्त्व दिया और उसके लिये सब कुछ त्याग करने की भावना स्पष्ट कर दी । पर ज्ञान-दर्शन-चारित्र की सुरक्षा के साथ सगठन के लिये जब तैयारी दृष्टिगत नही हुई तो सादडी सम्मेलन के अन्दर स्वीकृत उद्देश्य को असली रूप देते हुए निर्ग्रन्थ-श्रमणसंस्कृति के सुरक्षार्थ समाचारी के साथ सुसंगठन को साकार रूप दे दिया और दरवाजा सबके लिये खुला रख छोडा ।

आचार्यपद का चयन प्राय होता है और उनके चरणों में नेतृत्व के अधिकार भी अर्पण किये जाते हैं । लेकिन इनको जिस ढग से नेतृत्व प्राप्त हुआ, यह एक अद्भुत घटना-सी है ।

पहले जलगाव मे आचार्य श्री जवाहरलालजी म. की सम्प्रदाय का नेतृत्व सम्हालने का प्रसग आया तो चतुर्विध सघ ने आपको ही अपना नेता चुना । इसके पश्चात् भी वृहत्साधुसम्मेलन अजमेर में देश के मूर्धन्य सन्तो मे से पाच पच नियुक्त किये गये थे, उन्होंने भी आचार्यश्री जवाहरलालजी म और आचार्य श्री मन्नालालजी म के पाट पर आपको युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया ।

इसके पश्चात् समग्र संप्रदायो के एकीकरण का वायुमंडल चालू हुआ और उसमे वृहत् सम्मेलन की योजना चल रही थी । उसी के बीच कान्फरेन्स का एक शिष्टमण्डल आचार्यश्री गणेशलालजी म. की सेवा मे पहुचा और उसने निवेदन किया कि वृहत्सम्मेलन के पहले जितनी भी सम्प्रदायो का एकीकरण हो सके, कर लेना चाहिये । उसमें आपश्री के नेतृत्व की आवश्यकता है । तद्नुसार पाच सम्प्रदायों का एकीकरण हुआ और आचार्यश्री को नेतृत्व सम्हालने की अर्ज की । उसके पश्चात् सादडी (मारवाड) मे वृहत्साधु-सम्मेलन का आयोजन हुआ और उसमे समग्र प्रतिनिधियो ने एक स्वर से आपके चरणो मे सघ-सचालन का नेतृत्व सौपकर आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया । इस पद को स्वीकार कराने के लिये सर्व प्रतिनिधि मुनिवरो की ओर से उपाध्याय कविश्री

गमरचन्दजी म. सा. ने जो भाषण दिया वह यथास्थान पाठकों को अवलोकन करने को मिलेगा।

इस प्रकार अखिल भारतवर्ष के लिये आपश्री का चयन हुआ। इसके पश्चात् जब आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. ने निर्ग्रन्थ श्रमण-संस्कृति के सुरक्षार्थ शांति क्रांति का कदम उठाया तो मारवाड में विचरण करने वाले बहुश्रुत प० र० श्री समर्थमलजी म. श्री प्रसन्नता पूर्वक आचार्य श्री गणेशलालजी म. का नेतृत्व स्वीकार कर नेतृत्व मे चलने को तत्पर हो गये। यह विवरण यथास्थान दिया गया है।

संयमनिष्ठा की दृष्टि मे आचार्यश्री का जीवन अत्यधिक उज्ज्वलतम था। वीतरागवाणी को आचार्यश्री ने अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न किया। शास्त्रो मे उल्लेख आया है कि "विनय मूलो धम्मो" अर्थात् धर्म का विनय मूल बताया गया है। आप उस धर्म के साथ स्वर्गीय आचार्य श्री जवाहरलालजी म. के चरणों मे लगभग २४ वर्ष तक रहे। उस समय किस तरह स्वर्गीय आचार्यदेव के चित्त की आराधना की वह तो अनुभवगम्य होने से उसका प्रत्यक्षदर्शी ही विशेष अनुमान कर सकते हैं। संकेत के रूप में एकाध घटना का यहा उल्लेख कर रहे है, जिससे समग्र जीवन की विनयशीलता का भली-भांति पता लग सकता है।

स्वर्गीय आचार्य श्री जवाहरलालजी म कभी-कभी भरे व्याख्यान मे साधारण-सी बात के लिये भी जोर से बोल देते तो उस समय भी आप शांत और विनयशीलता के साथ गुरुदेव की वाणी को स्वीकार करते, जबकि आजकल के संतो को बड़ी गलती भी एकांत मे समझाई जाये तब भी सरलता से स्वीकृत नहीं होती। आपश्री स्वर्गीय आचार्य श्रीजी का ही विनय नहीं रखते थे बल्कि आप से दीक्षा में जितने भी बड़े संत थे, वे चाहे पढाई की दृष्टि से और समझ की दृष्टि से कम ही होते, तो भी उनका पूरा आदर सत्कार करते। इसी विनयशीलता को आपने अपने सम्प्रदाय के सन्तो के साथ ही नहीं रखा बल्कि मारवाड सादडी में बृहत्साधु-सम्मेलन में उपस्थित विभिन्न सम्प्रदायो के बडे सन्तो का आपने विनय किया। इसको देख करके एक बडे विचारवान गंभीर चिंतक सन्त के मुह से सहसा निकल पडा था कि सम्मेलन की सजीव आत्मा यह है। पृथक् सम्प्रदाय मे रहते हुए जिनकी छाया मे खडे रहना नहीं चाहते थे उन्ही का उनको

भावी समुज्ज्वलता की स्थिति को सन्मुख रखकर विनय करते हुए सम्मेलन के नियमो को अन्त करण से साकार रूप दे रहे हैं ।

सेवाभावना भी उनके जीवन मे कूट-कूटकर भरी हुई थी । बडो और बुजुर्गो की ही नही, जवान और छोटे सन्तो की भी प्रसग आने पर वडी लगन से सेवा करते थे । विद्वत्ता, वड़प्पन का अभिमान छू तक नही पाया । साधारण अवस्था मे तो सभी काम करते ही थे लेकिन युवाचार्य व आचार्य पद प्राप्त होने के वाद भी छोटे-से-छोटा काम करने को तत्पर रहते थे ।

सरलता उनमे इतनी थी, जिसको देखकर कई सन्तो ने कहा कि आपश्री को इतने सरल नही होना चाहिये । कई एक आपकी सरलता का दुरुपयोग कर बैठते है । तव आचार्यश्री फरमाते थे कि मैं शुद्धभाव से सरलता पूर्वक जो कार्य करता हू उसका भी यदि कोई दुरुपयोग करे तो उसमें मेरा कुछ नही विगडता । आचार्यश्री का हृदय स्फटिकमणि के समान स्वच्छ था ।

इतना सव होते हुए भी अनुशासन पालन करने करवाने मे आपश्री मिश्री के समाम कठोर थे । जव कभी भी सन्तो की सयम वृत्ति मे त्रुटि देखते, स्खलना मालूम होती तो उनको सावधानी दिलाते। सुधारने की चेष्टा करते एव यथास्थान दण्ड व प्रायश्चित्त भी देते। उसमे इस वात का उनको जरा भी भय नही रहता था कि ऐसा करने पर सन्त नाराज हो जायेंगे या कम हो जायेंगे ।

एक वार उदयरामसर (वीकानेर) मे ऐसा ही प्रसग आया कि सन्तमंडलो के सामने आचार्यदेव ने फरमाया कि सयमी नियमो के पालन के साथ आप मेरे हृदय के हार हैं और उनके अभाव में अकेला रहना पसन्द करूगा, लेकिन सयमी नियमो की स्खलना पसद नही करूगा ।

तात्पर्य यह है कि आचार्य श्रीजी सयमी जीवन मे तनिक भी ढिलाई देखना पसद नही करते थे । आपश्री मे अनेक ऐसे आध्यात्मिक गुण विद्यमान थे; जिनका वर्णन शक्य नही है । फिर भी पाठको को अनुमान लगाने की दृष्टि से नमूने के रूप मे कुछ कथन किया गया है।

समय से पूर्व की सोचने की क्षमता भी आपश्री मे अदभुत-सी थी । उनकी अतरात्मा मे जो कुछ भी भाषित हो जाता, उसको वे दृढता पूर्वक सयमी मर्यादा के साथ कहने मे जरा भी नही हिच-

फिराते थे। तत्काल अच्छे-अच्छे समझदार व्यक्तियों को भी वह कथन अच्छा नही लगता था, लेकिन जब भविष्य मे वह बात साकार रूप धारण करती तो वे ही समझदार लोग मुक्तकंठ से प्रशसा करते और किसी-किसी के मुह से तो ऐसा भी निकल पड़ता कि आचार्यश्री के पहले ही सूझ गया था।

बृहत्साधु सम्मेलन मे प्राय जनता को यही महसूस हो रहा था कि साधु समाज का सुधार होकर के यह सगठन वृद्धि को प्राप्त होगा, लेकिन आचार्यश्री न मालूम उस समय भी भविष्य को किस रूप मे देख रहे थे, यह तो विशिष्ट ज्ञानी ही बता सकते हैं। शर्तपूर्वक आचार्यश्री ने जो प्रतिज्ञापत्र पेश किया और उसके पश्चात् निर्ग्रन्थ श्रमणसस्कृति का जो क्रान्तिकारी कदम उठाया एवं सादड़ी सम्मेलन मे स्वीकृत उद्देश्य को अमली रूप देते हुए सुसगठन का निर्माण किया, उस समय प्राय कई व्यक्ति इस कार्य को अन्तःकरण से अच्छा नही मान रहे थे, लेकिन आचार्य श्रीजी म के स्वर्गवास के पश्चात् अधिकाश वे ही व्यक्ति और यह कहा जाये कि वे प्राय सभी व्यक्ति आचार्य श्रीजी म के कार्य की अन्तःकरण से भूरि-भूरि प्रशसा करते हैं और कईयो के मुह से यह सहसा निकल पड़ता है कि आचार्य श्री गणेशलालजी म. ने बहुत ही अच्छा कार्य किया।

अनेक व्यक्तियो को आचार्यश्री के संपर्क से विविध प्रकार का अनुभव हुआ। वह अनुभव कभी उन लोगो के मुह से सुनने का प्रसग आता तो वे कहते हैं कि आचार्य श्रीजी म. को वचन-सिद्धि भी प्राप्त थी। उनके मुह से अन्त करण पूर्वक स्वाभाविक जो भी शब्द निकल पड़ता, वह वैसा सिद्ध होते देखा गया है।

वीतराग श्रमण परपरा की सुरक्षा के लिये आपश्री समय-समय पर चतुर्विध सघ को भलीभांति सचेत करते रहते थे।

जब आपवादिक स्थिति में आपके आने का प्रसग आ रहा था, उस समय भी आचार्य श्रीजी म ने चतुर्विध सघ को शिक्षा देते हुए जो बातें कहीं, वे मौलिक एवं मार्मिक थी तथा निर्ग्रन्थ श्रमण-सस्कृति का निचोड़ मानो सक्षिप्त मे परिणत हो गया हो। वे निम्न प्रकार है .—

रत्नत्रय की अभिवृद्धि के साथ आत्मोन्नति, शासनोन्नति मे निरन्तर सावधानी एव प्रमाद न करें और निम्न अभिप्रायों पर

सदा ध्यान रखें —

(१) शुद्ध सिद्धान्त व शुद्ध जीवन के आधार पर ही विश्वशाति सभावित है। इस आधार के बिना व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एव विश्व की शान्ति सभावित नही।

(२) गुण और कर्म के अनुसार वर्ग-विभाग शान्ति के वातावरण मे सहायक सिद्ध हो सकता है।

(३) भगवान महावीर की निर्ग्रन्थ श्रमणसस्कृति को उसके लक्ष्यानुरूप शुद्ध रखने के लिये सदा प्रयत्न करने की आवश्यकता है।

(४) वीतराग प्ररूपित सिद्धान्तों का जहा हनन हो, परिवर्तन किया जाता हो, समय के नाम मे पच महाव्रतधारी मुनि-जीवन के लक्ष्य के प्रतिकूल प्रवृत्ति की जाती हो, वहां किंचिदपि सहयोग न दिया जाये।

(५) शुद्ध चारित्रनिष्ठ मुनियो के प्रति शुद्ध श्रद्धा, भक्ति रहे। शिथिलाचार मुनिजीवन तो दूर, मानवजीवन के लिये भी कलकस्वरूप है। अत किसी भी प्रकार से शिथिलाचार को न छिपाना, न बचाव करना, न प्रश्रय देना और न पोषण ही करना।

(६) शुद्ध आत्मीय-समता के चरम विकास का लक्ष्यविन्दु अन्तःकरण मे सदा बना रहे एव तदनुरूप सम्यक् ज्ञान और शुद्ध श्रद्धा के साथ समता-साधन को यथाशक्ति जीवन मे उतारना यानी कार्यान्वित करना।

(७) श्रमणवर्ग अपने लक्ष्यानुरूप स्वय की भूमिका पर सरलता पूर्वक महाव्रतो का भलीभाति पालन करे और श्रावक के लिये श्रावकोचित मार्ग का निर्भयता से प्रतिपादन करता रहे।

(८) श्रावकवर्ग भी अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना मे उत्तरोत्तर वृद्धि करता हुआ वाह्याडम्बरों से अपने आपको दूर रखने मे तथा प्रत्येक कार्य सादगी से सम्पन्न करने मे अपना व समाज का हित समझे। साथ ही अपनी भूमिका व श्रमणवर्ग की भूमिका का पूरा-पूरा ज्ञान रखे। जिससे वह श्रावक और श्रमण का अन्तर अच्छी तरह समझ सके और श्रमण को अपने श्रमणोचित कर्तव्य पालने मे तथा स्वय को अपने श्रावकोचित कर्तव्य पालन करने मे भलीभांति सफल हो सके।

(९) निर्ग्रन्थ श्रमणसस्कृति की महत्ता सख्या की विपुलता में नही

किन्तु चारित्र की उत्कृष्ट दिव्यता और त्याग की महानता मे है। उच्च चारित्रनिष्ठ, त्यागी निर्ग्रन्थ श्रमण चाहे अल्पमात्रा में भी क्यो न हो, उन्ही से निर्ग्रन्थ श्रमणसस्कृति का सरक्षण हो सकता है। अत स्वगृहीत प्रतिज्ञा को भली-भांति सुरक्षित रखता हुआ निर्ग्रन्थ श्रमणवर्ग स्वकल्याण के साथ-साथ वीतराग प्रभु की वाणी का प्रसार जनकल्याणार्थ भी करता रहे।

(१८) जहां सच्चे श्रमण नही पहुंच सकते है और श्रावकवर्ग की स्थिति भी वैसी न हो तो वहा पर वीतराग प्रभु के प्रवचन की प्रभावना के लिये एक मध्यम श्रेणी के साधकवर्ग की आवश्यकता है। ताकि वह (साधकवर्ग) इन्द्रियजनित विषयों की आसक्ति से ऊपर उठकर पूर्णरूपेण ब्रह्मचर्य के साथ अहिंसादि मर्यादाओ का पालन करता हुआ वीतराग प्रभु की शासन सेवा मे अपनी शक्ति का सदुपयोग कर सके।

उपर्युक्त बातें कोई भी सदस्य सही माने मे अपना ले तो उसका जीवन व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र एव विश्व मे क्रमश. व्यापक बनता हुआ जीवन की चरम सीमा तक पहुच जाता है। आचार्य श्रीजी म की यह भावात्मक वाणी अक्षय रूप मे ससार मे विद्यमान रहेगी।

आचार्य श्रीजी म. ने चतुर्विध सघ को जो निर्देश दिया है, उसका आचार्य श्रीजी म. शक्ति भर स्वयं के जीवन मे उतारने का प्रयत्न करते थे। इस निरन्तर अभ्यास का ही एक प्रकार से परिणाम कह सकते है जो कि आचार्यश्री को समाधिमरण के रूप मे प्राप्त हुआ।

आचार्यश्री के सयम ग्रहण करने के पश्चात् आचार्य पद के पूर्व अनेक तरह के परिषह अनुकूल प्रतिकूल रूप मे उपस्थित हुए। प्रतिकूल परीषह तो आचार्यश्री सहर्ष उत्साही युद्धवीर की तरह सहन करते हुए आगे बढे और परिषहदाताओ को अपने सहायक रूप मे मानते रहे एव फरमाते रहे हैं कि ऐसे व्यक्ति मुझे जागृति करने वाले होते हैं। यही कारण है कि उनके अन्त करण की ध्वनि प्राय व्याख्यान मे व ऐसे प्रसंगों के समय सस्कृत श्लोक के रूप मे सहसा परिस्फुट होती रहती थी—

> जीवन्तु मे शत्रुगणा. सदैव, येषां प्रसादात्सुविचक्षणोऽहम् ।
> ये ये मां प्रति बाधयन्ति, ते ते माम् प्रतिबोधयन्ति ॥

मेरे शत्रुगण सदा जीवित रहें, जिनकी कृपा से मैं सुविचक्ष (सावधान) रहूं। जो जो व्यक्ति मेरे जीवन मे वाधक वनते हैं, मानो वे मुझे वोध देते हैं यानी जागृत करते हैं।

प्रतिकूल परिपहो में खुश रहने मे व समभाव से सहन करने मे इतना जोर नही लगता जितना कि अनुकूल परिषहो के उपस्थित होने पर समभावी रहना कठिन होता है। एतद्विषयक वहुत से अवसर आये और सत्कार-सन्मान की परिस्थितिया भी वहुत-सी आई, फिर भी आचार्य श्रीजी म उनमे आसक्त नही हुये।

उत्कृष्ट सत्कार-सन्मान के लिए कई व्यक्ति लालायित रहते हैं और उसकी प्राप्ति के लिए सत्य और संस्कृति को भी गौण करके उसको पाने की भरसक चेष्टा करते है, फिर भी पूरे नही मिल पाते। किन्तु आचार्यश्री ने सहज सुलभ बिना प्रयास के मिलने वाले उत्कृष्ट सत्कार-सन्मान को भी पीठ पीछे रखकर सत्य और सस्कृति को सन्मुख रखा।

वृद्धावस्था और प्रवल वेदनीयकर्मजनित भयंकर असाता का सघर्ष एव सस्कृतिघातक व्यक्तियो के सामूहिक संघर्ष के वीच में समभाव के अमोघ शस्त्र से सन्नद्ध होकर आचार्यश्री ने निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति की रक्षा के साथ आत्मीय दृष्टि को सन्मुख रखकर—

सत्वेषु मैत्रीं, गुणिषु प्रमोद क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्व।
माध्यस्थभाव विपरीत वृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव ॥

आदि भावो को रखते हुए इन सभी सघर्षों के वीच में अपने स्वीकृत उद्देश्य की ओर वढते हुए क्रान्तिकारी समाज की सुव्यवस्था करके, फिर उन व्यवस्थाओं से भी ऊपर उठ करके स्वयं के शरीर का और तत्सम्वन्धी स्थितियो का भानपूर्वक त्याग करके शास्त्रीय विधिवत् २९ घटे पहले ही स्वत जागरूक अवस्था के अन्दर सथारा ग्रहण किया और उसी समाधिभाव के साथ अन्तिम अवस्था तक होशहवास के साथ अपने इस भौतिक पिंड को छोडकर स्वर्गारोहण किया। यह अन्तिम जीवन का श्रेय-साधन उनके समग्र जीवन की स्थिति को अभिव्यक्त करता है।

आज दिन तक के इतिहास के पृष्ठो से जाना जा सकता है कि इस पचमकाल मे इस प्रकार की उत्कृष्ट साधना करने वाले और आचार्य पद पर रहते हुए २९ घटे का सथारा करने वाले विरले ही

महापुरुष होते है ।

ऐसे महापुरुष की कुछ जीवनी जो कि प्राप्त हो सकी है, इस जीवन चरित्र में यथास्थान पढने को मिलेगी । उसमें से सब तरह की जीवन कलायें, आध्यात्मिक प्रेरणायें, सहिष्णुता आदि तथा प्राणिमात्र के कल्याणप्रद तत्त्व की सामग्री चिन्तन-मनन करने वाले विचारक वर्ग को मिल पायेंगी और उस आध्यात्मिक जीवन के उज्ज्वलतर सीमा की ओर वढते हुए समग्र प्राणी कल्याणप्रद स्थिति को प्राप्त करे, यही शुभकामना ।

ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

श्रद्धावनत
सुन्दरलाल तातेड़

पूज्य गणेशाचार्य के चातुर्मास

संवत्	स्थान
१९६३	गंगापुर
१९६४	रतलाम
१९६५	थांदला
१९६६	जावरा
१९६७	इन्दौर
१९६८	अहमदनगर
१९६९	जुन्नर
१९७०	घोड़नदी
१९७१	जामगांव
१९७२	अहमदनगर
१९७३	घोड़नदी
१९७४	मीरी
१९७५	हिवड़ा
१९७६	चिंचवड़
१९७७	सतारा
१९७८	रतलाम
१९७९	सतारा
१९८०	घाटकोपर
१९८१	जलगांव
१९८२	जलगांव
१९८३	जलगांव
१९८४	भीनासर
१९८५	चूरू
१९८६	चूरू
१९८७	ब्यावर

संवत्	स्थान
१९८८	फलौदी
१९८९	जोधपुर
१९९०	उदयपुर
१९९१	रतलाम
१९९२	देवास
१९९३	उदयपुर
१९९४	बीकानेर
१९९५	जयपुर
१९९६	उदयपुर
१९९७	फलौदी
१९९८	सरदारशहर
१९९९	भीनासर—बीकानेर
२०००	देशनोक
२००१	सरदारशहर
२००२	ब्यावर
२००३	बगड़ी
२००४	बड़ीसादड़ी
२००५	रतलाम
२००६	जयपुर
२००७	दिल्ली
२००८	अलवर
२००९	उदयपुर
२०१०	जोधपुर
२०११	कुचेरा
२०१२	बीकानेर
२०१३	गोगोलाव
२०१४	कानोड़
२०१५	जावरा
२०१६	उदयपुर
२०१७	उदयपुर
२०१८	उदयपुर
२०१९	उदयपुर

पूज्य गणेशाचार्य के जीवन की महत्वपूर्ण तिथियां

जन्मस्थान	उदयपुर
जन्म	स. १९४७, मिती श्रावण कृष्णा ३
पितृनाम	श्री साहबलाल जी
मातृनाम	श्रीमती इन्द्राबाई
जाति एव गोत्र	ओसवाल, मारू
दीक्षातिथि	स १९६२, मार्गशीर्ष कृष्णा १
दीक्षास्थान	उदयपुर
दीक्षागुरु	आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा.
नेश्रायगुरु	तपस्वी मुनि श्री मोतीलाल जी म. सा.
युवाचार्यपद-प्राप्ति	सं. १९९०, फाल्गुन शुक्ला ३
युवाचार्यपद-प्राप्ति स्थान	जावद
आचार्यपदारोहण	सं. २०००, आषाढ़ शुक्ला ८
,, ,, स्थान	भीनासर
देहावसान	स. २०१९, माघ कृष्णा २
स्थान	उदयपुर

अनुक्रम

प्रारम्भिक-जीवन

उत्थानिका

हमारे चरितनायक जनवंद्य श्रमण-संस्कृति के संरक्षक परमश्रद्धेय पूज्य आचार्य श्री गणेशलाल जी म० सा० के नाम से प्रख्यात महापुरुष हैं। इन महापुरुष के जीवन को हम कितना अंकित कर सकेंगे—कह नही सकते। हम जो लिखेंगे, उससे जनता को संतोष नही होगा और हो भी कैसे, जब हमारे कहने की अपेक्षा उनका महिमायुक्त जीवन और जीवन की घटनाओं के संस्मरण उसकी अपनी मन-मंजूषा मे सुरक्षित हैं। महापुरुषो का जीवन महानता का महासागर है और उसका विशद विवरण लेखनी से लिखे जाने का विषय नही होता है। लिखते-लिखते जब अनेक जीवन एक जीवन का संपूर्ण अंकन नही कर सकते तो एक व्यक्ति समग्र जीवन के वर्णन करने का दावा भी कैसे कर सकता है? फिर भी सैद्धान्तिक दृष्टि से यह सत्य है कि अंकित अंश समाज के वास्तविक मूल्यो का संरक्षक एवं आत्मिक-चेतना को शिक्षित करने में सहायक होता है।

महिमामयी मेवाड़

राजस्थान का अपना इतिहास है। नाम लेते ही आज भी देश-भक्ति की गौरव-गाथा से प्रत्येक भारतीय का भाल उन्नत हो जाता है, बाहें फड़क उठती हैं। मातृभूमि के लिये हँसते-हँसते प्राणो को होम देना यहां के जन-साधारण के लिये खेल ही था तो राजपूतों ने अपनी आन के लिये प्राण दे दिये परन्तु पीठ नही दिखाई। रनवासो की सुन्दरियों ने सतीत्व के सामने संसार के अमूल्य आभूषणों और प्रलोभनों को मिट्टी के समान समझा, किन्तु कुल को कलंकित नही किया।

उसमें भी अरावली की उपत्यका मे विस्तृत महाराणा का मेवाड़ तो प्रत्येक राष्ट्रप्रेमी को अपनी आन, बान और शान के लिये बलिदान हो

जाने वाले सपूतो को श्रद्धाजलि समर्पित करने के लिये लालायित कर देता है। यह वही मेवाड है जिसके वीरशिरोमणि महाराणा लक्ष्मणसिंह ने देश की स्वाधीनता के लिये अपने ग्यारह पुत्रो का वलिदान दिया और वीर माता ने प्रसन्नमुख से उन पुत्रो की आरती उतारी थी। यह वही मेवाड़ है जिसमे रूप-लावण्य की खान महारानी पद्मनी ने अपने पति-प्रेम के सामने वादशाही सुख-ऐश्वर्य पर थूक दिया और कुल-गौरव के लिये चिता पर चढ गई थी। यह वही मेवाड है जहाँ दुर्भिक्ष-पीडित प्यारी प्रजा के समान ही महाराणा सग्रामसिंह ने भी पेडो की छाल खाकर दिन काटे थे। यह वही मेवाड है जिसकी रक्षा के लिये वीरवर जय-मल और फत्ता ने प्राणो का कुछ भी मोह नही किया था। यही वही मेवाड है जिसके भामाशाह जैसे नगरसेठो ने अपने अटूट धन की कुछ भी परवाह न कर अपने स्वामी और जाति के लिये प्राण तक दे दिये थे। यह वही मेवाड है जिसका शासक देश की स्वाधीनता और वश-गौरव के लिये वर्षों पहाडी स्थानो और दुर्गम जगलो मे रहा और सपरिवार घास खाकर दिन निकाले किन्तु प्रण से च्युत नही हुआ था।

मेवाड़ का चप्पा-चप्पा 'प्राण जाहि पर वचन न जाहि' के प्रण से मुखरित है। मेवाड मे जन्मा विपन्नावस्था मे भी पराजय स्वीकार नही करता है। वह किसी के समक्ष अपेक्षा और आकाक्षा के लिये हाथ पसार कर दीनता नही दिखाता है। श्रम के कण ही मेवाड़ के मोती हैं।

मेवाड़ की भूमि जहाँ स्वाधीनता के सरक्षक सेनानियो की जन्म-दात्री रही है, वही इसने आध्यात्मिक जीवन की पवित्रता और सर्वो-च्चता, प्राणिमात्र के प्रति प्रेम और अनुकपा भावना के प्रसारक सत महापुरुषो की जन्मभूमि होने का भी सौभाग्य प्राप्त किया है।

यही मेवाड हमारे चरितनायक के आदि, मध्य और अत का रस-मच है। एक दिन इसकी मिट्टी मे आखे खोली—जीवन का प्रारम्भ हुआ। इसी की मिट्टी मे लोट-पोट कर वडे हुए, इसी की मिट्टी मे

कर्तव्य-पथ पर अग्रसर हुए और किसी एक दिन इसी मिट्टी मे देखना वन्द कर दिया—जीवन का अंत हुआ ।

वंश-परिचय और जन्म

महाराणा उदयसिंह के समय से ही उदयपुर मेवाड़ की राजकीय गतिविधियो का केन्द्र वन चुका था । अपनी प्रतिभा, कुशलता और स्वामीभक्ति के फलस्वरूप अनेक ओसवाल जातीय जैन वंधुओ को राज्याश्रय प्राप्त था और राज्य-संचालन मे उच्च पदो पर प्रतिष्ठित थे ।

इन्ही राज्याधिकारियो में देवस्थान विभाग के खजांची श्री साहबलाल जी मारू नाम के सद्गृहस्थ भी एक थे । आप स्वभावत: धार्मिक-वृत्ति के थे और अधिकारी भी ऐसे विभाग के थे, जिसका कार्य प्रजा की धर्म-प्रवृत्तियों की देखभाल करने से सम्वन्वित था ।

आपके दैनदिनी जीवन के सामायिक, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण, उपवास, पौषध आदि व्रताचार का पालन, साधु-संतों के प्रवचन-श्रवण, उनकी सेवा वैयावच्च करना आवश्यक अग थे । आपका व्यक्तित्व सर्वत्र मान पाता था । हृदय की सरलता इतनी थी कि सभी को हित-मित और सत्य वात कहते एवं दूसरो की भलाई के लिये सदैव तत्पर रहते थे ।

आपका न्याय-नीतिपूर्वक अर्थोपार्जन में विश्वास था । पितृ-परंपरागत व्यवसाय लेन-देन, साहूकारी था और उसका माध्यम वस्तु का विनिमय वस्तु से एवं रुपयो का लेन-देन गिनती करके लेना-देना नही होकर नाप-तौल माना जाता था ।

राजकीय समान तो आपको प्राप्त था ही और उसके साथ न्याय-नीतिपूर्ण व्यवहार एव प्रामाणिकता के कारण जन-साधारण मे भी आपको अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त थी । गृहस्थ जीवन के लिये तीन चीजों की अनिवार्य रूपेण आवश्यकता होती है—आजीविका, सुयोग्य परिवार एवं सामाजिक प्रतिष्ठा, और यह तीनों चीजें श्री साहबलाल जी को सहज-रूपेण ही प्राप्त थीं ।

आपकी धर्मपत्नी का नाम इन्द्राबाई था । आप कुलीन और

सुसस्कारी महिलारत्न थी । दीन-दुखीजनों की सेवा-सहायता करने मे उदार थी । कोई भी याचक द्वार से निराश होकर नही लौटता था। स्नेह की अमीधारा से सभी को आप्लावित करना आपके जीवन की अनेक विशेषताओ मे से एक थी और पति-पत्नी प्रत्येक धर्म-कार्य में एक दूसरे के पूरक वन सात्विक जीवन व्यतीत करते थे । वात्सल्य की वीणा पर सदैव त्याग और सेवा का नाद गूंजा करता था ।

यही सौभाग्यशाली दम्पति हमारे चरित्रनायक के जनक-जननी थे ।

श्रावण कृष्णा ३ सं० १९४७, शनिवार को श्रीमती इन्द्रावाई की कुक्षि से एक तेजस्वी पुत्र का जन्म हुआ ।

जैसे मनभावन सावन प्राकृतिक समृद्धि का प्रतीक है, हरे-भरे खेतो और रिमझिम वरसते कजरारे मेघो की छटा को निहार कर मानवीय मन छन्दो मे छलक पडता है और यह छन्दो का सरगम नये-नये तीज, त्यौहारो का सर्जन कर अणु-अणु मे मोदमयी ममता बिखेर देता है, वैसे ही इस पुत्र के जन्म से पितृहृदय का हुलास उमड पडा । माता वात्सल्य मे भीग गईं और सलौने शिशु को ममता से आच्छादित कर पुलक उठी । पारिवारिकजन हर्ष और उल्लास से परिव्याप्त हो गये ।

सामान्यतया पुत्र की प्राप्ति माता-पिता के लिये हर्ष की वात होती है और फिर ऐसे पुत्ररत्न को पाकर कौन निहाल न हो जाता जो आगे चलकर अपनी ज्ञान और सयम-साधना के द्वारा अगणित नर-नारियो के अज्ञानान्धकार को दूर करने मे समर्थ हुआ ।

नामकरण

वालक का नाम सुन्दर और प्रिय हो, यह प्रत्येक माता-पिता की साहजिक आकाक्षा होती है। इसीलिये नाम एवं गुणो का सामजस्य करने के लिये राशि और नक्षत्रो की गणना कराते हैं। फिर भी नाम के अनुसार गुण और गुण के अनुसार नाम का ताल-मेल क्वचित्-कदाचित ही दृष्टिगोचर होता है ।

परन्तु कौन जाने कि यह अकस्मात था या विद्वान ज्योतिषी की

दीर्घदृष्टि का परिणाम, जिससे नवजात शिशु का नामांकन 'गणेशलाल' किया गया। उस समय शायद ही किसी ने कल्पना की हो कि जिस बालक का नामकरण गणेशलाल किया जा रहा है वह भविष्य मे नाम-निक्षेप से ही नही प्रत्युत साधुग्रो के गण का ईश बनकर भावनिक्षेप से भी 'गणेश' नाम सार्थक करेगा। कौन जानता था कि अज्ञानता की घोर निशा मे एक ज्योति प्रदीप्त करके प्रकाशपुंज सिद्ध होगा। सयम-साधना से चतुर्विध सघ—साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका—का सिरमौर बनेगा और पथ-भूलो को सदैव ध्रुवतारे की तरह मार्ग-दर्शन कराता रहेगा।

शैशवकाल

'होनहार विरवान के होत चीकने पात' उक्ति के अनुसार शिशु गणेश ममतामयी माँ की गोद और दुलार के हिडोले मे झूलते हुए बडा होने लगा। पितृ-स्नेह पुत्र पर केन्द्रित होने लगा। मस्तिष्क में पुत्र को सुखी, शिक्षित करने के चित्र उभरने लगे।

माता इन्द्रा इस ममता के मेरु को जब हँसते-खेलते, भागते-गिरते, रोते और मीठी नीद में सोते देखती तो उल्लास से भर जाती थी। कल्लोल और किलकारियो से तिमंजिली हवेली का कोना-कोना गूंज उठता था और जब इस अनूठे दुलारे को देख-देखकर भी मन नही भरता तो गोदी में ले मीठी-मीठी लोरियां सुनाने में अपने आप को तल्लीन कर लेती थी।

पुण्यमयी माता की गोद और पितृत्व के स्नेह से पगे हुए हमारे चरितनायक का शरीर के साथ-साथ मानसिक विकास होने लगा। वाणी की मृदुता और स्वभावजन्य चपलता स्वत. ही जनमानस को आकर्षित कर लेती थी। चार वर्ष के होते-होते तो पाठशाला में विद्याध्ययन का श्रीगणेश करा दिया गया था। शैशव की पगडंडियों को पार करने के साथ-साथ बौद्धिक विकास प्रथम स्थान प्राप्त करने के लिये उत्तरोत्तर विकास-मान होने लगा।

अर्थोपार्जन के पितृ-परम्परागत व्यवसाय में निपुणता-प्राप्ति हेतु

तत्कालीन प्राप्त शैक्षणिक सुविधाओं के अनुसार हिन्दी, उर्दू, फारसी भाषा और महाजनी का अध्ययन करने लगे और १२-१३ वर्ष के होने-होते तो स्वतत्र रूप मे शासन से सबधित पत्रादि लिखना और पिताश्री के कार्यो मे हाथ बटाने के लिये कचहरी का कामकाज सीखना भी प्रारभ कर दिया था।

विनीत पुत्र के विकास को देख श्री साहबलाल जी को जितना सतोष था, उससे बढकर आत्म-गौरव से विभोर हो उठते थे। सुयोग्य पुत्र को पाकर वे तृप्त थे।

महापुरुषो के जीवन मे सुसस्कारो की प्रबलता साहजिक होती है, जो समय के साथ पल्लवित होकर विशाल रूप धारण कर लेते हैं एव अन्यान्य अवसरो को भी अपने निर्दिष्ट पथ मे सहायक बना लेते हैं। यही कारण है कि हमारे चरितनायक जिस ओर झुके, सफलता उनकी चेरी बनती गई और यही उनकी सम्पूर्ण सफलता का मूलमत्र है।

धार्मिक-संस्कारो का अर्जन

चरितनायक के पिताश्री श्री साहबलाल जी धार्मिक आचार-विचार के व्यक्ति थे। वे जानते थे कि धर्म का निवास मनुष्य की आत्मा मे है, धर्म मानव-स्वभाव का अग है। धर्म का अस्तित्व सृष्टि के अस्तित्व की तरह सनातन है और अपनी वास्तविकता से मानवीय आत्मा को प्रभावित करता रहता है। उस वास्तविकता का परीक्षणात्मक ताल-मेल एवं निष्पक्षता की भावना का विकास तदनुकूल आचार-विचार के माध्यम से होता है।

इन्ही विचारो को अपने पुत्र मे देखने के लिए वे उत्सुक थे और हमारे चरितनायक भी शिशु-अवस्था से पिताश्री के साथ-साथ धर्म-स्थानो मे जा पहुँचते और कभी-कभी सामायिक, दया आदि धार्मिक क्रियाये भी करते थे। कुछ धार्मिक भजन भी सीख लिये थे। कठ सुरीला था और जब आप भजन बोलना प्रारम्भ करते तो श्रोताओ के मन मुग्ध हो जाते थे।

श्री साहबलाल जी यह सब देखते, सुनते और एक प्रकार का आत्म-गौरव अनुभव करते थे और ऐसा होना स्वाभाविक ही था। क्योंकि प्रत्येक माता-पिता स्वयं अपने जीवन-व्यवहार मे धार्मिक आचार-विचारो का आचरण कर अपनी सन्तान को भी शैशवावस्था से ही धार्मिक-संस्कारो से सुसंस्कृत करने के लिये प्रयत्नशील रहते है, जिससे वे भी सत्य को हृदयगम करने की योग्यता अर्जित करने मे समर्थ हो।

आपकी यह धर्मश्रद्धा तात्कालिक भावावेग का परिणाम नही थी, किन्तु वह निश्चय ही पूर्व-जन्म के सस्कारो का सुफल मानी जायेगी। इसका ज्वलन्त प्रमाण यही है कि वह धर्मश्रद्धा दूज के चद्र की तरह निरंतर वृद्धिगत होती गई और उसके फलस्वरूप एक महान संत का गौरव प्राप्त हुआ, सघशिरोमणि की प्रतिष्ठा पाई और आत्म-शुद्धि के अधिकारी बने।

कुमारावस्था

शिशु गणेश क्रम-क्रम से एक के बाद दूसरी विकास की परिधि पार करते हुए बढ रहे थे। उदीयमान योग्यता, प्रतिभा और पारिवारिक कुलीनता को देखकर कई कन्याओं के पिताओ का अपनी-अपनी कन्या से सगाई-सम्बन्ध करने के लिये श्री साहबलाल जी से आग्रह रहा। परिणामत: चार वर्ष के बालक गणेशलाल की मेहता परिवार की समवयस्का कन्या के साथ सगाई हो गई।

नये-नये अनुभव, लौकिक कार्यो मे चातुर्य और अर्जन के क्षेत्र में सफलता के साथ बढते हुए आप चौदह वर्ष की कुमारावस्था में प्रविष्ट हुए। भारतीय आश्रम-व्यवस्था के अनुसार यह अवस्था विद्यार्थी जीवन की थी, जब भविष्य के उत्तरदायित्वो को समझने और निर्वाह करने के लिये नवीन-नवीन ज्ञान प्राप्त किया जाता है। किन्तु तत्कालीन समाज-व्यवस्था के अनुसार स्वास्थ्य व शारीरिक विकास की दृष्टि से विवाह का उचित अवसर न होने पर भी चौदह वर्ष की [illegible] अवस्था मे ही धूमधाम से विवाह करके आपको [illegible] भी [illegible]

दिये गये।

लेकिन आपके व्यक्तित्व में कुछ ऐसा अनुशासन था कि चौदह वर्ष की अवस्था मे ही सामान्यतया विद्याभ्यास, अर्थोपार्जन तथा गृहस्थ-जीवन का दायित्व सफलता के साथ निबाहना प्रारम्भ कर दिया और क्रमश विकास के सोपानो पर अग्रसर होते जाना मानो अपने दायित्वों को सफलता के साथ सम्पन्न करके नियति द्वारा निर्दिष्ट पथ पर आरूढ होने की तैयारी चल रही हो।

किन्तु उस समय अदृष्ट की प्रेरणा को कौन समझ सकता था। आपके जीवन मे एक ऐसी उल्लेखनीय विशेषता दृष्टिगोचर होती है कि आपका जीवन परिस्थितियो की प्रेरणा से स्वयमेव ढलता गया। आकस्मिक सयोग, साहचर्य और वातावरण आपको निरन्तर उन्नति की ओर अग्रसर करने मे सहायक होते गये और इन्ही के बीच आपके लोकोत्तर विकास का रहस्य गर्भित है। आपके जीवन मे प्रगति एव नवनिर्माण का जो विहान प्रस्फुटित हुआ, उसका निष्कर्ष निकालना मानवीय बुद्धि से परे की बात है, किन्तु उसमे साहजिक व्यवस्था परिलक्षित होती है।

क्या तुम भी दीक्षा लोगे ?

पूज्य आचार्य श्री श्रीलाल जी म० सा० का उदयपुर मे चातुर्मास था। पूज्यश्री श्रमण-सस्कृति के जाज्वल्यमान नक्षत्र थे। आप मे तप के तेज एव सयम के ओज का अनूठा सामजस्य था।

जहाँ भी ऐसे पूज्य पुरुषो का पदार्पण होता है, वहाँ वे जनसाधारण को ज्ञान और चारित्र की शक्ति प्रदान कर और सद्धर्म के मर्म को शास्त्र-नीति एव विज्ञान-नीति द्वारा युक्ति-प्रयुक्तिपूर्वक समझाकर मानव-समष्टि को धर्मनिष्ठ बनाते हैं।

पूज्यश्री के प्रवचन-प्रसाद की प्राप्ति हेतु प्रतिदिन श्री साहबलाल जी प्रवचन के समय उपस्थित होते और उपदेश-श्रवण से जीवन की महान उपलब्धि के प्रति सतत जागरूक रहने के आदर्शों से समृद्ध होकर घर लौटते थे और जो सुनते, उसे हृदयगम करने के लिये चिन्तन-मनन की

कसौटी पर कसते थे।

चरितनायक भी कभी मातुश्री के साथ तो कभी पिताश्री के साथ पूज्यश्री के प्रवचन-श्रवण के लिये जाते थे । उस समय करीब आठ-नौ वर्ष की वय हो चुकी थी और वयोपार्जित अनुभवों से जो कुछ भी समझ सकते थे, समझ लेते और जो नहीं समझ पाते, उसको समझने के लिए जिज्ञासु हो पिताश्री से समाधान प्राप्त करते थे ।

प्रवचनो के श्रवण एव चिन्तन-मनन से श्री साहबलाल जी की भावनाओ में मथन का सूत्रपात हुआ । जो सोचते, उससे अन्तर् की छानबीन की उत्सुकता तीव्र से तीव्रतर होने लगी । इन्ही विचारो मे डूबे हुए आप एक दिन पूज्यश्री के दर्शनार्थ पहुंचे और तात्त्विक-चर्चा का रसास्वादन करते-करते वैराग्य के भावोद्रेक से तन्मय होकर बोले—भगवन् ! मैं ससार से मुक्ति चाहता हूँ । चारों ओर उलझनें और समस्याये बिखरी पडी हैं । यद्यपि मैं पारिवारिक और कौटुम्बिक दायित्वो से भयभीत होकर भागना नहीं चाहता, तथापि अन्तर् में एक नाद उठ रहा है—जीवन पानी के बुलबुले के समान है । काल का एक हलका-सा झोका उसे कभी भी समाप्त कर सकता है । फिर भी मनुष्य न जाने किन-किन आशाओ से प्रेरित होकर कल्पनाओ के किले बनाता है । अब यह परिवार, प्रतिष्ठा और उत्तरदायित्व भव-विमुक्ति में सहायक प्रतीत नही होते हैं । ये तन, धन, स्वजन, भवन सभी यहीं रह जाते हैं और आत्मा--हंस निकल जाता है । न जाने आत्मा शरीर की कितनी-कितनी व्यथायें भोग रहा है, फिर भी उसी को सजाने-संवारने मे सलग्न है । इस मूर्खता का अन्त होना ही चाहिये ।

इन्ही विचारो के अन्तराल श्री साहबलाल जी ने यह भी संकेत दिया कि वैराग्य के त्यागमार्ग पर मै अकेला ही नहीं, साथ मे पत्नी, पुत्र, पुत्री भी पथिक बनें तो मुझे प्रसन्नता होगी । लेकिन पुत्र, पुत्री अवयस्क है, अतः उनके वयस्क होने तक ऐसी भावना मे विलंब होना स्वाभाविक है ।

आचार्यप्रवर ने इन विचारो की गहराई मे झांका । अनुभूतियों के उच्छ्वास मे विवेक-समन्वित जीवन का विलास देखा और मानवीय जीवन की विशेषताओ का विशद विवेचन करते हुए समझाया कि कर्म-रहित अवस्था प्राप्त करना अपने ही हाथ की बात है । संयम-साधना आनन्ददायक है । यदि विवेकपूर्वक सयम का पालन किया जाये तो सयम इहलोक मे सुखदायक है और परलोक मे भी । साध्वाचार—पाच महाव्रत, तीन गुप्ति, पाच समिति, द्वादश तप—के स्वरूप का दिग्दर्शन कराते हुए फरमाया कि साध्वाचार का पालन करना तलवार की धार पर चलना है । पग-पग पर विषमताओ, कठोरताओं एव परिषहों का अनुभव करना पडता है। अत. सुदृढ सकल्प और सहिष्णुता के विना इसका यथावत आचरण होना शक्य नही है ।

तात्त्विक-चर्चा एव ऐसे ही अन्य प्रसंगों पर कुमार गणेशलाल भी पिताश्री के साथ उपस्थित रहते और जो सुनते उसे हृदय मे उतारने का प्रयत्न करते थे। आपने पिताश्री के विचारो को ध्यान से सुना और विचारो के वीच एक नई धारा का प्रादुर्भाव हुआ ।

आचार्यश्री ने वालक की ओर देखा और चेहरे पर अंकित भावो को पढते हुए पूछ लिया--क्या तुम भी दीक्षा लोगे ?

वालक ने सुना और अपनी सहमति जताते हुए कहा कि क्यों नही, मैं भी दीक्षा लूगा । जव महावीर संयम मार्ग की विषमताओं और परिषहो से भयभीत नही हुए तो हम महावीर की सन्ताने दुखो और सकटो से कैसे भयभीत हो सकती हैं । यदि वीर वनना है और महावीर के अनुयायी कहलाने मे गौरव मानना है तो हमे महावीर के मार्ग का अनुगमन करना चाहिये ।

आचार्यदेव वालक के इन आत्मविश्वास से परिपूर्ण शब्दो को सुना और मानसपटल पर वालक के भावी महत्त्व का एक चित्र अंकित हो गया। दो-चार शब्दो मे भावी जीवन की झांकी झलक उठी ।

आचार्य भगवान वालक की ओजस्वी वाणी, साहस, तर्क एवं

स्फूर्ति से इतने प्रभावित हुए कि उन्हें स्वयं अपने अनुमान ज्ञान द्वारा बालक के भविष्य के बारे में सोचना पड़ा । कुछ तथ्य और मान्यतायें ऐसी है जिनकी विशद व्याख्या तो नहीं की जा सकती है, परन्तु अनुमान ही लगाया जा सकता है ।

इस प्रकार मनोमंथन और तर्क-वितर्क से कुछ निश्चय-सा करते हुए आचार्यदेव श्री साहबलाल जी की ओर अभिमुख होकर बोले— साहबलाल जी ! आपका यह बालक किसी दिन समाज का नेतृत्व सभालेगा । मेरा मन इसका और समाज का उज्ज्वल भविष्य देख रहा है। बालक होनहार है। इसके शरीर लक्षण, हाव-भाव, बोलचाल और बौद्धिक प्रतिभा आदि व्यक्तित्व की विशेषता को व्यक्त करते हैं ।

श्री साहबलाल जी ने यह सब सुना और सुपुत्र के लिये ऐसी भविष्यवाणी सुनकर अत्यन्त आनन्दित हुए । मातुश्री की प्रसन्नता का पारावार न था । किन्तु वह भविष्य वर्तमान कब बनेगा और यह सब कुछ देखने के लिये क्या उनकी जिन्दगी इजाजत देगी ? क्या इतना अवकाश मिल सकेगा ? कुदरत की करामात को कौन समझ सकता है ? विश्व के नाट्यमंच पर किस अभिनेता को कितना क्या अभिनय करना शेष है, यह किसी को ज्ञात नहीं है ।

इष्टजन वियोग-दृढ़ता की परीक्षा

सामाजिक संरचना में परिवार एक आवश्यक तत्त्व है । परिवार के आधार से ही मनुष्य अपने में विद्यमान संवेदनना की, सुकुमारता की, विचारों के आदान-प्रदान की और बौद्धिक आनन्दों में हिस्सा बटाने की भावना की तृप्ति करता है ।

केवल पति-पत्नी और बच्चों के होने से ही कोई घर, घर नहीं बन जाता । परन्तु वंशानुक्रम से प्राप्त भाई, बहिन, माता-पिता आदि से संबोधित किये जाने वाले मानवों के समूह को परिवार कहा जाता है । इनके प्रति अपने दायित्वों का पालन करने के द्वारा इन सामाजिक कर्तव्यों का पालन करने के साथ-साथ मानवीय मन की भावनाओं और

नैतिक कार्यो के विधान को प्रस्तुत करते हैं ।

हमारे चरितनायक का भी इसी प्रकार का एक परिवार था । सबके अपने-अपने उत्तरदायित्व थे, कर्तव्य थे और अधिकार थे । एक दूसरे के प्रति ममता थी, मान-संमान की भावना थी और कुल-धर्म की प्रतिष्ठा रखने की कामना थी । जीवन शाति और सुख में बीत रहा था कि यकायक तूफान आया और वह तब शात हुआ जब आपका अपना कहा जाने वाला कोई न रहा । सब उस पथ पर चल दिये जिस पर जाने वाला कभी भी वापस नही लौटता है ।

तूफान का प्रारभ हुआ बहिन की मृत्यु मे । आपको वह अत्यधिक प्रिय थी । भाई का बहिन के प्रति और बहिन का भाई के प्रति स्नेह साहजिक है । आपकी अवस्था चौदह वर्ष की अवश्य हो गई थी लेकिन अभी तक पारिवारिक प्रियजन की मृत्यु का अनुभव नही हुआ था । अत उस समय आप भलीभाति नही समझ पाये कि मेरी बहिन को क्या हो गया है ? अभी तक उछल-कूद करने वाली लाडली बहिन को अकस्मात यह क्या हो गया है ? जिन्दगी की मुस्कुराहट मे पलने वाले सुकुमार बालक को यह भान भी कैसे हो सकता था कि जीवन का अतिम रूप मौत है । बहिन की मौत विचारधारा के बीच विराम-चिह्न-सी आ खडी हुई ।

पारिवारिकजनो मे सभी स्वस्थ और प्रसन्न थे । अत. उस रोज प्रात. श्री साहबलाल जी दयाव्रत अगीकार करके धर्म स्थानक मे रहकर धर्माराधना मे सलग्न थे । निर्दोष और निरतिचार व्रत पालन करने के लिये श्रावक दयाव्रत की मर्यादाओ को अगीकार करके गार्हस्थिक प्रवृत्तियो से विरक्त रहता है और धर्मस्थानक मे रहकर सयम, तप, त्याग-साधना के द्वारा आत्म-शुद्धि के लिये ही तत्पर रहता है ।

सूर्यास्त होने का समय था और उसी समय बच्ची की मृत्यु हुई थी । अत साहबलाल जी तो शव-दाह करने जा नही सकते थे । उन्होने विचार किया कि मृत बालिका वापस जीवित तो हो नही सकती है

अतः अंगीकृत व्रत मे अतिचार लगाना उचित नही है ।

हमारे चरितनायक भी दयाव्रत के विधान को जानते थे । अतः उन्होने सोचा कि आसपास के पड़ौसियो को लेकर शव-दाह कर देना चाहिये । पिताजी के व्रत में दोष लगने से क्या लाभ है ? अतः आप पडौसियो के साथ शव को उठाकर श्मशान की ओर चल पडे ।

श्मशान तक पहुँचते-पहुँचते रात्रि पड गई थी। रात्रि मे श्मशान वैसे ही काल्पनिक विचारो से भयावह प्रतीत होता है और यह तो कृष्ण पक्ष की रात्रि थी । चारों ओर सन्नाटा था, लेकिन बीच-बीच मे सियारो की वीभत्स आवाजे और वृक्षो की झुरमुराहट उस सन्नाटे को और भी भयकर बना रही थी ।

शव-दाह के लिये ईंधन कुछ दूर से लाना था और साथ मे गये व्यक्ति इने-गिने थे। किसी-न-किसी को शव की रखवाली के लिये बैठना भी जरूरी था । लेकिन कौन बैठे, इसका निश्चय नही हो पा रहा था।

यद्यपि बाल्यावस्था के कारण हमारे चरितनायक को ऐसे कार्यो और परिस्थिति का परिचय नही था । फिर भी साथ आने वालो की असमजसता को समझकर बोले—आप लोग ईंधन लेने जाये, मैं यहाँ बैठकर देखभाल करता हूँ । आप लोग किसी भी प्रकार की चिन्ता न करे ।

फिर भी साथ मे आने वालो की दुविधा दूर नही हो सकी और उनकी दुविधा का कारण था—चरितनायक की कुमारावस्था, जिसे अभी तक ऐसी परिस्थिति का अनुभव नही हुआ था। साथियों के मनोभावों को समझकर आपने पुन. कहा कि आप लोगो को अधिक सोच-विचार करने की जरूरत नही है । आप लोग ईंधन लेने जाये, मै यहां बैठकर देखभाल करता रहूँगा । आप मेरे लिये किसी प्रकार की चिन्ता न करें ।

बार-बार का आग्रह देखकर साथ वाले ईंधन लेने तो अवश्य चले गये और आवश्यक ईंधन [illegible] । किन्तु उनके मनो मे विचार उठ

रहे कि इस प्रकार बालक को अकेला नही छोडना चाहिये था और हम मे से किसी एक को वही बैठना जरूरी था। यदि हमारे पीछे बालक भयभीत हो गया या और कोई बात हो गई तो लोग क्या कहेगे और श्री साहबलाल जी भी अपने मन मे क्या सोचेगे ?

लेकिन इधर हमारे चरितनायक निर्भीक और निश्चल भाव से शव के निकट बैठ उसकी रखवाली करते रहे। उनके मन मे उस समय क्या कैसी विचार-लहरिया उत्पन्न हुई होगी, यह अवश्य ही जन-साधारण के लिये एक कुतूहल का विषय है। लेकिन उन्हे मालूम होना चाहिये कि मेवाड के वीरो के दिल इस्पात से निर्मित होते है और आपकी निर्भीकता उसका एक सकेतमात्र था।

ईंधन लेकर वापस आने पर साथियो को पूर्ववत आपको बैठा देखकर संतोष हुआ और आपके साहस की सराहना करने लगे। दूसरो ने भी जब इस घटना को सुना तो आश्चर्यान्वित होकर आपकी प्रशसा करते हुए उज्ज्वल भविष्य के अनुमान लगाने लगे।

यद्यपि श्री साहबलाल जी को पुत्री की मृत्यु से दुःख तो हुआ किन्तु पुत्र के साहस की जानकारी मिलने पर खुशी की एक झलक दिखाई पडी। उन्होने सोचा कि जो बालक अपने प्रारभिक जीवन मे इतना साहसी है, वह भविष्य मे न जाने कितना ओजस्वी, तेजस्वी होगा। पूज्यश्री द्वारा पूर्व मे कहे गये कथन का पुनः-पुनः स्मरण हो आया कि यह बालक अपने कर्तव्य मे रत रहकर न केवल अपने को ही वरन अपने वश के नाम को भी उज्ज्वल करेगा।

कसौटी का दूसरा चरण

यह घटना आपके भावी जीवन की महत्ता का बोध कराते हुए समय के साथ धूमिल पड़ गई और पूर्ववत जीवनक्रम चलने लगा। पारिवारिक प्रतिष्ठा और पारिवारिक व्यवस्था के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हुये जीवनप्रवाह बह रहा था। उसमे किसी प्रकार के द्वन्द्व-दुःख का आभास नही था। लेकिन अकस्मात उसमे पुनः दुःख की काली

घटायें घिर आईं । अब जो तूफान उठा वह लौकिक दृष्टि से मर्माहत करने वाला था । अच्छे-से-अच्छे धीर, वीर, गंभीर व्यक्ति भी उस स्थिति मे संतुलन बनाये रखने में असमर्थ-से हो जाते हैं । परन्तु अदृश्य शक्ति महापुरुषो के निर्माण के लिये किस प्रकार का वातावरण निर्मित करती है, यह एक ऐसा रहस्य है, जो मानवीय बुद्धिगम्य नही है ।

न्याय-नीतिपूर्वक पारिवारिकजनों का पोषण और गृहस्थ-धर्म का पालन करते हुए हमारे चरितनायक की अवस्था करीब सोलह वर्ष की रही होगी कि समस्त देश मे प्लेग का प्रकोप हुआ । देश का ऐसा कोई गांव और नगर नही बचा था जिसमें इस भयानक रोग ने अपना रूप न दिखाया हो । इसकी भीषणता अपने ही ढग की थी ।

वैसे तो भारतवर्ष ने अनेक बार दुर्भिक्ष और महामारी के प्रकोप सहन किये हैं । लेकिन इस समय होने वाली प्लेग की भीषणता की स्मृति जनता को आज भी है और जो भी उस समय की स्थिति का वर्णन भुक्तभोगियो से सुनता है तो कलेजा थर्रा जाता है । कहते हैं कि तत्कालीन जयपुर राज्य में सिर्फ ७६००० मकानों की चाबियां राज्य-कोष में जमा होने आई थी, जिनके परिवारों में से एक भी व्यक्ति शेष नही रहा था । देश का कोई विरला ही परिवार बचा होगा, जिस पर इस महामारी की छाया न पडी हो और अपने किसी-न-किसी प्रिय-जन को न सौंप दिया हो ।

उदयपुर मे भी प्लेग की भयानक लहर फैली । प्रतिदिन सैकड़ो की सख्या मे काल के गाल मे समाते, फिर भी आंखो में आंसू नही आते थे । किस-किस के वियोग के लिये आंसू बहायें, यह निर्णय नही कर पाते थे । एक ने अपनी जीवन-लीला समाप्त नही कर पाई कि दूसरा उसका स्थान लेने की तैयारी मे है । सभी को अपनी-अपनी रक्षा की पडी थी और औषधोपचार भी करते थे, लेकिन जिनकी जीवन-डोर खडित हो गई उसे जोड़ने का सामर्थ्य तो किसी मे भी नही था । घर-घर और मोहल्ले-मोहल्ले मे मौत का तांडव हो रहा था और जो

इसके पजे में आ फसा वह तो गया ही और जो बचे वे हृदय मसोस कर इस लीला को देखते रह जाते थे। आखों के आंसू भी अब मनो-वेदना को व्यक्त करने मे असमर्थ हो गये थे।

इस महामारी ने श्री साहबलाल जी और श्रीमती इन्द्राबाई को भी अपना लक्ष्य बनाया। औषधोपचार भी किया गया लेकिन सब व्यर्थ रहा और मौत के मुंह में समा गये। मा की ममता और पिता के वरद हस्त से वचित हमारे सोलह वर्षीय किशोर चरितनायक और उनकी पत्नी अकस्मात आगत जिम्मेदारियो का निर्वाह करने के लिये शेष रह गये थे। लौकिक दृष्टि से उन्होने गृहस्थाश्रम मे डग अवश्य रख दिया था, लेकिन माता-पिता की मौजूदगी से अभी तक उसके दायित्व का भार आप पर नही था। अतीत के प्रति उपेक्षा, वर्तमान के प्रति निरपेक्षता और भविष्य के प्रति भावुकता किशोरावस्था की विशेषतायें हैं और इन्ही के बीच आपका दैनंदिनी जीवन व्यतीत हो रहा था।

जीवन मे ऐसे अवसर अधिकाशत आया करते हैं जब एक ओर तो हम शोक के आवेग से दबे रहते हैं और दूसरी ओर उत्तरदायित्वो का भार आ पडता है। उस समय शोक के आवेग को मन-ही-मन दबा-कर इच्छा या अनिच्छा से कर्तव्य-मार्ग पर अग्रसर होना पडता है। मन मसोसकर, विवश होकर परिस्थिति को स्वीकार करने का यह अव-सर बडा ही करुणाजनक होता है, मानव-बुद्धि को कसौटी पर कसने का समय होता है।

ऐसा ही अवसर चरितनायक के समक्ष उपस्थित था। अब किशोर पति-पत्नी ही एक दूसरे के सुख-दुःख के साथी रह गये थे। मन मे घुमडते विचारों को एक दूसरे से कह-सुन अपने भार को हलका करने की कोशिश करते थे। लेकिन यह भी सच है कि पुरुष को व्यापार, आजीविका सम्बन्धी कार्यों को करने के लिये घर से बाहर जाना-आना पड़ता है और उन कार्यों के प्रति मन के केन्द्रित होने के समय तक दुःख-विस्मृति का अवसर भी मिल जाता है और शनैः-शनैः समय के

साथ दुःख के भार से अपने आपको विलग कर लेता है। किन्तु स्त्री का कार्यक्षेत्र उसका घर और उसके कार्यों तक सीमित है एवं उन्ही के बीच दैनिक जीवन का समय व्यतीत होता है । अतः समय-समय पर असमय मे दुःख-प्राप्ति मार्मिक होती है और उसमे ही अनुभूति के क्षण अधिक प्राप्त होते रहते हैं । नारी-हृदय की सुकुमारता, दयालुता भावुकता आदि सद्गुण स्वयं उसे ऐसे अवसरों पर और अधिक दुःखी, खेदखिन्न बना देते हैं ।

आप तो अन्यान्य कार्यों की ओर विचारों को केन्द्रित करने के फलस्वरूप धीरे-धीरे वियोगजन्य दुःख को भूलते जा रहे थे । लेकिन आपकी पत्नी इस आकस्मिक वज्राघात से घबरा-सी गई । भरे-पूरे परिवार मे रहने के कारण यह घर भयावना-सा, सूना-सूना-सा लगता था । आप स्वयं धैर्य रखते और पत्नी को भी दिलासा देते हुए नये वातावरण के अनुकूल बनाने की कोशिश करते और उद्विग्नता दूर करने के लिये आसपास के पड़ोसियो के पारिवारिकजनो को अपने घर मे बुलाने का ध्यान रखते थे। फिर भी इतनी बड़ी तिमंजली हवेली मे एक अटपटापन-सा अनुभव होता रहता था ।

जीवन में जो रिक्तता आ गई थी और अब उसकी पूर्ति संभव नही है । अतः जो कुछ हो गया उसे बदला नही जा सकता और न कोई बदलने मे समर्थ है । इसलिये भविष्य के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह करना ही चाहिये । इसलिये जब कभी कार्यवशात चरितनायक घर से बाहर जाते अथवा व्यापार के निमित्त दूसरे गाव आना-जाना होता तो पत्नी की उदासीनता एवं एकाकीपन में सांत्वना देने, दूसरी ओर ध्यान बटाये रखने के लिये पास-पड़ोस की परिचित बड़ी-बूढ़ी महिलाओं, बच्चों आदि को घर पर छोड़ जाते अथवा उसके मायके भेज देते और साहस के साथ नये जीवन में अग्रसर होने के लिये प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया ।

संसार में मानवीय जीवन विशेषतः आशाओं पर निर्भर है ।

यदि एक क्षण के लिये भी आशा मनुष्य का साथ छोड़ दे तो संभवतः मनुष्यों की जीवन-नौका पार लगना ही कठिन हो जाये । जीवन मरुस्थल की तरह शुष्क और काल्पनिक भय, दु खो का केन्द्र बन जाये। प्रत्येक मनुष्य अंधेरे के बाद उजाला, आपत्ति के अनन्तर संपत्ति और दु ख के पश्चात सुख की आशा करता है । यदि ऐसा न हो तो स्वय उसे अपना जीवन भाररूप प्रतीत होने लगेगा । निराशा-ही-निराशा दिखलाई देगी । लेकिन आशावादी दु खों के बीच निराश न होकर भविष्य को सुखमय बनाने के प्रयत्नो मे लगे रहते हैं ।

चरितनायक आकस्मिक प्राप्त नये वातावरण मे अपने आपको ढालने के लिये प्रयत्नशील थे तो विधि का विधान कोई दूसरा ही ताना-बाना बुन रहा था । उसने ऐहिक बंधन के प्रबल कारणों को हटा देने के अनन्तर पत्नी रूपी रहा-सहा बधन भी हटा देना उचित समझा । उसे यह बधन भी स्वीकार्य नही था ।

प्लेग महामारी का पूर्ववत प्रचंड प्रकोप प्रवर्तमान था और आपकी पत्नी को भी उसने उदरस्थ कर लिया ।

माता, पिता और पत्नी के वियोग से आपकी जिन्दनी में रिक्तता-शून्यता ने स्थान ले लिया । मायावी प्रपच का नग्न-रूप आपके समक्ष झलक उठा—ससार असार है, जन्म और मरण के किनारो के बीच फसा मानव कभी इसकी तो कभी उसकी टक्कर से थपेड़े-पर-थपेड़े खा रहा है । किसी को भी यह ज्ञात नही है कि यह जीवन पानी के बुलबुले की तरह कब समाप्त हो जायेगा, अगला श्वास आयेगा या नही ? फिर भी व्यक्ति इस सत्य की उपेक्षा कर मायावी मृग-मरीचिका मे भटकने को तत्पर हो-रहा है ।

पत्नी के वियोग से आपके समक्ष ससार का विकृत क्षणिक रूप उपस्थित हो गया । सासारिक यथार्थता के काल्पनिक चित्र धूमिल होकर वास्तविकता को व्यक्त करने लगे । लेकिन ऐसे कारुणिक प्रसग भी आपकी चित्त-वृत्ति को चचल करने मे असमर्थ ही रहे और 'कालाय

तस्मै नमः', काल को नमस्कार है, काल वलवान है, इस लोकोक्ति को लक्ष्य में रखते हुए कभी घबराये नही, किन्तु जो कुछ होता है अच्छे के लिये होता है, मानकर आप आध्यात्मिक साधना की ओर मनोवृत्ति को केन्द्रित करने के प्रयास में सलग्न रहने लगे। प्रतिदिन सामायिक-स्वाध्याय करना, चिन्तन-मनन मे रत रहना, धर्मस्थानक मे जाकर साधु-सतों के प्रवचन-श्रवण करना आदि अब दैनिक-चर्या के आवश्यक, अनिवार्य अग बन गये थे।

राग और विराग का अन्तर्द्वन्द्व

लेकिन पडौसियो और सगे-सम्बन्धियो के विचारो में कोई दूसरी ही वात घूम रही थी। उनके विचारो मे पुनः उजडा घर वसाने का द्वन्द्व चल रहा था। वे चाहते थे कि इस अधेरे घर में पुनः उजाला हो, विखरे तिनकों को इकट्ठा कर फिर से घोसला वनाया जाये, वाजे वजाये जाये और सूने घर में कुल-वधू के नूपुरो की रुन-झुन, रुन-झुन हो और आशा व इच्छा के तूफानो की माया मे पुनः विहार किया जाये।

अब आपको समझाया जाने लगा। नये-नये रूपो मे पारिवारिक प्रतिष्ठा और जीवन के लुभावने दृश्य आपके समक्ष उपस्थित किये जाने लगे। कुल-परम्परा को बनाये रखने के दायित्व पर भार देते हुए आपके मन में यह धारणा बैठाई जाने लगी कि सुयोग्य कन्या से विवाह कर गृहस्थी बसाना जरूरी है। कन्या के पिताओं की ओर से भी परोक्षरूपेण इसी प्रकार का वातावरण बनाया जा रहा था।

पारिवारिक प्रियजनो की मृत्यु और शून्यता के कारण आपके मन को जो आघात लगा था, वह समय के साथ शांत होने लगा। आस-पास के वातावरण और सगे-सम्बन्धियो के बार-बार समझाने-बुझाने से आप भी कुछ ऐसा सोचने लगे कि इन लोगों का आग्रह मुझे टालना नही चाहिये। ये सब मेरे हितैषी ही तो है। मुझे सुखी देखने की ही तो इनकी आकांक्षा है। यदि गृहस्थी के साथ-साथ धर्म साधना हो

सकती है तो मुझे इनकी आज्ञा मानने में कोई असुविधा नही है ।

अब मन मे राग-विराग का अन्तर्द्वन्द्व चलने लगा । राग ससार का मनोरम रूप वतलाते हुए प्रेरित करता कि धर्म ससार मे कभी भी कायरता नही सिखाता । प्रियजनो का वियोग हो जाने मात्र से अपने उत्तरदायित्व से भागना कायरता होगी । गृहस्थाश्रम वहुत वडी जिम्मेदारी का पद है । इसमें रहकर धर्म-साधना की जा सकती है और धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थ का अविरोध रूप से सेवन करते हुए भी मोक्ष के लिये पुरुषार्थ किया जा सकता है ।

विराग ससार की क्षणभगुरता का यथार्थ चित्रण करते हुए वोध देने लगा कि गृहस्थी एक जजाल है। धन-दौलत और ससार के अन्य सुख-साधन इन्द्रधनुष की मानिन्द क्षणक्षयी हैं । आयु का क्या विश्वास ? आज है, कल नही । माता-पिता परलोक सिधार गये, पत्नी ने भी उन्ही का अनुगमन किया । ये सव घटनाये तुम्हारे समक्ष है । ऐसी स्थिति में जीवन पर क्या भरोसा किया जा सकता है। अत. पुनः ससार की ओर मुख करना उचित नही है । जितनी जल्दी हो सके आत्म-साधना मे लग जाओ, उतना ही श्रेयस्कर होगा ।

लेकिन सगे-सम्वन्धियो ने आपके भावुक मन मे ससार का एक काल्पनिक चित्र अकित कर रखा था। अत इस विचार-द्वन्द्व मे राग द्वारा निर्मित वातावरण की कुछ विजय हुई । विराग-भावना कुछ धूमिल-सी पड गई और दुनियादारी के चक्कर मे फसने एव जिन्दगी के अधूरे स्वप्न पूरे करने की वात मन मे वैठ गई । विराग, राग से आच्छादित हो गया, योग पर भोग की विजय हुई और सगे-सम्वन्धियो के पुन.-पुन. आग्रह-वश विवाह की स्वीकारोक्ति देने का निश्चय-सा कर लिया ।

लेकिन राग की यह विजय क्षणिक थी, भावुकता का क्षणिक आवेश था और भावी की प्रेरणा तो किसी ओर ही दिशा का सकेत कर रही थी—जहाँ जीवन का स्वर्णिम प्रभात उदित होने वाला

था, आत्म-विकारों को क्षय करने की प्रबल प्रेरणा विद्यमान थी, उज्ज्वल उच्च विचारों के आदर्श विद्यमान थे। अतः विवाह की तैयारियां रुक गईं और असयम पर संयम की विजय हुई। राग की वीणा पर विराग के स्वर झंकृत हो उठे। जीवन के दृष्टिकोण में आमूल-चूल परिवर्तन आ गया।

विराग के राजमार्ग पर

दृष्टिकोण के बदलते ही एक नया उत्साह, स्फूर्ति जीवन मे आ गई। ऐन्द्रियक विषय विषधर-से विषाक्त प्रतीत होने लगे। चिन्तन की धारा—मैं कौन हूं और मेरा क्या कर्तव्य है? पर आकर केन्द्रित हो गई। मन मे बार-बार विचार उठते कि हृदय के शांत और मन के स्थिर रहने पर ही मनुष्य को आनन्द प्राप्त होता है। इसकी प्राप्ति के लिये योगी योग-साधना करते हैं, एकान्त-वास करते हैं और उसमें वे सासारिक झंझटो से दूर होकर स्वात्म-रमण में सुखानुभूति करते हैं। चिन्ताओं के कारण ही मानव-मन अशात और अस्थिर रहता है। अतः मन की स्थिरता के लिये चिन्ताओं का नाश होना आवश्यक है और उनके पूर्णतया नाश होने पर आत्मा सच्चिदानद बन जाती है और मैं बहिर्मुखीवृत्ति कर सुखप्राप्ति की आकांक्षा कर रहा हूँ, जो पुरुष के पौरुष को कलंकित करने जैसी है। मेरा पुरुषार्थ को हेय, प्रेय, श्रेय का विवेक करके अभीप्सित-प्राप्ति की ओर प्रयत्नशील होना चाहिये। यही मेरा कर्तव्य है और इसकी पूर्ति के लिये मैं प्रयास करूँ।

अतः आप सूर्योदय से पूर्व ही शैया त्यागकर, स्वस्थ मन हो परमात्मा के ध्यान मे लीन हो जाते थे और आत्म-चिन्तन करते हुए विचार करते कि—

जीवन-प्राप्ति का अलभ्य अवसर मनुष्य-जीवन है। आज मुझे यह प्राप्त हुआ है तो इसका सर्वोत्तम उपयोग कर अपने इष्ट को प्राप्त करूँ। जिसने जन्म लिया है, एक दिन उसका मरण निश्चित है। बड़े-बड़े राजा, राणा, छत्रपति भी इससे नहीं बच सके तो कैसे उन्हें

समक्ष क्या गिनती है ? सबको अपने-अपने समय पर मरना है। इसमे समय-मात्र का भी परिवर्तन करना शक्य नही है । अत इस जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त होने के लिये मेरे प्रयत्न हो ।

यह कुटुम्ब, परिजन तो समय के साथी हैं। सभी का अपने-अपने स्वार्थो के वश एक-दूसरे से नाता-रिश्ता है । लेकिन प्रत्येक प्राणी को अपने कृत-कर्मों को स्वय भोगना पडता है । उनको कम करने या सहायता देने मे कोई भी सहायक नही हो सकता है ।

अत पूर्ण स्वतत्रता की राह पर आगे बढने के लिये यह आवश्यक है कि हम सुख-दु ख के रहस्य को समझे । यह सुनिश्चित तथ्य है कि संसार का प्रत्येक प्राणी सुख की कामना करता है और प्रत्येक प्राणी इसी कारण अपने समस्त प्रयासो को भी इसी दिशा मे नियोजित करना चाहता है कि उसे सुख-ही-सुख प्राप्त हो ।

जब तक मनुष्य निज की मनोवृत्तियो को नही समझ पाता और उनकी सही प्रगति-दिशा का निर्धारण नही कर सकता, दासता की काली छाया नही हट सकती । जहाँ इच्छा और इन्द्रियो की दासता है, वहा आत्मा का पतन है और आत्मा के गिरने पर कभी भी सुख, और पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त नही हो सकती है ।

सुख और दु ख की काल्पनिक अनुभूतियों के परे ही आत्मानन्द का निवास है एव जब आत्मानद का सचार होता है, तभी पूर्ण स्वतन्त्रता की मजिल का चमकता हुआ सिरा दिखाई देता है । अत. हम अपनी प्रवृत्तियों को सीमित और वृत्तियो को सयमित रखे ।

मनुष्य-जीवन की यही गौरवमयी सार्थकता है कि जब तक मानव-मानस मे इस भावना का कि आत्मद्रव्य के अतिरिक्त ससार में रहा हुआ एक भी परमाणु मेरा नही, जन्म नही होगा तब तक मानव जीवन मे सुख की कल्पना आकाशकुसुमवत् ही परिलक्षित होती रहेगी ।

स्वेच्छापूर्वक तृष्णा का त्याग करके सादगी को अपनाने वाला ही महापराक्रमी होता है । प्राप्त साधनो का व्यापक लोक-हित के लिये

परित्याग कर देने में ही त्याग की वास्तविक महत्ता रही हुई है । जो व्यक्ति निर्भयतापूर्वक संसार की किसी भी कठोरतम शक्ति का सफलतापूर्वक प्रतिरोध कर सकता है, वही धर्म के आंतरिक रहस्य को भी प्रकाशित करने मे सफलीभूत हो सकता है । अत तृष्णा का त्याग ही वीर मानव का भोजन है, परमात्मा का प्रसाद है तथा अध्यात्मधर्म का प्रमुख आधार है ।

प्रतिदिन इन्ही विचारों और ऐसे ही अन्यान्य विचारो का चिन्तन-मनन एवं सयमसाधना पूर्वक चरितनायक का जीवनक्रम चलने लगा और आत्मलक्षी जीवन की अनुभूतियों के अन्तर्तम मे प्रवेश करने के लिये प्रयास करते । विचारो को आचार मे उतारते हुए साधु-सन्तों की सेवा करना, उनके प्रवचन सुनना और अधिक-से-अधिक ज्ञान-ध्यान मे लीन रहना दैनिक-चर्या बन गई ।

इस प्रकार से जीवन का क्रम चल रहा था कि वि० स० १९६२ में आचार्यदेव पूज्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० का चातुर्मास उदयपुर मे हुआ ।

आचार्यश्री साधु-परपरा के एक महान क्रातिकारी आचार्य थे । आपश्री की विचारधारा क्रांति के पखो पर उडा करती थी, विचारो मे जनसाधारण के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने की शक्ति थी और वाणी के ओज-माधुर्य मे आकर्षण ही नही वरन तदनुकूल जीवन बिताने की शक्ति प्रदान करने की क्षमता थी । श्रमण-परपरा मे राष्ट्र और धर्म का क्रांतिदर्शी आचार्य इस शताब्दि में आपकी तुलना में दूसरा कोई नहीं हुआ है । आपश्री प्रखर प्रतिभा, जाज्वल्यमान तेज और प्रबल संकल्प-शक्ति के धनी थे ।

आचार्यश्री के पदार्पण से नगर के वातावरण मे अनोखा परिवर्तन आ गया था । मुमुक्षु भव्य-जन आपश्री के प्रवचनो को सुन अपने आपको धन्य समझने लगे । उस समय का जन-जीवन राष्ट्रीय चेतना एवं सामाजिक कुरूढ़ियो के उन्मूलन के दौर मे गुजर रहा था । जनता

धर्मानुमोदित सात्विक जीवन अगीकार करने के लिये उत्सुक थी ।

आचार्यश्री जी अपने प्रवचनो मे जन-सामान्य को उन बातों का दिग्दर्शन कराते थे जो युगानुकूल होते हुए भी शाश्वत सत्य का दर्शन कराती थी । श्रोताओ को नित नया बोधपाठ मिलता और वे तदनुकूल जीवन विताने की प्रेरणा लेकर आचार मे उतारते थे । उन्ही मे हमारे चरितनायक श्री गणेशलाल जी का नाम उल्लेखनीय है । प्रतिदिन वे जो कुछ सुनते, उसे अपने अतरग मे उतार लेते थे । यद्यपि उम्र सोलह वर्ष की थी किन्तु उनके धार्मिक-सस्कार जन्मजात थे और आचार्य-श्री के सान्निध्य मे उनका और अधिक विकास हुआ । आप प्रतिदिन धर्मोपदेश सुनते और उसकी विमल धारा आपके हृदय मे लहराने लगी ।

आचार्यश्री का यह चातुर्मास धार्मिक और सामाजिक विकास की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण रहा । आपके साथ ९ सत थे । जिनमे से ६ सतो ने इस प्रकार तपस्याये की—

१—मुनि श्री मोतीलाल जी म० सा० ४१ उपवास
२—मुनि श्री राघालाल जी म० सा० ३० ,,
३—मुनि श्री पन्नालाल जी म० सा० ६१ छाछ के पानी से
४—मुनि श्री धूलचंद जी म० सा० ३५ ,,
५—मुनि श्री उदयचंद जी म० सा० ३१ ,,
६—मुनि श्री मयाचद जी म० सा० ४१ ,,

इसके अतिरिक्त श्रावको ने भी अनेक प्रकार के त्याग, प्रत्याख्यान, तपस्याये आदि की थी । श्रावको ने सामायिको की इक्कीस रगी की । इसमें ४८१ व्यक्ति सम्मिलित होते है और विधि इस प्रकार है—

इक्कीस	व्यक्ति	२१—२१	सामायिक	करते हैं	४४१
,,	,,	२०—२०	,,	,,	४२०
,,	,,	१९—१९	,,	,,	३९९
,,	,,	१८—१८	,,	,,	३७८
,,	,,	१७—१७	,,	,,	३५७

इक्कीस व्यक्ति	१६—१६	सामायिक	करते हैं	३३६
,, ,,	१५—१५	,,	,,	३१५
,, ,,	१४—१४	,,	,,	२६४
,, ,,	१३—१३	,,	,,	२७३
,, ,,	१२—१२	,,	,,	२५२
,, ,,	११—११	,,	,,	२३१
,, ,,	१०—१०	,,	,,	२१०
,, ,,	९— ९	,,	,,	१८९
,, ,,	८— ८	,,	,,	१६८
,, ,,	७— ७	,,	,,	१४७
,, ,,	६— ६	,,	,,	१२६
,, ,,	५— ५	,,	,,	१०५
,, ,,	४— ४	,,	,,	८४
,, ,,	३— ३	,,	,,	६३
,, ,,	२— २	,,	,,	४२
,, ,,	१— १	,,	,,	२१

इस प्रकार ४४१ व्यक्तियों द्वारा निर्धारित समय में कुल ४८५१ सामायिक सम्पन्न की जाती हैं। यह सामायिक की इक्कीस रंगी है।

आत्मनिवेदन

आचार्यश्री जी का चातुर्मास आनंद सम्पन्न हो रहा था। प्लेग महामारी पर काबू पा लिया था और इधर आध्यात्मिक प्रवचनों, आचार-विचारों से जनसाधारण को भी आत्मिक शांति का अनुभव हुआ। चिन्ताग्रस्त मानस में पुनः आशा का संचार हुआ और भूत को भूल भावी को सुखप्रद बनाने की भावनायें जाग्रत होने लगी थी।

आसोज महीने की बात है। व्याख्यान-समाप्ति के अनन्तर श्री गणेश लाल जी पूज्य जवाहराचार्य के वन्दनार्थ गये तो उन्होंने सामान्यतः परिचय के लिये आपसे पूछ लिया कि तुम्हारा नाम क्या है? बाल-

पिता, भाई आदि पारिवारिक जन कितने क्या हैं ? इस पर चरित-नायक ने अपना साधारण-सा परिचय देते हुए कहा कि मेरा नाम गणेशलाल है। माता-पिता, पत्नी आदि का प्लेग से देहावसान हो गया है और मेरे सिवाय अन्य कोई भाई आदि नही हैं।

वात साधारण-सी थी और आई-गई हो गई। परिचय, परिचय के लिये था एव अन्य कोई विशेष वात नही थी। किसी एक दिन आचार्यश्री जवाहरलाल जी म० सा० को किसी से यह मालूम हुआ कि माता, पिता, पत्नी के देहावसान के पश्चात यह सोलह वर्षीय कुमार गणेशलाल जी त्यागमय जीवन व्यतीत करने के इच्छुक हैं। सतत ज्ञानाभ्यास और सयमसाधना में सलग्न रहते हैं। लेकिन कुटुम्बीजन पुन. गार्हस्थिक झझट में उलझाने के लिये प्रयत्न कर रहे हैं।

समय मिलने पर आचार्यश्री जी ने अपने व्याख्यान में प्रसंगानुकूल ससार की क्षणभगुरता का चित्र खीचा और मार्मिक एव हृदयग्राही शब्दो मे कामभोगो की विडवना का वर्णन करते हुए फरमाया कि मित्रो ! तुमने मनुष्य जन्म पाया है। स्मरण रखो, यह जन्म सरलता से नही मिलता। न जाने कितने जन्म धारण करने के वाद कौन-कौन-सी भयकर यातनाये भुगतने के पश्चात कौन-से प्रबल पुण्य के उदय से यह जन्म पाया है। अगर यह यो ही व्यतीत हो गया—विषयो में मस्त रहकर इसे वृथा वरवाद कर दिया—तो कौन जाने फिर कव ठिकाना लगेगा ?

यौवन की मादकता और भोगाभिलाषी मन के रगीन स्वप्न मनुष्य को ले डूबते है। हाड-मास के पुतले पर निर्भर भोग किस क्षण धोखा दे जायेंगे और कब मनुष्य को पछताना पड जायेगा, कहा नही जा सकता है। सच्चे सुख की यदि कोई कुंजी है तो वह स्वात्मरमण ही कहा जा सकती है।

आचार्यश्री के इन शब्दों ने 'मन भावे और वैद वताये' की उक्ति को चरितार्थ कर दिया। श्री गणेशलाल जी स्वयमेव विरक्ति के मार्ग

पर बढने का प्रयास कर ही रहे थे और इनको सुनते ही उनकी आत्मा प्रबुद्ध हो उठी। अनेक प्रकार के सकल्प-विकल्पो ने स्वयमेव शाति का मार्ग प्राप्त कर लिया। अन्तर्द्वन्द्वो से निर्द्वन्द होने पर इन्द्रियविषयो की निस्सारता और उन्हे भोगने की अभिलाषा करने वाले चित्त की क्षुद्रता आपकी दृष्टि के सन्मुख आ गई। सुषुप्त वैराग्य पुन: जाग्रत हो गया और जो भावना शांत हो गई थी वह उपदेश रूपी प्रभजन से पुनः उद्वेलित हो उठी।

अब विचारो मे एक नवीन स्फूर्ति पैदा हो गई थी। आप जितना सोचते उतने ही नये-नये विचार प्रत्यक्ष होने लगे। प्रत्येक बात को तर्क की कसौटी पर परखने की चेतना जाग्रत होने लगी और अन्तः-करण मे एक नया तेज उद्भासित होने लगा। मन में एक सकल्प प्रादुर्भूत हुआ। किन्तु प्रवचन के अवसर पर तत्काल अपनी भावना व्यक्त न कर एकान्त मे बैठकर अपना निश्चय बतलाना उचित समझा।

अनन्तर आप एकान्त में आचार्यश्री जी म० सा० की सेवा में उपस्थित हुए। मन मे विचार चल ही रहे थे अत. अपनी स्थिति, मनोभावना एव प्रवचन के अवसर पर उत्पन्न हुई विचारधारा को आपश्री के सन्मुख व्यक्त किया। आचार्यश्री ने आपके विचारो की यथार्थता और दृढता का परीक्षण कर पुनः संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित शब्दो में ससार की वास्तविकता से परिचित कराते हुए वैराग्य का उपदेश दिया। उक्त उपदेश का आपके मानस-पटल पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि सकल्प को साकार रूप देने की दिशा मे कुछ नये निश्चय करके भागवती दीक्षा अगीकार करने की भावना व्यक्त की। भागवती दीक्षा अगीकार करने की पूर्व तैयारी के रूप मे आपने उसी समय आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत की प्रतिज्ञा ली और चौविहार का संथ कर लिया।

दीक्षा के पूर्व

आचार्यश्री जी ने आपके मनोभावों की परीक्षा करके साध्वाचार और उनकी प्रारंभिक संयमात्मक क्रियाओं का निर्देश किया और आप

निर्धारित लक्ष्य की ओर प्रवृत्ति करने के लिये उनका दैनंदिनी आचरण मे अभ्यास करने लगे । वैसे तो आपने पहले ही प्रतिक्रमण पाठ, थोकडो आदि का अध्ययन किया था किन्तु अब आचार्यश्री जी की सेवा मे रहकर प्रतिक्रमण पाठ, पच्चीस बोल का थोकड़ा, तेतीस बोल का थोकड़ा, लघुदडक आदि का विशेष रूप से अध्ययन प्रारभ कर दिया और वैरागी जीवन मे साधुचर्या के अनुरूप ही सयम-साधना का अभ्यास करने के लिये प्रयत्नशील रहने लगे ।

समय-समय पर आचार्य श्री जी आपकी भावना को परखते रहते थे और एक के अनन्तर दूसरी, तीसरी आदि कसौटियो पर परीक्षित हो जाने के उपरान्त अतिम परख और दीक्षा के लिये कुटुम्बीजनों की अनुमति प्राप्त हो जाने के अनन्तर आचार्य श्री जी ने मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा को उदयपुर मे ही आपको भागवती दीक्षा प्रदान करने का निश्चय कर लिया ।

चरितनायक ने लौकिक दृष्टि से जहाँ सपन्न परिवार, बाल्यकाल मे गार्हस्थिक दायित्व, सामाजिक प्रतिष्ठा आदि की अनुभूतिया प्राप्त की वही अपने प्रियजनो के वियोग की विडबनायें भी देखी थी । लेकिन आप उनसे भयभीत नही हुए और न आपदायें आपको भयभीत करने मे समर्थ हो सकी । उनके बीच जलकमलवत् निर्लिप्त रहकर मूक-दर्शकवत् मौन बने रहे । अब तो ऐहिक भोग आपको अपनी ओर आकर्षित करने मे असमथ-से हो गये थे । अत आवश्यकता थी आध्यात्मिक सुख और तात्त्विक विचारो के साक्षात्कार की । उसके लिये आपको श्री जवाहराचार्य जैसे क्रांतिकारी विद्वान आचार्य के समागम का सौभाग्य प्राप्त हो गया और यह समागम 'सोने मे सुगध' की उक्ति को चरितार्थ करने वाला सिद्ध हुआ ।

संकल्प का साक्षात्कार : दीक्षा

दीक्षा के माने हैं परिषहो पर विजय प्राप्त कर अध्यात्म की पाठशाला में जीवन का पहला पाठ पढ़ना जो ससीम से असीम की ओर गमन

करने के शुभ संकल्प, विराट विश्व को अपनी आत्मचेतना से अनुप्राणित करने और जीवन के मगल प्रभात के स्वागत की तैयारी का स्वतः प्राप्त अवसर है ।

दीक्षा के द्वारा व्यक्ति ऐहिक विषय-भोगो की मृगमरीचिका मे झंपापात न करके, अपनी आत्मा की रक्षा करके उस परम पद की प्राप्ति के लिये सदैव प्रयत्नशील रहता है जो अनत ज्ञान, दर्शन, चारित्र अव्याबाध सुख आदि का आस्पद है और जहाँ सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है ।

हमारे चरितनायक को इस दिशा मे प्रयत्न करने और बढने के लिये ही दीक्षा अंगीकार करने की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी थी ।

अत. पूर्व निश्चयानुसार मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा, सं० १९६२ को चतुर्विध संघ की उपस्थिति में पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० ने शास्त्रविधि अनुसार साधु का स्वरूप, चर्या आदि समझाकर आपको साधु दीक्षा दे दी और अपने गुरुभाई मुनि श्री मोतीलाल जी म० सा० की नेश्राय का शिष्य घोषित किया ।

साधुत्व का उद्देश्य आत्मिक-अभ्युदय-प्राप्ति की साधना करना होता है । जगत के जंजालो को त्यागकर व्यक्ति साधुत्व इसलिये अगीकार करता है कि वह सभी प्रकार के लौकिक संयोगो से विमुक्त होकर आत्मा के चरम विकास के लिये प्रयास कर सके ।

दीक्षा मे हमारे चरितनायक की यह अभिलाषा पूर्ण हुई । आपने अपने को धन्य समझा और आपके लिये मानव-जीवन की सफलता का द्वार खुल गया ।

गुरु-परिचय

व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व होते हुए भी उसके विकास के लिये सहयोगी कारणों की अपेक्षा होती है । जैसे बालक मे विकसित होने की शक्ति है, लेकिन उसके विकास के लिये सहायता चाहिये और सहायक वही हो सकता है जो अनुभवी हो । ऐसे अनुभवी ही गुरु के

सम्मानीय पद से विभूषित होते है ।

विकास के लिये एक अनिवार्य उपाय है— जीवन-निरीक्षण । जो अपने जीवन-व्यवहार का सावधानी से निरीक्षण कर सकता है, अपने मानसिक भावो को देखता रहता है, उसके जीवन का अल्पकाल मे ही आश्चर्यजनक विकास हो जाता है । यदि विकास मे प्रमादवश अवरोध पैदा हो जाये तो ऐसे अवसर पर पुन. सन्मार्ग की ओर मोडने का कार्य गुरु करते हैं ।

जीवन के साथ जिज्ञासा, कल्पनाशक्ति, सर्जकता, सकल्प और श्रद्धामय आशा—इन पाच बातो का सम्बन्ध है । इन शक्तियो की अनियन्त्रित प्रवृत्ति सुख, शाति या सन्तोष-प्राप्ति का सही उपाय नही है । इसके लिये सयम की आवश्यकता है और सयम के लिये विवेक की आवश्यकता होती है और इस विवेक की प्राप्ति मे गुरु सहायक होकर उस परम तत्त्व व परम गति का सकेत करते है जो सयम एव विवेक का साध्य है । ऐसे गुरु वदनीय और पूजनीय होते हैं एव उनकी धर्मानुमोदित आज्ञाओ का पालन करने मे विकास-इच्छुक का कल्याण है ।

गुरु सयम और विवेक की महिमा का सकेत करते हैं कि जीवन के निःश्रेयस-प्राप्ति का यही मार्ग है और साधना के मार्ग पर मित्र की तरह साथ रहकर अहर्निश प्रमादजन्य भयस्थानो से सावधान करते रहते हैं ।

हमारे चरितनायक को ऐसे ही गुरुओ के समागम का सौभाग्य प्राप्त हुआ था । उन महाभाग पुण्यस्मरणीयो के नाम है—आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० और मुनि श्री मोतीलाल जी म० सा० । यहाँ उनका सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करते हैं ।

परम श्रद्धेय श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० की स्मरणीय गौरवगाथा जन-जन के हृदय मे सुरक्षित है और 'आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० की जीवनी' के रूप मे जीवनवृत्त पुस्त-

काकार प्रकाशित भी है। अतएव पुनरावृत्ति न करते हुए संक्षेप में कह सकते हैं कि आचार्यश्री जी ने व्यक्ति, समाज, धर्म, दर्शन, राष्ट्र और विश्व को नई देन दी एवं प्रत्येक क्षेत्र का मंथन कर अमृत निकाला है।

आचार्यश्री जी अनोखे शिल्पी थे, कलाकार थे, कलापारखी थे। अपनी साधना द्वारा सतत मौलिक निर्माण मे रत रहे और जो कुछ भी निर्माण किया वह सदैव मौलिक और नित-नूतन है।

हमारे चरितनायक के साधनामय जीवन-निर्माण का समस्त श्रेय आपश्री को ही है और जो कुछ भी आपमे था, वह समग्र रूपेण चरितनायक मे अवतरित हुआ था। इसी का परिणाम है कि चरितनायक निर्भय, निर्द्वन्द होकर साधना के सोपानों पर बढ़ते रहे, प्रगति करते रहे।

पूज्य जवाहराचार्य के परिचय के पश्चात अब उन महापुरुष का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करते हैं जो हमारे चरितनायक और उससे भी पहले पूज्य जवाहराचार्य के जीवन-निर्माण में निकटतम सहयोगी रहे हैं। जिनकी सेवा-भावना ने एक अनूठा आदर्श उपस्थित किया है और जिनकी सतत संयम-साधना साधकों के लिये अनुकरणीय रहेगी। उनका नाम है महाभाग मुनि श्री मोतीलाल जी म० सा०। ये महाभाग हमारे चरितनायक के नेश्राय गुरु थे और आपके शुभाशीर्वाद गणेश की जीवन-वाटिका में नित-नूतन आदर्शों का श्रीगणेश करते रहे। संक्षेप में कहें तो आप गुरुणा गुरु थे।

तपस्वी मुनि श्री मोतीलाल जी म० सा० का जन्म सिंगोली (मेवाड़) में हुआ था। आप कटारिया गोत्रिय श्री उदयचंद जी के सुपुत्र थे और मातुश्री का नाम सिरदीबाई था। माता-पिता के धार्मिक, नैतिक आचार-विचारों को अपने जीवन में उतारते हुए आपने आयु के अठारहवें वर्ष में प्रवेश किया। यह अवस्था यौवन-वसंत का प्रवेशकाल है। इस काल में कामना रूपी कोकिलाओं की कुहु-कुहु मानव को

मदोन्मत्त बना देती है, रसलोलुपी भवरे की तरह मन भोगो पर मडराता रहता है, विषय-वासना मे अनुरक्त इन्द्रिया आम्रमजरियो की तरह बौरा उठती हैं और जीवन-उद्यान मे अनुराग का साम्राज्य व्याप्त हो जाता है ।

उस समय विरक्ति—भोगो के प्रति वैराग्य—होना सहज बात नही है । ऐसे समय मे भोगो की मृगमरीचिका और अठखेलियो को पराजित किये बिना वैराग्य का बाना नही पहना जा सकता है । किन्तु इस युवावय मे ही मुनि श्री मोतीलाल जी म० सा० ने राग की वीणा पर विराग के स्वर झकृत कर ससार का त्याग कर दिया था और मुनि श्री राजमल जी म० सा० के सान्निध्य मे प्रव्रजित होकर आध्यात्मिक-साधना के साधक बन गये थे ।

उनके साधक बनने का काल भी जीवन के वसत की तरह प्रकृति के वसन्त का था । वसन्त-पचमी के लगभग स० १६३२ के माघ शुक्ल पक्ष मे आपने भागवती दीक्षा अगीकार की थी ।

दीक्षित होने के साथ ही आपने अपने ओज को तपस्या द्वारा तेज मे रूपान्तरित कर दिया था और आपकी यह तप-साधना जीवन-पर्यन्त चलती रही । एक से अडतालीस (सैंतालीस को छोड़कर) दिन तक की तपस्या के थोक आपने किये थे और मास-खमण एव बेला, तेला आदि की तपस्यायें तो अनेक बार कर चुके थे । आप जैसे उच्च कोटि के तपस्वी थे वैसे ही उत्कृष्ट ज्ञानी और सेवाभावी भी थे । आपकी सेवापरायणता साधुओ के सामने एक आदर्श उपस्थित करती है ।

'सेवाधर्म. परम गहनो योगिनामप्यगम्य.' सेवाधर्म परम गहन है, जो योगियो के ज्ञान द्वारा भी नही जाना जा सकता है । लेकिन आपने अपनी साधना द्वारा सेवा के आदर्श को साक्षात कर दिखाया था । आपको सेवा-भावना किसी व्यक्ति विशेष तक सीमित न होकर सर्वहिताय से परिपूर्ण थी । आपके करुणार्द्र जीवन के क्षण-क्षण और पल-पल मे सेवा-परायणता का एक-एक प्रसग अकित है और उन अनगिनते

प्रसंगों से एकाव को यहाँ प्रस्तुत करते है--

प्रसग आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० के मुनि-जीवन के समय का है। दीक्षित होने के कुछ दिनो बाद ही मुनि श्री जवाहरलाल जी म० सा० विक्षिप्त हो गये तो श्रावको ने निवेदन किया कि नवदीक्षित मुनिश्री की सेवा-परिचर्या मे आपको काफी कष्ट सहना पड़ता है और श्रम भी करना पड़ता है, अत जब तक वे निरोग न हो जायें तब तक के लिये हमें सौंप दे और स्वस्थ होने पर आपकी सेवा मे उपस्थित कर देंगे। लेकिन आपने उत्तर दिया कि जब तक मेरे तन मे ताकत है, तब तक इनकी सेवा-संभाल करता रहूँगा। आप इसके लिये चिन्तित न हों और पूर्ण मनोयोग से सेवा-परिचर्या करके उन्हें निरोग कर लिया। इस स्थिति मे भी आपने साधु-मर्यादानुसार दैनिक कृत्य करते हुए अपनी साधना मे कोई व्यवधान नही आने दिया था।

विकट-से-विकट परिस्थितिया भी आपको अपने मार्ग से विमुख नही कर पाती थीं, किन्तु सफलता के लिये नया साहस और बल प्रदान करती थी।

आपके चातुर्मास अधिकतर पूज्य जवाहराचार्य के साथ ही होते रहे है। आप दोनो में से किसी एक का नाम लेते ही दूसरे की स्मृति स्वयमेव हो जाती है। नाम दो अवश्य थे, किन्तु एक मन, एक वचन और एक भावना के जीवन्त प्रमाण थे।

इन्ही कारणो से समय-समय पर पूज्य जवाहराचार्य आपके असीम उपकारों को बहुत ही प्रमुदित होकर हृदयग्राही शब्दों मे व्यक्त किया करते थे और अपने जीवन की सान्ध्य-वेला तक मुनि श्री के प्रति कृतज्ञ रहे। आप अक्सर कहा करते थे—तपस्वी मुनि श्री मोतीलाल जी महाराज के मेरे ऊपर असीम उपकार है।

पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० को जब कारणवशात् महाराष्ट्र से मालवा की ओर विहार करना पड़ा। तब आप काफी वृद्ध

हो गये थे और चरितनायक मुनि श्री गणेशलाल जी म० सा० के साथ जलगांव विराजते थे। वही आपको दस्तो की बीमारी हो गई। काफी औषधि, उपचार किये गये। लेकिन रोग बढता गया और फाल्गुन कृष्णा एकादशी स० १९८३ को आपका जलगाव मे स्वर्गवास हो गया।

उक्त दोनो महापुरुषो के सरक्षण मे चरितनायक का विकास हुआ था और इन दोनो की विशेषताओ को सर्वात्मना आत्मसात करने मे सफलता प्राप्त की। इसी का परिणाम है कि इन महाभागो की अनूठी विशेषताओ का समन्वित रूप आपमे पूर्णरूपेण प्रतिभासमान है—जो आबाल वृद्ध जन समूह को सदा-सदा के लिये श्रद्धावनत बना देता है।

साधना के सोपानों पर

चरितनायक अब दीक्षित हो गये थे। दीक्षित होने का अर्थ है—मानव जीवन के महान और चरम लक्ष्य का साक्षात्कार करना। लेकिन जब-जब इस तथ्य को भुला देने की कोशिश की गई, मानव में शिथिलता एव अकर्मण्यता का वातावरण फैला और जब कभी एवं जहां कही भी उसे गतिहीन बनाने का प्रयास किया गया तो विकास का मार्ग अवरुद्ध हो गया।

सत्, चित् और आनन्द का तादात्म्य जीवन की परिभाषा है। सत् का अर्थ है तीन काल में स्थायी रहना अर्थात् भूतकाल मे था, वर्तमान मे है और भविष्य मे रहेगा। चित् अर्थात् जो दीपक की तरह स्वय प्रकाशमान होकर दूसरो को भी प्रकाशित करना। हम हैं और हम अनुभव करते हैं, इसके निकलने वाले परिणाम का नाम आनन्द है। आनन्द की चरम स्थिति तभी प्राप्त होती है जब इन्द्रियों व मन का व्यापार बंद होकर केवल आत्मा सजग रहता है। जैसे-जैसे मन और इन्द्रियो की गुलामी छूटकर जीवन का क्रम आत्मा की आतरिक आवाज की ओर उन्मुख होता है, वैसे-वैसे निरन्तर बढती हुई अनुभूति मे आत्मा का पावन स्वरूप निखरता जाता है।

इसी पवित्र आकाक्षा की पूर्ति हेतु एव विराट विश्व के कण-कण मे इसी का सदेश गुन्जरित करने, अणु-अणु मे आत्म-दर्शन करने और जन्म-जरा-मरणोर्मियो से परिव्याप्त ससार पारावार से पार होने के लिये आपने अनगार धर्म को अगीकार किया था और साधना के श्रीगणेश के साथ ही सयम-तप-त्याग की कसौटी पर अपने आपको कसना प्रारम्भ कर दिया।

विहार का प्रथम दिवस

साधु-सतो की यह दैनदिनी सामान्य चर्या है कि आत्म-निर्भरता

के प्रवल हिमायती होने से साधनोपयोगी उपकरणो का भार स्वयं ही उठाते हैं। ग्राम या नगर मे जाकर मधुकरीवृत्ति का परिचय देते हुए गृहस्थो के घरो से निर्दोष भिक्षा तथा प्रासुक जल की स्वयं ही गवेषणा करते हैं। प्राणिसयम के लिये वर्षा ऋतु के चार मास किसी एक स्थान पर विश्राम करने के सिवाय वर्ष के शेष आठ माह किसी भी प्रकार के यान, वाहन आदि का उपतोग न करके सतत पैदल विहार करते हैं और काटो ककड़ो से वचाव के लिये पैरो मे जूते, चप्पल या मोजे आदि नही पहनते हैं और न धूप आदि से वचने के लिये सिर पर छतरी आदि ही लगाते हैं।

जीवन-निर्माण मे पैदल विहार को वहुत महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यह शिक्षा का प्रधान अग माना गया है। इसका सवसे वड़ा लाभ आध्यात्मिक विकास है। एक स्थान से दूसरे स्थान तक पैदल भ्रमण करने से मार्ग की परिस्थितियो का अनुभव होता है। विस्तृत वनराजि के वीच कही पहाडो और उनकी उपत्यकाओ मे निर्द्वन्द्व विचरण करने वाले वनैले व्याघ्रादि तो कही कुलाचे लगाते हुए मृग शावक दृष्टिगत होते है। कही कल-कल करते झरनो तो कही शतदल कमलों से सुशोभित सरोवरो के दर्शन होते हैं। कही हरे-भरे खेतो तो कही वीहड जगलो और वही सघन वृक्षावली तो कही विशाल रेतीले मैदानो की झाकी देखने को मिलती है। कही श्रद्धा-भक्ति के भार से नम्र भद्र ग्रामजनो का स्नेहपूरित स्वागत प्राप्त होता है तो कही क्रूरकर्मा डाकू लुटेरे ताकते मिलते हैं। कही प्रकृति की रमणीयता, कमनीयता के दर्शन होते है तो कही उसके प्रलयकारी प्रकोप का भी सामना करना पड़ता है। यह सव देखने से प्रकृति का ज्ञान होता है और समभाव रखने का अभ्यास वढता है एव उससे प्राप्त संस्कार जीवन-विकास मे प्रेरणादायी सिद्ध होते हैं।

पैदल विहार करने वालो को ही प्रकृति के पर्यवेक्षण का अनुपम आनन्द नसीव होता है। रेल, मोटर या वायुयान द्वारा एक स्थान से

दूसरे स्थान पर जा पहुंचने वाले प्राय. इस आनन्द से वंचित-से रहते हैं। मार्ग के दृश्य उन्हे स्वप्न के समान भागते हुए-से प्रतीत होते है और उनके साथ हृदय का कोई संबन्ध स्थापित नही हो पाता है।

ज्ञानवृद्धि मे भी पद-विहार से बहुत सहायता मिलती है। मानवीय प्रकृति एवं आचार-विचार-व्यवहार का परिचय प्राप्त करने और विभिन्न भाषाओ, बोलियो व सभ्यताओ को समझने के लिये भी इसकी आवश्यकता है। प्रचार की दृष्टि से तो इसका महत्त्व सर्वोपरि है। श्रमण भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध जैसे विश्व-कल्याणक महापुरुषो ने भी पैदल भ्रमण करके ही जनता मे धर्म-जागृति की, शातक्रांति का मंत्र फूंका और युगीन लोकरूढियो के स्थान पर यथार्थ कर्तव्य का प्रतिबोध दिया।

चारित्ररक्षा की दृष्टि से भी साधु के लिये एक नियत स्थान पर न टिककर विहार करना आवश्यक है। अधिक समय तक एक स्थान पर टिके रहने से मोहोद्रेक होने का भय रहता है। इसी दृष्टि से जैनागमो मे साधु के लिये विहार करना आवश्यक माना है। चातुर्मास के अतिरिक्त किसी भी स्थान पर २६ रात्रि से अधिक ठहरना साधु के लिये निषिद्ध है। भविष्य मे आचार्य होने वाले के लिये तो यह और भी जरूरी है कि उसे विभिन्न प्रान्तों में भ्रमण करना चाहिये।

मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा को चरितनायक ने भागवती दीक्षा अंगीकार की थी और चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर यही दिन संत-मुनिराजो के विहार का होता है। अतः नवदीक्षित मुनि श्री गणेशलाल जी म० सा० गुरुदेव का पदानुसरण करते हुए साथ चल पडे। इसके पूर्व आपने पदविहार के लिये एक भी डग नही रखा था। देह सुकुमार थी और विहार मार्ग भी लंबा नही था, करीबन कोस, सवा कोस का होगा।

लेकिन इतने-से पदविहार ने भी नवदीक्षित मुनिश्री के कोमल शरीर पर अपना प्रभाव दिखाया। तलवों में फफोले पड़ गये, निढ-

लियो मे दर्द हो गया, कधों मे गठानें पड़ गई और हाथ भी अकड गये, आदि। अर्थात् थकान-सम्बधी जितने भी वाह्य चिह्न हो सकते थे, वे प्रतीत होने लगे। लेकिन आपने उन सबको मौन भाव से सहन किया। आत्मा बलवान थी और जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये ही दीक्षित हुए थे। अत आप घबराये नही, विचलित नही हुए और सोचने लगे—सयमी जीवन की परीक्षा का यह प्रथम अवसर है। भविष्य किसने देखा है और कौन जाने अभी कितने व कैसे-कैसे कष्ट उपस्थित होगे ? ऐसे अवसर ही तो आत्मा को सवल बनाते हैं। मुझे तो यह सब सहर्ष सहन करना है।

लेकिन अन्य सतो से आपकी यह स्थिति छिप न सकी। उन्होने आपके पैर दवाये, पिडलियो को सहलाया, मालिश की, जिससे वेदना कुछ कम हुई। धीरे-धीरे आप भी अन्य मुनियो की भाति इन परिषहो को सहन करने के अभ्यस्त हो गये।

आचायदेव के दर्शन

गुरुदेव श्री जवाहरलाल जी म. सा. के साथ ग्रामानुग्राम विहार करते हुए चरितनायक नाथद्वारा पधारे और वहा विराजित मुनिश्री मुन्नालाल जी म सा. आदि मुनिराजो के दर्शन किये। गुरुदेव के साथ आपको देखकर उन्होने अपना प्रमोद भाव व्यक्त करते हुए शुभाशीर्वाद दिया।

नाथद्वारा मे कुछ दिन विराजने के पश्चात अन्याय क्षेत्रो की ओर विहार होने वाला था कि आचार्यश्री श्रीलाल जी म. सा. के नाथद्वारा की ओर पधारने के समाचार ज्ञात कर विहार स्थगित कर दिया गया और आचार्यश्री जी के आगमन पर गुरुदेव के साथ सामने जाकर भक्तिभावपूर्वक दर्शन किये।

आपके बारे मे आचार्यदेव की बहुत ऊची धारणा थी। आपको देखते ही गुरुदेव श्री जवाहरलाल जी म. सा. से बोले—जवाहर ! गणेश को खूब पढ़ाओ, शास्त्र-पारगत बनाओ। इन्हे पढ़ाना तो कल्पवृक्ष को

सीचना है !

गुरुदेव श्री जवाहरलाल जी म. सा. को आचार्यदेव का यह कथन इतना उपयुक्त प्रतीत हुआ कि अपने २३ चातुर्मासो में साथ रख-कर आपको अपना अगाध ज्ञान, तार्किक प्रतिभा और चारित्रनिष्ठा विरासत मे प्रदान की। इसी का सुफल है कि आपका जीवन महान से महानतम की ओर सदैव गतिमान रहा।

इस तेईस वर्ष के लम्बे काल मे आपने भी दत्तचित्त होकर विभिन्न शास्त्रो का तलस्पर्शी अध्ययन किया। सस्कृत, प्राकृत भाषाओ एव न्याय, व्याकरण, काव्य आदि साहित्य के सभी अगो मे पाडित्य प्राप्त किया। साथ ही चारित्रविधि को प्रयोगात्मक रूप से जीवन मे उतारा। जिनका सुन्दर समन्वय आपके दैनंदिनी व्यवहार में स्पष्ट रूप से दृष्टि-गोचर होता है। आपके जीवन मे जो विद्या, ज्ञान, समन्वयकारी बुद्धि का आलोक और सदाचार, विनयशीलता का सौरभ व्याप्त था, वह इस महत्त्वाकांक्षी युग के लिए एक सुन्दर वरदान है।

आज के युग मे सुदीर्घ काल तक गुरु के प्रति विनय, श्रद्धा-भक्ति से युक्त साहचर्य एक बडी चुनौती है और जिसे हरएक शिष्य स्वीकार नही कर पाता है। परन्तु असाधारण पुरुषो के व्यवहार मे असाधारणता ही होती है। शास्त्रो मे उल्लेख है कि नवदीक्षित मुनि को १२ वर्ष तक उपाध्याय और १२ वर्ष तक आचार्य के सान्निध्य मे रख कर अध्ययन कराया जाये। इस शास्त्रीय कथन को आपने अक्षरश: साक्षात कर दिखाया और आचार्य जैसे महनीय पद पर प्रतिष्ठित होने के अनतर भी आप एक विनीत शिष्य की तरह ज्ञानाभ्यास के लिए अहर्निश उत्सुक रहे। जिसके ज्वलन्त प्रमाण आपके प्रवचनो मे यत्रतत्र परिलक्षित होते है।

सायङ्काल मे आचार्यदेव पूज्यश्री श्रीलाल जी म. सा से साधना में सफलता-प्राप्ति का शुभाशीर्वाद पाकर आपने गुरुदेव के साथ विहार कर दिया।

मार्ग मे उपलब्ध अनुभवो से वोध लेते हुए, अध्ययन द्वारा विविध शास्त्रों मे पाडित्य प्राप्त करते हुए और जन-जन को मानवता का पाठ पढाते हुए करीवन आठ माह हो चुके थे। किन्तु यह आठ माह का सुदीर्घ समय कव वीता, कैसे वीता, पता ही नही पड़ा। समय की गतिशीलता का अनुमान लगाना बुद्धिगम्य नही है। वैसे तो संपूर्ण जगत ही गतिशील है, उसके अणु-अणु मे गतिशीलता है। आज जो शिशु है, वही कल युवा और युवा से वृद्धावस्था की ओर बढ़ते हुए दिखलाई दे रहा है। क्षण-क्षण की नित-नूतनता अतीत में विलीन होकर भविष्य का आलिगन करने के लिए गतिमान है। यह परम्परा अनाद्यनंत है। इसमे विराम के लिए अवकाश नही है। उसका सकेत है कि प्रगति के लिए सदैव गतिशील रहो। इसकी महत्ता के सन्मुख अनेक माहिमावन्त भी नतमस्तक हो गये हैं। लेकिन कतिपय कालविजेता मृत्युंजयी महापुरुष इस चक्र का भेदन करके सदा-सदा के लिए चिरंजीवी वन गये हैं और उनके आदर्श दूसरो को प्रगति के लिए प्रेरणा देते रहते है।

वैसे तो चरितनायक के चातुर्मास अधिकतर गुरुदेव श्री जवाहरलाल जी म. सा एव श्री मोतीलाल जी म. सा. के साथ ही हुए हैं। किन्तु यहां आपसे सम्बन्धित प्रसगो वाले कतिपय चातुर्मासों का ही विवरण प्रस्तुत है।

आपका प्रथम चातुर्मास (स० १९६३) गगापुर मे हुआ। इस चातुर्मास मे आपके नेश्राय गुरु मुनि श्री मोतीलाल जी म. सा. ने ३३ दिन की तपस्या की और अन्यान्य मुनिराजो ने भी शक्त्यनुसार तपस्यायें की थी। तपस्याओ के पूर के अवसर पर श्रावक-श्राविकाओ मे भी यथाशक्ति त्याग-प्रत्याख्यान हुए थे।

आपने भी तपस्यायें करने के साथ-साथ लगभग ४० थोकड़े, दशवैकालिक सूत्र मूल तथा सात अध्ययन के शब्दार्थ और उत्तराध्ययन सूत्र के ९ अध्ययन कठस्थ किये।

इसी चातुर्मास काल मे मुनि श्री लक्ष्मीचद जी म सा. के ससार

पद के पुत्र श्री पन्नालाल जी, पुत्रवधू और श्री रतनलाल जी की भागवती दीक्षायें संपन्न हुई थी।

चातुर्मास समाप्ति के पश्चात मेवाड के विभिन्न ग्रामो मे विहार करते हुए आप गुरुदेव के साथ-साथ बडी सादडी पधारे। वहां पुनः पूज्य आचार्यदेव श्री १००८ श्री श्रीलाल जी म. सा के दर्शनो का सौभाग्य प्राप्त हुआ और आचार्यदेव ने आपके अध्ययन, तपस्याओ आदि के लिए हार्दिक संतोष व प्रसन्नता व्यक्त की।

आदर्श गुरुसेवा

स० १९६५ का चातुर्मास थादला था। चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर पूज्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० आदि ठा० वहा से विहार करके रंभापुर पधारे। वहा से महाभाग मुनि श्री मोतीलाल जी म० सा० ने कोद की ओर विहार किया और पूज्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० विहार करके करीब दो कोस पहुंचे होंगे कि उन्हे बुखार हो गया। अतः वापस रंभापुर लौट आना पड़ा।

बुखार तो था ही, साथ मे कै और दस्त भी होने लगे और बढ़ते-बढ़ते उनकी सख्या प्रतिदिन १५०-१६० तक पहुंच गई। कोई इलाज कारगर साबित नही हो रहा था। नौ दिन तक यही स्थिति रही। जिससे जीवन बचने की भी आशंका होने लगी।

इस विकट स्थिति मे चरितनायक मुनि श्री गणेशलाल जी म० सा० और मुनि श्री राधालाल जी म० सा० साथ थे। दोनो सन्त दवा लाते, मलदूषित वस्त्रो को धोने और वैयावच्च मे लगे रहते थे। फिर भी स्वास्थ्य मे सुधार नही होने से दिनोदिन चिन्ता बढती जा रही थी। आस-पास के श्री संघो को बीमारी की जानकारी मिलने से बहुत से भाई-बहिन रंभापुर आ गये थे।

उन्ही दिनो थांदला से वैद्य श्री नाहरसिंह जी बुन्देला निजी काम से रंभापुर आये। उन्होंने यह सब स्थिति देखी और कहा कि यदि आप किसी तरह थांदला पहुंच सकें तो मैं इन्हे निरोग कर सकूंगा।

रभापुर से थादला करीब चार कोस था और गुरुदेवश्री का जीवन इतना बहुमूल्य था कि उसकी रक्षा करने के लिये कोई भी कष्ट झेलना वडी बात नही थी। मगर प्रश्न यह था कि थादला किस प्रकार पहुचा जाये? साथ मे सिर्फ दो सन्त थे, मगर दोनो सेवापरायण और कर्तव्यनिष्ठ थे। उन्होने साहस करके थादला ले जाने का निश्चय कर लिया और धीरे-धीरे थांदला की ओर विहार करना प्रारम्भ कर दिया।

मुनि श्री गणेशलाल जी म० सा० और मुनि श्री राधालालजी म० सा० गुरुदेव को सहारा देकर चलाते। कुछ दूर चलने मे ही थकावट वढ जाती थी। अत. विश्राम हेतु किसी वृक्ष की छाया मे विछौना विछाकर आपको लेटा देते थे और हाथ पैर दबाने लगते। इस तरह करते-करते दिन भर मे ढ़ाई मील की यात्रा हो सकी और दूसरे दिन थादला आ गये। वहा श्री नाहरसिह जी बु देला के उपचार और शिष्यो की सेवा-शुश्रुषा के फलस्वरूप पूज्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० करीब डेढ माह मे पूर्ण स्वस्थ हो गये और धीरे-धीरे कमजोरी भी दूर हो गई। लेकिन इस विकट परिस्थिति मे आप दोनो सतो ने साधु-मर्यादा सम्वन्धी दैनिक चर्या मे किसी प्रकार से व्यवधान नही आने दिया और जागरूक होकर साधना के मार्ग पर आगे-ही-आगे वढते रहे।

दान का स्मरणीय प्रसग

स १९६६ का चातुर्मास जावरा हुआ। चातुर्मास समाप्ति के अनतर मालवा के विभिन्न क्षेत्रो मे धर्मप्रभावना करते हुए स० १९६७ के चातुर्मासार्थ इन्दौर पधारे।

इन्दौर मालवा का उद्योग-प्रधान नगर तो है ही किन्तु शिक्षा और विद्वद्गोष्ठी से भी समृद्ध है। वहा पूज्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० के दनिक प्रवचनो के अवसर पर विद्वानो के अतिरिक्त जन-साधारण की उपस्थिति हजारो की सख्या मे हो जाती थी। व्याख्यानो का विषय तत्कालीन स्थिति और उसमे धर्म की उपयोगिता का सकेत

मुख्य रूप से रहता था । आप प्रत्येक समस्या के समाधान मे बहुत ही गहराई तक पहुचते, जिससे जनता को नया बोध मिलता और अपने कर्तव्य का निश्चय करती ।

इस चातुर्मास काल में महाभाग मुनि श्री मोतीलाल जी म० सा० ने ३६ दिन की तपस्या की । तपस्या के पूर दिवस पर आचार्यश्री ने प्रवचन मे अहिंसा धर्म का विशद विवेचन किया । उस दिन श्रोताओ मे बहुत से कसाई भाई भी आये थे । जिन पर प्रवचन का बहुत ही गहरा असर हुआ और उनमें से एक ने तो चतुर्दशी को जीवहिंसा करने का त्याग कर दिया । इसके अतिरिक्त अन्य भाई-बहिनों ने भी यथाशक्ति त्याग-प्रत्याख्यान किये । इस दिवस की स्मृति-रूप मे जीवदया के कार्यों को करने के लिये तत्काल छह हजार रुपये का चन्दा एकत्रित हो गया ।

एक सरल, भद्र परिणामी सज्जन भी इस अवसर पर उपस्थित थे । उन्होने दत्तचित्त होकर यह व्याख्यान सुना और अपनी कुल १००० की पूंजी मे से जिससे प्रतिदिन चने, मूंगफली आदि लाते और अपनी आजीविका चलाते थे, इस शुभ कार्य के लिये १०० दान देना चाहा । लेकिन गरीब समझकर, कुछ मार्मिक बात कहकर उनकी उपेक्षा कर दी । इससे उन्हें इतनी मनोवेदना हुई कि जो आंसुओ के रूप मे बह निकली ।

मुनि श्री गणेशलाल जी म० सा० की उनकी ओर दृष्टि गई और कारण पूछने पर उन्होंने अपनी भावना का मर्म बतलाया । मुनि श्री ने गुरुदेव से यह वृत्तांत निवेदन किया तो गुरुदेव ने तत्काल प्रवचन में उन सज्जन की प्रशंसा करते हुए फरमाया कि ये सज्जन अपनी पूंजी में से दसवां भाग देने को उत्सुक हैं । क्या आप लोगो मे से है कोई, जो अपनी संपत्ति का दसवां भाग जीवकल्याण की शुभ प्रवृत्ति में देने को तैयार हो । इनकी भावना का सत्कार करो, इनके कार्य की प्रशंसा करो । संख्या का महत्व न समझकर भावों का मूल्य समझना चाहिये ।

श्रोताओ व चन्दा एकत्रित करने वालों को अपनी भूल ज्ञात हुई और उनके ६०००० ०० पर यह १'०० कलश बन गया।

चरितनायक को करुणा भावना किस-किस रूप मे प्रवाहित हुई है, यह तो उनके समग्र जीवन के दर्शन से यथास्थान दिखलाई देगी। लेकिन पूर्वोक्त घटना तो उसका सकेत-मात्र ही है। विकटतम प्रसगो मे भी आपकी जीव कल्याण की भावना सदैव सचेष्ट रही है और सघर्ष व उसकी आशका भी आपकी करुणा भावना के मार्ग में अवरोधक नही बन सकी। यही आपके जीवन की सुन्दरता और भव्यता का रहस्य है और उसकी स्मृति से हमारा हृदय गद्गद हो उठता है एव मस्तक श्रद्धा से नत हो जाता है।

विद्याध्ययन का व्यवस्थित क्रम

इन्दौर चातुर्मास समाप्ति के बाद गुरुदेव के साथ आपका विहार दक्षिण (महाराष्ट्र) की ओर हुआ।

इन दिनो भारतीय इतिहास मे एक नया स्वर्णिम पृष्ठ लिखा जा रहा था। राष्ट्रीय स्वाधीनता-आन्दोलन अपने प्रबल वेग से चल रहा था। देशवासी देश को दासता से मुक्त करने के लिये कृतसकल्प होकर प्रयत्नशील थे और उधर विदेशी शासक इस आदोलन का दमन करने पर उतारू थे। ब्रिटिश सरकार प्रत्येक भारतीय और उसमे भी अपरिचित वेश वालो को सदेह की दृष्टि से देखती थी। अनेक स्थानो पर दक्षिण की ओर विहार करने वाले इस सन्तमण्डल को भी सन्देह का शिकार होना पडा। फिर भी अटल निश्चय के अनुसार अनेक कठिनाइयो की उपेक्षा करते हुए विहार निर्बाध गति से चलता रहा और स० १९६८ का चातुर्मास अहमदनगर हुआ।

उस समय तक स्थानकवासी सप्रदाय मे सस्कृत-प्राकृत भाषा का पठन-पाठन बहुत कम था। व्याकरण, साहित्य आदि का अध्ययन करके ठोस पाडित्य, प्राप्त करने की ओर समाज मे वातावरण ही नहीं था। इसके बारे मे जितनी साधुवर्ग में उदासीनता थी, उतनी ही श्रावक-

वर्ग में थी। कतिपय तो संस्कृत भाषा के पठन-पाठन का विरोध भी करते थे।

परन्तु गुरुवर्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० यह स्थिति समाज के लिये श्रेयस्कर नहीं समझते थे। आप विद्याभिलाषी समाज और समर्थ विद्वान एवं चारित्रशील साधु-सन्त देखना चाहते थे। अतएव सामाजिक विरोध होते हुए भी आपने अपने शिष्यद्वय मुनि श्री घासीलालजी म० व चरितनायक मुनि श्री गणेशलालजी म० को संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं व भारतीय वांगमय के पढ़ाने का निश्चय किया।

आप मानते थे कि जो व्यक्ति पूर्णरूपेण और नियमानुसार साधु के आचार को भली-भांति नहीं जानता वह उसका समीचीन रूप से पालन करने में असमर्थ है। अपने आचार को भलीभांति समझने वाला ही उसका पालन कर सकता है। ज्ञान के अभाव में साधुता की भी शोभा नहीं है। समाज के उत्थान के लिये भी ज्ञान की आवश्यकता है। हत ज्ञान क्रिया हीनं हता चा ज्ञानि ना क्रिया यदि क्रियाहीन ज्ञान व्यर्थ है तो अज्ञानी के द्वारा की जाने वाली क्रिया भी अनुपयोगी है।

आपने शिष्यों को ज्ञानाभ्यास कराने का निश्चय तो कर लिया था, लेकिन निश्चय के साथ ही एक कठिनाई सामने आई कि उस समय तक समाज में ऐसा कोई साधु या श्रावक नजर नहीं आया जो इन मुनियों को नियमित रूप से पढ़ा सके एवं वेतन देकर पंडित नियुक्त करने में बहुतों को आपत्ति थी। उनका विचार था कि 'अपढ़ रह जाना अच्छा लेकिन वेतन देकर गृहस्थ विद्वान से साधुओं को पढ़ना अच्छा नहीं है।'

चातुर्मासकाल में कुछ समाज के प्रमुख अग्रणी श्रावकों ने यह प्रश्न पूज्य श्री जवाहरलालजी म० सा० की सेवा में प्रस्तुत किया। उन्होंने पूछा— त्यागियों को गृहस्थों से पढ़ना चाहिये या नहीं, और साधु के निमित्त वैतनिक पंडित रखने से मुनियों को दोष लगता है या नहीं।

व्यक्तिगत चर्चा के प्रसग में उक्त प्रश्न का उत्तर देने की अपेक्षा गुरुदेव श्री ने सार्वजनिक रूप मे प्रवचन के अवसर पर उत्तर देना उचित समझा। अत दूसरे दिन प्रवचन मे इस प्रश्न के स्पष्टीकरण एव समाधान के लिये उदाहरण दिया कि एक समझदार गृहस्थ ने अपने अन्तिम समय मे पुत्र को शिक्षा दी— तुम किसी से ऋण मत लेना और न भूखे ही रहना। इतना कहने के वाद पिता की मृत्यु हो गई। भाग्यवशात पुत्र निर्धन हो गया और ऋण लेने की भी नौवत आ गई। लेकिन उसे पिता के अन्तिम शब्द याद आ गये कि ऋण लेना मत और भूखे रहना नही। विचित्र सकट था कि इधर कुआ तो उधर खाई। पुत्र किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया कि क्या करे? अन्त मे अन्तर के नाद से उसे प्रकाश मिला और स्वस्थ मन से विचारा कि पिताजी कि दोनो आज्ञाओ का उद्देश्य सुखी जीवन व्यतीत करने का है। ऋण लेने से सुख नष्ट होता है और भूखों मरने से जीवन की समाप्ति। अतएव ऐसी स्थिति में थोड़ा ऋण लेकर जीवन वचाये रखना श्रेयस्कर है और वाद मे कठिन परिश्रम कर ऋण उतार दूंगा। ऐसा सोचकर उसने थोडा सा ऋण ले लिया, जिसे वाद मे अपने श्रम से चुका दिया और आत्मघात के भयकर पाप से अपने को वचा लिया।

- अव आप लोग विचारें कि पुत्र का उक्त निर्णय उचित था या नही?

यही वात साधुओ के अध्ययन के वारे मे भी समझना चाहिये। यह ठीक है कि साधुओ को गृहस्थ से कोई काम नही लेना चाहियें, लेकिन क्या धर्म गुरुओं को मूर्ख ही वना रहना चाहिये? क्या उन्हें धर्म पर होने वाले मिथ्यारोपो का निवारण करने में समर्थ नही बनना चाहिये? शास्त्रो मे ज्ञान की महिमा का वर्णन निष्कारण नही किया गया है। दशवैकालिक सूत्र मे उल्लेख है—

'अन्नाणी किं काही, किं वा नाही सेयं पावम्।'

अर्थात् अज्ञानी वेचारा क्या कर सकेगा? वह भले-बुरे को—

कल्याण-अकल्याण को, धर्म-अधर्म को क्या समझ सकेगा ?

अध्ययन-अध्यापन कोई सावद्य कार्य नही है। मर्यादा मे रहते हुए अगर गृहस्थ से अध्ययन किया जाये तो मूर्ख रहने की अपेक्षा बहुत कम दोष है और उसकी प्रायश्चित द्वारा शुद्धि भी की जा सकती है। भगवान ने गृहस्थ से काम लेने का निषेध किया है तो अल्पज्ञ रहने का भी निषेध किया है। आप स्मरण रखे कि युग की विशेषताओ पर ध्यान दिये बिना धर्म और समाज की रक्षा होना कठिन है। धर्म और समाज की रक्षा के लिये अज्ञान निवारण करना प्राथमिक आवश्यकता है।

इस विवेचन से श्रोताओं की धारणाओ का उन्मूलन हुआ और आपके निश्चय की सराहना की।

योग्य अधिकारी विद्वानो के सान्निध्य मे चरितनायक अध्ययन करके शनै-शनैः, क्रम-क्रम से न्याय, व्याकरण, दर्शन साहित्य आदि विषयो एवं संस्कृत, प्राकृत भाषाओ मे पाडित्य प्राप्त करने लगे। साथ ही महाराष्ट्र के श्रावक सघो को भी धार्मिक प्रवृत्तियो के विकास का सुयोग प्राप्त हुआ।

गुरुदेव श्री जवाहरलाल जी म० सा० का स० १९७४ का चातुर्मास भीही हुआ। शिष्यद्वय अध्ययन कर ही रहे थे। किसी एक दिन वार्तालाप के प्रसग में श्री कुन्दनमल जी फिरोदिया और श्री माणिकचन्द जी मूथा वकील ने गुरुदेव से प्रार्थना की कि आपके दोनों शिष्य अध्ययन कर रहे हैं यह आनन्द की बात है। किन्तु उनका अध्ययन कैसा-क्या चल रहा है और उन्होने इसमें कितनी प्रगति की है, यह बात हम श्रावको को कैसे मालूम हो ?

प्रश्न उचित था और गुरुदेव श्री भी नहीं चाहते थे कि समाज की शक्ति, धन का अपव्यय हो। अध्ययन सतोषजनक है या नही यह जानने का उपाय परीक्षा लेना है। अत उन्होंने अपने दोनो शिष्यो से परीक्षा देने के लिये पूछा और दोनों ने तत्काल इसके लिये स्वी-

कृति दे दी।

विचार-विमर्श के अनन्तर अहमदनगर मे परीक्षा लेने का निश्चय किया गया। जिसके लिये प्रसिद्ध विद्वान पं० श्री गुणेशास्त्री एम-ए, पी एच. डी और म० म० पं० अभ्यकरजी शास्त्री परीक्षक नियुक्त किये गये। परीक्षको ने श्री सघ और दर्शको की उपस्थिति में परीक्षा ली। व्याकरण, साहित्य विषयक प्रश्न पूछे गये। जिनमें मुनि श्री गणेश-लाल जी म० सा० को व्याकरण में ८२ प्रतिशत एव साहित्य मे ६४ प्रतिशत प्रथम श्रेणी के अक प्राप्त हुए। मौखिक प्रश्नो मे तो सौ में से सौ अंक प्राप्त हुए।

परीक्षा के परिणाम को देखकर उपस्थिति ने अध्ययन की सरा-हना की और परीक्षकों ने अध्यापक एव अध्येता की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए प्रोत्साहन दिया।

स० १९७५ का चातुर्मास हिवड़ा हुआ। यहाँ पर श्री सूरजमलजी कोठारी ने भाद्रपद शुक्ला ७ को भागवती दीक्षा ली।

विद्वत्ता का परिचय

इन्ही दिनो पूज्य आचार्य श्री श्रीलाल जी म० सा० का चातु-र्मास उदयपुर हुआ। अकस्मात् आश्विन मास मे आप श्री इन्फ्लूएजा रोग से ग्रस्त हो गये। रोग की वेदना तीव्र थी। फिर भी आप श्री ने साध्वोचित क्रियाओ से किसी प्रकार रुकावट नही आने दी और निय-मित रूप से साधना मे सलग्न रहे।

इस रोग-वेदना के समय पूज्यश्री ने सघहित की दृष्टि से विचार किया कि जीवन क्षण भगुर है। आचार्य होने के नाते मेरे ऊपर समस्त सम्प्रदाय का भार है। अत अब मुझे योग्य उत्तराधिकारी का चयन कर लेना चाहिये जिससे चतुर्विध सघ की धर्मसाधना निर्विघ्न रूप से व्यवस्थित रहे।

पूज्यश्री ने इस दृष्टि से अपने आज्ञानुवर्ती समस्त मुनियो पर दृष्टि डाली और उनमे चरितनायक के गुरु श्री जवाहरलाल जी म०

सा० पर ध्यान केन्द्रित हो गया। पूज्यश्री ने अपना विचार श्री सघ के समक्ष रखा। जिसका श्री सघ ने अनुमोदन करते हुए कार्तिक शुक्ला द्वितीया को श्री जवाहरलाल जी म० सा० को युवाचार्य घोषित करके उन्हे इसकी जानकारी कराने के लिये हिवडा श्री संघ को तार दे दिया गया। किन्तु पद उत्तरदायित्वपूर्ण था अत: स्वीकृति देने से पूर्व उन्होंने आचार्य श्री जी से मिलना उचित समझा और तत्काल कोई उत्तर नही दिया।

उत्तर में विलम्ब होते देख सेठ श्री वालमुकुन्द जी तथा श्री चंदनमल जी मूथा हिवड़ा आये। उन्होंने श्री संघ की स्थिति और आचार्य श्री जी की भावना को व्यक्त किया। अतएव आपने उत्तर मे कहा कि मुझे पूज्यश्री की आज्ञा शिरोधार्य है। लेकिन मैं वहुत दिनो से महाराष्ट्र मे हूँ। उधर की परिस्थितियों से अपरिचित हूँ। इधर दोनों शिष्यो का अध्ययन चल रहा है, जिसे वीच में स्थगित कर देना उचित नहीं है। इनका अध्ययन पूर्ण होने पर मैं पूज्यश्री की सेवा मे उपस्थित होकर एतद्विषयक अपनी भावना व्यक्त करना चाहता हूँ। इसी प्रकार के भाव आपने उदयपुर से आगत शिष्टमण्डल को भी वतलाये।

शिष्टमण्डल के वापिस उदयपुर लौट जाने के अनतर समाज के अग्रणी सेठ श्री वर्धमान जी पीतल्यिा रतलाम एव सेठ श्री वहादुरमल जी बांठिया भीनासर निवासी हिवड़ा आये और समस्त स्थिति का दिग्दर्शन कराया। इसलिये अध्ययन करने वाले अपने शिष्यों को महाराष्ट्र मे छोड़कर गुरुदेव श्री जवाहरलाल जी म० सा० ने मालवा की ओर विहार कर दिया और रतलाम में युवाचार्य पद समारोह सम्पन्न हुआ।

चरितनायक मुनि श्री गणेशलालजी म० सा० महाभागमुनि श्री मोतीलाल जी म० सा० के साथ यहीं महाराष्ट्र में अपना अध्ययन चालू रखने के लिये रह गये और सं० १९७६ व १९७७ के चातुर्मास

क्रमशः चिंचवड़ व सतारा मे किये ।

इन दोनो चातुर्मासो मे समाज को आपकी वाणी, विद्वत्ता और शास्त्रीय अध्ययन का परिचय मिला । सरल से सरल भाषा में आप गम्भीर शास्त्रीय विषय को समझाने मे प्रवीण थे। आपकी विद्वत्ता जन-मानस को स्पर्श करती थी । श्रोतागण आपके प्रवचनो को सुनकर गद्-गद् हो उठते और गुरुदेव श्री जवाहरलालजी म० सा० की सूझबूझ का अभिनन्दन करते हुए सराहना करने लगते ।

मालवा की ओर

महाराष्ट्र की जनता आपके पांडित्य से प्रभावित हो चुकी थी और महाराष्ट्र मे विराजने के लिये विनती कर रही थी। लेकिन आप चाहते थे कि गुरुदेव की छत्रछाया मे ज्ञान और सयम साधना के सस्कारो का सिंचन हो और आपके गुरुदेव श्री भी अभी उन्हें अपने निकट रखना चाहते थे । अतः आप गुरु-आज्ञापूर्वक दो ठाणा से महाराष्ट्र से विहार करके उदयपुर पधार गये । गुरुदेव श्री भी बीकानेर चातुर्मास समाप्ति के पश्चात उदयपुर पधारे ।

आषाढ शुक्ला द्वितीया स० १९७७ को पूज्य आचार्य श्री श्रीलाल जी म० सा० के जयतारण मे काल धर्म को प्राप्त होने पर चतुर्विध सघ का नेतृत्व आपके गुरु श्री जवाहरलाल जी म० सा० के हाथो मे आ गया था ।

आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होने के उपरात सप्रदाय और समाचारी को व्यवस्थित रूप देने की दृष्टि से उदयपुर मे सप्रदाय के समस्त सन्त-सतीवृन्द का सम्मेलन हुआ । जिसमे चालीस सन्त एकत्रित हुए और उन्होने समाचारी आदि को व्यवस्थित रूप देकर पूज्य आचार्य श्री की आज्ञा को शिरोधार्य किया ।

मार्मिक प्रसंग

स० १९७८ का चातुर्मास रतलाम मे सम्पन्न होने के पश्चात् आपने अधूरे अध्ययन को पूर्ण करने के लिये गुरुदेव के साथ दक्षिण की

और विहार कर दिया। खुर्रमपुरा पहुंचने पर रात्रि विश्राम योग्य स्थान न मिल सका और एक खुले मन्दिर मे ठहरना हुआ। पौष मास था और उन दिनो कड़ाके की सर्दी पड रही थी कि अकस्मात शाम को मुनिश्री हणुतमलजी म० सा० को छाती मे दर्द उठा और ज्वर हो गया। रात्रि का समय था और साधु मर्यादा के अनुसार रात्रि मे उपचार आदि के लिये उपाय भी नही किया जा सकता था। जो कुछ भी सेवा-शुश्रुषा सम्भव थी, वह सब की गई लेकिन रोग काबू मे नही आया। अतः उसी समय उनको आलोयणा आदि करादी गई और उन्होने शुद्ध हृदय से अपने जीवन की आलोचना की।

जैसे-तैसे प्रातःकाल होने पर मुनिश्री गणेशलालजी म० सा० दूसरे कुछ सुविधाजनक स्थान की खोज मे निकले और एक कच्ची कोठरी मिली। वहां रुग्ण मुनिश्री को ले आया गया। मगर आहार, उपचार और बीमारी की समस्या अधिकाधिक कठिन होती जा रही थी। बीमारी के कारण विहार होना भी सम्भव नही था। स्थिति विकट थी और उसका सामना करने के लिये आचार्य श्री आदि सभी सन्तो ने एकान्तर उपवास करना प्रारम्भ कर दिया। रुग्ण मुनिश्री को रोग मुक्ति के लिये तीन दिन का उपवास कराया गया। इससे रोग मे कुछ अन्तर तो पड़ा किन्तु निर्बलता ज्यादा बढ़ गई।

खुर्रमपुरा छोटा सा गांव था अतः वहां बीमार मुनि की चिकित्सा के साधनो का अभाव देखकर उपचार के लिये किसी दूसरे योग्य गांव मे ले जाने का निश्चय किया गया। करीब चार कोस पर एक गांव था और वहां जैसे-तैसे आवास योग्य स्थान भी मिल गया। लेकिन सन्त मुनियों के योग्य आहार आदि की असुविधा और रोगी की परिचर्या के साधनों का अभाव देखकर वापिस खुर्रमपुरा लौट आये।

समय की स्थिति को देखते हुए खुर्रमपुरा मे रोगी मुनिश्री के उपचार के लिये जो कुछ सम्भव था, किया गया। श्रावकों को खबर मिलने पर आगरा से श्री प्यारचन्दजी डकलिया और दूसरे एक दो सज्जन

भी खुर्रमपुरा पहुंच गये । किन्तु रोग का प्रकोप तीव्र था अतः रोगी मुनिश्री के जीवन की कोई आशा न देखकर उन्हें संथारा करा दिया गया और संथारे की स्थिति मे उनका देहावसान हो गया ।

आघात पर आघात

इस प्रकार के कष्टमय समय को व्यतीत करके पूज्य श्री जवाहरलालजी म० सा० आदि सन्त खुर्रमपुरा से विहार कर वालसमद पहुंचे । वहा भी स्थान आदि की कठिनाइया आईं । एक धर्मशाला मिली किन्तु डास मच्छरो और चूहो के कारण रात्रि व्यतीत करना असम्भव जान मुनि श्री गणेशलालजी म० सा० आदि सन्तों को किसी अन्य स्थान को देखने के लिये भेजा । उन्हे एक गृहस्थ के मकान के वाहर का चवूतरा योग्य दिखलाई दिया । मुनि श्री ने गृह स्वामी की पुत्रवधू से चवूतरे पर रात्रि विश्राम करने की आज्ञा मागी, लेकिन उसने इसके लिये आनाकानी की । वहां के निवासियो की धारणा थी कि चोर-लुटेरे साधु के वेश मे फिरते है और मौका पाकर हाथ साफ करके चल देते हैं ।

मुनि श्री ने उस बहिन को बहुत समझाया और अपनी सब स्थिति एव साधुचर्या का परिचय दिया तो उसका दिल पसीज गया और बोली, महाराज हमे तो कोई एतराज नही किन्तु हमारे ससुर आते ही आपको हटा न दें, यह विचार आ जाता है ।

अनुमति पाकर चारो सन्त अभी अपने पात्रोपकरण रखकर बैठे ही थे कि गृहस्वामी आ गया और दूर से ही चवूतरे पर सन्तो को देखकर क्रोधाभिभूत हो अपशब्दो से स्वागत करना प्रारम्भ कर दिया । निकट आते ही उसने तत्काल हटने के लिये आदेश दिया और चेतावनी दी कि यहा से शीघ्र उठो, नही तो यह सब पात्र आदि फोड़ फेंकूंगा ।

सामयिक स्थिति को देख सन्तो ने पुनः धर्मशाला मे आकर रात्रि विश्राम किया और प्रातः होते ही वहां से विहार कर सेववा एवं

वहाँ से पुनः ग्यारह कोस का उग्र विहार कर चोकी पधारे। मार्ग में आहार-पानी का संयोग तो न कुछ-सा मिला। यद्यपि उग्र विहार और अल्प आहार के कारण शरीर अवश्य कुछ निर्बल हो गया था, परन्तु मन अधिकाधिक प्रबल बनता गया और परिषहों का प्राबल्य सतत जाग्रत रहने के लिये प्रेरित करता रहता था।

साध्वाचार का पालन करना कितना कठिन है, यह उल्लिखित प्रसग से ज्ञात होता है। संयम साधना करना कोई दूध-पताशे का कौर नही है, वरन तलवार की धार पर चलना है। ऐसी परिस्थिति मे भी बिना किसी क्षोभ के सब कुछ सहन करना बहुत बड़ी बात है। प्रतिदिन का लगातार लम्बा विहार, सूर्योदय से सूर्यास्त तक पैदल चलना, कई दिनो तक भरपेट आहार न मिलना और उसमे भी यह कटुक व्यवहार। रात्रि विश्राम के लिये भी साधारण-सा स्थान नही। डास मच्छरो को अपना शरीर समर्पित करना आदि! हे साधना के पथिक मुनिराज! तुम्हारा मार्ग तुम्ही को शोभा देता है।

चोकी से विहार कर शीरपुर, वागजी होते हुए सभी सन्त माडल पधारे और वहां पांच-छह दिन विराजकर धूलिया पहुंचे। धूलिया मे पूज्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० को ज्वर हो जाने से एक सप्ताह रुकना पड़ा। किन्तु स्वास्थ्य ठीक होते ही पारोली की ओर विहार कर दिया।

पारोली मे मुनि श्री लालचन्द जी म० सा० विराजते थे। वे बहुत दिनों से रुग्ण थे और पूज्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० के दर्शनों के इच्छुक थे। आपने उन्ही की भावना को जानकर इस ओर विहार किया ही था कि पारोली के निकटवर्ती ग्राम राहोरी पहुंचने पर उनके स्वर्गवास होने के समाचार मिले। अतः पारोली जाना स्थगित करके पुनः मालवा की ओर विहार करने का विचार होने लगा। किन्तु अहमदनगर संघ की विनती से अहमदनगर की ओर विहार हुआ।

विभिन्न क्षेत्रों की ओर से आगामी चातुर्मास के लिये विन-

तिया हो रही थी, किन्तु विशेष प्रभावना और धर्मोपकार होने की सम्भावना से स० १९७९ का चातुर्मास सतारा हुआ। सतारा में श्री भीमराज जी व श्री सिरेमल जी की भागवती दीक्षायें सम्पन्न हुई।

चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर पूना आदि सुदूर दक्षिण तक विहार होने से जनसाधारण को जैन धर्म के सिद्धान्तो, विशेषताओ की जानकारी मिलने के साथ साथ मिथ्या-धारणाओ का निराकरण हुआ।

चातुर्मास का समय निकट था और दक्षिण के विभिन्न स्थानो के श्री सघ आगामी चातुर्मास के लिये उत्सुक थे। अत. समय और धार्मिक प्रभावना को लक्ष्य में रखते हुए सं० १९८० का चातुर्मास बवई के निकट घाटकोपर मे किया।

इस चातुर्मासकाल में धर्म-प्रभावना के विभिन्न कार्य होने के उपरात सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य जीवदया के निमित्त हुआ। बवई बडा नगर है और वहा के बूचड़खाने मे दुधारु गाय, बैलो का कतल होता था। यह वहा की अहिंसा प्रेमी जनता के लिये एक कलक था। पूज्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० ने इस कुकृत्य की ओर सकेत किया। अत. इन पशुओ को मौत के मुह मे जाने देने से रोकने के लिये जीव-दया खाते की स्थापना करके करीब सवा लाख रुपये का कोष एकत्रित हुआ। वर्तमान मे इसके द्वारा हजारो गाय-भैसो को कसाइयो के हाथो से बचा कर अभयदान का कार्य चल रहा है।

घाटकोपर चातुर्मास समाप्ति के पश्चात बवई के निकटस्थ उपनगरो और नाशिक आदि क्षेत्रो मे विहार करके सन्तो का आषाढ कृष्णा नवमी, स० १९८१ को जलगाव पदार्पण हुआ।

जलगाव के प्रसिद्ध सुश्रावक सेठ श्री लक्ष्मणदासजी श्रीश्रीमाल पूज्य आचार्य श्री जी म० सा० के अत्यन्य भक्तो में से थे और आप चाहते थे कि आचार्य श्री जी जलगाँव पधार कर चातुर्मास करें। इसके लिये काफी समय से विनती कर रहे थे, जिसकी पूर्ति का सुअवसर अब प्राप्त हो सका और स० १९८१ का चातुर्मास जलगांव होना निश्चित

को बुलाया गया और निदान से निश्चय हुआ कि फोड़े का कारण मधुमेह है। फोडे के आप्रेशन के साथ मधुमेह की भी चिकित्सा की गई और संघ के प्रबल पुण्योदय से संवत्सरी तक आचार्य श्रीजी इतने स्वस्थ हो गये कि करीब २० मिनट प्रवचन फरमाया।

शनैः-शनैः आचार्य श्रीजी का स्वास्थ्य प्रगति कर रहा था। अतः तत्काल तो युवाचार्य पदवी प्रदान करने की शीघ्रता नहीं रही थी किन्तु भावी संघ नेतृत्व का बीज बोया जा चुका था और समग्र चतुर्विध संघ को भी आचार्य श्रीजी के विचार ज्ञात हो गये थे। अब तो सिर्फ वैधानिक रूप से घोषणा होने के समय की प्रतीक्षा करना शेष था।

चातुर्मास समाप्ति तक आचार्य श्रीजी के रोगमुक्त शरीर मे इतनी शक्ति आ गई थी कि थोडा बहुत विहार हो सके। अन्नपाचन भी ठीक तरह से हो जाता था। अतः जलगांव के आस-पास के क्षेत्रो मे विचरण करके पुनः स० १९८२ का चातुर्मास जलगाव मे किया। इस चातुर्मासकाल में शारीरिक स्थिति मे समुचित सुधार हुआ और लम्बा विहार होने योग्य शक्ति भी प्राप्त हो चुकी थी। अतः आचार्य श्रीजी म० सा० ने मालवा की ओर विहार करने का विचार किया।

महाभाग मुनिश्री मोतीलाल जी म. सा. आचार्य श्रीजी के साथ ही रहते थे। अब वे काफी वृद्ध हो गये थे और विहार के योग्य शारीरिक शक्ति भी अत्यल्प रह गई थी। अतः उन्होंने जलगांव मे ही स्थिरवास करना उचित समझा। आचार्य श्रीजी म. सा. ने मुनि श्री गणेशलाल जी म. सा. आदि चार सतो को उनकी सेवा मे छोड़कर चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर मालवा की ओर विहार कर दिया।

सेवा के साकार रूप : अभय के अग्रदूत

महाभाग मुनिश्री मोतीलालजी म. सा. की सेवा मे होने से चरितनायक ने स० १९८३ का चातुर्मास जलगाव में किया। प्रतिदिन स्थविर पद विभूषित गुरु श्री की पूर्ण मनोयोग से सेवा-शुश्रूषा करते

हुए शास्त्रीय अभ्यास मे निमग्न रहते और गुरुदेव से प्राप्त ज्ञान को अपनी वाणी द्वारा प्रवचन के रूप मे श्रोताओ को सुनाते। आपकी चारित्र साधना का परिचय तो चतुर्विध सघ को पहले से ही प्राप्त हो गया था और अब प्रवचनो से विद्वत्ता, शैली आदि का भी परिचय मिला।

इन्हीं दिनो मुनिश्री मोतीलाल जी म. सा. काफी अस्वस्थ हो गये। दस्तो की बीमारी थी और शारीरिक स्थिति के अतिक्षीण हो जाने से मानसिक सतुलन भी समुचित रूप मे स्थिर नही रहता था। कभी-कभी वस्त्र भी मल से भर जाते थे। लेकिन चरितनायक पूर्ण मनोयोग से उनकी सेवा करते। मलदूषित वस्त्रो को निर्ग्लानि भाव से स्वच्छ करते। कभी-कभी तो ऐसे अवसर भी आ जाते कि अध बीच मे आहार करना छोडकर उठना पडता था। इस स्थिति मे खेद-खिन्न हो जाना सहज है लेकिन उस समय भी क्षण भर का प्रमाद न करते हुए आप पूर्ववत् अग्लान भाव से रोगी मुनिश्री की सेवा-परिचर्या मे लग जाते थे।

यद्यपि महाभाग मुनिश्री मोतीलाल जी म सा. का अच्छे से-अच्छा उपचार हो रहा था। लेकिन दिनोदिन जीवन की आशा क्षीण होती गई और अन्त मे स० १९८३, फाल्गुन कृष्णा १३ को उनका देहावसान हो गया।

आपने जिस लगन और अध्यवसाय से मुनिश्री की सेवा की थी उसकी तुलना नही की जा सकती है। आपकी सेवा भावना मे अयं निजा परोवेति गणना लघुचेतसां की तरह गुरुजनो के लिये पक्षपात नही था, किन्तु 'उदार चरितानांतु वसुधैव कुटुम्बक के समान सामान्य सन्तो को भी सेवा के सुअवसर प्राप्त थे।

चरितनायक सेवा-वैयावच्च करने के लिये जितने तत्पर थे, उससे भी अधिक उपसर्ग और परिषहो की वेला में स्वय निर्भय और निर्द्वन्द्व रहकर साथी सन्तो को भयमुक्त रखने के लिये भी सन्नद्ध रहते

थे । इसके अनेक उदाहरण आपकी जीवन गाथा मे यत्र-तत्र उपलब्ध है । जिनमें से एक-दो प्रसंगो का यहा उल्लेख कर देना उपयुक्त है—

एक बार चरितनायक सतपुड़ा पर्वत की तलहटियों मे से होकर विहार कर रहे थे । बीच-बीच मे बियावान जंगल पडता था । वनैले हिंसक जानवर शेर, चीते आदि की गर्जना से जंगल बडा भयावना लगता था । उस समय नवयुवा दो विद्यार्थी सन्त श्री श्रीमलजी म. तथा श्री जेठमलजी म. आपके साथ थे । आगे-आगे आप और पीछे दोनो सन्त चल रहे थे । अकस्मात आपकी दृष्टि दो खूंखार शेरों पर पड़ी । सिर्फ चालीस पचास कदम का फासला था । आप तो निर्भय थे । दोनो ओर से आंख आपस में टकराईं । एक ओर तो आंखो में हिंसा का रौद्रभाव झाक रहा था तो दूसरी ओर उन पर भी मैत्री, करुणा और निभयता का अभीवर्षण हो रहा था ।

आपको अपने जीवन का मोह नही था । किन्तु इस स्थिति मे दोनो सन्त भयभीत न हो जायें, अतः उनके निकट आने तक आप ठिठक कर खड़े हो गये । विद्यार्थी सन्तों के निकट आने पर सकेत द्वारा वन राजाओ को दिखलाया ।

कुछ क्षण बीते । मृगेन्द्रो ने महर्षि की महानता को परखा । क्रूरता समता मे रूपान्तरित हो गई । 'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्याग:' के आदर्श को प्रतिफलित करते हुए चरणारविन्दो मे नत-मस्तक होकर वनराजि की ओर वनराजों ने मुख मोड़ लिया कि हे अभय अद्वेष के पथ पर आरूढ़ साधक ! हे मुनि पुंगव ! हे श्रमणोत्तम ! तेरी साधना का दिव्य प्रकाश जन-जन को परम कल्याण की ओर गति-शील रहने के लिये प्रेरणादायक हो, तेरी अविचलता विकासोन्मुखी आत्माओं को विकार के कारण उपस्थित होने पर भी अविचलित रहने की सामर्थ्य प्रदान करे । तू धन्य है, तेरी दृढ़ता धन्य है, तेरा साहस धन्य है और तेरे दर्शन कर हम धन्य हैं, अपने सौभाग्य के लिये गर्व है, कृतार्थ हो गये है और विजित होकर भी गौरवान्वित हैं ।

भवाटवी के भय भी जिन्हे भयभीत नही कर सके, उनके लिये यह वनाटवी का भय कैसे भयभीत कर सकता था ? अतः सहगामी सन्त युगल के साथ विहार के पथ पर बढते चरण पुनः मंथरगति से गतव्य की ओर बढ चले। न तो चहरे पर भय था, न चिन्ता की रेखाये ही ऊभर रही थी और न जीवन रक्षा होने की खुशी ही। वहाँ तो अठखेलिया कर रही थी वीतरागता और समता की अपूर्व प्रभा।

यथा समय विश्राम योग्य स्थान आया और वहाँ रात्रि विश्राम करके धर्मदेशना से जन-जन को मुखरित करने के लिये पुनः बढ़ चले।

किसी एक समय की बात है। चरितनायक सन्तो के साथ मरुधरा मारवाड़ के मैदानो में विचरण कर रहे थे। मरुधरा मे गांव दूर-दूर बसे हुए हैं और पगडडियो का तानाबाना रेत से व्याप्त होने के कारण अधिकतर दिशा-बोध के सहारे ग्राम से ग्रामान्तर जाना पडता है। लोगो ने कहा कि अमुक गाव पास ही है और सूर्यास्त से पहले-पहले वहा पहुंचा जा सकता है। अत. दिन के तीसरे पहर गतव्य गांव की ओर विहार कर दिया। अपरिचित होने से रास्ता भटक गये और रास्ता भी लम्बा था। इसलिये आधी दूर पहुंचते-पहुंचते सूर्यास्त होगया।

सूर्यास्त के बाद विहार न होने की साधुमर्यादा है अतः सन्तों के साथ एक पेड के नीचे विश्राम हेतु विराज गये। सायंकालीन प्रतिक्रमण आदि करके आत्मध्यान में लीन हो गये। ध्यानोपरांत तात्विक चर्चा मे कुछ समय व्यतीत करने के बाद मार्गजनित शारीरिक थकावट दूर करने के लिये भूशयन किया ही था कि कुछ ऐसी आवाज सुनाई दी, जैसे निकट सर्प हो। सोचा जंगल है, इधर-उधर कोई जगली जानवर होंगे। पास में अन्य सन्त शयन कर रहे थे अत. उन पर दृष्टि डालकर कपड़े आदि ठीक से ओढा दिये और आप श्री भी चद्दर को ओढ कर पौढ गये।

शयनावस्था मे कुछ क्षण ही बीते होंगे कि पैरों पर कुछ वजन-सा मालूम हुआ। ऊपर ओढी चद्दर को कुछ हिलाया जिससे वह वजन

छूट गया और निश्चिन्त होकर सो गये और प्रतिदिन की तरह रात्रि के पिछले प्रहर में जागकर स्वाध्याय आदि साधना में रत हो गये। यथा-समय दूसरे सन्त भी जागे और उन्होंने भी स्वाध्याय, प्रतिक्रमण आदि किया।

सूर्योदय होने मे विलम्ब था। प्रतिक्रमण, वदना आदि करने के पश्चात सब सन्त यथा-स्थान आपके समक्ष बैठकर अध्ययन करने लगे। यह सब करते हुए भी किसी को यह प्रतीत ही नही हुआ कि कोई सर्पराज भी निकट मे स्थित है। स्वनिरीक्षण मे रत को परनिरीक्षण के लिये अवकाश मिलना असम्भव रहता है।

जैसे ही सूर्योदय हुआ कि समीपस्थ सर्प पर आपकी दृष्टि गई। अन्य सन्तो को भी उसकी ओर देखने के लिये संकेत किया। सर्प अपनी कुण्डली मारे ध्यानस्थ-सा बैठा था। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि साधना मे रत साधुओ के सहवास से वह भी आत्म-समाधिस्थ होने की शिक्षा ले रहा है। आपश्री आदि सन्त प्रतिलेखना को तैयार हुए और वह सन्तो का सत्वपरीक्षक करालकाल वहां से रेंगता हुआ अपने बिल की ओर चल दिया। शायद उस समय उसके मन में विचार आया हो कि—

स्व पर-हितकारी, परदुख-कातर, मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थ भावना से समृद्ध सन्त-जन 'सर्वभूत हितेन्तः' के साकार रूप है तो उन्हें सता कर कौन अपने को कलंकित करना चाहेगा ?

ऐसे ही और इनसे मिलते-जुलते प्रसग अनेक हैं। जिन प्रसगों का यहा उल्लेख किया है, उनसे ही आपकी सेवा-भावना, सरलता, सहन-शीलता, निर्भयता और आत्मीयता का दिग्दर्शन पर्याप्त रूप से हो जाता है। सक्षेप मे कहे तो आप अपनी कर्तव्यनिष्ठा और सजगता की उपमा आप स्वय ही हैं।

पुनः गुरुदेव के सान्निध्य में

महाभाग मुनिश्री मोतीलाल जी म० सा० स्वर्गस्थ होने के

पश्चात चरितनायक अपने अन्य तीन सन्तो के साथ जलगांव से विहार करके आचार्य श्रीजी म० सा० की सेवा मे उपस्थित हो गये और आचार्य श्रीजी के साथ ही स० १९८४ का चातुर्मास भीनासर-गगाशहर मे किया ।

यह चातुर्मास श्री वाडीलाल मोतीलाल शाह की अध्यक्षता मे श्री अ० भा० श्वे० स्थानकवासी जैन कान्फरन्स और भारत जैन महा-मण्डल के अधिवेशन एव श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था की स्थापना होने से समाज के इतिहास में तो उल्लेखनीय है ही, किन्तु उसके साथ ही भारत के स्वाधीनता के इतिहास मे भी स्वर्णाक्षरो में अकित किया जायेगा ।

उन दिनो भारत को स्वतन्त्रता देने के बारे मे निर्णय करने हेतु लदन मे भारतीय और इगलेड के प्रतिनिधियो के बीच गोलमेज परिषद होने जा रही थी । उसमे भाग लेने के लिये भारतीय प्रतिनिधि मडल के एक सदस्य के रूप मे तत्कालीन बीकानेर राज्य के प्रधान-मन्त्री सर मनुभाई मेहता लदन जा रहे थे । वे आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा. के दर्शनार्थ एवं भारतीय जन-भावना की सफलता के लिये आशीर्वादात्मक दो बोल सुनने के लिये पधारे । उस समय आचार्य श्रीजी ने उन्हे जो उपदेश दिया था उसमे आपश्री की राष्ट्रहित एवं जनता की भावना का स्पष्ट चित्र अंकित था कि कैसा भी अवसर हो किन्तु सत्य को सत्य कहने से न झिझके । स्वतन्त्रता और धर्म एक दूसरे से जुडे हुए हैं । पराधीन और अत्याचार पीड़ित प्रजा मे यथार्थ धर्म का विकास नही हो सकता है । धार्मिक और आध्यात्मिक विकास के लिये स्वतन्त्रता अनिवार्य है ।

आचार्य श्रीजी के उक्त कथन में भारतीय आत्मा का समवेत स्वर गूंज रहा था कि सुख और शान्ति प्राप्ति के लिये स्वतन्त्र हो जाओ । परतन्त्र प्राणी न तो सुख प्राप्त करने में समर्थ हैं और न प्राप्त का उपभोग करने के अधिकारी हैं ।

यह स्मरणीय चातुर्मास अनेक धार्मिक, सामाजिक और आध्यात्मिक विकास के कार्यों के साथ सोत्साह सम्पन्न हुआ।

थलीप्रदेश में

थली तेरहपंथियों की रंगस्थली है। वे इसे अपना अभेद्य दुर्ग मानते थे। वे अपने स्वच्छन्द, धर्मविरुद्ध विचारों को धर्म के नाम पर प्रचार-प्रसार करने का इससे अच्छा और दूसरा क्षेत्र नहीं समझते थे। यहां की भोली-भाली जनता धर्म विरुद्ध बातों को सुनते-सुनते धर्म के शाश्वत सत्य से विमुख-सी हो गई थी। उसकी विवेक बुद्धि सत्यासत्य का निर्णय करने में कुण्ठित-सी होकर सोचती थी कि साधु महाराज जो कुछ भी कह रहे हैं, वैसा ही भगवान महावीर ने जीव-दया आदि के बारे में फरमाया है। अपने को तो साधुजी के वचनों को प्रमाण मान लेना चाहिये।

आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० उनके इस अंध विश्वास को देखकर चकित रह जाते थे। आपश्री को इन भाव रोग से पीड़ितों पर दया आती थी और वास्तविकता से परिचित कराने की सद्भावना रखते थे। इसके साथ ही यह भी प्रतीत हो चुका था कि इस किले में प्रवेश करने पर विविध प्रकार की कठिनाइयों और परिषहों को सहना पड़ेगा लेकिन जब भगवान महावीर ने कठिनाइयों और परिषहों से अपना मार्ग न बदला तो उनके अनुगामी मार्ग-विरत कैसे हो सकते थे। अतः जन-कल्याण की कामना से प्रेरित होकर आचार्य श्रीजी ने थलीप्रदेश में प्रवेश करने का निश्चय कर मार्गशीर्ष शुक्ला ३ को चरितनायक आदि प्रमुख-प्रमुख २६ सन्तों के साथ चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर बीकानेर से थली की ओर विहार कर दिया।

आचार्यप्रवर श्री जवाहरलालजी म० सा० का व्यक्तित्व अनूठा था, दिव्य था। उनकी प्रतिभा असाधारण थी। हृदय को आप्लावित करने वाली ओजस्विता और तर्क की सूक्ष्मताओं ने प्रतिपाद्य विषय को साकार तस्वीर अंकित कर देने वाली वाणी के वे धनी थे।

आपश्री ने वैसे तो राजस्थान और मालव के विभिन्न क्षेत्रों को अपने विहार से पावन किया था। लेकिन राजस्थान का यह भू-भाग अभी तक भी जैनधर्म के यथार्थ सिद्धान्तो का प्रचार-प्रसार करने वाले सन्तो के चरणन्यास से वचित था और जैनधर्म के नाम पर शास्त्र-विरुद्ध मान्यताओं के अनुयायी भी वहां विचरण करने वाले वीतरागी सन्तो को सहन नही करते हैं।

यद्यपि थलीप्रदेश अनार्य देश नही है, तथापि वहां के बहु-सख्यक अपने को भगवान महावीर का अनुयायी कहने में गौरव मानते हुए भी दया, दान, परोपकार, परसेवा आदि भगवान महावीर के सिद्धान्तो में अधर्म मानते हैं। पूज्यश्री इन्ही मान्यताओ एव मानवता के लिये कलक रूप विचारो का उन्मूलन करना चाहते थे। अतः भगवान महावीर के विहार से प्रेरणा लेकर आपश्री ने सन्त-मण्डली सहित थलीप्रदेश के मुख्य नगर सरदारशहर मे पदार्पण किया।

सरदारशहर में आपश्री के प्रभावशाली प्रवचनो एव दया, दान, सेवा, परोपकार आदि के सम्बन्ध मे भगवान महावीर के सिद्धान्तो की यथार्थ जानकारी देने से जनता मे बहुत ही सुन्दर अनुकूल प्रतिक्रिया हुई और शास्त्रविरुद्ध मान्यताओ के भ्रम से मुक्ति पाकर, धर्म के सच्चे स्वरूप को समझकर बहुत से सज्जनो ने समकित ग्रहण की।

पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म॰ सा॰ आदि सन्तो के सरदारशहर पधारने से तेरहपथियो मे खलबली मच गई थी और प्रतिरोध करने की अनेक योजनायें बनाई जाने लगी। मगर खेद है कि उनमे से एक भी ऐसी नही थी जो सफल हुई हो और जिसका सभ्य ससार द्वारा अनुमोदन किया जा सके।

साधु जीवन मे आर्थिक या राजनीतिक सकटो के लिये कोई अवकाश नही है। लेकिन कभी-कभी विपरीत मनोवृत्ति वाले अज्ञानी लोगो का जमघट अवश्य आत्म-समाधि मे विघ्न, विक्षेप और व्याघात उपस्थित कर देता है।

उन दिनों तेरहपथी संप्रदाय के पूज्य कालूराम जी स्वामी भी सरदारशहर में मौजूद थे । उन्हें आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० के ओजस्वी प्रवचनों से अपनी प्रतिष्ठाहानि का भय दिखा और येन-केन-प्रकारेण आचार्य श्रीजी को परेशान करके मैदान मारने का रास्ता अपनाया । लेकिन प्रयास करने पर भी उन्हे सफलता न मिली और न्यायात् पथः प्रवचलन्ति पद न धीराः, धीरवीर न्याय मार्ग से विचलित नही होते हैं— की उक्ति के अनुसार आचार्य श्रीजी विरोध को विनोद मानते हुए सद्धर्मदेशना के मार्ग पर अग्रसर ही रहे ।

तेरहपथी सरदारो के शहर सरदारशहर को सर करने के पश्चात पूज्य आचार्य श्रीजी चूरू पधारे । किन्तु चूरू पदार्पण के पूर्व ही आपश्री की कीर्ति वहां पहुच चुकी थी । जब अपनी शिष्य मण्डली के सहित आप नगर के निकट पहुंचे तो जनता ने भक्ति-भावपूर्वक अगवानी करके समारोह नगर प्रवेश कराया । उन दिनों वहा तेरहपथियो के माघ महोत्सव की तैयारियां हो रही थीं । सैकड़ों साधु-साध्विया और हजारो अनुयायी एकत्रित हो रहे थे । यद्यपि वहां भी अनेक प्रकार से उपद्रव करने की चेष्टायें की गई किन्तु वे सभी प्रयत्न और चेष्टायें विफल एवं निरर्थक सिद्ध हुई ।

चूरू नगर मे आचार्य श्रीजी की ओजस्वी वाणी का गम्भीर प्रभाव पड़ा । बहुत से भाई शका समाधान करने के लिये सेवा में उपस्थित होते थे और आचार्य श्रीजी आगम प्रमाणों के साथ उनका सयुक्तिक समाधान करते थे । परिणामत. बहुत से सज्जन शुद्ध श्रद्धा धारण कर आपश्री के अनुयायी बन गये ।

प्रथम स्वतन्त्र चातुर्मास

एक दिन तात्त्विक चर्चा-विचारणा के बीच चूरू के कतिपय विचारक और धर्म-प्रेमी प्रमुख-प्रमुख भाइयों ने आचार्य श्रीजी से चूरू में आगामी चातुर्मास करने की प्रार्थना की । किन्तु आचार्य श्रीजी समग्र थली प्रदेश में विहार करने के पश्चात किसी ऐसे स्थान पर चातु-

र्मास करना उचित समझते थे जहां धार्मिक दृष्टि से विशेष उपकार होने की सम्भावना हो। अतः वहां के भाइयों की विनती तत्काल स्वीकार न कर सके।

तब उन भाइयों ने अपनी मनोभावना व्यक्त की कि आपको यह तो भली-भांति विदित है कि हमारे घर मे भी हमारा कोई समर्थक नही है। लोग हमारा विरोध करने पर तुले हुए हैं और आपने सभी स्थिति परखी ही है। ऐसी स्थिति मे आपकी तपस्या ही सफलता का रंग ला सकती है। अतः कदाचित आपका चातुर्मास होना सम्भव न हो तो अपने जैसे प्रभावशाली सन्तों का चातुर्मास कराने की आज्ञा दीजिये।

चूरू मे धर्म-जिज्ञासुओं की अपेक्षा निष्कारण वैर बांधने वालो की सख्या अधिक थी और वे नही चाहते थे कि जनता को जैनधर्म के सिद्धान्तों की यथार्थता से परिचित कराने वाले साधु-सन्तो का यहा चातुर्मास हो। वहां अत्यन्त प्रतिभाशाली और शास्त्रज्ञ साधु ही निभ सकता था। अतएव उनके कथन पर गम्भीरता से विचार करते हुए आचार्य श्रीजी की दृष्टि चरितनायक मुनिश्री गणेशलाल जी म० सा० पर गई और विद्वत्ता, शास्त्रीयज्ञान आदि की प्रौढ़ता को लक्ष्य मे रखते हुए चरितनायक जी को चूरू मे चातुर्मास करने की आज्ञा फरमाई। इस स्वीकृति से चूरूवासियो को मनचाही मुराद मिल गई थी और उनके हर्ष का पारावार न रहा।

चरितनायक जी तो गुरोराज्ञा बलीयसी अपने जीवन का मूलमन्त्र मानते थे और बिना ननुनच किये अगीकार करने मे गौरव समझते थे। अतः आचार्य श्रीजी के आदेश को सहर्ष शिरोधार्य कर लिया।

चातुर्मासकाल मे चरितनायक जी की विद्वत्ता, तर्कशक्ति, सरलता आदि अनेक सद्गुणो से जनता परिचित हुई। मध्यस्थ जनता ने आपकी महत्ता को समझा। प्रतिदिन हजारो श्रोता आपके तात्त्विक एव तर्कपूर्ण प्रवचनो का लाभ उठाते थे। आप प्रवचन मे शास्त्रीय प्रमाणों एवं मानवीय भावो का विवेचन करते हुए दया-दान के महत्त्व पर

प्रकाश डालते थे और जब मध्याह्न में अनेक तत्त्व-जिज्ञासु भाई एवं विद्वज्जन अपनी शंकाओं का समाधान प्राप्त करने के लिये आते तो आपश्री उनके विचारो का प्रमाण पुरस्सर समाधान करते थे। परिणामत. जिज्ञासु व्यक्ति आपके भक्त बनते गये।

धर्मामृत की वर्षा से चूरू की जनता ने चरितनायक जी को अपने मन-मन्दिर मे आराध्यदेव की तरह प्रतिष्ठित कर लिया था और प्राय. समस्त नगरवासी प्यार और श्रद्धा भरे शब्द 'गणेशनारायण' से सम्बोधित करती थी।

इस चातुर्मास का दो दृष्टियों से महत्त्व है। प्रथम, चरितनायक जी ने स्वतन्त्र रूप से चातुर्मास करने का और द्वितीय, अन्धश्रद्धा एव भ्रांतिपूर्ण विचारो से ग्रस्त महानुभावो ने धर्म का यथार्थ बोध प्राप्त करने का श्रीगणेश किया था। परिणामतः सवत्सरी के दिन चूरू नगर मे लगभग ३५० उपवास, पौषध, दया, सामायिक आदि धर्म क्रियायें गृहस्थों ने की थी। इसके बाद तो यह धर्माचार की धारा वृद्धिगत ही होती रही और चरितनायक जी निस्पृह हो तात्त्विक जानकारी देते हुए आध्यात्मिक आनन्द के हिंडोलो मे झूलते रहते थे। शरीर के प्रति भी उतने ही उदासीन थे जितने ऐहिक भोगो के प्रति। इस सम्बन्ध मे एक मनोरजक घटना उल्लेखनीय है।

निस्पृह शास्ता

मोठ, बाजरा, ग्वार थली प्रदेश का मुख्य भोजन है। चूरू की जनता अपने गणेशनारायण को यह भोजन बड़े प्रेम से देती पर घी, दूध, दही संकोचवश नहीं दे पाती कि कहीं महात्माजी नाराज न हो जावें। भक्तगण अपने संकोच से कुछ कह भी नहीं पाते और इधर महात्माजी थे जो मोठ, बाजरी, ग्वार मे [illegible] भरते हुए जनता को अमृतपान कराते रहते थे।

महात्मा जी तो संतुष्ट थे, मगर शरीर, वह तो आखिर था— मूर्ख — ठहरा। [illegible] रस में पगे हुए अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति

कैसे हो सकती थी ? जड़ मे विवेक हो तो वह भी समझे। वह तो अपने स्वार्थ को ही परखता है। अतः इस नीरस भोजन को पाकर रूठ गया। उसने असहयोग का अस्त्र संभाला। मानो चुनौती दे दी कि आप जब मेरी परवाह नही करते तो मुझे भी क्या पड़ी है जो मैं अपना सहयोग देता रहूँ। काया कृश हो गई, नेत्रों की ज्योति भी मद पड़ गई। किन्तु इस शारीरिक असहयोग से मन कृश नही हुआ। अन्तर् मे निर्बलता नही आई बल्कि आत्मिक तेज और अधिक जाज्वल्यमान हो उठा।

सफलता के साथ चातुर्मास समाप्त हुआ और विहार का समय आ पहुचा। सन्तो ने विहार के लिये पग बढ़ाये कि दृश्य कारुणिक हो उठा। जनता ने उमड़ते हृदय और अश्रुपूरित आखो से विदाई दी। सैकडो की सख्या मे जनता अपने गणेशनारायण के साथ चल पडी।

चूरू से विहार करते हुए चरितनायक जी आदि सत आचार्य देव के चरणो मे पधारे। आचार्य श्रीजी ने चातुर्मास सम्बन्धी समाचारो के प्रसग में शारीरिक कृशता और नेत्र-ज्योति की मदता का कारण भी पूछा। बात दूसरो ने भी सुनी और उडती-उडती चूरू जा पहुंची। जिसे सुनकर वहा के निवासी अपने आप मे अफसोस करने लगे और उससे भी जब उन्हे सन्तोष नही हुआ तो प्रतिनिधिमण्डल बनाकर आप व आचार्य श्रीजी की सेवा मे उपस्थित हुए।

प्रतिनिधिमण्डल ने क्षमायाचना करते हुए पश्चाताप के स्वर मे अपनी अजानकारी के लिये आपको उपालभ-सा देते हुए कहा—भगवन् ! चार माह तक आत्मोत्थान के लिये धर्म का सरल, सीधा मार्ग बतलाया, लौकिक जीवन मे धर्म सिद्धान्तो की उपयोगिता आदि बहुत-सी बाते समझाई तो एक बात और समझा दी होती। थोड़ा सा सकेत भी तो नही मिल पाया कही से और हम भी सकोचवश अपने आप कुछ सोच-समझ न सके। हमारी न समझी का प्रायश्चित्त आपने किया। यह आपकी लोकोत्तार उदारता है, किन्तु हमारे सताप की सीमा नही है। आपको जो कष्ट उठाना पड़ा है, वास्तव मे हम ही उसके

लिये उत्तरदायी हैं। हमें हमारे प्रमाद के लिये शुद्धि का मार्ग बतलाइये, जिससे कुछ सन्तोष मिले।

चरितनायक जी तो चूरू निवासियों के अध्यात्मिक उत्साह, जिज्ञासा और धार्मिक स्नेहसुधा का पान करके परितृप्त थे। अतः उन्होंने प्रतिनिधि मण्डल को इन बातो की ओर ध्यान न देते हुए उत्तरोत्तर आध्यात्मिक विकास की ओर बढते रहने के लिये समझाया।

लेकिन इन भावों से उन भोले भक्तो का समाधान हुआ या नहीं, किन्तु इतना अवश्य मालूम है कि चूरू की जनता अपने गणेशनारायण को नही भुला सकी है और उनके हृदयो मे अनेक स्मृतियां आज भी जैसी की तैसी बनी हुई हैं।

पुनः चूरू मे चातुर्मास

चूरू निवासियों की तीव्र आकांक्षा थी कि पुनः लाभ प्राप्ति का मौका मिले। अतः उन्होंने आचार्य श्रीजी की सेवा मे चूरू मे चातुर्मास करने की अपनी विनती दुहराई। आचार्य श्रीजी समयज्ञ थे। आपश्री ने द्रव्य, क्षेत्र आदि की परिस्थिति को समझकर स० १९८६ का चातुर्मास चूरू करने की स्वीकृति फरमा दी।

आचार्य श्रीजी ने चरितनायक जी आदि सत-मुनिराजों के साथ चातुर्मासार्थ चूरू मे पदार्पण किया। गत वर्ष के चातुर्मास समय मे चूरू-निवासियो ने चरितनायक जी के प्रवचनों से चुन-चुनकर अनेक आध्यात्मिक-आदर्शों को आत्मसात किया था और चरितनायक जी द्वारा बोये गये धर्म-श्रद्धा के बीज आचार्य श्रीजी के वाणीवारिदों की वर्षा से पल्लवित हो उठे। धनतेरस के दिन नगर के अग्रणी और तेरहपंथी समाज के प्रतिष्ठित सज्जन श्री भूमचन्द जी कोठारी ने पूज्य श्रीजी से श्रद्धा ग्रहण कर ली। इस अवसर पर आपने घोषित किया कि मैं सत्य को समझकर यह श्रद्धा ग्रहण कर रहा हूँ। जैनधर्म के सिद्धान्त मानवता का विकास करते हैं। इनमें किसी भी जीवों के प्रति करुणा-दया न करने और दान न देने का उल्लेख नहीं है। इस विषय में मुझे लेशमात्र भी संशय

नही है । हाँ अगर किसी को संदेह हो तो पूज्य आचार्यश्री जवाहरलाल जी म० सा० के सान्निध्य मे आकर शास्त्रार्थ कर लें । अगर मेरा पक्ष पराजित हुआ तो मैं एक लाख रुपये गोशाला के निमित्त दान दूंगा और यदि तेरहपथी पक्ष पराजित हो जाये तो भले ही वह कुछ न दे । लेकिन किसी ने भी इस चुनौती को स्वीकार करने का साहस नही दिखलाया ।

उल्लास पूर्ण वातावरण मे यह प्रभावक चातुर्मास पूर्ण हुआ । मगसिर कृष्णा १ को विहार कर थली के विभिन्न क्षेत्रो को स्पर्श करते हुए आचार्य श्रीजी म० सा० आदि सत-मुनिराज सुजानगढ पधारे । उन दिनो वहां तेरहपथी सप्रदाय के पूज्य श्री कालूराम जी स्वामी विराजते थे और माघ महोत्सव की तैयारिया चल रही थी । उपस्थित जनता ने आचार्य श्रीजी एवं चरितनायक के प्रवचनो का लाभ उठाया और क्रम-क्रम से छापर, पड़िहारा, रतनगढ़, राजलदेसर आदि थली के विभिन्न क्षेत्रो को अपने विहार से पवित्र किया । थली प्रदेश मे दो वर्ष तक सन्तो का विहार होने से वहा के निवासियो ने अनेक गलतफहमियो और भ्रात धारणाओ का निराकरण करके जैनधर्म के सिद्धान्तो का सही रूप समझा ।

इन्ही दिनो स्थविर तपस्वी मुनिश्री बालचन्द जी म० सा० भीनासर विराज रहे थे । आप काफी दिनो से अस्वस्थ थे । आपकी भावना आचार्य श्रीजी म० सा० के दर्शन करने की थी । इस भावना को जानकर आचार्य श्रीजी म० सा० मार्ग मे पडने वाले थली प्रदेश के गावो को फ़रसते हुए भीनासर पधारे और तपस्वी जी म० सा० को दर्शन दिये । तपस्वी जी म० सा० की शारीरिक स्थिति दिनोदिन निर्बल बनती जा रही थी और उन्होंने जेष्ठ कृष्णा ४ को रात्रि के करीब ६ बजे इस भौतिक देह का परित्याग कर दिया ।

ब्यावर की ओर

साधु सन्तों की ज्ञानमयी वाणी के श्रवण के लिये जनसाधारण

में एक अनूठी लालसा रहती है । लेकिन सन्तों का पैदल विहार होने से अल्पसमय मे सभी स्थानों पर पदार्पण होना सम्भव नहीं है । समयानुसार जिस किसी भी क्षेत्र मे उनका पदार्पण हो जाता है तो वहा की जनता अपना अहोभाग्य मानती है ।

थली प्रदेश में पूज्य आचार्य श्रीजी म० सा० आदि सन्तो के विहार के पहले से ही बीकानेर श्री सघ अपने यहा चातुर्मास करने के लिये विनती करता आ रहा था । अतः सन्तो के पदार्पण होते ही श्री संघ को अपनी आशा के सफल होने के आसार दिखाई देने लगे और अपनी विनती को दुहराया । जिस पर आचार्य श्रीजी म० सा० ने आगामी चातुर्मास बीकानेर में करने की स्वीकृति फरमाई ।

ब्यावर श्रावक सघ भी अपने यहां आचार्य श्रीजी का चातुर्मास कराने के लिये लालायित था और आचार्य श्रीजी भी वहां पर योग्य सन्तों के चातुर्मास होने की आवश्यकता अनुभव कर रहे थे । अतः परिस्थिति को देखकर एवं चूरू चातुर्मास की सफलता से सतुष्ट होकर आचार्य श्रीजी म सा. ने चरितनायक जी का ब्यावर चातुर्मास होने की स्वीकृति दे दी ।

इस स्वीकृति से ब्यावर संघ बहुत ही प्रमुदित हुआ और जैसे-जैसे चातुर्मास का समय निकट आता जा रहा था, वैसे-वैसे आपश्री के पदार्पण की बाट देखी जाने लगी ।

यथासमय चातुर्मास हेतु चरितनायक जी ने अन्य मुनिराजो के साथ ब्यावर नगर में पदार्पण किया । जनता ने बड़े उत्साह एवं समारोह के साथ स्वागत किया । आपके प्रवचनो और विद्वत्ता से जनता बहुत ही प्रभावित हुई और साध्वाचार के अनुसार चर्या की महानता के दर्शन किये । तात्त्विक-चर्चा और शंका-समाधान के समय आपके पांडित्य और सीधी, सरल भाषा में सत्य तथ्यों को स्पष्ट करने की अनोखी शैली जहां जनसाधारण को प्रभावित करती थी वहीं विद्वानों को विद्वत्ता परखने का भी मौका देती थी ।

चातुर्मास आशातीत सफलता के साथ संपन्न हुआ । ब्यावर सघ वैसे भी धार्मिक आचार-विचारो के प्रति श्रद्धावान सघ है लेकिन इस चातुर्मास काल मे ज्ञान-साधना के साथ-साथ अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने एकान्तर, वेला, तेला, अठाई, मासखमण आदि करके तप-साधना की प्रभावना की । विभिन्न लोककल्याणकारी कार्यों के निमित्त दान देने मे तो सभी तत्पर ही रहते थे ।

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात आप राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रो को अपनी ज्ञानगगा के प्रवाह से हरा-भरा बनाने लगे । आप जिस क्षेत्र मे पदार्पण करते, उससे पहले ही आपकी कीर्ति वहाँ पहुंच जाती थी और भव्यजन आपके उपदेशो का पान करने के लिये उत्सुक रहते थे । आप जहाँ भी पधारते, वही एक अनूठे वातावरण के दर्शन होते थे । किसी से कुछ लेने की आकाक्षा तो थी नही जिससे राग-द्वेष पैदा हो । सन्तो का उद्देश्य तो निरीहवृत्ति से ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए स्वय सन्मार्ग पर चलना और दूसरो को भी उसी मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हुए आध्यात्मिक विकास करना है । इसी मे साधु की साधना का आदर्श प्रगट होता है ।

पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० आदि सन्त बीकानेर चातुर्मास समाप्ति के पश्चात पुन थली प्रदेश के सरदारशहर, रतनगढ आदि-आदि मुख्य-मुख्य नगरों मे धर्मदेशना देते हुए पजाब की ओर पधार गये और राजस्थान चरितनायक जी की विहार-भूमि वन गया ।

अहिसा-मैत्री के प्रतिष्ठापक

राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रो मे श्रमण-सस्कृति का सदेश मुखरित करते हुए चरितनायक जी ने थलीप्रदेश मे पुन. पदार्पण किया । थली के भव्यजन आपकी ज्ञानदेशना का अधिकाधिक सख्या में लाभ उठाते थे । अपने-अपने क्षेत्र मे पदार्पण के लिये विनतियां करते और आपश्री भी समयानुसार सभी प्रदेशो को स्पर्श करने की भावना रखते थे । इन्ही दिनो फलौदी सघ आपके चातुर्मास के लिये विनती कर रहा था ।

अतः सं० १९८८ के चातुर्मास हेतु फलोदी की ओर विहार कर दिया।

विहार मार्ग मे एक ग्राम ऐसा भी आया जहां माता के स्थान पर अन्धश्रद्धा के वशीभूत होकर धर्म के नाम पर अनेक मूक पशुओं की बलि होती थी। धर्म के नाम पर होने वाली इस हिंसा और जनसाधारण की भावना से आपका हृदय द्रवित हो गया। जहां हत्या का ऐसा तांडव नृत्य होता हो और निर्दयता का वास हो वहां सन्त पुरुषों को शान्ति नही मिल सकती है। उनका हृदय गद्गद हो जाता है। प्राणिमात्र मे मैत्री, करुणा, दया भावना को विकसित देखने वाले ऐसे क्रूर कृत्यों को देखकर खेद-खिन्न हो तो इसमें कोई आश्चर्य नही है।

चरितनायक जी मानवता के चितेरे थे और हृदय मानवीय भावनाओं से ओत-प्रोत था। आपसे यह दृश्य— मूक पशुओं का कष्ट— देखा नही गया। उनकी यह दुर्दशा देख आप विचारने लगे कि मनुष्य— सृष्टि का राजा— इतना घोर स्वार्थी है। उसके विवेक और बुद्धि का क्या यही सही उपयोग है? यह मूर्खता जिसमें भरी हुई है, वह मनुष्य राक्षस से किस बात में कम है?

बलि के नाम पर मारे जाने वाले इन मूक पशुओ की रक्षा के लिये आपका हृदय उमड पडा और शक्य उपाय सोचने लगे। अत. अन्धश्रद्धालुजनों के बीच आपने अहिंसा धर्म पर प्रवचन फरमाते हुए बतलाया कि प्रभु की जय इसलिये कहते है कि हम उसके प्रति वफादार बन सकें। प्रभु के प्रति वफादारी का अर्थ है कि निश्छल साधना की जाये और इस साधना का प्रमुख रूप है कि इस सृष्टि मे हम समानता की स्थिति पैदा करें। फिर यह भेदभाव और विषमता क्यों? अतः परमात्मा की जय बोलते हुए इस सृष्टि में उसके प्रति वफादार रहने का एक ही मार्ग है और वह है अहिंसा का मार्ग। इसीलिये सभी धर्मों में 'अहिंसा परमो धर्मः' अहिंसा को सर्व श्रेष्ठ धर्म कहा है। अहिंसा को सभी धर्म मान्यता देते हैं। जैनधर्म मान्यता ही नही देता किन्तु घोषित करता है कि 'जयं चरे, जयं चिट्ठे .....' इस मार्ग इतनी

यतना से होना चाहिये कि वह किसी भी प्राणी को तनिक-सा भी क्लेश देने वाला न हो ।

अतएव मेरा आप लोगो से कहना है कि यदि आप अपने आपको परमात्मा का वफादार सेवक बनाना चाहते हैं तो समग्र रूप से अहिंसा का पालन कीजिये । अहिंसा ही वह सशक्त साधन है जिसके द्वारा आत्म-समानता यानी परमात्म-वृत्ति के साध्य को साधा जा सकता है ।

इसी प्रसग में हिंसा से प्राप्त होने वाले दुःखों और अहिंसा से मिलने वाले सुखो का विशद वर्णन करते हुए बतलाया कि विश्व का प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है । आप लोग जो कुछ भी करने आते हैं, वह सुख के लिये ही करते हैं । लेकिन सुख की प्राप्ति दूसरे को नाश करके नही हो सकती है । मृत्यु किसी को भी प्रिय नही है, सभी जीवित रहना चाहते हैं । आप इन मूक प्राणियो की आखो में देखो । वे आपसे अभय चाहते हैं । उन्हें जीने की इच्छा है और इसीलिये बलि की वेदी पर चढ़ने की अपेक्षा पीछे हटने के लिये छटपटाते हैं । उनकी सिहरन हृदय को झकझोर देती है । यदि आपको सुख चाहना है तो दूसरो को भी सुख पहुंचाओ । आम का फल बोने से आम पैदा होगा, न कि बबूल के बोने से ।

यह तो आप जानते हैं कि देवी सबकी माता है । माता वात्सल्य, प्रेम की दायिनी है । वह अपने पुत्रो मे किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करती । उसकी गोद मे सभी को एक-सा स्थान प्राप्त है । वह अपनी अमीदृष्टि से सभी को सराबोर करने मे ही सुख अनुभव करती है । अतः आप लोग माता के कुछ एक पुत्रो को उसी के नाम पर मार कर उसके विरुद को कलकित मत करो । इस कार्य से उसे दुःख होता है । आप मातृ-भक्त हैं, इसलिये जिस कार्य से उसे सुख मिले वैसा कार्य करने का ध्यान रखें ।

आपके उपदेशामृत का जनता पर गहरा प्रभाव पड़ा । बलि देने के लिये आने वालो के हृदय करुणा से आप्लावित हो उठे । धर्म

की यथार्थता ज्ञात होते ही सरल परिणामी अपने कृत्य पर पश्चाताप करने लगे । मन का मैल आखों के द्वारे झर-झर झरने लगा । हृदय ने कुछ हलकापन अनुभव किया और अपने आप में शांति पाकर तत्काल मूक पशुओ की हत्या करने का विचार त्याग दिया और जीवन पर्यन्त के लिये प्रतिज्ञा कर ली कि ऐसा कुकृत्य न तो हम करेंगे और न दूसरे को भी करने देंगे ।

सन्तों का माहात्म्य अपूर्व है । उनका एक बोल पत्थर को भी पिघला देता है । दुर्दान्त-से-दुदान्त और क्रूर-से-क्रूर प्राणी भी दृष्टि-निपातमात्र से शात और सरल हो जाते हैं । एकक्षण पहले जिस धर्म-स्थान मे रौरवता का नंगा नृत्य होने वाला था वहा क्षणमात्र मे दया, अमारि की सुखद लहरे हिलोरें लेने लगी । अहिंसा की घोषणा से देवी का जगज्जननी नाम सार्थक हो गया ।

वहा से विहार कर क्रमशः अनेक स्थानों को पदार्पण से पवित्र कर जब आप तीवरी पधारे, तब तीवरी आपस के वैर-विरोध से तीन तेरह हो रहा था । वैर-विरोध में समस्त ग्रामवासी रचे-पचे हुए थे । वहा के अग्रवाल, ओसवाल, माहेश्वरी, ब्राह्मण आदि विभिन्न जातीय सज्जनों में किसी सामाजिक विषय को लेकर पारस्परिक सघर्ष चल रहा था । प्रत्येक, एक दूसरे को नीचा दिखाने की ताक मे रहता था और मौका मिलने पर अपनी ज्वाला को शांत करने से नही चूकता था । सभी एक दूसरे की जान के गाहक बने थे और इसी सघर्ष को लेकर हजारों रुपयो का पानी कर चुके थे ।

ऐसे समय मे चरित्तनायक जी का पदार्पण तीवरी के लिये वर-दान सिद्ध हुआ । आपने आपस का यह वैमनस्य मिटाने के लिये उपदेश देना प्रारम्भ किया । जिससे निवासियों के हृदयों मे ऋजुता का संचार हुआ और मान की कटुता शनैः-शनैः घटने लगी । दृष्टि के पलटते ही निवासियों को अपने किये पर पश्चाताप होने लगा । लोगो के हृदय शात और निस्ताप हो गये । उनके हृदयों में एक हूक उठी

कि क्या अपनो से ही विरोध करना हमे शोभा देता है ? एक ही भूमि मे खेले हैं, कूदे हैं और बड़े हुए है और उसी को कुरुक्षेत्र बनाना हमारे लिये लज्जा की बात है। सोचते-सोचते सभी एक निर्णय पर आये कि इन महापुरुष के चरणो मे हम अपने नये जीवन का श्रीगणेश करे, जो हो गया है, उसे अब भूल जायें।

प्रतिदिन की तरह चरितनायक जी का प्रवचन हो रहा था कि अकस्मात सभी ग्रामनिवासी एक साथ खडे होकर आपसे प्रार्थना करने लगे कि भगवन् ! हम भूले थे, आपके उपदेशो ने सुमार्ग का दर्शन करा दिया है। हम अपनी द्वेषभावना के लिये शर्मिन्दा हैं। अब आप जो आज्ञा देंगे, हमे स्वीकार है। आपके उपदेश से एक नया प्रकाश पाया है और उसी के सहारे हम सुमार्ग पर बढते रहेंगे। अब हमारा आपस मे कोई विरोध नही है। हमारी गलती थी कि हम एक दूसरे के विचारो को नही समझ सके।

चरितनायकजी के उदार एव सकरुण हृदय का ही यह प्रभाव था कि सुबह के भूले शाम को अपने ठौर लौट आये। विवाद और विरोध का कीचड बह गया और शुद्ध प्रेम नीर मे सभी गोते लगाने लगे एव 'अहिंसा प्रतिष्ठाया तत्सन्निधौ वैरत्याग,' इस विधान की सत्यता प्रमाणित हो गई।

विहार मार्ग मे इसी प्रकार के अनेक उपकार करते हुए, सामाजिक कुरीतियो, आपसी मनमुटाव आदि को मिटाते हुए आप स० १९८८ के चातुर्मास हेतु फलौदी पधार गये। आपके उपदेशामृत के प्रवाह से फलौदी ने अपना फलोदधि नाम सार्थक कर दिया।

आप हित मित भाषा मे आध्यात्मिक विकास हेतु विवेचन करते और उसका स्थानीय, आस-पास की जनता लाभ उठाती थी। आपके प्रवचनो मे सामाजिक कुरूढ़ियो और आत्मोन्नति के साधनो के बारे में विशेष रूप से संकेत रहता था। कुरूढ़ियो के सम्बन्ध में आपके विचार थे कि ये जीवन को गदा बनाये हुए हैं, जिससे धार्मिकता पनपने नहीं

पाती है । जिस समाज की तह मे कुरूढियां चट्टान की भांति जमी हों, वहां धर्म का अकुर पैदा नही हो सकता है । जब तक इनको उखाड़ा न जायेगा, तब तक धर्मवृद्धि के लिये किये जाने वाले प्रयत्न प्रायः निरर्थक हो सकते है ।

आपकी सरल तथा हृदयस्पर्शी वाणी को श्रवण करने के लिये श्रोताओ की आशातीत उपस्थिति हो जाती थी । जो कुछ भी आप विवेचन करते थे, वह सुनने वालो को अभूतपूर्व प्रतीत होता और सभी लाभ उठाते थे । अनेको ने आत्मशुद्धि के लिये व्रत-प्रत्याख्यान लेने के साथ-साथ समाज में स्वस्थ वातावरण बनाने के लिये कुरूढियो का यावज्जीवन के लिये त्याग कर दिया ।

आपके इस चातुर्मास का सभी क्षेत्रों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा । समाज ने आपके लिये जो धारणा बना रखी थी और प्रशसा सुनी थी, उससे भी बढकर समझने व देखने को मिला । अगाध सद्धान्तिक ज्ञान, गूढ-गभीर तात्त्विक विचारो को सीधी-सादी भाषा मे समझाने वाली वक्तृत्व शैली, साधु-मर्यादा का यथावत् पालन आदि का इतना प्रभाव पड़ा कि सभी आप मे आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० के ही दर्शन करते थे । ऐसा प्रतीत होता था कि आचार्य श्रीजी ही चातुर्मास हेतु यहां विराजमान हैं ।

चातुर्मास पूर्ण हुआ । दूर-दूर के क्षेत्रो और स्थानीय निवासियो को यह समय कब बीता, कैसे बीता, कुछ मालूम ही नही पड़ा । लेकिन साधु-आचार के अनुसार चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर जब विहार का अवसर आया तो आपने अन्तःकरण को दहला देने वाला एक सवाद सुना । किसी ने आपको बतलाया कि यहीं पास के मांडलिया ग्राम में प्रति वर्ष मेला होता है । उस मौके पर देवी के स्थान पर सामूहिक रूप मे ५०० और व्यक्तिगत रूप में करीब १५०० पशु धर्म के नाम पर मौत के घाट उतारे जाते हैं ।

इस भीषण सवाद से आपके सुकोमल हृदय को गहरा आघात

पहुचा। इस प्रकार के कृत्य और अन्ध-विश्वास की कल्पना मात्र से आपका अत करण करुणार्द्र हो गया। आपने सोचा— हा दुर्दैव ! हा मानव की दानवता ! आध्यात्मिक मूल्यों की अन्तिम दशा आन्तरिक ईमानदारी और आन्तरिक जीवन के सस्कार द्वारा प्राप्त की जाती है। इसी को धर्म कहते हैं। इसकी सच्ची आवाज एक ही है और वह है मानवीय दया और करुणा की, अनुकम्पा की, प्रेम की और हम सब उस आवाज को अवश्य ही सुन सकते है। जब तक हम बहिर्मुखी जीवन बिताते हैं और अपनी आतरिक गहराइयो की थाह नही लेते, तब तक हम जीवन के अर्थ अथवा आत्मा को नही समझ सकते। जो लोग ऊपरी सतह पर जीते हैं, उन्हे स्वभावतः ही आत्मिक-जीवन में कोई श्रद्धा नही होती है। यदि किसी को महान बनना है तो सेवा, मैत्री, परदुखकातरता आदि द्वारा बन सकता है। दुर्बलो की सहायता करने का दायित्व सम्पूर्ण सभ्य जीवन का आधार है।

हिंसा अधर्म है और अधर्म ही रहेगी। लेकिन जो इस तथ्य को भूलकर आत्मिक-आवाज को क्षीण कर देते हैं, उनकी विचारशक्ति और आत्मा पर अन्धकार छा जाता है और वे उसके विरुद्ध सघर्ष करने की अपनी इच्छा को भी क्षीण कर लेते हैं।

अतएव मानवजाति के इस कलक को मिटा देने का प्रयत्न करना मानवता की सबसे बड़ी सेवा होगी और मारे जाने वाले पशुओ के प्रति अनुकम्पा होगी। धर्म के नाम पर होने वाले ऐसे हत्याकाण्ड मानवीय विवेक के दिवालियेपन को सूचित करते हैं। निरपराध मूक प्राणियो के प्रति भयकर अत्याचार करने वाला मानव किस आधार पर सभ्य, शिष्ट और समझदार होने का दावा कर सकता है ?

मानव देवी-देवताओ के नाम पर भोले-भाले प्राणियो की हिंसा का खेल खेल रहा है। स्वार्थ और दैविक अनुग्रह की अन्धश्रद्धा इस पाप की जड़ है। धार्मिक अविवेक और स्वार्थसाधना के निमित्त मनुष्य ने न जाने कितने समुद्र लाल किये हैं और कितनी जमीन को मास व

उसके लोथड़ों का खाद दिया है। मगर अहिंसा हिंसा को परास्त करके ही रहेगी और व्यापक नीति की प्रतिष्ठा होगी। उसी दिन मानवजाति का समग्र प्राणिजगत मे श्रेष्ठ होने का दावा सच्चा माना जायेगा।

फलोदी और माउडिया की अहिंसाप्रेमी भक्तमण्डली आपके प्रयत्नों की सफलता के लिये प्राणप्रण से जुट गई। आपने बड़े ही हृदयस्पर्शी प्रभावशाली ढग से अहिंसा की व्याख्या की। जिसका इतना और ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि क्रूरता से पाषाण बने हृदय पिघल गये। उन्हें अपने दुष्कृत्य के प्रति, अपने प्रति ग्लानि उत्पन्न हो गई कि क्या हम मनुष्य हैं और यही हमारी मनुष्यता है? हम कब तक धर्म के नाम पर प्राणिहत्या से अपने हाथ रंगते रहेंगे। हम अपने किये का परिणाम कब, क्या, कैसा पायेंगे पता नही किन्तु हमारी सतान की अवश्य ही बदतर स्थिति होगी। अतः धर्म को कलंकित करने वाली इस हिंसा से विरत होने मे ही हमारा कल्याण है।

हिंसको के हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया में आपके प्रयत्न सफल हुए। ग्राम के समस्त निवासियो ने स्वेच्छापूर्वक इस हिंसा को बंद कर देने का निर्णय किया। इससे तत्काल ही २००० जीवो को अभय-दान मिलने के साथ-साथ मनुष्यता का एक कलंक धुला और अहिंसा की प्रभावना हुई।

'माउड़िया' नाम ही सकेत करता है कि उस ग्राम में माता—देवी— की विशेषरूप से मान्यता होगी। आपके उपदेशों एवं फलोदी आदि आस-पास के गाव से मेले मे आगत जनता तथा माउडिया के विवेकशील निवासियों की सूझ-बूझ से वहां जो अहिंसा माता की प्राण-प्रतिष्ठा हुई, उससे माउडिया ग्राम वास्तव में माउडिया नाम का अधिकारी बन सका।

बृहत्साधु-सम्मेलन के पहले

पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० ने दिल्ली चातुर्मास समाप्ति के पश्चात जमनापार के क्षेत्रों की ओर विहार किया और

भिवानी, हांसी, हिसार, राजगढ़ आदि ग्रामो व नगरों को धर्मदेशना का लाभ देते हुए पुनः राजस्थान के चूरू नगर मे पधारे।

इन दिनों किसी केन्द्रस्थान मे श्रावको द्वारा समस्त स्थानकवासी संत-मुनिराजों का सम्मेलन कराने के लिये प्रयत्न किये जा रहे थे। इसके लिये श्रावको ने विभिन्न साधु-मुनिराजो के पास जाकर विचार-विमर्श कर लिया था। एक प्रकार से वृहत्साधु-सम्मेलन होने की भूमिका बन चुकी थी। अतः आचार्य श्रीजी ने साधु-सम्मेलन और समाचारी आदि आवश्यक विषयो पर विचार करने के लिये अपने नेश्राय के साधु-मुनिराजो को नागौर मे एकत्रित होने का आदेश दिया।

तदनुसार चरितनायकजी अपने साथी सन्तो के साथ यथासमय नागौर पधार गये। उस समय नागौर मे आचार्य श्रीजी के अतिरिक्त मुनिश्री मोडीलालजी म० सा०, मुनिश्री चादमलजी म० सा०, मुनिश्री हर्षचन्दजी म० सा० आदि-आदि सम्प्रदाय के मुख्य-मुख्य सन्त एकत्रित हुए। उनके सामने आचार्य श्रीजी म० सा० ने अपने द्वारा बनाई गई 'श्री वर्धमान सघ' की योजना रखी और तत्सम्बन्धी विचार-विमर्श किया।

मुनिमण्डल की विचारगोष्ठी के अवसर पर जोधपुर श्री सघ आगामी चातुर्मास की स्वीकृति फरमाने हेतु आचार्य श्रीजी की सेवा मे आया। जिस पर स्थिति को देखकर आचार्य श्रीजी ने आगामी (स० १९८९ का) चातुर्मास जोधपुर करने की स्वीकृति फरमाई और नागौर से गोगोलाव आदि मार्ग मे पडने वाले ग्रामो में धर्मोपदेश देते हुए चरितनायक जी आदि १३ सन्त-मुनिराजो के साथ आषाढ़ शुक्ला १ को जोधपुर पधारे।

चातुर्मास-समाप्ति के सन्निकट कार्तिक शुक्ला ११ को प्रमुख-प्रमुख श्रावको का एक शिष्टमण्डल अजमेर मे होने वाले साधु-सम्मेलन के बारे मे विचार-विमर्श करने एव सम्मेलन मे पधारने की विनती के साथ आचार्य श्रीजी म० सा० की सेवा में उपस्थित हुआ। शिष्टमण्डल से सम्मेलन के बारे मे विशदरूप से विचार-विमर्श करके आचार्य श्रीजी

ने उक्त अवसर पर स्वयं या अपने सन्तो के प्रतिनिधिमण्डल के अजमेर पहुंचने के भाव दर्शाये ।

अजमेर मे होने वाले साधु-सम्मेलन मे सम्मिलित होने से पहले पुनः एक वार आचार्य श्रीजी म० सा० ने तत्काल अपने सम्प्रदाय के सन्तों का सम्मेलन कर लेने की आवश्यकता अनुभव की और इसके लिये व्यावर को उपयुक्त स्थान समझकर सभी सन्तो को व्यावर पहुंचने के लिये समाचार भिजवा दिये ।

चातुर्मास-समाप्ति के अनन्तर आचार्य श्रीजी म० सा० के व्यावर पधारने के पूर्व ४२ सन्तो का वहां पदार्पण हो चुका था । कुछ दिनों मे ३ सतों के और आने से कुल मिलाकर ४५ सन्त हो गये । उनमें चरितनायकजी के अतिरिक्त मुनिश्री मोडीलालजी म० सा०, मुनिश्री चादमलजी म० सा०, मुनिश्री हरखचन्दजी म० सा०, मुनिश्री गब्बूलालजी म० सा० (बड) आदि सन्त प्रमुख थे ।

आचार्य श्रीजी म० सा० ने उपस्थित सन्त मुनिराजो से सम्मेलन के सम्बन्ध में एवं अन्यान्य विषयो पर विचार कर सम्मेलन मे अपने सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व करने के लिये पांच मुनिराजो का मण्डल निर्वाचित किया, जिसके चरितनायकजी म० भी एक सदस्य थे ।

प्रतिनिधिमण्डल के नामों का निश्चय हो जाने के बाद भी मुनिराजो को यही योग्य प्रतीत हुआ कि पतिनिधिमण्डल की अपेक्षा आचार्य श्रीजी का सम्मेलन मे पधारना उचित होगा । अत. विनती की कि सम्मेलन में आपका पधारना हम सबके लिये योग्य है । अतः सन्तो के आग्रह को देखकर आचार्य श्रीजी म० सा० ने सम्मेलन में पधारने का निश्चय कर लिया ।

बृहद् साधु-सम्मेलन प्रारम्भ

चतुर्विध संघ की धार्मिक स्थिति की सुव्यवस्था के लिये किया जा रहा यह महान आयोजन— बृहत्साधुसम्मेलन— सं० १९९०, चैत्र शुक्ला १०, दि० ५ अप्रैल १९३३ को अजमेर में प्रारम्भ हुआ ।

इसमे २६ सम्प्रदाय के २४० सन्त सम्मिलित हुए थे। चरितनायक मुनिश्री गणेशलाल जी म० सा० आदि पांच सन्तों के साथ आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० भी ५ अप्रैल १६३३ के प्रातः अजमेर पधार गये।

प्रारम्भिक औपचारिकताओ की पूर्ति होने के पश्चात सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। इसमे साधु-समाचारी आदि-आदि श्रमण वर्ग से सम्बन्धित विषयो पर दि० ५ अप्रैल से २७ अप्रैल ३३ तक चर्चा-वार्ता होकर कुछ निर्णय तो अवश्य लिये गये लेकिन चतुर्विध सघ की धर्मकरिणी की सुव्यवस्था हेतु मुनिराजो मे उत्साह दिखाई न देने से सम्मेलन का उद्देश्य सफल न हो सका।

चर्चा-वार्ता के प्रसग मे आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० ने भी अपनी 'श्री वर्धमान सघ योजना' प्रस्तुत की। जिसमे मुख्य रूप से सभी सप्रदायो का एकीकरण करके एक आचार्य के नेतृत्व मे शिक्षा, दीक्षा, प्रायश्चित, विहार आदि की व्यवस्था करने का आशय व्यक्त किया गया था। यद्यपि सभी सन्तो द्वारा योजना का हार्दिक स्वागत भी किया गया और सिद्धान्त रूप मे मान्य भी की गई, लेकिन मतैक्य न हो सकने और कार्यान्वयन के प्रति असमर्थता व्यक्त करने से योजना को मूर्तरूप नही दिया जा सका।

विभाजित सम्प्रदाय का एकीकरण

चतुर्विध सघ मे पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी म० सा० की सम्प्रदाय अपनी सयमसाधना और विद्वत्ता के कारण सम्माननीय मानी जाती है। लेकिन पूज्य आचार्य श्री श्रीलाल जी म० सा० के समय मे कुछ एक कारणो से सम्प्रदाय के दो विभाग हो गये थे और पृथक् होने वाले सन्तो ने मुनिश्री मुन्नालाल जी म० सा० को अपना आचार्य बना लिया था। इन दोनो विभागो का एकीकरण करने के लिये समय-समय पर किये गये प्रयत्न सफल नही हुए।

लेकिन दोनो विभागो का एकीकरण करने के लिये प्रयत्न करने

वाले हतोत्साह न होकर अपने प्रयत्नों में लगे रहे। चतुर्विध संघ इस सम्प्रदाय मे अनैक्य देखने के लिये उत्सुक नही था और चाहता था कि श्रमण-संस्कृति की सुरक्षा के लिये तत्पर पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी म० सा० की सम्प्रदाय पुनः एक हो जाये।

बृहत्साधु-सम्मेलन के अवसर पर ही श्री हेमचन्दभाई रामजी-भाई मेहता की अध्यक्षता मे श्री अ० भा० श्वे० स्थानकवासी जैन कान्फरन्स का नौवा अधिवेशन भी अजमेर में हो रहा था। अतः इन आयोजनों के कारण चतुर्विध संघ के प्रमुख-प्रमुख सन्त-मुनिराजो, गण-मान्य श्रावको के अतिरिक्त आबालवृद्ध भाई-बहिन एकत्रित हुए थे। इन सभी की भावना थी कि इस अवसर का लाभ उठाकर पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी म. सा. की सम्प्रदाय का एकीकरण कराने के लिये प्रयत्न किये जायें।

चतुर्विध संघ की भावना को देखकर एकता के लिये प्रयत्न करने वालों के द्वारा साधु-सम्मेलन मे एकता का प्रश्न प्रस्तुत किया गया। पहले किये गये प्रयत्नों की समीक्षा करने के प्रसंग मे प्रश्न उठा कि यह कैसे सम्भव हो? तो विचार-विमर्श करके निर्णय किया गया कि पहले रतलाम मे आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० एवं पूज्य श्री मुन्नालाल जी म० सा० के बीच हुए वार्तालाप व निश्चय का सिंह-गावलोकन करने के लिये यहां पधारे हुए सन्तो मे से पंच मुकर्रर कर दिये जायें और उनके निर्णय को दोनों पक्ष स्वीकार करें।

इसी भूमिका पर एकीकरण के लिये प्रयास किये गये और निर्णय के लिये निम्नलिखित मुनिराज पंच नियुक्त हुए—

१- कविवर्य श्री नानचन्दजी म० सा०, २- मुनि श्री मणिलाल जी म० सा०, ३- शतावधानी मुनिश्री रत्नचन्द्र जी म० सा०, ४- आचार्य श्री अमोलकऋषि जी म० सा०, ५- पंजाबकेसरी युवाचार्य श्री काशी-राम जी म० सा०।

पंच मुनिराजों ने एकता के सम्बन्ध में अभी तक किये गये

प्रयत्नो आदि के बारे में मत्रणा और विचारणा करने के पश्चात सं० १९९०, वैसाख कृष्णा ८, दि० १७ ४-३३, सोमवार को अपना निर्णय दिया। निर्णय इस प्रकार है—

आज रोज दोनो पक्ष के भविष्य का फैसला पंच निम्न प्रकार से देते हैं—

१- मुनि श्री गणेशलाल जी म० को युवाचार्य पद पर नियत करे।

२- मुनि श्री खूबचन्द जी म० को उपाध्याय पद पर नियत करें।

३- अब से जो नये शिष्य हो, वे युवाचार्य की नेश्राय मे रहें।

४- भविष्य के धाराधोरण दोनों पूज्य मिलकर बांधे।

५- पूज्य श्री हुकमीचन्द जी म० की सम्प्रदाय के चौमासे ठहराने की और दोषशुद्धि करने की सत्ता दोनो पूज्यो की हयाती तक दोनो पूज्यों की रहेगी और एक आचार्य रहने पर एक आचार्य की होगी।

६- फैसला मिलने के साथ ही परस्पर बारह सभोग खुले करें।

द० अमोलक ऋषि, द० मुनि रत्नचन्द, द० मुनि मणिलाल

द० मुनि नानचन्द्र द० मुनि काशीराम

उक्त निर्णय को स्वीकृत करते हुए आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० ने फरमाया कि— 'फैसला मजूर है। अमलदरामद धाराधोरण बनाकर किया जायेगा।'

पूज्य श्री मुन्नालाल जी म० सा० ने फरमाया कि— 'फैसला मजूर है।'

इस निर्णय की वृहत्साधु-सम्मेलन मे उपस्थित सन्त मुनिराजो, श्रावको आदि सभी ने अनुमोदना की और हृदय उल्लास से भर गये। बहुत दिनो से जो प्रश्न समग्र सघ के लिये चिन्ता का कारण बना हुआ था, उसका समाधान होने से सभी ने साधु-सम्मेलन की आंशिक सफलता मानी और सराहना की।

समस्त स्थानकवासी समाज के इतिहास मे यह एक गौरवशाली

कार्य हुआ था और उससे चरितनायक की महानता ही सिद्ध होती है कि पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी म० सा० की सम्प्रदाय की दो धाराओं ने आपको अपना केन्द्रविन्दु मानकर एकीकरण कर लिया।

एकता विषयक निर्णय हो चुका था और उसके कार्यान्वयन के बारे मे सम्मेलन के अवसर पर दोनो पूज्यो के बीच विचार-विमर्श भी हुआ। किन्तु उसमे कुछ गत्यवरोध पैदा हो जाने से उपस्थित जन-समूह मे एकता के बारे में गलतफहमियां पैदा होने लगी। अत. उपस्थिति को वास्तविक स्थिति की जानकारी देने के लिये दि० २४-४-३३ को प्रात. ८ बजे निम्नलिखित १७ सज्जनों का एक शिष्टमण्डल ममैयो के नोहरे मे विराजित मुनिराजो की सेवा में उपस्थित हुआ—

१- श्री हेमचन्दभाई मेहता, २- सेठ श्री अचलसिंह जी, ३- श्री वेलजीभाई लखमसी नपु, ४- दी. ब. श्री विशनदास जी, ५- रा० सा० श्री मोतीलाल जी मूथा, ६- श्री कुन्दनमल जी फिरोदिया, ७- श्री पूनमचन्द जी नाहटा, ८ रा. सा. लाला टेकचन्द जी, ९- सेठ श्री वर्धमान जी पीतलिया, १०- सेठ श्री कन्हैयालाल जी भण्डारी, ११- श्री सौभागमल जी मेहता, १२- डा. श्री वृजलाल टी. मेघाणी, १३- सेठ श्री दुर्लभजीभाई जौहरी, १४- श्री सरदारमल जी छाजेड, १५- श्री जेठालालभाई रामजीभाई, १६- श्री चिमनलाल पोपटलालभाई शाह, १७- श्री शांतिलाल मंगलभाई।

शिष्टमण्डल ने विराजित मुनिराजों की सेवा मे एकता संबंधी पंचफैसले के अमलदरामद करने के लिये प्रार्थना की। पंचफैसले के बारे जो कुछ भी विचार-विमर्श हुआ और जिन कारणों को लेकर गत्यवरोध पैदा हो गया आदि सभी के बारे विवेचन होने के बाद आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. एवं पूज्य श्री मुन्नालाल जी म. सा. ने निम्नलिखित निश्चय किये—

१- आज से परस्पर बारह सम्भोग, जहाँ-जहाँ दोनों सम्प्रदाय के मुनि हों, वहाँ-वहाँ शुरु किये जाते हैं। दोनों पूज्य सभी

ही इस सबधी सदेश अपने मुनियो को भेज देंगे ।

२- धाराधोरण बनाने के लिये निम्नानुसार व्यवस्था की जाती है— पूज्य श्री मुन्नालाल जी म०, मुनि श्री हजारीमल जी म०, मुनि श्री छगनलाल जी म० और पूज्य श्री जवाहरलाल जी म०, मुनि श्री गणेशलाल जी म० तथा मुनि श्री हरखचन्द जी म०, इस तरह छह मुनिराज एकत्रित होकर भविष्य के लिये धाराधोरण बनावे । यदि इसमे कुछ मतभेद हो तो छहो मुनिवर मिलकर एक सरपच पसन्द कर ले । यदि सरपच के चुनाव मे एक मत न हो तो श्री वर्धमान जी पीतलिया तथा श्री सौभाग्यमल जी मेहता, ये दोनो साथ मिलकर मतभेद का समाधान कर दे । यदि इनके बीच भी मतभेद रहे तो इन दोनो गृहस्थों ने सीलबन्द लिफाफा श्री प्रेसीडेण्ट सा० को दिया है । उसमे लिखे हुए नाम वाला पच, दोनो गृहस्थो के सरपच के रूप में जो निर्णय दे, वह अन्तिम निर्णय माना जायेगा ।

३- मुनि श्री गणेशलाल जी म० को युवाचार्य पद तथा मुनि श्री खूबचन्द जी म० को उपाध्याय पद स० १९९० की फाल्गुन शुक्ला १५ से पहले ही दे देना निश्चित किया जाता है ।

४- फाल्गुन शुक्ला १५ के बाद जो नये शिष्य हो वे युवाचार्य जी की नेश्राय मे रहें ।

इस प्रकार पारस्परिक मतभेद के कारणो का समाधान हो जाने से पूज्य श्री हुकमीचन्द जी म. सा. की विभक्त सम्प्रदाय संयुक्त हो गई और भविष्य के लिये धाराधोरण बनाने का कार्य यथावसर किये जाने की आशा थी ।

स्वागत के लिये उत्सुक जन्मस्थान

बृहत्साधु-सम्मेलन सम्पन्न होने के पश्चात आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा ठाणा २२ अजमेर से मारवाड़-मेवाड के विभिन्न ग्रामों मे विचरण करते हुए उटाला (मावली के निकट) पधारे । वहां पूज्य

श्री मुन्नालाल जी म. सा. के कालधर्म को प्राप्त होने के समाचार प्राप्त हुए। समाचार ज्ञात कर आचार्य श्रीजी आदि सभी सन्त मुनिराजो ने ध्यान किया और दिवगत आत्मा का गुणानुवाद पूर्वक पुण्यस्मरण करते हुए अपनी-अपनी श्रद्धा व्यक्त की।

इसी अवसर पर उदयपुर श्री सघ सेवा मे उपस्थित हुआ। वह अपने यहा आचार्य श्रीजी म सा आदि सभी सन्तो का चातुर्मास कराने के लिये बहुत समय से लालायित था और अनेक स्थानो पर वहां के प्रमुख प्रमुख श्रावक विनती करने के लिये सेवा मे उपस्थित होते रहे थे कि आचार्य श्रीजी हमारे भावी सघशिरोमणि के साथ चातुर्मास हेतु उदयपुर मे पदार्पण करने की महती कृपा करावें। अतः इस समय अनुकूल सयोग होने से आचार्य श्रीजी ने आगामी चातुर्मास उदयपुर मे करने की स्वीकृति फरमाई, जिससे उदयपुर श्री सघ के हर्ष का पार न रहा। वह अपने गौरव की अनुभूति से थिरक पडा। अपने प्रागण मे तेजस्वी सूर्य-से और ओजस्वी चन्द्र-से ज्योतिर्धर जवाहराचार्य एव भावी गणपति गणेशाचार्य के पदार्पण होने रूप अलभ्य अवसर-प्राप्ति से प्रमुदित हो उठा।

दिनों की प्रतीक्षा तो एक, दो, तीन आदि गिनते-गिनते पूर्ण हो चुकी थी और अब चातुर्मासार्थ पदार्पण होना दिनो से क्षणो के बीच आ टिका। वह अवसर भी आ गया जब सन्तो ने नगर प्रवेश किया। नगर के महल और मकान, चौराहे और चबूतरे चौगान और चौमंजिले देहरी और दरवाजे आबालवृद्ध जनो से अटे पडे थे। उनकी आंखों में उत्सुकता थी आचार्य श्रीजी एव अनुगामी युवाचार्य श्रीजी आदि सन्तप्रवरों के दर्शन की। वर्षों से सजोयी आशायें, स्मृतियां आज सफल हो रही थीं। विशेष रूप से उनकी उत्सुकता के केन्द्रबिन्दु थे चरितनायक युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म सा. जिनका—

उदयपुर जन्मस्थान था। जो यहा की धूल मे खेले थे, दौड़े थे और लोटे थे। यहा के अन्न-जल से पले थे। यहां के निवासियो ने

आपको शिशुरूप में, सद्गृहस्थ के रूप में, एक व्यापारी के रूप में देखा था। इसके साथ ही वे दृश्य भी उभर आये जब माता, पिता और पत्नी के देहावसान के पश्चात उनका अपना कहने वाला कोई नही रहा था। उसके बाद दृश्य बदला और देखा था आगारी से अनगारी होते और फिर सयमसाधना के साहजिक विकास को। आज वही पदार्पण कर रहे थे। कौन ऐसे स्वत. प्राप्त अवसर का परित्याग कर सकता था ? कौन था ऐसा जो भोगविजयी योगी की तेजस्विता, ओजस्विता और मधुरता के दर्शन से वचित रहना चाहता हो ? कौन था ऐसा जो आकाक्षा और वाछा से विरत वैराग्यमूर्ति के प्रति वंदनार्पण से विमुख होना चाहता हो ? कौन था ऐसा जो जागरण के अग्रदूत और समता के शास्ता की समीपता का लोभ सवरण कर सकता था ?

शनै.-शनै: सीमान्त से सन्तो का नगर मे पदार्पण हुआ। राज-मार्गों की दोनो ओर की अट्टालिकाओ पर उपस्थित दर्शनोत्सुक नगर-जन सन्तपरिमण्डल के बीच चरितनायक जी को निहार कर निहाल हो गये और प्रतिभा से प्रभावित हो प्रमुदित हो उठे।

यह चातुर्मास धर्मपिपासु जनता के लिये कल्पवृक्ष-सा प्रतीत हुआ और उसकी चिरकालीन आकाक्षा पूरी हुई। चातुर्मास मे तपस्वी मुनिश्री किशनलाल जी म. सा. ने ४१ एव तपस्वी मुनि श्री केसरी-मल जी म. सा ने गरम जल के आधार से ६० दिन की तपस्या की। श्रावक श्री गणेशलाल जी गोगुन्दा निवासी ने ४५ उपवास किये। इसके अतिरिक्त विभिन्न श्रावक-श्राविकाओ ने अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार तपस्या, पचखाण, सामायिक आदि धर्मध्यान किया।

आचार्य श्रीजी म. सा. और चरितनायक जी के ज्ञानगम्भीर, मगलमय प्रवचनो को श्रवणकर श्रोतागण अपूर्व आध्यात्मिक चेतना का अनुभव करते थे।

शनैः-शनैः चातुर्मास का समय समाप्त हुआ। उदयपुरवासियो ने भरे हुए हृदयो से विदाई दी और धर्मदेशना से आप्लावित करने के

लिये सन्तों ने विभिन्न क्षेत्रों की ओर विहार कर दिया।

एकता स्थायी न रही

चातुर्मास के दिनो में कान्फरन्स के अध्यक्ष श्री हेमचन्दभाई रामजीभाई मेहता सम्मेलन के प्रस्तावो के बारे में जानकारी देने के लिये देशव्यापी प्रवास कर रहे थे। इसी सन्दर्भ मे आप उदयपुर भी पधारे और आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा से विचार-विमर्श किया।

चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा चरितनायक जी आदि सन्त-मुनिराजो के साथ विहार कर नाथद्वारा आदि स्थानो में धर्मदेशना देते हुए निम्बाहेड़ा पधारे।

बृहत्साधु-सम्मेलन अजमेर के अवसर पर चतुर्विध सघ के प्रयत्नों से पूज्य श्री हुकमीचन्द जी म. सा. के सम्प्रदाय की दोनों धाराओं का एकीकरण हो जाने से सभी को सन्तोष और प्रसन्नता थी। लेकिन कुछ सन्तो ने इस एकता के प्रयास को शुद्ध हृदय से अंगीकार करने की तैयारी नही बतलाई। वे सिर्फ दिखावे के रूप में इसका पालन करना चाहते थे।

लेकिन पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा अपनी ओर से ऐसी कोई बात नही करना चाहते थे, जिससे चतुर्विध सघ का प्रयास विफल बने। अतः विभिन्न बातों को सुनकर भी मौन रखना उचित मानते थे।

पूज्य श्री मुन्नालाल जी म सा का देहावसान हो जाने से सम्मेलन के निर्णयानुसार आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा दोनो धाराओ के आचार्य हो गये थे और समस्त सम्प्रदाय की व्यवस्था-सम्बन्धी रूपरेखा बनाने के लिये प्रमुख-प्रमुख संतों को चातुर्मास समाप्ति के पश्चात मिती मगसिर कृष्णा १५ के आसपास निम्बाहेड़ा में एकत्रित होने की सूचना करा दी थी।

आचार्य श्रीजी म. सा. तो निश्चित समय पर निम्बाहेड़ा पधार गये, मगर सघ का दुर्दैव ही समझिये कि अनेक उलझनो के बाद जो एकता हुई थी वह स्थायी न रह सकी और निम्बाहेड़ा में इस एकता की इतिश्री हो गई।

आचार्य श्रीजी म. सा. ने जब देख लिया कि एकता की भावना ही नही है तो ऐसी परिस्थिति मे कोई भी उपाय सफल नही हो सकेगा। अत. निम्बाहेड़ा में कल्पकाल तक विराजने के पश्चात विहार करके अनेक स्थानो को फरसते हुए जावद पधारे।

युवाचार्य-पद-महोत्सव

वृहत्साधु सम्मेलन के निर्णयानुसार आचार्य श्रीजी म सा. फाल्गुन शुक्ला १५ से पहले चरितनायक प० र० मुनि श्री गणेशलालजी म. सा. को युवाचार्य पद एव मुनि श्री खूबचन्द जी म. सा. को उपाध्याय पद प्रदान करने के शुभ कार्य को किसी योग्य स्थान में चतुर्विध सघ के समक्ष कर देना चाहते थे। इसके लिये अनेक स्थानो के श्री सघो की विनतिया थी। जावद श्री सघ की भी इस शुभ कार्य को अपने प्रागण मे कराने के लिये पहले से ही आग्रहपूर्ण विनती हो रही थी और जब आचार्य श्रीजी म सा. जावद पधारे तो पुनः अपनी विनती को दोहराया।

पूज्य श्री हुकमीचन्द जी म सा. की सप्रदाय के लिये जावद एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। पूज्य श्री शिवलाल जी म. सा. आदि अनेक महापुरुषो के युवाचार्य-पद-महोत्सव एव आचार्य-पद-महोत्सव मनाने का सौभाग्य इसी नगर को प्राप्त हुआ है।

इस प्रकार से सम्प्रदाय के इतिहास मे स्मरणीय इस जावद नगर के गौरव मे एक नया पृष्ठ जोडने के लिये आचार्य श्रीजी म सा. ने युवाचार्य पद-प्रदान महोत्सव अपने यहा कराने के लिये जावद श्री सघ की विनती स्वीकार कर ली और स० १९९०, मिती फाल्गुन शुक्ला ३ पदवी प्रदान करने का शुभ मुहूर्त निश्चित किया गया।

इस स्वीकृति से जावद श्री सघ का उत्साह द्विगुणित हो गया। चतुर्विध श्री सघ मे जिस मंगल महोत्सव होने की प्रतीक्षा की जा रही थी, उसके जावद मे होने के समाचार ज्ञातकर सभी को महान हर्ष हुआ और यथासमय अपनी धर्मकरिणी के भावी सघनायक के युवा-

र्य-पद और उपाध्याय-पद महोत्सव के दर्शन एवं श्रद्धा-भक्ति प्रकट करने के लिये चारो तीर्थ—साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका—जावद मे एकत्रित होने लगे।

फाल्गुण कृष्णा द्वादशी को आचार्य श्रीजी म. सा. अनेक संत-मुनिराजो के साथ जावद पधारे। देश के इस छोर से उस छोर तक निवास करने वाले हजारो आबालवृद्ध भाई-बहिन जावद आने के लिये अपने-अपने स्थानो से चल पड़े। फाल्गुन शुक्ला द्वितीया तक करीब ७००० व्यक्ति जावद आ चुके थे और साधु-मुनिराजों की सख्या ३० एवं महासतियो की सख्या ३५, कुल ६५ हो गई थी।

इस महोत्सव के अवसर पर विराजमान सन्तो व सतियो की शुभ नामावली इस प्रकार है—

१- पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा.
२- मुनिश्री चादमल जी म. सा
३- ,, हर्षचन्द जी म. सा.
४- ,, मांगीलाल जी म. सा.
५- ,, धूलचन्द जी म. सा.
६- ,, सोतीलाल जी म. सा.
७- ,, गणेशलाल जी म. सा. (चरितनायक)
८- ,, सरदारमल जी म. सा.
९- ,, हजारीमल जी म. सा.
१०- ,, पन्नालाल जी म. सा.
११- ,, शोभालाल जी म. सा.
१२- ,, श्रीचन्द जी म. सा
१३- ,, मोतीलाल जी म. सा.
१४- ,, बगतावरमल जी म. सा.
१५- ,, [illegible] जी म. सा.
१६- ,, [illegible] जी म. सा.

१७- मुनिश्री हेमराज जी म. सा.
१८- „ हर्षचन्द जी म. सा.
१९- „ हमीरमलजी म. सा.
२०- „ नन्दलालजी म. सा.
२१- „ भूरालाल जी म. सा.
२२- „ जीवनमल जी म सा.
२३- „ जेठमल जी म सा.
२४- „ चांदमल जी म. सा.
२५- „ सुमालचन्द जी म सा.
२६- „ घासीलाल जी म. सा
२७- „ जवरीमल जी म सा.
२८- „ चतुरसिहजी म. सा.
२९- „ अम्बालाल जी म सा.
३०- „ मोतीलाल जी म. सा.

महासतियो मे श्री रगूजी म. सा. की सम्प्रदाय की महासती प्रवर्तनी श्री आनन्दकंवर जी म. सा. ठा. २५ और श्री मोतां जी म. सा. की सम्प्रदाय की महासती प्रवर्तनी श्री केसरकंवर जी म. सा ठा. १० ।

फाल्गुन शुक्ला ३ को एकदिन शेष रह गया था । जावद और जावद के आस-पास के क्षेत्रो मे एक आह्लादक वातावरण के दर्शन होते थे । फाल्गुन मास तो वैसे ही प्राकृतिक नवोन्मेष का प्रतीक माना जाता है, जब हेमन्त से छुई-मुई बनी प्रकृति नये नये पल्लवों के परिधानो से स्ववेषभूषा का साज सजा ऋतुराज वसन्त का स्वागत कर मानव मन को उत्साह एव आनन्द से आप्लावित कर देती है । फाल्गुन नये का स्वागत करने का सनातन सत्य सिद्धान्त है और मानो इसी को चरितार्थ करने के लिये बाल-युवा-वृद्ध का भेद भूल आबालवृद्ध नरनारी सामूहिक रूप में एकत्रित होकर युवाचार्य का अभिनन्दन करने उपस्थित हो गये थे ! अब तो इतनी ही प्रतीक्षा हो रही थी कि कब ऊषा हो

और स्वागत के लिये चल पड़ें। तैयारियां तत्परता से पूर्ण हो चुकी थी। उत्साह का अतिरेक उत्सव में परिणत होने के लिये मचल रहा था। प्रबन्धक व्यवस्था का निरीक्षण करके अपनी त्रुटियों को सम्भाल रहे थे। लेकिन दर्शकों की विचारधारा तो एक ही केन्द्रबिन्दु पर केन्द्रित थी कि इस शुभ महोत्सव का शुभारम्भ शीघ्र ही हो।

युवाचार्य पदवी प्रदान करने के लिये ११ से १ बजे तक का समय शुभ माना गया था। परन्तु फाल्गुन शुक्ला ३ के सूर्योदय की स्वर्णिम प्रभा के साथ ही समारोह का श्रीगणेश हो गया। सात बजे श्री गुरुदेव जी खूबचन्द जी के नोहरे से दीवानबहादुर सेठ श्री मोतीलाल जी मूथा के नेतृत्व में आबालवृद्ध श्रावक-श्राविकाओं का जुलूस निकला, जो नगर की प्रदक्षिणा देता हुआ करीब ८ बजे पुन. उसी स्थान पर लौट आया।

समारोह के लिये राजकीय शाला के प्रांगण में प्रबन्ध किया गया था। सभी दर्शकों के बैठने के लिये एक विशाल पंडाल वहां बनाया गया था। शनैः-शनैः दर्शकों का आगमन प्रारम्भ हुआ और करीब आध घण्टे में विशाल प्रांगण भी उपस्थिति को देखकर छोटा-सा प्रतीत होने लगा। जिधर भी देखते उधर रंग-बिरंगे परिधानों से परिवेष्ठित बाल, युवा, वृद्ध नर-नारी दृष्टिगत होते थे। प्रतीत होता था कि ऋतुराज बसन्त ही स्वयं स्वागतार्थ समुपस्थित हो गये है।

साढे दस बजे पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. ने चरितनायक जी आदि सन्त-मुनिराजों के सहित पदार्पण किया। जय-ध्वनि के साथ दर्शकों ने स्वागत किया।

ग्यारह बजते ही आचार्य श्री जी एवं समस्त सन्तों के समवेत स्वर द्वारा किये गये नवकार मन्त्र के पाठ एवं भगवान शांतिनाथ की प्रार्थना से समारोह का मुख्य कार्य-क्रम प्रारम्भ हुआ। तदनन्तर आचार्य श्री जी ने सामयिक प्रवचन फरमाया। जिसमें आज के महोत्सव के कारणों, पूर्वकालीन घटनाओं आदि के बारे में दर्शन कराते हुए सामाचे-

पद के महत्त्व का उल्लेख किया कि—

यहां भावी आचार्य का प्रसग है। इसलिये अरिहंत, सिद्ध, उपाध्याय, साधु के विषय मे कुछ न कह कर आचार्य के विषय मे थोड़ा-सा कहता हूँ।

श्री स्थानाग सूत्र के तीसरे स्थान मे तीन प्रकार के आचार्य बतलाये गये है— कलाचार्य, शिल्पाचार्य और धर्माचार्य। उनमे से यहां धर्माचार्य से ही सम्बन्ध है अत. धर्माचार्य की व्याख्या की जाती है। धर्माचार्य के भी नामाचार्य. स्थापनाचार्य, द्रव्याचार्य और भावाचार्य यह भेद हैं। भावाचार्य के लिये तो शास्त्र मे यहाँ तक कहा है कि जो भावाचार्य है, वह तीर्थंकर के समान है।

दीक्षा लेने मात्र से ही कोई व्यक्ति धर्माचार्य नही हो जाता। धर्माचाय पद चतुर्विध सघ द्वारा सस्कार किया हुआ व्यक्ति ही पा सकता है। चतुर्विध सघ ही जिस व्यक्ति को धर्माचार्य पद पर स्थापित कर दे वही व्यक्ति धर्माचार्य है। अपने मन से कोई भी व्यक्ति धर्माचार्य नही हो सकता है। धर्मनीति मे बलात्कार सम्भव नही है। यहां कोई जबरदस्ती आचार्य नही बन सकता।

धर्माचार्य मे गीतार्थ, अप्रमादी और सारणा-वारणा करनेवाला यह तीन गुण होना आवश्यक हैं। अर्थात् जो सूत्रार्थ का जानकार हो, प्रमाद रहित हो और सघ की व्यवस्था करने वाला हो। जिसमे ये तीन गुण नही हैं, वह आचार्य नही हो सकता है।

स्वर्गीय पूज्य श्री श्रीलालजी म० सा० फरमाया करते थे कि आचार्य पत्थर-सा कठोर भी न हो और पानी जैसा नम्र भी न हो। किन्तु बीकानेरी मिश्री के कूजे की तरह हो। अर्थात् जैसे मिश्री का कूंजा सिर पर मारने से तो सिर फोड देता है और मुह मे रखने से मुह मीठा कर देता है। उसी प्रकार आचार्य भी अन्याय का प्रतीकार करने के लिये कठोर-से-कठोर रहे और सत्य तथा न्याय के लिये मुह मे रखी मिश्री के समान मीठा और नम्र रहे।

इसके पश्चात बृहत्साधु-सम्मेलन अजमेर मे पच मुनियो के निर्णय का संकेत करते हुए फरमाया कि सातवें पाट पर मुनिश्री गणेश-लालजी को युवाचार्य पद देने का ठहराव किया था और जिसका समर्थन समाज की कान्फरन्स ने भी किया और कान्फरन्स के अध्यक्ष एव सोलह सदस्य, इस प्रकार १७ व्यक्तियो के शिष्टमण्डल ने भी व पूज्य श्री मुन्नालाल जी म. सा. की स्वीकृति से यह ठहराव किया था कि युवा-चार्य पद की चादर फाल्गुन शुक्ला १५ से पहले करने का निश्चय किया जाता है। इस प्रकार युवाचार्य पद के लिये मुनिश्री गणेशलाल जी का चुनाव केवल मेरे या इसी सप्रदाय के सघ द्वारा ही नही हुआ वरन भारतवर्ष के समस्त चतुर्विध सघ द्वारा हुआ है। तदनुसार ही आज यह युवाचार्य की चादर देने का कार्य किया जा रहा है।

मुनिश्री खूबचन्द जी को उपाध्याय पद की चादर देने का भी निर्णय में उल्लेख है। इसके लिये उन्हें जावद आने की सूचना करवा दी गई थी और जावद सघ ने शिष्टमण्डल भेजकर श्री खूबचन्द जी से जावद आने की प्रार्थना भी की थी। लेकिन वे नही आये, इसलिये आज युवाचार्य पद की चादर देने की एक ही क्रिया की जा रही है।

आचार्य श्रीजी म. सा. के प्रवचन-समाप्ति के बाद मुनिश्री चांदमल जी म. सा. (बड़े), मुनिश्री हरखचन्द जी म. सा. और मुनि श्री पन्नालाल जी म सा. (सादड़ी वाले) ने पूज्यश्री के व्याख्यान व मुनिश्री गणेशलाल जी म. सा को युवाचार्य पद देने का समर्थन किया। अन्य उपस्थित सन्तों की ओर से मुनिश्री गब्बूलाल जी म. सा ने तथा महासतियां जी की ओर से प्रवर्तनी श्री आनन्दकंवरजी म. सा. व प्रवर्तनी श्री केशरकंवरजी म. सा. ने समर्थन, अनुमोदन करते हुए प्रसन्नता व्यक्त की।

तदनन्तर समारोह के लिये जावद मे आगत विभिन्न सन्त-सतियां जी, श्रावक-प्रमुखों और श्रावक-संघो की शुभकामनायें व सन्देश रूप में आये हुए पत्र व तार पढ़कर सुनाये गये।

इस प्रकार चतुर्विध संघ की अनुमोदना हो जाने के बाद चरितनायक मुनिश्री गणेशलाल जी म. सा पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. के सामने आज्ञा की प्रतीक्षा मे विनीत शिष्य-से खडे हुए। आचार्य श्रीजी ने नन्दीसूत्र का पाठ कर अपनी चादर उतार कर चरितनायक को ओढाई और उपस्थित सन्तो ने चादर के कोने पकडकर अपना सहयोग, समर्थन व्यक्त किया।

उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो सहस्ररश्मि सूर्य तमसावृत रजनी के गहन अन्धकार को भेदन करने का दायित्व लघु दीप को सौप कर अपने अनिर्वचनीय सन्तोषानुभव मे लीन हो।

सवा बारह बजे यह कार्य सम्पन्न हुआ। दर्शको ने जय-जयकारो से आचार्य श्रीजी म० सा०, युवाचार्य श्रीजी के प्रति अपनी श्रद्धा, भक्ति, प्रमोद व्यक्त करते हुए अभिनन्दन किया। अनन्तर आचार्य श्रीजी म. सा ने एक छोटा-सा प्रवचन फरमाया—

श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी म सा के सातवें पाट पर श्री गणेशलाल जी आचार्य नियुक्त हुए है। ये मेरे युवाचार्य हैं। चतुर्विध सघ का कर्तव्य है कि इनके वचनो को 'सद्दहामि', 'पत्तयामि', 'रोइयामि' रूप मे स्वीकार करे। युवाचार्य जी का कर्तव्य है कि धर्ममार्ग मे सदा जागृत रहते हुए आस्था और विवेक पूर्वक चतुर्विध सघ को धर्ममार्ग मे प्रवृत्त कराते रहे। मुझे विश्वास है कि युवाचार्य जी इस पद को जिम्मेदारी दक्षता पूर्वक निभायेगे। इनका नाम गण—ईश = गणेश है। यह नाम इस पद के कारण सार्थक हुआ है। आशा है ये उत्तरोत्तर सघ की उन्नति करेंगे।

आचार्य श्रीजी के प्रवचन की समाप्ति के अनन्तर युवाचार्यश्री ने फरमाया—

अकामी यो भूत्वा निखिल मनुजेच्छां गमयति,
मुमुक्ष ससाराम्बुनिधितरि वत्तारय विभो।

महारागद्वेषादि कलहमल हारिन्नामृतदाम्,
सुबुद्धिं मह्यं हे जिन ! गणपते ! देहि सततम् ॥

मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि मुझे वह शक्ति प्रदान करे जो शक्ति सारे संसार का कल्याण करने वाली है। आज मुझे जो गुरुतर उत्तरदायित्व सौंपा गया है, उसे मैं ऐसी शक्ति के सहारे ही वहन कर सकता हूँ। मैं सदैव भावना रखता था कि जीवन भर आचार्य श्री द्वारा प्राप्त आज्ञा का पालन करता हुआ सन्तों की सेवा करता रहूँ। मेरी इस भावना के विपरीत पूज्य आचार्य श्री एवं चतुर्विध संघ ने मुझ अल्पशक्ति वाले को यह भार सौंपा है। इसलिये मैं नम्रता-पूर्वक आचार्य महाराज से भी ऐसी शक्ति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ जिसके द्वारा मैं इस महान बोझ को उठाने में समर्थ होऊं।

पूज्यश्री के साथ ही सन्तों ने हाथ लगाकर मुझे जो चादर प्रदान की है, वह चादर तंतुओं की बनी हुई है। संस्कृत में तन्तु का दूसरा नाम गुण है। अर्थात् यह चादर गुणमयी है। मुझे आशा है कि इस गुणमयी चादर के साथ ही मुझे गुणों की भी प्राप्ति होगी, जिससे मैं इसकी रक्षा करने में समर्थ होऊं। यद्यपि यह गुणमयी चादर मेरी रक्षा करने में समर्थ है, तथापि इस चादर की रक्षा होना भी आवश्यक है। मुझे यह चादर आचार्य महाराज सहित सब सन्तों ने प्रदान की और चतुर्विध संघ ने इसका अनुमोदन किया है। इस कारण मुझे विश्वास है कि चतुर्विध संघ इसका रक्षक है। चतुर्विध संघ ऐक्यबल से इसकी रक्षा करता रहेगा तभी इस चादर का गौरव सुरक्षित रहेगा और तभी यह संघ की उन्नति करने में भी समर्थ होगी। मैं शासननायक और गुरु महाराज से यही भिक्षा मांगता हूँ कि इस चादर के गौरव की रक्षा करने की शक्ति मुझे प्राप्त हो।

अनन्तर समारोह-समापन विधि के रूप में विभिन्न सन्त-मुनिराजों और महासतियां जी म. सा. ने अपने-अपने हृदयोद्गार व्यक्त किये और श्रावक श्री संघ की ओर से इस शुभ समारोह के लिये

पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. की स्वीकृति के लिये कृतज्ञता-ज्ञापन एव श्रद्धांजलि समर्पण तथा विराजमान सन्त सतियां जी म० सा० की सविधि वदना करते हुए आगत सज्जनों को धन्यवाद दिया गया और आगत सज्जनो की ओर से इस गौरवमयी अवसर का लाभ प्राप्त कराने के लिये जावद श्री सघ का आभार मानने के बाद समारोह सम्पन्न हुआ। बीकानेर श्री संघ के सज्जनो की ओर से प्रभावना बाटी गई।

इन्ही दिनो बिहार प्रान्त मे भयकर भूकप आने के कारण हजारो व्यक्ति बेघरबार के होकर कष्ट का अनुभव कर रहे थे। हजारों व्यक्ति अपने प्रियजनो के कालकवलित हो जाने से अनाथ हो गये थे और उनकी डबडबाई आखे अपने आश्रय एव अभय के लिये टुकुर-टुकुर देख रही थी। हृदय की व्यथा आखें बिखेरती थी। आचार्य श्रीजी का कारुणिक हृदय ऐसी करुणापूर्ण स्थिति की अवहेलना नही कर सकता था और अपने प्रवचन मे आपश्री ने विहार प्रान्त की कष्ट-कथा का सकेत कर श्रावको को उनके कर्तव्य का स्मरण कराया।

इस कारुणिक प्रवचन के फलस्वरूप समारोह के उपलक्ष्य मे श्री नथमल जी चोरडिया ने 'कान्फरन्स भूकप रिलीफ फड' खोलने और उसमें यथाशक्ति सहायता, दान देने के लिये विनम्र निवेदन किया। परिणामत. क्षणमात्र मे ही लगभग दो हजार रुपये एकत्रित हो गये और शनै-शनै एक बहुत बड़ी धनराशि सहायता कार्यों मे व्यय करने के लिये प्राप्त हुई।

मालव की ओर

समारोह सोल्लास सम्पन्न हो चुका था। दर्शनार्थी सुविधानुसार श्रद्धेयो के मागलिक श्रवण रूप पाथेय के साथ अपने-अपने गतव्य स्थानो की ओर प्रस्थान करने लगे।

आचार्य श्रीजी म सा. ने कुछ दिन जावद विराजने के अनन्तर ठाणा १२ से बेगूं की ओर तथा युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म सा. ने ठाणा ६ से रामपुरा की ओर विहार किया। आचार्य श्रीजी

म. सा. वेगूं के निकटस्थ स्थानो को धर्मदेशना से मुखरित करते हुए रामपुरा पधारे । चातुर्मास काल निकट ही था और विभिन्न क्षेत्रों की विनतियो पर द्रव्यक्षेत्रादि की अनुकूलता से विचार करके युवाचार्य श्रीजी म. सा. का सं० १९९१ का चातुर्मास रतलाम निश्चित किया।

युवाचार्य-पद का प्रथम चातुर्मास

विक्रम स० १९९१ का चातुर्मास रतलाम हुआ ।

यद्यपि पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म० सा० के साथ आपश्री का पहले भी रतलाम मे पदार्पण हुआ था और स० १९ ४, १९७८ मे चातुर्मास समय भी यही व्यतीत किया था। लेकिन युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित होने के पश्चात का यह प्रथम चातुर्मास होने से विशेष उल्लेखनीय है ।

पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी म. सा की सम्प्रदाय के बड़े-बड़े महोत्सवो के मनाने से महनीय एव पूज्यो के पादपद्मो से पवित्र, प्रभावक पवचनो से प्रभावित पुण्यस्थली रतलाम— रत्नपुरी मे युवाचार्य पद-प्राप्ति के पश्चात चरितनायक जी का प्रथम पदार्पण रतलाम के लिये गौरव की बात थी । उसे सदैव पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी म सा. की पाट-परम्परा के प्रमुखो की देशना-प्राप्ति मे अधिकतर प्रथम स्थान प्राप्त हुआ है ।

युवाचार्यश्री वर्षावास हेतु यथासमय रतलाम पधार गये । जनता मे जय-जय घोषो मे सरलात्मा, सयमनिष्ठ, सन्तशिरोमणि, श्रमणोत्तम का ससम्मान स्वागत करते हुए नगर मे प्रवेश कराया । सन्त-मुनिराजों के साथ युवाचार्यश्री का प्रवचन स्थल पर पदार्पण हुआ । प्रवचन प्रारम्भ हुये । जिनमें विरासत से प्राप्त शाश्वत सत्य को हित-मित वाणी मे व्यक्त कर विवेक को विकसित करने की बलवती प्रेरणा दी ।

प्रतिदिन होने वाले प्रवचनो से भविकजनो के भावों में आत्मा का संगीत गुनगुनाने लगा । हृदय की कोण मे आत्म-शक्ति केन्द्रित होने लगी । आत्ममथन से उद्भूत वाणी आध्यात्मिक, लौकिक, पारलौकिक

प्रश्नो का सम्यक् समाधान कर भौतिक पाश से प्रताडित मानवजाति को नई चेतना से अनुप्राणित करने लगी। जैनागमो के अगम्य आशय सरल सुबोध भाषा मे प्रतिपादित होने लगे।

भव्यात्माओ ने आपश्री की माधुर्यमयी वाणी का महत्त्व समझा। शुद्धि और सिद्धि, जीवन का सत्य, धर्म का मर्म, मानव की मानवता और तत्त्वचिन्तन आदि की झाकिया प्राप्त की। जो आज भी हमारे मनो मे गूज रही है कि आत्मा के सम्बन्ध मे मनन और चिन्तन करना ही हमारी जिज्ञासा का चरमबिन्दु है। यही ज्ञान की पराकाष्ठा है। आत्मा को पहचानना ही परमात्मपन को उपलब्ध करना है। जहां से ससार के बदलते हुए भावो का अवलोकन किया जा सके। आत्मस्वरूप को न पहचानने के कारण ही आज ससार मे इतना अज्ञानान्धकार व दुख छाया हुआ है।

आपश्री की इस माधुर्यमयी अमृत वाणी का रसास्वादन करने के लिये दूर-दूर के क्षेत्रो से प्रतिदिन सैकडो अबालवृद्ध जनो का आगमन होता रहता था। आपके उपदेश से प्रभावित होकर अनेक धार्मिक आचार-विचार के श्रद्धालु भाई-बहिनो ने आत्मशुद्धि के लिये तपस्यायें की। अनेको ने स्वधर्मी बन्धुओ के सहायतार्थ एव पारमार्थिक कार्यो मे सहयोग देने के लिये यथाशक्ति दान दिया। जीवदया के कार्यों को सम्पन्न किया एव अपने-अपने जीवन को सयमित बनाने के लिये व्रत पच्चखाण ग्रहण किये। साराश यह कि स्वपर-कल्याण अथवा सर्वोदय के सन्देश को साक्षात करने के लिये तन-मन-धन से सहयोग देने का निर्णय किया तथा जनसाधारण ने भी उपदेशो के श्रवण एवं सयम-वैराग्यमयी वाणी से प्रभावित होकर मास-मदिरा आदि अभक्ष्य पदार्थों के खान-पान का त्याग किया और यथाशक्य नियम-प्रतिज्ञा लेकर जीवन को नैतिक बनाने का लाभ उठाया।

पर्यूषण पर्व धर्माराधना एव सयमसाधना का सुअवसर है। अत. इन पुण्य दिवसो में साधु मुनिराजो ने विविध प्रकार की तपस्यायें

यों एवं श्रावक-श्राविकाओं ने भी बेला, तेला, पचौला, अठाई आदि अनेक प्रकार की तपस्यायें शक्त्यनुसार की। पूर के दिन बिना किसी प्रकार बाह्य दिखावे के पारणे हुए और इन तपस्याओं की स्मृति में सामाजिक सुधार एवं निर्माण के कतिपय महत्त्वपूर्ण निश्चय किये कि जहां कन्या या वर का विक्रय हुआ हो, उस विवाह में न तो सम्मिलित होना और न भोजन करना। मृत्यु-भोज प्रथा भी समाज में कम होती जा रही थी लेकिन कहीं-कहीं हो जाते थे, अतः उनको अपने-अपने क्षेत्रों में पूर्ण रूप से बन्द करने के लिये, उनमें शामिल न होने की प्रतिज्ञायें तो सैंकड़ों में हुईं।

दलित जातियों के उत्थान और उनके नैतिक विकास के लिये पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. की तरह आपश्री भी अपने प्रवचनों में संकेत करते थे। बहुत से अछूत समझे जाने वाले भाई-बहिन भी आपका प्रवचन सुनने आते थे। आप उनको जीवन का वास्तविक उद्देश्य समझा कर सन्मार्ग पर चलने का उपदेश देते और अपने को उच्च कहने वालों के प्रति संकेत करते कि मानव समाज का असीम उपकार करने वालों को अस्पृश्य, घृणास्पद या नीच समझने वाले बन्धुओ! आप अपने को उच्च वर्ण का कहते हो तो समझ में नहीं आता कि उच्चता का अर्थ क्या? क्या उनसे मानवता का व्यवहार न करना ही उच्चता है या मानवता के नाते अपने समान समझना उच्चता है? याद रखो कि यह नीच कहलाने वाले आपके समान प्राणधारी हैं, मनुष्य हैं, इनकी इच्छा, आकांक्षा, अनुभूति आपके समान हैं। इन्हें धिक्कार मत दो। इनका अपमान मत करो।

आपकी वाणी का उच्चवर्ग और अछूतों पर अनूठा प्रभाव पड़ता था और वे अपनी-अपनी कमियों या भूलों को सुधारने की ओर अभिमुख होते थे।

आपश्री के प्रवचनों का लाभ लेने के लिये सुदूर क्षेत्रों से आगत बन्धुओं की यथायोग्य व्यवस्था के लिये रतलाम संघ में भाई-

बहिनो मे अपूर्व उत्साह था। वे अपने उत्तरदायित्व के प्रति इतने सजग थे कि प्रत्येक स्वधर्मी बन्धु के आतिथ्य-सत्कार, व्यवस्था आदि में किसी प्रकार की त्रुटि नही आने देते थे। सभी का एक ही लक्ष्य था कि आगत सज्जनों को किसी प्रकार की परेशानी अनुभव न हो। वे जिस भावना को लेकर आये हैं, उसमे किसी भी रूप से व्यवधान न आये। नवयुवको मे इतना उत्साह था कि स्वधर्मीजनो की सेवा का प्रत्येक कार्य स्वय करने मे अपना गौरव मानते थे।

चातुर्मास का अन्तिम दिवस

दिन के अनन्तर दिन आते रहे और चातुर्मास के चार मास ऐसे बीत गये मानो कल चातुर्मास प्रारम्भ हुआ था और आज उसका अन्तिम दिन आ पहुंचा है। यह अनुभव ही नही हुआ कि चार मास का समय कब सरक गया। लेकिन समय के सरकने के साथ चातुर्मास समाप्ति के पश्चात सन्तो के विहार का दिवस— मार्गशीर्ष कृष्णा १ भी आ पहुंचा। इस दिवस जिधर भी देखो उधर अपार जनमेदनी दृष्टिगोचर होती थी। स्थानीय सज्जनो के अतिरिक्त बाहर से आगत श्रावक-श्राविकाओ की सख्या करीब ५००० की रही होगी। प्रवचन-मडप मे सहस्रो जन थे। लेकिन उनके मुख-मण्डल पर प्रफुल्लता नहीं थी। कुछ उदासीनता झलक रही थी। मनो मे द्वन्द्व चल रहा था कि आज आपश्री का विहार होगा।

अनन्तर वह क्षण भी आ गया जब आपश्री ने सन्तो के साथ विहार किया। विदाई का दृश्य बड़ा ही भावपूर्ण था। उपस्थिति ने जयघोष किया लेकिन उसमे भरे मन की गूज थी। हजारो साथ साथ पैदल चल दिये और सैकडों तो दो-दो, चार-चार मील तक साथ रहे। आप श्री ने कुछ समय रतलाम के आस-पास के क्षेत्रो मे विहार कर पूज्य श्रीजी की सेवा मे पहुचने के लिये मेवाड की ओर विहार कर दिया।

मार्ग के जिन ग्रामो या नगरो मे आप पधारते थे कि वहां के और उनके निकटस्थ प्रदेश वासियो की ओर से दो-चार दिन विराज

कर धर्मामृत का पान कराने की विनतियां होना प्रारम्भ हो जाता था। उनके मनों में 'यस्य देवस्य गंतव्य स देवो गृहमागत' का भाव छलकने लगता था। आपश्री भी समयानुसार दो-चार दिन विराज कर धर्मोपदेश फरमाते थे और सीधी-सादी भाषा में होने वाले आपश्री के उपदेश जनता के अन्तर्मन तक पैठ जाते थे।

आचार्य श्रीजी की सेवा में

आपश्री ने आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. की सेवा में उपस्थित होने के लिये मेवाड की ओर विहार किया था। उधर आचार्य श्रीजी म. सा. का भी चातुर्मास समाप्ति के पश्चात मालवा की ओर विहार हुआ और फाल्गुन शुक्ला चतुर्थी को जावरा पधारे। उसी समय चरितनायक जी मुनिश्री चांदमल जी म. सा. (बड़े) आदि सन्तो सहित जावरा पधार गये और आचार्य श्रीजी के साथ ही नगर-प्रवेश किया। नगरवासियों ने बड़े ही उत्साह और उमंग से अगवानी की।

धर्मप्रवर्तकों के पदार्पण से प्रत्येक स्थल तीर्थ के विरुद को प्राप्त कर लेता है। आचार्य श्रीजी, युवाचार्य श्रीजी एवं अन्यान्य ज्ञान-ध्यान-तप-सलीन सन्त-मुनिराजो के पदार्पण से जावरा नगर तीर्थ बन गया। भव्य जीवों के उत्कर्ष के लिये वीतराग वाणी की देशना गुञ्जरित होने लगी और होली चातुर्मास तक सभी मुनिराजो का जावरा मे विराजना हुआ।

इन दिवसो के अन्तराल मालवा और मेवाड के विभिन्न श्री संघो का आचार्य श्रीजी एवं युवाचार्य श्रीजी के आगामी चातुर्मास की स्वीकृति फरमाने हेतु जावरा मे आगमन हुआ। उनमे देवास श्री संघ की हार्दिक भावना थी कि युवाचार्य श्रीजी म. सा. का आगामी चातुर्मास देवास मे होने की स्वीकृति फरमाई जावे। इससे पूर्व भी समय-समय पर देवास श्री संघ का शिष्टमण्डल आचार्य श्रीजी म. सा. की सेवा मे अपनी विनती लेकर उपस्थित हुआ था और इन चार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को देखते हुए आचार्य श्रीजी म. सा. ने युवाचार्य श्रीजी के

आगामी चातुर्मास (स० १९९२) के लिये देवास श्री संघ को स्वीकृति फरमाई।

मालवा और मेवाड़ के विभिन्न क्षेत्रों मे जैन-दर्शन, आचार-विचार से समृद्ध धर्मोपदेश देते हुए और त्याग-प्रत्याख्यान कराते हुए चरितनायक जी सं० १९९२ के चातुर्मासार्थ देवास पधारे।

देवास पर्वतीय उपत्यका के मध्य बसा हुआ हरा-भरा धन-धान्य सम्पन्न एक सुरम्य नगर है। चारो ओर शात वातावरण, हरे-भरे पर्वतो और दूर-दूर तक खेतो, वनराजि से घिरा होने से तपोभूमि की कल्पना को साकार कर देता है। मध्यभारत के रजवाड़ो में देवास भी एक राज्य था और वहा के राजा छत्रपति शिवाजी के वंशज थे।

देवास श्री सघ चरितनायक जी की प्रतिभा एवं विद्वत्ता से पहले ही परिचित हो चुका था और चातुर्मास की स्वीकृति से उसका उत्साह द्विगुणित हो गया। भव्य स्वागत-समारोह के साथ श्री सघ ने सन्तो का नगर प्रवेश कराया। सन्तो का समागम सत्पुरुषो के लिये प्रेरणादायक होता है।

प्रतिदिन आपके प्रवचन होते थे। घर आई इस प्रवचन-गंगा की पवित्र धारा से पावन होने के लिये यथासमय श्रोताओं का समूह एकत्रित होता, तत्त्वचर्चा के अवसर पर विद्वानो का जमघट लग जाता और त्याग, प्रत्याख्यान करने वालो का तो एक मेला-सा ही जुड़ा रहता था।

इसका लाभ सिर्फ साधारण जन ही लेते हो सो बात नही थी। श्रोताओ एव जिज्ञासुओ मे राज्य के उच्च पदाधिकारियो की उपस्थिति भी उल्लेखनीय रहती थी। आपके उपदेश, आचार-विचार का विवेचन सबके लिये समान रूप से हितकर था एव उसे श्रवण करने का अधिकार भी सभी के लिये सुलभ था। किसी वर्ग या जातिविशेष तक उपदेश सीमित नही थे। जो भी आता, उपदेश सुनता और अतर् मे एक नई चेतना, नई स्फूर्ति एव प्रेरणा प्राप्त कर लौटता था।

आपके प्रवचनों का इतना व्यापक प्रभाव हुआ कि अनेक राज्याधिकारियो, सरदारो ने मद्य-मांस आदि अभक्ष्य भक्षण आदि के कुव्यसनो का त्याग कर दिया। उनका ऐसा करना कोई आश्चर्य की बात नही थी। जहां पर भी प्रभावशाली और सहृदय सन्त विराजमान होते है, वहा ऐसी बातें होना सहज ही है। मानव मात्र मे उज्ज्वल आत्मा विद्यमान है और उसकी उज्ज्वलता का प्रकाशन भी करना चाहता है। लेकिन योग्य संयोग पाकर ही सफलता प्राप्त होती है।

आपश्री के देवास विराजने से बहुत उपकार हुए। दया, पोषध, उपवास आदि तपस्याये बडी सख्या मे हुई। सक्षेप मे कहा जाये तो आपश्री का यह चातुर्मास सब प्रकार से सफल हुआ।

व्यवस्थापकीय अधिकार-प्राप्ति

चरितनायक जी का स० १९९२ का चातुर्मास देवास था और पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. चातुर्मासार्थ रतलाम मे विराजमान थे। इस प्रकार दो-दो सन्त-शिरोमणियों की धर्मदेशना से मालव-मेदनी मे मधुरता का प्रसार हो रहा था। दोनो महान थे और उनके महान उपकारी मनोहर मगल वचनो को सुनकर मुमुक्षु मानवीय आत्माओं को मनन-चिन्तन के लिये नित नूतन अनुभूतिया प्राप्त होती थी।

दोनो महान अनुपमेय थे। यदि एक सूर्य था तो दूसरा चन्द्रमा। यदि एक संघ-शिरोमणि था तो दूसरा सयम-शिरोमणि। यदि एक तेजस्वी था तो दूसरा ओजस्वी। यदि एक सगठन का प्रस्तावक था तो दूसरा उसका प्रतीक। यदि एक दीपक था तो दूसरा उसकी दीप्ति। यदि एक जीवन का साहित्य था तो दूसरा उसका भाष्य। एक त्यागी था तो दूसरा संयमी। यदि एक सस्कृति का रक्षक था तो दूसरा उसका प्रसारक। इस प्रकार दोनो अपने-अपने रूप में महान थे और अपनी महानता मे मालवमेदनी के मानवता की विवेचना करते हुए मुमुक्षुओं को प्रतिबोधित कर रहे थे।

चरितनायक जी युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित हो गये थे, लेकिन

अभी तक पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. स्वयं संप्रदाय के चातुर्मास, विहार, प्रायश्चित आदि की व्यवस्था का भार संभाल रहे थे। आचार्य श्रीजी को युवाचार्यश्री की प्रतिभा, प्रबन्धपटुता से सन्तोष था और चतुर्विध सघ की आशा के केन्द्र-बिन्दु हो चुके थे। आचार्य श्री का मनोमंथन चल रहा था कि अब युवाचार्य जी को सघीय व्यवस्था का दायित्व सौंप दूं, जिससे सम्बन्धित अनुभव हो जायेगा और जो भविष्य के लिये सुविधाजनक रहेगा।

आचार्य श्रीजी ने अपने विचारो को मूर्तरूप देने के लिये स० १९९२, आसोज कृष्णा ११, सोमवार, दि० २३ सितम्बर ३५ को प्रवचन के अवसर पर युवाचार्य श्री को अधिकार प्रदान करने की घोषणा करते हुए अपना अनुभव व्यक्त किया कि सघ-व्यवस्था सम्बन्धी जिम्मेदारी आते ही पूज्य श्री श्रीलाल जी म सा. स्वर्ग सिधार गये और अचानक सप्रदाय की समग्र व्यवस्था का भार मुझ पर आ पडा। तब मुझे अनुभव हुआ कि अगर पूज्य श्री की मौजूदगी मे ही मैं कार्य करने लगा होता तो यह अकस्मात आया हुआ भार मुझे दुस्सह प्रतीत न होता। इसी अनुभव से मेरी वृद्धावस्था ने मुझे प्रेरित किया है कि प्राप्त अवसर का उचित उपयोग कर लिया जाये। तदनुसार आज मैं चतुर्विध सघ की उपस्थिति मे संप्रदाय का कार्यभार जैसे दड-प्रायश्चित देना, चातुर्मास निश्चित करना, सघ-व्यवस्था सम्बन्धी अन्य कार्य आदि-आदि युवाचार्य श्री गणेशलाल जी को सौंपता हूँ। साथ ही यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि सघ-व्यवस्था सम्बन्धी कार्य सौंप देने का कोई यह आशय न समझे कि मैं व्याख्यान देना बन्द करके मौनग्रहण कर लूंगा। कुछ भाइयो का ऐसा ख्याल है। लेकिन सघ-व्यवस्था सम्बन्धी कार्य सौंपना अलग है और व्याख्यान देना अलग है।

अनन्तर आचार्य श्रीजी की आज्ञा से मुनि श्री जौहरीमल जी म सा ने युवाचार्य श्रीजी को सघ-व्यवस्था सम्बन्धी कार्यभार सौंपने विषयक आचार्य श्रीजी का निम्नलिखित अधिकारपत्र पढकर सुनाया—

'सम्प्रदाय के आज्ञावर्ती सन्त श्री बड़े प्यारचन्द जी म. आदि सन्तो, रगूजी महासती जी की सप्रदाय की प्रवर्तनी जी आनन्दकवर जी आदि आज्ञावर्ती सतिया, मोताजी महासती जी की सम्प्रदाय की प्रवर्तनी जी केशरकवर जी, महताबकंवर जी आदि उनकी सब सतिया एव खेतांजी महासती जी की सम्प्रदाय की प्रवर्तनी जी राजकु वर जी आदि उनकी सब सतिया, उसी तरह पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी महाराज की सम्प्रदाय के हितेच्छु सब श्रावकों और श्राविकाओ से मेरी यह सूचना है कि—

१—अखिल भारतवर्षीय श्री सघ और मैंने श्री गणेशलाल जी को सम्प्रदाय के युवाचार्य पद पर स्थापित कर दिया है।

२—अब मै अपनी वृद्धावस्था व आन्तरिक इच्छा से प्रेरित होकर आपको सूचित करता हूँ कि मेरे पर जो सम्प्रदाय की जिम्मेदारी है अर्थात् सारणा, वारणा करना, सब सन्त सतियो को आज्ञा मे चलाना, सम्प्रदाय सम्बन्धी कार्यो की योजना करना एव सम्प्रदाय सम्बन्धी नियमों का पालन करने के लिये संघ को प्रेरित करना आदि यह सब कार्यभार अब मैं युवाचार्य श्री गणेशलाल जी के ऊपर रखता हूँ। अतः आप चतुर्विध सघ आज से सम्प्रदाय के कुल कार्य की देखरेख, पूछताछ, आज्ञा लेना आदि सब कार्य उन्हीं से लेवें। मैं आज से सम्प्रदाय का पूर्ण अधिकार उन्ही को देता हूँ। केवल मेरी सेवा मे जिन्हें उचित समझूंगा, उन सन्तो को अपने पास रखूंगा और उन सन्तों पर मेरी देख-रेख रहेगी।

३—आप श्री संघ ने मेरी आज्ञा, धारणा मानकर जैसा मेरा गौरव रखा है, वैसा ही युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म. का भी रखेंगे, यह मेरे को पूर्ण विश्वास है। युवाचार्य श्री गणेशलाल जी भी श्री संघ के विश्वासपात्र हैं। अतएव श्री संघ ने इन्हें युवाचार्य पद प्रदान किया है। इसलिये इस विषय में मुझको विशेष कुछ कहने की

आवश्यकता नही है।

४—युवाचार्य श्री गणेशलाल जी के प्रति मेरी हार्दिक सूचना है कि अब आप सम्प्रदाय के पूर्वजो के गौरव को ध्यान में रखते हुए सम्प्रदाय का और श्री सघ का कार्य विवेक के साथ इस प्रकार करें कि जिससे श्री सघ सतुष्ट होकर किसी प्रकार की त्रुटि का अनुभव न करे।

श्री शासनाधीश श्रमण भगवत महावीर स्वामी एवं शासन श्रेयस्कर श्रीमन् हुक्ममुनि आदि पूज्यपाद महानुभावो के तपोमय तेज प्रताप से श्री युवाचार्य गणेशलाल जी इस विशाल गच्छ को सुचारु रीति से चलाकर पूर्वजों के यशः शरीर की रक्षा करते हुए शोभा बढ़ायेंगे, ऐसा मेरा ही नही श्री सघ का भी पूर्ण विश्वास है।

ॐ शाति: शांति: शाति.

आचार्य श्रीजी की उक्त घोषणा से चतुर्विध सघ के हर्ष का पार न रहा। जहां तहां धन्य-धन्य की ध्वनि गूज उठी। आचार्य श्री ने रतलाम मे ही अपने दायित्वो का हस्तान्तरण करना क्यों उचित समझा? इसके बारे मे हमारा अनुमान है कि पूज्य श्री ने यहीं पर युवाचार्य पद के दायित्वो की प्राप्ति की थी और साधु की मर्यादा हैं कि जो वस्तु जहा से ली जाये या लाई जाये उसे कार्यपूर्ति के बाद उसी स्थान पर लौटा देना चाहिये। सम्भवत. इसीलिये उन्होंने अपने दायित्वों की धरोहर चतुर्विध संघ के समक्ष रतलाम मे लौटा देने का निर्णय किया हो।

आचार्य श्रीजी के घोषणापत्र को लेकर रतलाम श्री संघ के प्रमुख-प्रमुख अग्रणी श्रावक युवाचार्य श्रीजी की सेवा मे देवास उपस्थित हुए और चतुर्विध संघ के समक्ष आचार्य श्रीजी की घोषणा के बारे मे विस्तृत जानकारी दी। सभी ने इस के प्रति अपना उल्लास

व्यक्त किया और गौरव माना ।

घोषणा विषयक समाचारो को सुनकर युवाचार्य श्रीजी के मुख-मण्डल पर गम्भीरता झलक उठी और अपनी शक्ति की तुलना करने लगे । लेकिन 'गुरोराज्ञा बलीयसी' के प्रति श्रद्धाशील आप आदेश को शिरोधार्य कर सयम-साधना के साथ-साथ सघ-साधना के विस्तृत राजमार्ग पर विवेक एवं पूर्व महापुरुषों के अनुभवो के सहारे अग्रसर हुए ।

मेवाड की ओर

विविध प्रकार के धार्मिक समारोहो, त्याग, तपस्याओ से आपश्री का देवास चातुर्मास सानन्द सम्पन्न हुआ । चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर देवास व देवास के निकटस्थ श्री सघो ने भावभीनी विदाई दी । कुछ दिन आस-पास के क्षेत्रो मे विहार करने के पश्चात आपने आचार्य श्रीजी की सेवा में उपस्थित होने के लिये रतलाम की ओर विहार किया । आचार्य श्रीजी म. सा. रतलाम से विहार कर सैलाना पधारे । परन्तु वहा कान मे पीडा हो जाने से वापिस उनका रतलाम पदार्पण हुआ । उपचार से पीडा के शात हो जाने के पश्चात युवाचार्य श्री आदि १४ सन्तो के साथ जावरा, मंदसौर, निम्बाहेडा भीलवाडा, गुलाबपुरा, विजयनगर आदि-आदि क्षेत्रो को स्पर्शते हुए ब्यावर पधारे ।

उन्ही दिनों पूज्य श्री हस्तीमल जी म सा. ने मारवाड मे विचरण करते हुए पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा से मिलने की इच्छा प्रकट की । तदनुसार अजमेर आदि क्षेत्रो में विहार करते हुए पूज्य श्री हस्तीमल जी म. सा जेठाणा पधारे और पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा, युवाचार्य श्री गणेशलालजी म. सा आदि ठाणा ११ भी ब्यावर से विहार कर जेठाणा पधार गये । वहां दोनों आचार्यों का मिलन हुआ और तात्विक चर्चा वार्ता होती रही । इस सुअवसर का श्रावक-श्राविकाओ ने लाभ उठाया और अनेक श्री संघों की ओर से सम्मिलित चातुर्मास करने की विनतियाँ हुईं, लेकिन पूज्य

आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा की सेवा में काठियावाड के श्री सघो की ओर से काठियावाड पधारने की विनती होने से और पूज्य श्री हस्तीमल जी म सा द्वारा जयपुर फरसने का संकेत वहा के श्री सघ को दिये जाने से सम्मिलित चातुर्मास होने की सम्भावना न बन सकी।

काठियावाड़ के श्री सघो की ओर से श्री चुन्नीलाल नागजीभाई वोरा राजकोट निवासी पुनः उधर के श्री संघो की सम्मिलित विनती लेकर पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. की सेवा मे उपस्थित हुए और उस ओर पदार्पण करने की स्वीकृति चाही। आचार्य श्री जी ने युवाचार्य श्रीजी आदि सन्तो से विचार-विमर्श कर काठियावाड़ की ओर विहार करने का श्री वोरा जी को आश्वासन दे दिया।

काठियावाड को लक्ष्य कर आचार्य श्रीजी म सा पाली आदि क्षेत्रो को फरसते लाडेराव साडेराव पधारे। यहा तक युवाचार्य श्रीजी आदि सन्त भी साथ थे। युवाचार्यश्री ने काठियावाड की ओर पदार्पण कराने के लिये आचार्य श्रीजी म सा आदि ठा ६ को भावांजलि अर्पित करते हुए विदाई दी और वरद आशीर्वाद के रूप मे आचार्य श्रीजी म. सा की मगल कामनाये प्राप्त कर आपश्री ने अन्य मुनि-राजो के साथ मेवाड़ की ओर विहार कर दिया। उस समय का दृश्य ऐसा प्रतीत हो रहा था कि धर्मदेशना का पीयूषवर्षी प्रवाह विशाल जनमेदनी को समृद्ध, सम्पन्न बनाने के लिये दो धाराओ में प्रवाहित हो रहा है।

चरितनायक जी अपने विहार से मेवाड़ वसुन्धरा को महाप्रभु महावीर के महनीय उपदेशो से पवित्र करने लगे। मेवाड़ मे शौर्य था, सरलता थी, आत्मीयता थी लेकिन शिक्षा का यथेच्छ प्रसार न होने से वहा के निवासियो के आचार-विचार रूढियो और अन्धश्रद्धा से आवृत थे। कन्याविक्रय, वरविक्रय, वाल-वृद्ध-विवाह, मृत्युभोज आदि-आदि कुरूढ़ियो ने जन जीवन को आक्रान्त कर रखा था। जनता इस तथ्य से अनभिज्ञ-सी थी कि ज्ञानविहीन धर्माचरण हाथी के स्नान की तरह

है । अतः आपश्री अपने प्रवचनों में इन विषयों पर प्रभावक संकेत करते थे । जिनका श्रोताओ पर प्रभाव पडता था और अब तक जहां व्यावहारिक जीवन को ही महत्त्व देने की स्थिति चल रही थी, वहां लोगो ने व्यावहारिक जीवन मे धार्मिकता का मूल्याकन किया तथा धर्म को मुख्यता देने लगे ।

इस प्रकार मेवाड की जनमेदनी को जीवन की यथार्थता से परिचित कराते हुए चरितनायक जी ने सं० १९९३ के चातुर्मास हेतु मेवाड़ के मुख्य नगर उदयपुर मे पदार्पण किया और आबालवृद्ध नगरवासियो ने अगवानी करके अपने को धन्य माना ।

चातुर्मास समय मे आपके उपदेशो से जनता मे धर्म, नीति, और सत् आचार-विचारों के सस्कारो का सिंचन हुआ और आपश्री नितनूतन शास्त्रो का अवलोकन करते, विविध दार्शनिक विचारों का तुलनात्मक शैली से अध्ययन कर विवेचन की गहराई तक पहुंचते हुए 'ज्ञान-ध्यान-तपोरक्ततपस्वी स प्रशस्यते' की उक्ति को चरितार्थ कर रहे थे ।

आपश्री की धर्मदेशना का लाभ उठाने के लिये श्रोताओ की उपस्थिति काफी सख्या में होती थी एवं प्रतिभा और आत्मानुभूति मे समृद्ध आपश्री की वाणी ने श्रोताओ को अपनी ओर आकर्षित कर लिया था और आपका उपदेश सुनने के लिये लोगों मे उत्सुकता बनी रहती थी ।

पूर्व भव का सस्कार कहिये या ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम कहिये, चरितनायक जी की यशदुन्दुभी चतुर्दिक् मे गूंज उठी । आपके उपदेशो मे प्रभावित होकर अनेको ने यावज्जीवन के लिये कुव्यसनो का त्याग कर दिया । जनसाधारण ही नहीं, किन्तु राज्य के उच्च-से-उच्च पदाधिकारी भी आपकी प्रवचनवाणी श्रवण का अवसर नहीं चूकते थे । आप जो कुछ भी कहते थे, वह जनता की भाषा में जनता के लिये था और जो कहते थे तदनुसार करनी में भी उतारते थे, अतः सभी को अपने ही जीवनोपयोगी बात लगती थी । ज्ञान और सयम का सुन्दर

सोने मे सुगन्ध की उक्ति को चरितार्थ कर रहा था। इसी कारण राजा और रंक, समान रूप से आपके प्रति अटूट श्रद्धा-भक्ति प्रदर्शित करते थे।

संघव्यवस्थापक की दृष्टि से आप युवा थे, इसीलिये आप युवाचार्य पद पर विभूषित माने जाते थे लेकिन अनुभव, ज्ञान, चिन्तन-मनन की दृष्टि से प्रौढ थे। आपकी इस प्रौढ़ता की परीक्षा के लिये अनेक व्यक्ति विविध विचारो, दृष्टिकोणो को लेकर सेवा मे उपस्थित होते थे, अतः बच्चो को बच्चो की बोली मे, युवको को युवकों की शैली मे और वूढ़ो को वूढो की भाषा में समझकर समाधान करते थे। एतदर्थ सभी आभार मानते हुए श्रद्धावनत होते और अपने को धन्य मानते थे।

चातुर्मास आशातीत सफलता से समाप्त हुआ। लेकिन इसके पूर्व ही विभिन्न श्री सघों की ओर से अपने-अपने क्षेत्रों में पधारने, आगामी वर्ष का वर्षावास विताने के लिये विनतिया होनी प्रारम्भ हो गई थी। लेकिन ऐसा सम्भव नही था कि सभी को स्वीकृति दी जा सके। अत आप उनके वारे मे मौन रहकर समयानुसार फरसने के विचारो मे मग्न रहते थे। चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर उदयपुर निवासियो ने भरे हुए हृदयों से आपको विदाई दी।

मारवाड़ के मुख्य केन्द्र : बीकानेर में

श्रद्धेय आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा. की भावना थी कि युवाचार्य श्री उन सभी क्षेत्रो का विहार कर लें जिनमें श्रद्धालु श्रावको की गृह सख्या अधिक है। इस भावनानुसार आपश्री ने मेवाड, मारवाड के विभिन्न स्थान स्पर्शे।

पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी म सा के श्रद्धालु श्रावको की सख्या मारवाड मे अधिक है और बीकानेर उनका प्रमुख केन्द्र माना जाता है। युवाचार्य पदवी प्राप्ति के पश्चात अभी तक बीकानेर की ओर आपका पदार्पण नही हुआ था और वहा के श्री साघ की हार्दिक भावना थी कि युवाचार्य श्रीजी बीकानेर में चातुर्मास काल मे विराज कर दर्शन, प्रवचन-श्रवण, सेवा-भक्ति का सुअवसर प्रदान करें। इसके लिये समय-

समय पर आचार्य श्रीजी म. सा. एव आपश्री की सेवा मे विनती लेकर बीकानेर सघ उपस्थित होता रहा था और सौभाग्य से उदयपुर चातुर्मास समाप्ति के पश्चात आपश्री का मारवाड़ की ओर विहार हुआ।

मारवाड़ की ओर विहार होने से बीकानेर श्री सघ को आशा बंधने लगी कि बीकानेर को आपके चातुर्मास का सौभाग्य अवश्य ही प्राप्त होगा और प्रत्येक स्थान पर पुन.-पुनः अपनी विनती आपश्री की सेवा में प्रस्तुत की। परिणामतः स० १९९४ का चातुर्मास बीकानेर मे करने की स्वीकृति प्राप्त हो गई। इस स्वीकृति से बीकानेर और आस-पास के श्रावक-श्राविकाओ के हर्ष का पार न रहा।

यद्यपि आपश्री का आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. के साथ पहले बीकानेर मे पदार्पण हो चुका था, लेकिन उस समय आपकी विद्वत्ता, महत्ता, प्रभावकता और तेजस्विता का समग्र परिचय श्रोताओ को प्राप्त नही हो सका था। यद्यपि आपके यशसौरभ से यह क्षेत्र व्याप्त था लेकिन सौरभ के केन्द्र को निकट से देखने का यह प्रथम अवसर ही प्राप्त हो रहा था। यही कारण था कि जब सन्त-मण्डल सहित आपश्री ने बीकानेर राज्य की सीमा में पदार्पण किया तो बीकानेर मण्डल के श्रद्धाशील भव्य, भावुक भक्त आबालवृद्ध नर-नारीगण आपके दर्शन एव अगवानी के लिये उमड़ पड़े।

शनैः-शनैः आपके चरण बीकानेर की ओर बढ़ रहे थे लेकिन अब तो बीकानेर और आपश्री के बीच क्षेत्रकृत दूरी ही शेष रह गई थी। यदि आप जंगल में विश्राम लेते थे तो वही बीकानेर बन जाता जाता था, कोई गांव पड़ता तो बीकानेर बन जाता और कोई चौराहा पड़ता तो बीकानेर दिखता। जहा भी देखो वहीं बीकानेर वासी ही दिखलाई देते थे। बीकानेर के एक होने पर भी 'एकोऽहं बहुस्याम्' की प्रतीति कराता था।

चातुर्मास प्रारम्भ होने का समय सन्निकट आ गया था और आपश्री बीकानेर के निकटस्थ देशनोक ग्राम में पधारे तो वहां के वासियों

के अनुयायी कहलाने के गौरवान्वित नाम के गौरव को और अधिक वढाइये। यह वाहर का वैभव वाहर और अन्दर दोनों को डुवाने वाला है। अत: अन्दर के वैभव को वढाइये और उसको समृद्ध कीजिये और उस रोशनी की मशाल फिर से ऊपर उठाइये तो आप देखेंगे कि आपकी उन्नति का निष्कंटक पथ स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

वस्त्राभूषणो से अलंकृत, वाह्य वैभव से समृद्ध, हवेलियो के निवासी श्रावक-श्राविकाओ ने संयम, तप, त्याग के आतरिक वैभव से अलकृत ज्ञानसमृद्ध सन्त के प्रभावक अर्थगम्भीर प्रवचन को सुना और मनोमथन द्वारा तदनुसार जीवन मे परिवर्तन लाने का निर्णय किया। क्योकि मानवीय जीवन का उद्देश्य अन्धकार से प्रकाश की ओर वढ़ते जाना है और चरम विकास के रूप मे एकदिन स्वय के जीवन को परम प्रकाशमय वना लेना है। यदि उच्चता की ओर वढना है और भारहीन होना है तो इस भौतिक भार को जिसे अपना मान रखा है, अवश्य परित्याग कर देना चाहिये।

योग्य क्षेत्र और उचित समय पर वोये गये बीज अंकुरित होकर जैसे पल्लवित होते हैं, वैसे ही इन सन्तप्रवर के यह वाणी-बीज भी यथासमय अकुरित हुये और कालान्तर में अनेक श्रावक-श्राविकाओ ने वैभव को शक्त्यनुसार मर्यादित करने के नियम, व्रत, प्रतिज्ञा ली।

वीकानेर विवेक-वैभव से भी समृद्ध है। उसने प्रथम दिन के प्रथम प्रवचन में ही आपश्री की प्रतिभा को परख लिया और प्रमोद व्यक्त करते हुए कहा कि युवाचार्य श्री यथानाम तथागुण के प्रतीक वन योग्य गुरु के सुयोग्य शिष्य सिद्ध होंगे। उसने परखा था कि आप श्रमण-धर्म के साक्षात रूप हैं। उसने आप मे देखे ते श्रमणत्व के तीनो रूप — श्रमण, समन और शमन। आप आन्तरिक शत्रुओ— कर्मों एव मनोविकारों को नष्ट करने हेतु श्रमसाधना— तपसाधना के लिये सदैव तत्परता रहते थे। आपका आचार आत्मवत् सर्वभूतेपु का साकार रूप था और कुविचारो और कुवृत्तियो का शमन करने की सावना के प्रति

सतत जाग्रत थे।

जहा साधु-सन्तो, महापुरुषों का आगमन होता है तो उनके आचार-विचार का प्रभाव अन्यान्य साधारणजनो पर भी पड़ता है और तदनुरूप जीवन व्यवहार बनाने की प्रेरणा लेकर वे साधना मे रत हो जाते हैं। आपश्री प्रतिदिन प्रवचनो मे आगमानुकूल विवेचन के साथ राष्ट्रधर्म, नारी-जागरण, हिंसाजनक व्यापारो का निषध, सादगी और सरलता आदि विषयो पर अधिकार पूर्ण भाषा मे प्रकाश डालते थे। जैनसिद्धान्तो एव आगमसाहित्य की सर्वांगीणता के बारे मे आपकी धारणा बहुत उच्च थी और उसके अध्ययन-मनन पर विशेष भार दिया करते थे। एतद् विषयक आपके विचारो को समझने के लिये समय-समय पर हुए प्रवचनो मे से सम्बन्धित एव महत्त्वपूर्ण अंश सग्रहीत करके यहा प्रस्तुत कर रहे हैं—

जिन महापुरुषो ने अपने जीवन मे उच्चतम विकास प्राप्त किया है, उन्होंने अपने ज्ञान और अनुभव के सफल सयोग से उत्थान की जो ठोस बातें बताई वे ही आज हमारे सामने शास्त्रोक्त सिद्धान्तो के रूप मे उपस्थित हैं। शास्त्रो की पूर्ण प्रामाणिकता, वास्तविकता एवं वैज्ञानिकता मे अटल व अटूट विश्वास करने का यही कारण है कि इनके निर्माताओ का ज्ञान व अनुभव उतना ही विशाल, सजग एव सुदृढ था। इसीलिये हजारो वर्ष बाद भी वह शास्त्रोक्त ज्ञान हमे हमारे घनान्धकार मे प्रकाश की ओर उन्मुख करने मे ज्योतिमय प्रेरणा प्रदान करता रहता है।

प्रधानतया धार्मिक सिद्धान्तो का लक्ष्य आत्मविकास करना होता है। इसलिये ज्ञान, वैराग्य, तप आदि वैयक्तिक साधना के साधनो का इसमे सविस्तार वर्णन भी होता है। इन सिद्धान्तों की कसौटी भी यही है कि कौन सिद्धान्त विकास के लिये कितनी बलवती प्रेरणा दे सकता है और पतन के समय उसे आधार बन सत्य मार्ग पर ले आता है। इस दृष्टि से मैं कहना चाहूँगा कि जैन सिद्धान्त स्वभाव से सूक्ष्म-

सोने मे सुगन्ध की उक्ति को चरितार्थ कर रहा था। इसी कारण राजा और रंक, समान रूप से आपके प्रति अटूट श्रद्धा-भक्ति प्रदर्शित करते थे।

सघव्यवस्थापक की दृष्टि से आप युवा थे, इसीलिये आप युवाचार्य पद पर विभूषित माने जाते थे लेकिन अनुभव, ज्ञान, चिन्तन-मनन की दृष्टि से प्रौढ थे। आपकी इस प्रौढता की परीक्षा के लिये अनेक व्यक्ति विविध विचारो, दृष्टिकोणो को लेकर सेवा मे उपस्थित होते थे, अत. बच्चो को बच्चो की बोली मे, युवको को युवको की शैली मे और बूढो को बूढो की भाषा मे समझकर समाधान करते थे। एतदर्थ सभी आभार मानते हुए श्रद्धावनत होते और अपने को धन्य मानते थे।

चातुर्मास आशातीत सफलता से समाप्त हुआ। लेकिन इसके पूर्व ही विभिन्न श्री सघो की ओर से अपने-अपने क्षेत्रो में पधारने, आगामी वर्ष का वर्षावास बिताने के लिये विनतियां होनी प्रारम्भ हो गई थी। लेकिन ऐसा सम्भव नही था कि सभी को स्वीकृति दी जा सके। अत: आप उनके बारे मे मौन रहकर समयानुसार फरसने के विचारो मे मग्न रहते थे। चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर उदयपुर निवासियो ने भरे हुए हृदयो से आपको विदाई दी।

मारवाड़ के मुख्य केन्द्र : बीकानेर में

श्रद्धेय आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा की भावना थी कि युवाचार्य श्री उन सभी क्षेत्रो का विहार कर लें जिनमे श्रद्धालु श्रावको की गृह सख्या अधिक है। इस भावनानुसार आपश्री ने मेवाड, मारवाड के विभिन्न स्थान स्पर्शे।

पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी म सा के श्रद्धालु श्रावको की सख्या मारवाड मे अधिक है और बीकानेर उनका प्रमुख केन्द्र माना जाता है। युवाचार्य पदवी प्राप्ति के पश्चात अभी तक बीकानेर की ओर आपका पदार्पण नही हुआ था और वहां के श्री सघ की हार्दिक भावना थी कि युवाचार्य श्रीजी बीकानेर मे चातुर्मास काल मे विराज कर दर्शन, प्रवचन-श्रवण, सेवा-भक्ति का सुअवसर प्रदान करे। इसके लिये समय-

से विश्वास करता है। उसका त्याग अनेक रूप में प्रगट होता है। दीन-दुःखी की आततायी से रक्षा के लिये अपना सर्वस्व त्याग करने में उसे भिझक नहीं होती है। त्याग का साक्षात रूप उपस्थित कर देना ही उसके जीवन की सबसे बड़ी अभिलाषा होती है।

लेकिन आज उन क्षत्रिय वंशजों में बनियापन दिख रहा है। त्याग का स्थान संग्रह ने ले लिया है और उस पर ममत्व भाव रखकर स्वामित्व जता रहा है। इस कारण अनेक बुराइयां घर करती जा रही हैं। दुनिया में चारों ओर देखा जाता है कि सम्पत्ति पर व्यक्ति का स्वामित्व होने से सैंकड़ों प्रकार से कलह एवं झगड़ों की उत्पत्ति होती रहती है। इस सारी विषमता और कलुषिता से त्राण पाने एवं समाज में सुव्यवस्था के साथ आत्मा की उन्नति करने का अबाध-मार्ग है असंग्रह भाव — भगवान महावीर द्वारा प्ररूपित अपरिग्रहवाद। जिसकी ओर आप लोगों का ध्यान जागे और उस मार्ग पर चलें तथा इसका प्रकाश सारे संसार में फैलायें। यह आज के युग की मांग है।

आप एक ओर बड़ी-बड़ी तपस्यायें करते हैं और दूसरी ओर परिग्रह के पीछे पड़े रहते हैं। तो क्या यह उस तपस्या को लज्जित करना नहीं है? निष्परिग्रही महावीर के अनुयायियों का यह कार्य क्या स्वयं महावीर को लज्जित करने जैसा कार्य नहीं है?

यदि त्याग और अपरिग्रह के क्रियात्मक रूप को आप अपने जीवन में उतारें तो आप अपने जीवन में आनन्द का अनुभव करेंगे ही— साथ ही सारी दुनिया में एक नई रोशनी, नया आदर्श उपस्थित कर सकेंगे। क्योंकि अपरिग्रह का सिद्धान्त चारित्र एवं संयम की आधार-शिला पर नागरिकों को खड़ा करके पनपने का अवकाश देगा।

इसलिये मैं आपसे कहता हूँ कि आप अपरिग्रह बनिये। अपने बनियापन के विचारों को अपने हृदय से निकाल दो। आपकी सम्पत्तियों में नहीं सुख [illegible] तो त्याग को अपना आदर्श मानना है। उठो! तुम्हारे बिना बेचारा जगत भी क्या करेगा? महावीर

ने अन्यान्य स्थानो से आगत सज्जनो बहुत दूर तक सामने जाकर अगवानी करते हुए स्वागत किया और अपनी भावना को सफल बनाया।

देशनोक से विहार कर आपश्री बीकानेर पधारे। नगर की सीमा पर स्थानीय गणमान्य सज्जनो के साथ जन-साधारण ने स्वागत किया। जिधर देखो उधर ही चहल-पहल दृष्टिगोचर होती थी। वातावरण में रमणीयता प्रतीत होती थी। उस समय का वर्णन कल्पनागम्य है। लेकिन उसके लिये इतना ही सकेत पर्याप्त है कि उमगो से महकते मानव मनो मे माननीय के आगमन से असीम उत्साह था। जिसे कोई जय-जय के घोषो से व्यक्त कर रहा था तो कोई गीतो के सुर मे। कोई वदन से अभिनन्दन करता तो कोई चरणो में नमन करता। बालको ने तो अपनी भक्ति की अभिव्यक्ति का एक अनूठा ही तरीका अपनाया था। वे पक्तिबद्ध टोली के रूप मे आगे-आगे चलते हुए अपने सलौने स्वरो से दिग्मण्डल को मुखरित कर रहे थे—

हम लाये हैं इन पूज्य को, अपने ही प्रेम से।
पायेंगे धर्म लाभ को, सुन लो ये ध्यान से।

उनके इस कार्य से प्रेरणा लेकर जन-समूह ने एक जुलूस का रूप ले लिया। जिसमें सबसे आगे उछलता-कूदता शिशुसमूह, मध्य में सन्त-मण्डल और पश्चात श्रावक-श्राविकाओ का समूह था।

नगर के मुख्य-मुख्य मार्गों से होता हुआ जुलूस चातुर्मासकाल मे सन्तो के विश्रामार्थ बिराजने वाले स्थान पर आया और प्रवचन-सभा के रूप मे परिवर्तित हो गया एवं चरितनायक ने प्रासगिक प्रवचन फरमाया। जिसके भाव थे—

मित्रो! तुम क्षत्रिय वंशज हो। वीर क्षत्रिय वश ने अपने कर्तव्य मे रत रहकर केवल अपने ही वश का नही, वरन चारो ही आश्रमो को देदीप्यमान कर दिया था। देवाधिदेव तीर्थंकरो ने क्षत्रिय वश मे जन्म लिया था और आप उनके ही अनुयायी हो। क्षत्रिय त्याग

मे विश्वास करता है। उसका त्याग अनेक रूप में प्रगट होता है। दीन-दुःखी की आततायी से रक्षा के लिये अपना सर्वस्व त्याग करने मे उसे झिझक नही होती है। त्याग का साक्षात रूप उपस्थित कर देना ही उसके जीवन की सबसे बडी अभिलाषा होती है।

लेकिन आज उन क्षत्रिय वंशजों मे बनियापन दिख रहा है। त्याग का स्थान संग्रह ने ले लिया है और उस पर ममत्व भाव रखकर स्वामित्व जता रहा है। इस कारण अनेक बुराइया घर करती जा रही हैं। दुनिया मे चारो ओर देखा जाता है कि सम्पत्ति पर व्यक्ति का स्वामित्व होने से सैकड़ो प्रकार से कलह एव झगडो की उत्पत्ति होती रहती है। इस सारी विषमता और कलुषिता से त्राण पाने एव समाज मे सुव्यवस्था के साथ आत्मा की उन्नति करने का आबाध-मार्ग है अनग्रह भाव — भगवान महावीर द्वारा प्रणित अपरिग्रहवाद। जिसकी ओर आप लोगो का ध्यान जागे और उस मार्ग पर चले तथा इसका प्रकाश सारे संसार मे फैलाये। यह आज के युग की मांग है।

आप एक ओर बडी-बडी तपस्यायें करते हैं और दूसरी ओर परिग्रह के पीछे पडे रहते हैं। तो क्या यह उस तपस्या को लज्जित करना नही है? निष्परिग्रही महावीर के अनुयायियो का यह कार्य क्या स्वयं महावीर को लज्जित करने जैसा कार्य नही है?

यदि त्याग और अपरिग्रह के क्रियात्मक रूप को आप अपने जीवन मे उतारे तो आप अपने जीवन में आनन्द का अनुभव करेंगे ही—साथ ही सारी दुनिया मे एक नई रोशनी, नया आदर्श उपस्थित कर सकेंगे। क्योंकि अपरिग्रह का सिद्धान्त चारित्र एवं सयम की आधार-शिला पर नागरिकों को खड़ा करके पनपने का अवकाश देगा।

इसलिये मैं आपसे कहता हूँ कि आप अपरिग्रह बनिये। इसने बनियापन में छिपाने को अपने हृदय से निकाल दो। आपकी धमनियों में वही शुद्ध क्षत्रिय रक्त दौड़ रहा जो त्याग को अपना आदर्श मानता है। उठो! तुम्हारे [illegible] बिना वैभवता रक्त भी क्या करेगा? महावीर

पटल की सूक्ष्म गहराइयों मे प्रवेश करते हैं और उसे अपने पतन से सावधान करते हुए उत्थान की ओर अग्रसर बनाते हैं। इन विकासोन्मुखी परिस्थितियो का जैन शास्त्रो मे बड़ी ही सुन्दर रीति से विवेचन किया गया है।

जैन शास्त्रो मे ऐसी किसी भी क्रिया का विधान नही किया है, जिसमे किसी भी रूप मे मानसिक, वाचिक या कायिक हिंसा होती हो। यज्ञ, द्रव्यपूजा आदि का तो भगवान महावीर ने खडन किया है। शुद्ध चैतन्य का ध्यानस्वरूप भाव यज्ञ और भाव-पूजा का ही विधान सर्वत्र पाया जाता है। आत्म-विकासहित गति करने की विभिन्न श्रेणियां हमारे यहां कायम की गई हैं और तदनुसार ही विवेचन किया गया है।

जीव या आत्मद्रव्य का वर्णन जैनदर्शन मे अति स्पष्ट एवं असदिग्ध रूप से किया गया है। जीव की पर्याय—अवस्थाये बदलती रहती हैं अतः उसका पूव पर्याय की दृष्टि से विनाश होता है व नवीन पर्याय की दृष्टि से नई उत्पत्ति, परन्तु इन पर्यायो के परिवर्तन के बावजूद भी अपने रूप मे आत्मा ध्रौव्य रहता है।

इसके सिवाय आत्मा मे अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख व अनन्तशक्ति का अपार तेज रहा हुआ है, किन्तु वह तेज उसी प्रकार ढका हुआ है जिस प्रकार काले बादलो से ढक जाने पर सूर्य का ज्वलत प्रकाश भी छिप-सा जाता है। आत्मा की इन तेजोमयी किरणो पर कर्ममैल की परतें चढी हुई हैं। ये कर्म नित्य नही हैं। आत्मा जैसे कार्य करता है, तदनुरूप ही कर्मों का वध होता है। पूर्व कर्मों की निर्जरा व नये कर्मों के वन्ध होने का यह क्रम इस सृष्टि मे चलता ही रहता है, जब तक सारे कर्म खपाकर आगे के वन्ध को रोककर आत्मा का सर्वोच्च उत्थान प्राप्त नही कर लिया जाता।

जैनधर्म मे किसी भी पदार्थ या तत्त्व के यथार्थ स्वरूप को समझने के लिये नयवाद व स्याद्वाद की दृष्टि से देखना होता है,

क्योंकि इनकी सहायता के बिना उसके विभिन्न पहलू नजर नहीं आयेंगे तथा प्राप्त ज्ञान सिर्फ एकान्तिक दृष्टिकोण वाला होगा।

जैनदर्शन ज्ञान का एक विशाल भण्डार है, उसकी मैं आपको सिर्फ एक झलक मात्र दिखा सका हूँ और इसके बाद मैं आशा करू कि विचक्षण श्रोता इसके गहन अध्ययन और तत्त्व-चिन्तन की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे।

जलकमलवत् वृत्ति

इसी चातुर्मास समय में तत्कालीन बीकानेर नरेश सर गगासिंह जी बहादुर की स्वर्णजयन्ती मनाई जा रही थी। इन दिनों बीकानेर में भौतिक वैभव की रगरेलिया यत्र तत्र दृष्टिगोचर होती थी। जिनको देखने के लिये दूर-दूर से दर्शक आते और दर्शनीय दृश्य देखकर प्रसन्न होते थे। इस समारोह मे सम्मिलित होने के लिये अनेक राज्यो के शासक, राज्याधिकारी भी आमन्त्रित किये गये थे। उनमें से बहुत से आपश्री के प्रभावक प्रवचनो की प्रसिद्धि सुनकर प्रवचन-श्रवण करने आये और उन्होंने धर्मानुमोदित राजनीति, राष्ट्रनीति से सम्बन्धित आपके स्पष्ट विचारो का लाभ लिया।

उनमे से कुछ एक तो अपनी मनोभावना आपश्री के समक्ष निवेदन कर देते थे। लेकिन आप सुनकर मौन रहते और मुख-मण्डल पर अभिमान की एक रेखा भी परिलक्षित नही होती थी। प्रायः देखा जाता है कि कुछ एक साधुओं मे राजनैतिक नेताओ या समाज के विशिष्ट व्यक्तियो से मिलने की उत्सुकता रहती है और मिलने पर अभिमान आदि की वृत्तियां बढ जाती हैं। इन वृत्तियों के फलस्वरूप विविध प्रकार के उत्सव, महोत्सव करने-कराने, देखने आदि की भी कामना होने लगती है। लेकिन चरितनायक जी का इन सब बातो से लेशमात्र भी लगाव नहीं था। न तो उन्हें किसी से मिलने की आकांक्षा थी और न किसी प्रकार के समारोह आदि में अभिरुचि रखते थे। सिर्फ जलकमलवत् जीवन की धारा प्रवाहित होती थी। यह भावना सिर्फ आपकी ही नहीं

वरन आपके साथ के अन्य सन्त-मुनिराजो की भी थी। वीतराग मार्गानुगामी तो रागप्रवृत्तियो से विलग ही रहते हैं। जो एक तत्कालीन प्रसग से स्पष्ट हो जाता है—

बीकानेर नरेश की स्वर्ण-जयन्ती-समारोह के प्रसग मे विविध प्रकार के उत्सव आदि प्रतिदिन हो रहे थे। इसके मुख्य दिवस पर बीकानेर नरेश सर गंगासिंह जी बहादुर की शानदार शोभायात्रा निकली। जिसमे राजसी वैभव-प्रदर्शन की अनेक झांकिया थी। इनको देखने के लिये हजारो दर्शक नगर के राजमार्गो पर खडे थे। प्रत्येक घर के द्वार, चौराहे, अट्टालिकाये दर्शको से अटी पडी थी। जब यह जुलूस नगर के विभिन्न राजमार्गों से होता हुआ आपके विराजने के स्थान— श्री अगरचन्द भैरोदान सेटिया कोटडी— के सामने से गुजरा तब न तो आपमे इस ऐहिक विलास-वैभव को देखने की उत्सुकता थी और न आपके साथ के अन्य सन्तो मे भी। हर्ष-विषाद मे समान सन्तजन तो अपने आत्म-चिन्तन मे ही तल्लीन थे।

जहाँ ऐहिक आकर्षण रागी को सासारिक वासनाओं की ओर प्रेरित करते हैं, वही विरागी की वृत्ति मे विकृति लाने मे सक्षम नहीं हो सकते हैं।

चातुर्मास काल मे सन्तो और श्रावक-श्राविकाओ ने ज्ञान, ध्यान आदि आध्यात्मिक चिन्तन के साथ-साथ आत्मशुद्धि के लिये विविध प्रकार की तपस्यायें की। श्रावकवर्ग ने जीवदया, स्वधर्मीसहयोग आदि लोकोपकारी कार्यों मे दान दिया एव धर्मप्रभावना के कार्य किये।

चातुर्मास बडे ही उत्साह और भव्य धार्मिक आचार-विचारो की पभावना से पूर्ण हुआ। उपदेशामृत से तृप्त मानवो को चार माह के समय का पता ही न चला कि कब पूरा हो गया। उनके मनमे यही लालसा थी कि हम उपदेश श्रवण करते रहें और धार्मिक आचार-विचार-साधना से आध्यात्मिक-विकास के मार्ग पर बढ़ते रहे। लेकिन साध्वाचार की मर्यादा चरैवैति, चरैवैति के आदर्श मे गर्भित है। जन-

कल्याण की भावना ही सन्तों को विहारपथ मे गतिमान रखने को प्रेरित करती रहती है ।

मार्गशीर्ष प्रतिपदा को आपश्री ने सन्त-मण्डल सहित विहार किया । वर्ष का एक तृतीयांश— चार माह— का समय तो ऐसे बीत गया प्रतीत हो रहा था मानो सन्तो का आगमन कल ही हुआ । किसी को भी समय की इस गति का भान ही नही हुआ था कि एक-एक दिन कर के चार माह बीत गये और आज सन्त-मुनिराजों की विहार-वेला आ गई । लेकिन समय अपने परिणमन मे अपेक्षा की आकांक्षा न रखते हुए बहता जाता है । यदि कोई प्राणी इस समय का सदुपयोग कर ले तो वह भी अनन्तता प्राप्त कर लेता है ।

आज सन्तशिरोमणि, संघाधिप का विहार है, इस विचार ने सभी के मन मे विषाद का वातावरण व्याप्त हो गया था । सभी अपने-अपने मन की कहने के लिये मूक थे और फिर कहे भी तो कहे क्या । सभी के एक भाव थे, एक बोल थे और एक से विचारों का ताना-बाना बुना जा रहा था ।

आखिर सन्तों के विहार का क्षण आ गया । सभी ने भावोर्मियों की विदाई-भेंट दी और आपश्री ने बीकानेर के समीपस्थ क्षेत्रों को फरसते हुए थली-प्रदेश की ओर विहार किया । थली-प्रदेश ने आपके पुन आगमन की सुनी तो हर्षविभोर हो उठा । वह आपश्री से पूर्व एवं पूर्ण परिचित था । वहाँ के निवासियों ने आपश्री की दयामयी वाणी का लाभ प्राप्त किया था और मानवीय भावनाओं को सबल बनाया था ।

थली-प्रदेश में विचरण करते हुए आपश्री ने पुनः सरलहृदय मानवों में श्रद्धा के बीज बोये जो धर्म को समझना चाहते थे लेकिन धर्म के वास्तविक स्वरूप का ठीक-ठीक प्रतिपादन करने वाले विद्वानों का अभी तक समागम प्राप्त नहीं कर सके थे । अनेक सार्वजनिक व्याख्यानों में आपने जैनधर्म के सार्वभौम स्वरूप को प्रतिपादित किया ।

आपश्री के प्रभावक प्रवचनों का प्रभाव देखकर बहुत से ईर्ष्यालु-

जन आपश्री को और आपके सहगामी सन्तों को परेशान करने के लिये प्रयत्न करते रहते थे। लेकिन परिषह ही साधक की कसौटी होती हैं और उनके उपस्थित होने पर साधुता मे नया निखार आता है। अत-एव ये छोटे-मोटे उपद्रव आपश्री की कीर्ति को बढ़ाने मे ही सहायक हुए। आपश्री की निडरता, शांतिप्रियता, धीरता एवं तत्वनिरूपण शैली से वहा की जनता अधिक-से-अधिक प्रभावित हुई एव सत्य को समझने की ओर उन्मुख ही हुई।

जौहरियो के नगर में

इस प्रकार विविध परिषहो को सहते हुए, विरोध का परि-हार और भ्रम का विध्वस करते हुए आपश्री का सं० १९९५ के चातु-र्मास हेतु जयपुर नगर मे पदार्पण हुआ।

जयपुर के लिये यह प्रसिद्ध है कि वह जौहरियो का नगर है। वहा अच्छे-अच्छे पारखी बसते हैं जो अपनी एक नजर मे ही अच्छों-अच्छो को परख लेते हैं और उनके द्वारा की गई परख निर्णय की अमिट रेखा होती है। इन्ही पारखियो के बीच चरितनायक सन्तरत्न का चातुर्मास हुआ था।

चातुर्मास प्रारम्भ होते ही आपश्री के प्रवचन प्रारम्भ हुए। आप अपने प्रवचनो मे आध्यात्मिक-विकास हेतु तात्त्विक विवेचन करते थे। जिनका श्रोतागण लाभ उठाते और उनमे परीक्षको का भी जमघट होता था। लेकिन उनमे से कोई तो आपके प्रवचन प्रभाव की प्रशसा करता तो कोई तात्त्विक विवेचना की, कोई शास्त्रीय ज्ञान की, तो कोई समा-धान की शैली की। किसी को वाणी की मधुरता पसन्द आई तो किसी को सयम की सुघडता। किसी ने जिज्ञासा का समाधान चाहा, तो किसी ने तर्क का उत्तर।

इसप्रकार सभी ने अपने-अपने दृष्टिकोणो से आपश्री को परखा। लेकिन आपश्री उन सबकी परख से भी परे दिखाई दिये। अन्त मे उन सबको सामूहिक रूप में निर्णय करना पड़ा कि हम सिर्फ जड़ रत्नो की ही परीक्षा कर सकते हैं, लेकिन नररत्नो की नहीं। ऐसे

नररत्न तो अमूल्य होते हैं । जिसे 'जवाहर' ने परखा हो उसे हम परख नही सकते है ।

प्रतिदिन श्रोताओ की सख्या में वृद्धि होने के साथ-साथ सयम-साधना के साधक आपश्री से नितनूतन प्रतिवोध प्राप्तकर आत्मशुद्धयर्थ तत्पर होकर जप-तप-त्याग-साधना मे रत रहते थे । लालभवन का विशाल प्रांगण साधना-स्थल वन गया था और योग मे उपयोग लगाने से, तप मे तत्पर होने से, साधना मे समाविस्थ होने आदि से जो जितना लाभ प्राप्त कर सकता था, उसने अपनी योग्यतानुसार प्राप्त किया ।

साधुता के आकांक्षी

चरितनायक जी का जयपुर चातुर्मास आशातीत सफलता के साथ सम्पन्न हुआ । चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात जयपुर से हाडौती प्रदेश के गावो को धर्मदेशना से गुजरित करते हुए आप कोटा पधारे । जैन सन्त-परम्परा मे कोटा का महत्त्वपूर्ण स्थान है । आपश्री के वहां पधारने से श्रावक-श्राविकाओ के धर्मोत्साह को वेग मिला ।

चरितनायक जी कोटा मे विराज रहे थे । विभिन्न स्थानों से आगत भव्य मुमुक्षुजन आपकी व्याख्यान-वाणी का सर्वात्मना लाभ उठा रहे थे कि इसी समय एक वडी दिलचस्प घटना घटित हुई । एक तेजस्वी विनीत नवयुवक ने आपकी सेवा मे उपस्थित होकर अति विनम्र-भाव से निवेदन किया— भते ! मुझे अपना शिष्य बना लेने का अनुग्रह कीजिये । मैं आपके श्री चरणो में रहकर सयमसाधना करना चाहता हूँ ।

ऐसा प्रश्न आपके लिये नया नही था । पहले भी अनेक मुमुक्षु आत्माओ द्वारा आपकी नेश्राय मे रहकर संयम-साधक होने की भावना व्यक्त की जा चुकी । लेकिन शिष्य बनाने के सम्बन्ध मे आपकी उदासीनता थी । शिष्य व्यामोह को आप साधना में अवरोधक मानते थे, लेकिन गुरुदेव के आदेश को अंगीकार करके आपने शिष्य बनाने का त्याग नही किया था । अतएव जो मुमुक्षु शिष्य बनने की अभिलाषा लिये आपके निकट आता, उसे आप आचार्य श्री जवाहरलाल जी म.

सा. का शिष्य बनाते और पूर्ववत् निर्लिप्त रहते थे। जब तक आप युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित नहीं हुए थे, आपने किसी को अपना शिष्य नही बनाया था। लेकिन अब आत्महित के साथ-साथ सघहित का भी ध्यान रखना आवश्यक हो गया था। अविच्छिन्नरूपेण चली आ रही गुरुशिष्य परम्परा को चालू रखना एक प्रकार से पूर्वाचार्यों के ऋण से मुक्त होना है। फिर भी शिष्यलोभ आपश्री को कभी भी व्यामोहित नही कर सका। इस सम्बन्ध मे आप सदैव तटस्थ एव सतर्क रहे।

शिष्यविषयक उदासीनता आपके मन मे गहरी पैठी हुई थी, जो इस मुमुक्षु के प्रश्न करने पर झलके बिना न रही और प्रत्युत्तर में फरमाया— भाई! साधु बनना हसी-खेल नही है। पहले से ही साधु बनने की बात मत करो, वरन साधुता को समझने का प्रयत्न करो, ज्ञानोपार्जन करो, त्याग और वैराग्य की भावना को सबल बनाओ, आत्मा के अन्तरग शत्रुओ—काम, क्रोधादि के प्रतिरोध करने की शक्ति बढ़ाओ, आत्मिक शुद्धि प्राप्त करने की आकाक्षा को वेग दो, उलझनो से उद्विग्न मन को शात बनाने का अभ्यास करो, विचारो मे मौलिकता प्राप्त करो, सयम-साधना मे आने वाली कठिनाइयो को समझने की कोशिश करो। अन्यथा चित्त की चचल लहरो मे बहने से जीवन-क्रम अव्यवस्थित हो जाता है। अतएव कल्याण करना है तो आत्मा को तप से तपाओ, सयम से साधो। गुरु की परीक्षा कर लो। इसके पश्चात ही साधु-दीक्षा अगीकार करने का प्रसग आ सकता है। समताभाव, धर्मदृढ़ता और परमात्मा मे आत्मार्पण की भावना जाग्रत हुए बिना जीवन मे पवित्रता का भाव पैदा नही हो सकता है।

इस निस्पृहतापूर्ण निखालिस उत्तर को सुनकर नवयुवक चकित रह गया। उसके मनमे अतीत के अनेक चित्र साकार हो उठे कि मैं कितने ही सन्तो के पास पहुचा, उन्होंने आश्वासन दिये, आकर्षक बतलाये और प्रलोभनो के सरसब्ज बाग भी दिखलाये, परन्तु ऐसा यथार्थ पथप्रदर्शक उत्तर किसी ने भी नही दिया। इन विचारो से उसके मन

मे एक नये प्रकाश का प्रादुर्भाव हुआ, उसके संस्कारो को नवजीवन प्राप्त हुआ । उसके अन्तर् की ज्योति चमकने लगी । अन्तःकरण उद्‌भासित होने लगा और वैराग्य की भावना प्रबल हो उठी ।

नवयुवक आपकी निस्पृहता की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ । श्रद्धा-भक्ति से उसका मन गद्‌गद हो उठा । साथ ही कुतूहल भी उत्पन्न हुआ कि एक वे साधु हैं और एक ये महाराज है जो शिष्य बनाने के पहले साधुता को समझने और गुरु की परीक्षा करने का परामर्श दे रहे हैं और फिर साधु बनने की बात कह रहे हैं । इसलिये उसने पुनः निवेदन किया— भंते ! सभी साधु बनने वालो के सामने आप ऐसी ही कठोर शर्तें रखेंगे तो फिर कोई आपका शिष्य कैसे बनेगा ? क्या आत्मकल्याण के साधक को शुद्धि का मार्ग अवरुद्ध नही होगा ? परीक्षा की प्रतीक्षा मे ही वह अपने सत्संकल्प को कैसे चरितार्थ कर सकेगा ? विकासोन्मुखी आत्मायें अपनी प्रतिभा, साहस और मनोयोग का समन्वय कैसे कर सकेंगी ? श्रद्धा और संकल्प को साकार रूप कैसे दिया जा सकेगा ?

नवयुवक के इस प्रकार के तार्किक प्रश्नो को सुनकर आपने फरमाया— कोई मेरा शिष्य नही बनेगा तो मेरी क्या हानि हो जायेगी ? मेरे आत्म-कल्याण मे कौन सी बाधा आ जायेगी ? मुझे चेलो की जमात खड़ी नही करनी है । आत्म-साधना के पथ पर वही बहादुर चल सकता है जो वास्तविक वैराग्य-भावना से विभूषित हो, तप.पूत हो, जिसका ज्ञान अगाधता की ओर अभिमुख हो, श्रद्धा अडिग और चारित्र आगमानुकूल व निष्ठापूर्ण हो । दीक्षा ले लेना तो सरल है, मगर उसे निभाना कठिन होता है । उससे आत्मा का कल्याण होता है, किन्तु अंगीकार करने से पहले शान्त चित्त होकर सोचना चाहिये कि प्रतिज्ञा निभ सकेगी या नही ? आत्मबल को जाने बिना जोश मे आकर ली गई प्रतिज्ञा के लिये बाद में पछताना पड़ता है । भाई ! मुझे साधु-सम्पदा नही, किन्तु साधुता चाहिये । पारस्परिक सहकार से संयम-साधना मे अग्र-

सर होने के लिये ही गुरु-शिष्य-सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। जहाँ इस उद्देश्य की पूर्ति नही हो सकती हो, वहा वह सम्बन्ध निरर्थक ही नही, वरन हानिकारक भी सिद्ध होता है।

आपश्री के यह मार्मिक शब्द नवागन्तुक नवयुवक साधक के चित्त मे गहरे पैठ गये। उसकी धर्मश्रद्धा तात्कालिक भावावेश का परिणाम न थी, किन्तु अनुभवो से अर्जित सस्कारो का परिणाम थी। अत इन स्पष्ट विचारो से वह समझ गया कि यही वह विभूति है जिसके नेश्राय मे निर्देशन पाकर मैं अपना जीवन सफल व धन्य बना सकू गा। मेरे आत्म-कल्याण का पथ इन्ही से प्रशस्त होगा। ऐसे निस्पृह, नि.स्वार्थ एव विरक्त महाभाग महापुरुष ही मेरे जीवन को पावन बना सकेगे। दुविधा मे विधा मन निष्कर्ष पर आ पहुंचा था और विवेक से अनुप्राणित होकर लक्ष्य की ओर बढ चला।

विरक्त नवयुवक ने युवाचार्य श्रीजी के उपदेश को सर्वात्मना स्वीकार किया। अन्तरात्मा से उठे नाद को अनुकूल अवसर प्राप्त हो गया था। जो पूर्णनिष्ठा के साथ सकल्प करते हैं, उन्हे कोई भी प्रलोभन विचलित नही कर पाते हैं। वह उसी दिन से ज्ञान-दर्शन-चारित्र की साधना मे तल्लीन हो गया और प्रयत्नो के फलस्वरूप त्याग के पथ पर अग्रसर होता गया।

नवयुवक की अखण्ड वैराग्य भावना और ज्ञानोपार्जन की तन्मयता ने आपश्री को आकर्षित किया। आपकी धारणा बन गई कि यह खरा सोना है और सयम-साधना की ओर अग्रसर कराने मे योग देना चाहिये। अत आप उसे त्याग वैराग्य-वर्धक उपदेश देने लगे।

इस प्रकार एक लम्बी परीक्षा और प्रतीक्षा की कसौटी पर कसे जाने के पश्चात आपश्री ने नवयुवक को यथावसर दीक्षित कर अपना अन्तेवासी बनाने का निश्चय किया। उस समय किसे ज्ञात था कि आध्यात्मिक साधना के [illegible]ल द्वार मे प्रविष्ट होने वाला यह नवयुवक आगे चलकर आ[illegible] शिष्य बनेगा और पाट पर-

परा में आपका उत्तरवर्ती होकर संघशासन को दिपायेगा ।

वह नवयुवक और कोई नहीं, हमारे परमश्रद्धेय आचार्य श्री श्री १००८ श्री नानालाल जी म. सा. हैं । जो नाना जनों की श्रद्धा-भक्ति के केन्द्रबिन्दु बन कर आध्यात्मिक साधना करते हुए चतुर्विध संघ को आत्मकल्याण के मार्ग का निर्देशन कर रहे हैं ।

कोटा, बूंदी और उसके आसपास के क्षेत्रों को धर्मदेशना से पवित्र करते हुए आप पुनः मेवाड़ में पधारे । मेवाड़ का प्रत्येक नगर और ग्राम आपका स० १९९९ का चातुर्मास अपने यहां कराने के लिये आकांक्षी था । सभी की एक ही धुन थी, लेकिन उदयपुर के सौभाग्य का स्वर्णशिखर सर्वात्मना प्रकाशमान हो रहा था । अतः आपका स० १९९९ का चातुर्मास उदयपुर होना निश्चित हुआ । यथासमय चातुर्मासार्थ आपश्री सन्तों एवं सुपरिचित नवयुवक वैरागी श्री नानालाल जी के साथ उदयपुर पधारे ।

चातुर्मास काल में धर्मप्रभावना की दृष्टि से उदयपुर में बड़ा आनन्द रहा । त्याग, तपस्याओं के प्रति चतुर्विध संघ में अपूर्व उत्साह था । उपदेश और धर्मचर्चा का जनता पर खूब प्रभाव पड़ा । वैरागी नवयुवक की प्रतिभा और ओज से उदयपुर श्रीसंघ इतना प्रभावित हुआ कि वह अपने यहां ही दीक्षा महोत्सव मनाने के लिये लालायित हो उठा । किन्तु तत्काल कुछ निश्चय नहीं हो सका ।

चातुर्मास सानन्द सम्पन्न हुआ । पश्चात वहां से सन्त-मण्डल के साथ अपने मेवाड़ प्रदेश की ओर विहार किया । भागवतीदीक्षा अंगीकार करने के लिये पारिवारिक जनों की स्वीकृति लेना आवश्यक होने से वैरागी श्री नानालाल जी अपने पारिवारिक जनों से स्वीकृति प्राप्त करने हेतु उदयपुर से दांता चले गये और स्वीकृति प्राप्त कर पुनः आपश्री की सेवा में उपस्थित हो गये । पारिवारिक जनों की स्वीकृति और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की सुविधा देखकर वैरागी जी को स० १९९९, पौष शुक्ला ८ को कपासन में भागवतीदीक्षा प्रदान करने का

निर्णय घोषित किया गया ।

दिगम्बराचार्य श्री शांतिसागर जी से संलाप

चातुर्मास समाप्ति के पश्चात उदयपुर से विहार कर आप उदयपुर के उपनगर आयड पधारे । वहां से ग्रामानुग्राम विहार करते हुए आपका वाठेडा पदार्पण हुआ । वाठेडा मे स्थानकवासी जैनो के करीब पांच घर थे और शेष अधिकांश दिगम्बर जैनो के थे । वहां पर दिगम्बर जैन समाज के आचार्य श्री शातिसागर जी म. विराज रहे थे ।

एक दिन चरितनायक जी का बाजार मे प्रवचन हो रहा था । उसी समय आचार्य श्री शातिसागर जी म भी वहा पधारे । श्रावको ने पाटा लगा दिया और वे उस पर विराज गये । व्याख्यान-समाप्ति के पश्चात आप एव आचार्य श्री शांतिसागर जी म का स्नेहपूर्ण वातावरण मे वार्तालाप हुआ । उसी प्रसग मे आचार्य श्री शातिसागर जी म. ने वार्तालाप के लिये जिज्ञासा व्यक्त करते हुए कहा कि आपसे और भी वार्तालाप करना है । इसके लिये आपको कौन-सा समय उपयुक्त रहेगा ? आपने मध्याह्न का समय उपयुक्त बताया ।

वार्तालाप के लिये एक मन्दिर का स्थान निश्चित किया गया । वहा जनता भी एकत्रित हो गई । चरितनायक जी एव आचार्य श्री शातिसागर जी म. के बीच अत्यन्त सरल सौम्य वातावरण मे वार्तालाप प्रारम्भ हुआ । प्रसगोपात्त जब परिग्रह सम्बन्धी बात आई तो चरितनायक जी ने पूछा कि परिग्रह की परिभाषा क्या है ? यदि शाब्दिक व्युत्पत्ति की दृष्टि से व्याख्या की जाती है तो 'परिगृहीयते इति परिग्रह.' इस परिभाषा मे आत्मा के अतिरिक्त जो भी ग्रहण किया जाता है वह सब परिग्रह मे आ जाता है । जैसे आत्मा ने कर्म ग्रहण कर रखे हैं और समय-समय पर ग्रहण कर रही है । शरीर को भी ग्रहण कर रखा है और शरीर को आहारादि दिया जा रहा है, वह भी ग्रहण हो रहा है तथा कर्म, शरीर और आहारादि के अतिरिक्त मोरपीछी, कमडलू भी ग्रहण कर रखा है, अत उक्त परिभाषा के अनुसार सिद्धो के अति-

रिक्त अन्य कोई अपरिग्रही बन ही नही सकेगा। वैसी स्थिति में भगवान महावीर स्वामी ने चार तीर्थ की स्थापना की है उसमें श्रमणवर्ग को पूर्ण निष्परिग्रही और श्रावकवर्ग को देश निष्परिग्रही निर्देश किया है, वह व्यर्थ सिद्ध होगा और फिर भगवान का शासन कैसे चलेगा? और तदनुसार दिगम्बर समाज की व्यवस्था मे भी वस्त्र नही रखने पर भी कर्म, शरीर, भोजन, कमंडलू, मोरपीछी आदि ग्रहण करने वाले मुनि निष्परिग्रही कैसे कहला सकेंगे?

सरल भाव से आचार्य श्री शातिसागर जी म. ने इसके विषय मे कहा कि परिग्रह की परिभाषा मूर्च्छा के रूप मे ली जाती है। कमंडलू, मोरपीछी ये सब साधन हैं। इन पर मूर्च्छा नही रखी जाती है तो निष्परिग्रही बन सकते हैं। तब आपने कहा कि 'मुच्छा परिग्गहो वुत्तो' शास्त्र में यही परिग्रह की वास्तविक परिभाषा कही गई है। इस परिभाषा के अनुसार जैसे कर्म, शरीर आदि के अतिरिक्त कमडलू मोरपीछी साधन के रूप मे रखे जाते हैं, वैसे ही मर्यादित पात्र, वस्त्र भी संयम की साधना के लिये रखे जाते हैं। ये भी धर्मोपकरण साधन है, इनमें मूर्च्छा नहीं रखने वाले भी निष्परिग्रही, निर्ग्रन्थ साधु है और इसी परिभाषा के अनुसार चतुर्विध संघ की व्यवस्था भी बैठ सकती है एवं छठे गुणस्थान से लेकर सिद्धों के पहले-पहले मूर्च्छा रहित शास्त्रोल्लिखित मर्यादित वस्त्र-पात्र रखने वाले सभी साधक निष्परिग्रही निर्ग्रन्थ श्रमण कहलाते हैं। दिगम्बर समाज मान्य जयधवला, महाधवला नामक ग्रन्थों मे भी संयती शब्द से साध्वी को लिया है और वह वस्त्र बिना नही रह सकती है। अत: मर्यादित वस्त्रों के रखने पर भी उसमे साधुत्व स्वीकार किया गया है।

इसी प्रकार साधु भिक्षाचरी विषयक वार्तालाप के प्रसंग में आपने कहा कि श्वेताम्बर समाज मे साधु की भिक्षाचरी के ४७ दोष बताये गये है, वैसे ही दिगम्बर समाज की मान्यता के मूलाचार आदि ग्रन्थो मे साधु की भिक्षाचरी के ४६ दोष माने गये है। उसमें साधु के

निमित्त बनाया हुआ आहार आधाकर्मी माना जाता है और साधु को ग्रहण करना निषिद्ध है। तो फिर जो साधु के लिये विशिष्ट रूप से ताजा घी, आटा, पानी आदि सब चीजो की तैयारी करके आहार-पानी बनाकर मुनि को दिया जाता है और मुनि ग्रहण करते हैं, उसमे आधाकर्मी दोष लगता है या नहीं ? आचार्य श्री शांतिसागर जी म. ने सरलतापूर्वक स्वीकार किया कि इस प्रकार मुनि के निमित्त बनाये हुए आहारादि को लेने से आधाकर्मी दोष लगता है। यह साधु जीवन नही, बल्कि स्वादु जीवन है।

आपने यह भी पूछा कि आप आचार्य हैं और आचार्य को अकेला रहना कल्पता है क्या ? उन्होने कहा कि आचार्य का अकेला रहना उपयुक्त तो नही है लेकिन मुनि सब काल कर गये हैं, इसलिये मैं अकेला हूँ। एक प्रश्न यह भी उठा कि गृहस्थो से सेवा लेना, घास मंगवाना, घास की कुटिया बनवाना, पाट मगवाना तथा कमडलू मे पानी मगवाना आदि साधु के योग्य है ? आचार्य श्री शांतिसागर जी म ने सरलता से कहा कि यह साधु के योग्य नही है। इसी तरह गृहस्थ से सेवा लेना उपयुक्त नही है, आदि विभिन्न विषयो के बारे मे सौहार्दपूर्ण वातावरण मे वार्तालाप समाप्त होने के पश्चात दोनो अपने-अपने स्थान पर गये।

कुछ दिन वहा विराजने के पश्चात वहां से विहार कर मार्ग मे आने वाले ग्रामो मे धर्मोपदेश देते हुए वैरागी श्री नानालाल जी को दीक्षा देने के लिये आपश्री कपासन पधारे।

प्रथम शिष्य का दीक्षामहोत्सव

वैरागी श्री नानालाल जी को दीक्षा देने के समय स० १९९६, मिती पौष शुक्ला ८ व स्थान-कपासन की जानकारी समस्त श्री सघो को हो चुकी थी। सभी श्रीसंघो मे उक्त महोत्सव के दर्शन करने की उत्सुकता थी और श्रावक-श्राविकाओ के उत्साह मे वृद्धि होती जा रही थी।

दीक्षा-समारोह के अवसर पर बाहर से हजारो भाई-बहिन

उपस्थित हुए । मेवाड़ का ऐसा कोई ग्राम न था जिसके दो चार सज्जन दीक्षा महोत्सव के अवसर पर कपासन न पहुंचे हो । विभिन्न सघो की ओर से दीक्षार्थी का मान सम्मान किया गया और जुलूस के साथ दीक्षार्थी का दीक्षास्थल पर पदार्पण कराया । आपने दीक्षार्थी के पारिवारिक जनो की स्वीकृति एव चतुर्विध सघ की अनुमतिपूर्वक वैरागी जी को दीक्षा प्रदान की और नवयुवक श्री नानालाल जी पोखरना मुनि श्री नानालाल जी म. सा. बन गये ।

प्रथम शिष्य का परिचय

आप द्वारा नाना मुमुक्षु जन सयम-साधना के लिये दीक्षित हुए और उन नानाओ मे से भी जो नाम से भी नाना है, उनका यहा नाना-सा (सक्षिप्त) परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है ।

आपके प्रथम शिष्य मुनि श्री नानालाल जी म. सा का जन्म मेवाड़ प्रदेशान्तर्गत उदयपुर राज्य के जागीरदारी गाव दांता मे ओसवालजातीय पोखरनागोत्रीय श्रीमान् मोडीलाल जी की धर्मपत्नी श्रीमती शृंगारकंवरबाई की कुक्षि से स० १९७७ मे हुआ था ।

लगभग ८ वर्ष की बाल्यावस्था मे ही जो माता-पिता के लाड-प्यार, खेलकूद का समय मानी जाती है, आपको पिताश्री के वरदहस्त से वचित हो जाना पड़ा और उस समय से लेकर दीक्षा तिथि तक अपने भाई, मातुश्री आदि पारिवारिक जनो की छत्रछाया मे अपने जीवन-विकास का मार्ग प्रशस्त बनाया । उन दिनों ग्रामीण क्षेत्रो मे जैसा विद्याध्ययन का प्रबन्ध था, तदनुरूप आपने शिक्षण प्राप्त किया और पारिवारिक परिस्थितियो वश बाल्यावस्था में ही आपको जीवकोपार्जन हेतु व्यापार मे प्रवृत्त होना पड़ा । प्रारम्भ मे गांव की परिस्थिति के अनुसार साधारण परचूरण सामान की दुकान की और कुछ समय पश्चात कपड़े का व्यापार भी प्रारम्भ कर दिया और इस प्रकार सामान्य रूप से जीवनक्रम चलने लगा ।

आपने विद्याभ्यास तो शाला सुविधानुसार ही किया था । लेकिन

बौद्धिक प्रतिभा प्रखर एव तार्किक होने से प्रत्येक विचार के बारे में सयुक्तिक समाधान-प्राप्ति के लिये उत्सुक रहती थी।

बाल्यावस्था का एक प्रसग है कि एकदिन आपकी मातुश्री शृगारकुवरबाई सतिया जी म सा. से किमी व्रत का पचखाण करके घर लौटी। लेकिन बालक न.नालाल जी को यह पचखाण करना-कराना अच्छा नही लगा। बालबुद्धि इन सब बातो को ढकोसला और व्यर्थ समझती थी। ऐसा क्यो समझा होगा? इसके बारे मे हमारा अनुमान है कि तार्किक बुद्धि मे ज्ञान बिना की क्रिया की उपयोगिता नही है और इसके योग्य समाधान के अभाव मे मन विद्रोही बन जाता है, जो असतोष के रूप मे प्रगट होता है। फलत नियम से इतने क्रोधित हो उठे कि और कुछ न सूझा तो मातुश्री जब सामायिक लेकर बैठीं तो अपने मन की खीज मिटाने के लिये उनके सामने रखी हुई रेत की घड़ी को फोडने को उद्यत हो गये। किन्तु स्नेहमयी माता के प्रयत्न ने उन्हे वैसा नही करने दिया।

बालक नानालाल जी को उस समय इसका भान नही था कि वे क्या कर रहे हैं। समय आया और चल गया। कालप्रवाह मे रुकावट नही आई। बात आई-गई-सी हो गई और जीवन-क्रम पुन: अपनी गति से बहने लगा। यदि हम वर्तमान के साथ उस समय के बालक नानालाल जी की तुलना करे तो आभास होगा कि उस समय आवरण से आच्छादित आत्मिक गुणो का प्रकाश विकसित होने के लिये अनुकूल अवसर चाहता था। परन्तु उचित सयोगो के अभाव मे मार्ग भूला हुआ था और जिसका विकृतरूप वह आवेश था।

आपके बाल्यकाल की एक दूसरी घटना है। आपकी बहिन श्रीमती मोतीबाई ने जो श्रीमान् सवाईलाल जी लोढा भादसोडा निवासी को ब्याही थी, पर्यूषण पर्व मे पचोले की तपस्या की। लौकिक प्रथा के अनुसार ऐसी तपस्या के प्रसग पर तपस्विनी बहिन के लिये पितृगृह (पीहर) से वस्त्रादि भेजने का नियम है और यह शुभ कार्य प्राय घर

के मुखिया द्वारा सम्पन्न होता है। परन्तु उस समय कार्यवशात् बालक नानालाल जी के जेष्ठ भ्राता को भादसोड़ा पहुंचने की सुविधा न हो सकी। अतः यह कार्य आपको सौंपा गया। यद्यपि ऐसे कार्यों मे आपकी रस नही था लेकिन पारिवारिक प्रतिष्ठा के ख्याल से आप वस्त्र आदि लेकर भादसोडा पहुंचे।

भादसोड़ा मे मेवाडी मुनि श्री चौथमल जी म. सा चातुर्मासार्थ विराज रहे थे। पर्यूषण पर्व होने से उन दिनो व्याख्यान मे अन्तकृत सूत्र का वाचन होता था। आप भी व्याख्यान सुनने गये। प्रसगवश उस समय पाचवे और छठे आरे का वर्णन चल रहा था, जो आपके कर्ण गोचर हुआ और कथा सुनने का शौक होने से कुछ कथाभाग याद रह गया। लेकिन उसका हृदय पर कुछ भी असर नही हुआ।

बहिन को वस्त्रादि देकर आपने अपने ननिहाल भदेसर जाने का विचार किया और सवत्सरी महापर्व का दिन होते हुए भी आप ननिहाल की ओर चल पडे। बहिन आदि ने उस दिन न जाने के लिये समझाया भी, लेकिन रुके नही और अश्वारूढ हो चल पड़े।

मार्ग मे चारो ओर हरी-भरी वनराजि व्याप्त थी। वर्षाऋतु की समाप्ति और शरद् के सुहावने मौसम एवं मंद-मंद बहने वाली बयार ने आपको मनोमंथन के योग्य अवसर प्राप्त करा दिया। अश्व अपनी गति से चल रहा था लेकिन मन-अश्व की गति पूरे वेग मे थी। व्याख्यान मे सुनी छह आरों की व्याख्या आपकी स्मृति मे घूम गई। मंथन करते-करते ही मार्ग मे आपके मन मे बिजली सी कौंध गई। ज्ञान के सम्यक् प्रकाश की किरण झलक उठी और मन मे एक झटका-सा लगा और एक क्षण पहले जो मन धर्मविमुख था, वह धर्माभिमुख हो गया।

प्रकाशप्राप्ति के साथ ही आपको अपने पूर्व विचारों एवं कार्यों के प्रति पश्चाताप होने लगा। अतीत में मातुश्री को धर्म-ध्यान न करने देना, त्याग-प्रत्याख्यान से रोकना, सवत्सरी दिवस होने से बहिन आदि के द्वारा रोके जाने पर भी चल देना आदि अपने कार्यकलापों का

इतना पश्चाताप हुआ कि अन्तरग पर आवृत मल नेत्रो द्वारा वह निकला। ग्लानि आसुओ के साथ गलित होने लगी। बूद-बूद मे टपकने वाले आसू चौधारा मे रूपान्तरित हो गये और जब इतने से भी परिताप शात न हो सका तो आवेगो ने आक्रदन का रूप अपना लिया। यह कितने समय तक चलता रहा, पता ही न पडा। खूब बहा, खूब बहा और माता धरित्री ने उस मैल को अपने आचल मे समेट लिया। क्योकि वह मा थी और मा की ममता सदैव मगलमयी होती है।

आखिर मन को शाति मिली और उसी समय सकल्प किया कि मैं स्वय धर्मकरणी करूगा और करने वालो को सहायता दूगा। इसी सत्सकल्प के साथ आपके जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ हुआ, सोने का सूरज उगा। दृष्टि के बदलते ही सृष्टि भी बदल गई। धर्म मार्ग पर चलने के निश्चय के साथ ही अब जिज्ञासायें बढ़ने लगी— धर्म क्या है? धर्म क्यो करना चाहिये? क्या करना पडता है? इस क्या और क्यो के समाधान के लिये मन उत्सुक रहने लगा। गृहकार्यों से मन उचटने लगा। अब तो दूसरे मार्ग पर चल पड़ने के विचार आने लगे। आप धर्म की गहराई तक पहुंचना तो चाहते थे, लेकिन सुयोग्य मार्गदर्शक का सुयोग उपलब्ध नही होने से अपने मन मे सोचते, तर्क करते, समाधान का प्रयत्न भी करते लेकिन सन्तोष नही होता था। अन्तर्द्वन्द्वो की निवृत्ति के लिये अब आपने सन्तो की सेवा में रहने का निश्चय कर लिया। इस समय आपकी आयु करीब १५-१६ वर्ष की रही होगी, जबकि किशोर मन मे नये-नये अनुभवो, विचित्रताओ एव आकर्षणो का कोपसग्रह करने की उद्दाम भावनायें हिलोरे लेती रहती हैं।

अत: आप चल पडे योग्य गुरु के सुयोग की खोज मे। प्रारभ मे पूज्य श्री मोतीलाल जी म सा (मेवाडी) का संयोग मिला, उन दिनो पूज्यश्री चातुर्मास हेतु बदनौर विराज रहे थे। अतः आप बदनौर पहुचे। वहां करीब ३-३॥ मास रहे और समाधान के लिये प्रयत्न करते रहे, लेकिन जितना समाधान कर पाते उससे जिज्ञासाओं की सख्या दुगुनी

हो जाती थी। इस प्रकार की मन:स्थिति के बीच आपको कारणवशात् बदनौर से ब्यावर जाना पड़ा।

उन दिनों ब्यावर मे आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. के सुशिष्य प. र. मुनिश्री जौहरीमल जी म. सा विराज रहे थे। उनके सान्निध्य मे धार्मिक आचार-विचारो आदि का अध्ययन-मनन किया और अपनी जिज्ञासा के समाधान का भी प्रयत्न किया। वहीं पर विभिन्न सन्त मुनिराजो की थोडी बहुत जानकारी के साथ यह भी मालूम हुआ कि पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. की एक अलग सम्प्रदाय है और वर्तमान मे इस सम्प्रदाय की व्यवस्था युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. सभालते हैं। पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. सा खादी पहनते हैं और दूसरो को भी खादी पहनने का उपदेश देते हैं।

यह युग गाधीयुग कहलाता था और स्वदेशी आदोलन नगरों से होता हुआ भारत के गाव-गाव मे फैल चुका था। आप भी इससे प्रभावित थे। अत. बुद्धि तुलना करने लगी कि जिस सम्प्रदाय मे खादी का उपयोग हो और जिसके आचार्य खादी पहनने का उपदेश देते हो, वे श्रेष्ठ ही होने चाहिये। इस विचार से आपकी जिज्ञासा बढ़ी और उनके निकट सम्पर्क मे पहुँचने की भावना भी सजोयी। लेकिन बदनौर वापस आना आवश्यक होने से आप ब्यावर से बदनौर आकर अपने गाव दाता लौट आये।

आपका मन अब घर मे नही था। उनकी वृत्ति 'मैं हो पै गृह में न रचै ज्यो जल मे भिन्न कमल है' जैसी हो चुकी थी। पारिवारिक जनों को भी इसका स्पष्ट आभास मिल चुका था। अत. बढते चरणों को अवरुद्ध करने के लिये उनकी ओर से प्रयत्न होना, उतना ही प्रगति के लिये प्रयास करने का बल आपको प्राप्त हो गया था। सन्तों के सहवास से आप यह भलीभाति जान चुके थे कि सन्त-सतियो मे लम्बी-लम्बी तपस्यायें होती हैं। कोई-कोई तो केवल छाछ के आधार पर महिनों निकाल देते हैं। इन बातों को सुनकर आपने भी इस

अपने आचरण में उतारने का निराला संकल्प किया। आपने सोचा यदि कोई तपस्या करके कुछ दिनों निराहार रह सकता है अथवा कोई छाछ के आधार पर महीनो गुजार देता है तो फिर मैं केवल पानी पर ही क्यो नही रह सकता ? अजीब सूझ थी यह, अपूर्व सकल्प था यह, जिसे आपने अपने भावी जीवन मे साकार रूप दिया। किन्तु आप जैसे आत्मबली के लिये यह कुछ विशेष महत्त्व नही रखता है।

त्याग के मार्ग पर बढने के लिये कठिनाइयों पर विजय पाने की सामर्थ्य प्राप्त करना आवश्यक है और उसमे भी रसनेन्द्रिय का सयम रखना तो विशेष आवश्यक होता है। अत अपने सकल्प को साक्षात करने के लिये आप प्रात: आधी रोटी और साय पाव रोटी पर रहने लगे। यह क्रम कई महीनो तक चलता रहा। जिससे शरीर काफी कृश हो गया। एक दिन ऐसा भी प्रसग आया कि शारीरिक कृशता के कारण चक्कर आने से गिर पडे। लेकिन आप तो निर्धारित लक्ष्य की ओर बढने का सकल्प कर चुके थे। अतएव यह कसोटी आपको अपने सकल्प से विचलित नही कर सकी।

आप बाल्यकाल से ही तार्किक थे, यह बात पहले स्पष्ट हो चुकी है। जिज्ञासाओ के समाधान के लिये आपकी ज्ञान-पिपासा गुरुगम की चाह मे बढने लगी। पारिवारिक जनो की ओर से व्यवधान तो डाले ही जा रहे थे कि अकस्मात इन्ही दिनो एक सामाजिक भोज के प्रसग मे आपको कपासन जाना पड़ा। वहा मुनिश्री इन्द्रमल जी म. सा की सेवा का अवसर मिला। इसके पूर्व पूज्य श्री काशीराम जी म सा तथा दिवाकर जी म सा. के सन्तो एव अन्यान्य सन्तो की सेवा, वाणी-श्रवण का भी प्रसग प्राप्त हो चुका था और उन्होने आपकी दिनचर्या से अनुमान लगाया था कि आप भावी सत हैं। अत: अपनी ओर आकृष्ट करने के लिये अनेकानेक प्रलोभन प्रस्तुत किये जाते थे। एक ने कहा—हमारे पास साधु बनने से किसी प्रकार का कष्ट नही होगा। दूसरे ने फरमाया—'चेला बन जा, हम अपनी सब विद्याय तुझे समर्पित

कर देंगे, तीसरे ने उससे भी दो कदम आगे बढ़कर कहा कि मेरा शिष्य बनेगा तो तुझे सम्प्रदाय का मुखिया बना दूंगा । चौथे ने अपना महत्त्व जताते हुए बताया कि ज्यादा सोच-विचार में पड़ने की जरूरत नहीं, हमारे जैसे सन्त और हमारे जैसा सम्प्रदाय नही मिलेगा आदि-आदि । परन्तु आपको आत्म-तुष्टि नही हुई और सोचते रहे कि अन्यान्य सन्तो को भी देख लेना चाहिये ।

विचारानुसार आपने युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. की सेवा में पहुंचने का निश्चय किया और एक दिन घर पर बिना कुछ कहे-सुने कपासन पहुचे । वहां से श्री मीठालाल जी चडालिया के सहयोग से रतलाम होते हुए उस समय कोटा विराजित युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. की सेवा मे जा पहुंचे ।

युवाचार्य जी से आपका प्रथम परिचय कपासन के वैरागी के रूप मे कराया गया । बाद मे आपने अपना पूर्ण परिचय स्वय दिया और युवाचार्यश्री के प्रथम दर्शन, मधुरवाणी, तप, तेज से ऐसे प्रभावित हुए कि बस यही महापुरुष मेरे गुरु बन सकते हैं ।

मन मे ऐसा सकल्प कर प्रार्थना की कि मैं आपसे भागवती-दीक्षा अगीकार करना चाहता हूं । लेकिन स्वीकृति के बदले साधुता क्या है ? और गुरु की परीक्षा करने के बाद दीक्षा लेने की बात सोचो । यह सकेत मिला । यह बात आप को अपूर्व प्रतीत हुई और सकेत का ऐसा प्रभाव पड़ा कि मन-ही-मन आपने दृढ़ सकल्प कर लिया कि शिष्य बनना है तो इन्ही का बनना है ।

अब साथ-साथ पैदल विहार, ज्ञान व संयम-साधना का अभ्यास आरम्भ हो गया । इस प्रकार पदयात्रा करते हुए भावी गुरु के साथ आप सं० १९९६ में उदयपुर आये । सम्बन्ध सुदृढ हो गया था अब उसको साक्षात करने के लिये पारिवारिक जनो से स्वीकृति-पत्र प्राप्त करने हेतु उदयपुर से दांता आये । परन्तु जब आपको सहज ही आज्ञा-पत्र नही मिला तो आपको ऐसे का रूप करना पड़ा और जब तक आज्ञा

पत्र प्राप्त न हो जाये तब तक घर पर भोजन न करने का संकल्प कर लिया।

अन्त मे आपके सकल्प को देख पारिवारिक जनो को स्वीकृति देना उपयुक्त प्रतीत हुआ और पारिवारिक जनो की स्वीकृति एवं चातुर्विध सघ की सहमति से स० १९९६, मिती पौष शुक्ला ८ को कपासन मे आपने युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म सा. की सेवा मे भागवती दीक्षा अंगीकार करके अपने को धन्य माना।

दीक्षित होते ही आपने गुरुगम से अध्ययन करना आरम्भ कर दिया। सुयोग्य शिष्य की ओर उन्मुख गुरु की ज्ञानगरिमा ने शिष्य को सिद्धान्त, व्याकरण, षड्दर्शनो का गहन अध्ययन कराया और शिष्य की धारणा-शक्ति एव तार्किक-बुद्धि जिस किसी भी साहित्य को देखती तो उसके अन्तर् तक पहुंच कर विराम लेती थी तथा जिज्ञासा-वृत्ति ने प्रतिभा को विकसित करने मे पूरा-पूरा योग दिया।

दीक्षा क्षण से लेकर गुरु के जीवनान्त तक परछाई की तरह साथ रहकर आज आप उनके आदर्शो को साकार रूप देकर मानव-समाज के हितार्थ साधना मे तत्पर हैं। गुरु गणेश से जीवन का श्रीगणेश कर, गण—ईश बन नामत. नाना होकर भी भावत: गणेश हैं एव 'हुगिउचौश्रीजगनाना' जो जगत मे नम्रता से लघु से लघुतर होगा वही सबसे उच्च गौरव को प्राप्त करता है— को सार्थक सिद्ध कर रहे हैं।

यह है चरितनायक के प्रथम शिष्य का सक्षिप्त परिचय।

आचार्यश्री-संमिलन : सम्मेलन

दीक्षा-सम्पन्न होने के पश्चात चरितनायक सन्तसमूह के साथ मेवाड के विभिन्न क्षेत्रो को विहार और धर्मदेशना से पावन करते हुए मारवाड की ओर पधारे। जैसे मेवाड़ के विभिन्न क्षेत्र आपकी प्रतिभा और विद्वत्ता का लाभ उठाने के लिये सोत्सुक रहते थे, उसी प्रकार मारवाड की ओर आपका पदार्पण होने के समाचार ज्ञात कर मारवाड के श्रीसंघ भी अपने-अपने क्षेत्र मे पधारने व चातुर्मास कराने के लिये, उत्कण्ठित हो उठे। विभिन्न श्रीसंघो की ओर से आगामी चातुर्मास हेतु

विनम्र विनतियां आपकी सेवा में प्रस्तुत की जाने लगी। लेकिन अभी चातुर्मास के लिये काफी समय था।

इन्ही दिनो सं० १९९९ का अहमदाबाद चातुर्मास पूर्ण होने के बाद पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. भी सौराष्ट्र, गुजरात मे जैनधर्म के सिद्धान्तो का प्रचार-प्रसार करते हुए मारवाड की ओर पधार रहे थे। उन क्षेत्रो की जलवायु शारीरिक स्वास्थ्य के अनुकूल न होने और वृद्धावस्था के कारण आचार्य श्रीजी के स्वास्थ्य मे निर्बलता आ गई थी। जिससे अब स्थिरावास की आवश्यकता विशेष रूप से अनुभव होने लगी थी।

वैसे तो अहमदाबाद में ही स्वास्थ्य उत्तरोत्तर क्षीण होता जा रहा था, फिर भी आचार्य श्रीजी वेला, तेला, उपवास आदि तपस्यायें करके स्वास्थ्य को टिकाये रहे लेकिन सुस्ती और कमजोरी मे वृद्धि होती ही गई। यथासमय चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात पालनपुर, मेहसाना आदि स्थानों को फरसते हुए सादडी मे पदार्पण किया। इधर से चरितनायक जी भी फाल्गुन शुक्ला १० को आचार्य श्रीजी की सेवा मे उपस्थित हो गये।

वर्षो के पश्चात गुरु शिष्य के मिलन का यह दृश्य अलौकिक था। आचार्य श्री के चरणो में अपने को पाकर विनीत शिष्य आत्म-विभोर थे तो शिष्य की विद्वत्ता, प्रतिभा, ऋजुता एवं मृदुता का अवलोकन कर गुरु आत्मगौरव से पुलकित थे।

सम्प्रदाय व्यवस्था एवं अन्य सम्बन्धित विषयो पर सन्त वृन्द मे विचार-वार्ता करने के उद्देश्य से युवाचार्य श्रीजी आदि सन्तो सहित आचार्य श्रीजी सादडी से विहार कर ब्यावर पधारे। इस समय ब्यावर मे ६६ सन्त एवं ७५ सतियां एकत्रित हो चुके थे।

ब्यावर मे एकत्रित सन्त-मुनिराजो मे विचार-विमर्श हुआ और उनके निश्चय को सर्वानुमति से समर्थन प्राप्त हुआ। श्रोताओ एवं मुमुक्षुओं में भी ज्ञान-ध्यान-तप-जप की प्रवृत्ति से सदानन्द रस बरसकर

का लाभ उठाया । आचार्य श्रीजी के अस्वस्थ रहने से प्राय: युवाचार्य श्रीजी व्याख्यान फरमाते थे ।

अजमेर श्रीसंघ एवं वहा के प्रमुख श्रावक सेठ श्री गाढमल जी लोढा की साग्रह विनती को लक्ष्य मे रखते हुए आचार्य श्रीजी का व्यावर मे विराजित सभी सन्तों के साथ अजमेर मे पदार्पण हुआ । चतुर्विध सघ के विराजने से अजमेर एक तीर्थक्षेत्र-सा हो गया ।

वैशाख शुक्ला ३ (अक्षय तृतीया) दि० १०-५-४० को वर्षी तप महोत्सव होने से अनेक क्षेत्रो के आगत श्रोताओ की उपस्थिति में चरित-नायक युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा ने भगवान ऋषभदेव के पारणे का सरस वर्णन करते हुए भगवान के जीवन पर विशद प्रकाश डाला और जिसका श्रोताओ पर वहुत ही गहरा प्रभाव पड़ा ।

वैशाख शुक्ला ४ दि० ११-५-४० को व्याख्यान के प्रसग में युवाचार्य श्रीजी ने वृद्धविवाह की हानियो, सामाजिक रूढ़ियो आदि का विवेचन किया । जिसका यह प्रभाव हुआ कि वहुत से भाइयो ने ४० वर्ष से अधिक उम्र वाले व्यक्ति के विवाह मे सम्मिलित न होने और वहिनो ने विवाहादि प्रसंगों पर अश्लील गीतो के न गाने की प्रतिज्ञा ले ली । इसके अतिरिक्त तप-त्याग आदि विविध धार्मिक आचारो का आचरण किये जाने से अजमेर मे अनेक उपयोगी कार्य सम्पन्न हुये ।

अजमेर मे विभिन्न श्रीसंघो की ओर से अपने अपने क्षेत्र मे चातुर्मास करने हेतु पुन: विनतिया दोहराई गई । सभी अपने-अपने यहा आगामी चातुर्मास होने के लिये आशा लगाये हुए थे । लेकिन द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को ध्यान मे रखते हुए सं, १९९७ के लिये पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. का वगडी और युवाचार्य श्रीजी का फलौदी चातुर्मास स्वीकृत हुआ ।

अजमेर से यथासमय विहार करके व्यावर आदि मार्गवर्ती क्षेत्रों मे धर्मोपदेश देते हुए चातुर्मास हेतु पूज्य आचार्य श्रीजी बगड़ी और युवाचार्य श्रीजी फलौदी पधारे ।

गुरुसेवा में रत

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. ने बगडी से विहार कर सोजत पदार्पण किया । वहीं पर युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा भी फलौदी से विहार कर आचार्य श्रीजी की सेवा मे पधार गये । बगडी मे पूज्य आचार्य श्रीजी के स्वास्थ्य में सुधार नही हुआ और अब रोगजर्जरित देह विहार मे असहयोग सा एव स्थिरावास की आवश्यकता व्यक्त करती थी । स्थिरावास के लिये भीनासर, बीकानेर, अजमेर, व्यावर, रतलाम, उदयपुर, जलगाव आदि स्थानों की काफ़ी समय से विनतियां हो रही थी, लेकिन बीकानेर-भीनासर श्रीसघो के सौभाग्य से आचार्य श्रीजी ने उनकी विनती स्वीकार कर ली और तदनुसार युवाचार्य श्रीजी आदि सन्तों के साथ सोजत से बीकानेर की ओर विहार कर दिया ।

आचार्य श्रीजी आदि सन्तो के जोधपुर के निकट पधारने पर वहां के भाई अपने यहां पधारने की विनती लेकर सेवा मे उपस्थित हुए । लेकिन आचार्य श्रीजी की शारीरिक स्थिति को देखते हुए सीधे बीकानेर की ओर विहार होना उचित समझा गया । बलुन्दा मे पुन. स्वास्थ्य खराब हो गया और जैसे-तैसे कुछ स्वास्थ्य में सुधार होने पर आचार्य श्रीजी ने ठाणा १८ से बीकानेर की ओर विहार कर दिया ।

युवाचार्य श्रीजी आदि सन्त विहार करते हुए बीकानेर के निकटस्थ उदयरामसर पधारे । वहा शौचादि के निमित्त कुछ मुनिवर जगल गये । रास्ते मे उन्होने देखा कि कुछ लोग एक बकरे को मारने के लिये तैयारी कर रहे हैं । इस दृश्य को देखकर उन मुनिवरों में से मुनिश्री सुन्दरलाल जी म. सा. ने तत्काल वापस लौट कर युवाचार्य श्रीजी की सेवा मे स्थिति का निवेदन किया और तत्काल युवाचार्यश्री घटनास्थल पर पहुंचे और अहिंसाधर्म का महत्त्व बतलाते हुए ऐसी सुन्दरता से उन वधिकों को समझाया कि उन्होंने उसी समय बकरे को अभयदान दे दिया और दूसरे दिन व्याख्यान के समय से सभी

युवाचार्य श्रीजी का व्याख्यान सुनने के लिये आये। इसके सिवाय समयानुसार और भी त्याग-प्रत्याख्यान हुए।

उदयरामसर से भीनासर, गगाशहर होते हुए आचार्य श्रीज आदि सभी सन्तो ने बीकानेर मे पदार्पण किया। बीकानेर नगर बड है। बाहर के दर्शनार्थियो का तो मेला-सा ही लग रहता था। बीकाने श्रीसघ ने उनके सम्मानादि की समुचित व्यवस्था की थी किन्तु गर्म की अधिकता आचार्य श्रीजी के स्वास्थ्य के अनुकूल नही पड़ी।

प्रतिदिन युवाचार्य श्रीजी अपनी वाणी से धर्मामृत का पा करते, जिससे श्रोताओ के हृदय गद्‌गद हो उठते थे। प्रवचन समय वे सिवाय चरितनायक शेष समय गुरुदेव की सेवा-वैयावच्च मे पूर्ण मनो योग से तत्पर रहते थे। आपका भी स्वास्थ्य अनुकूल नही था, घुटनो मे दर्द बना रहता था। परन्तु अपने स्वास्थ्य की उपेक्षा करके सदैव गुरु सेवा मे सलग्न रहना आप अपना सर्वोपरि लक्ष्य मानते थे।

दुविधा का परिमार्जन

नीति कहती है— 'आज्ञा गुरुणां खलु धारणीया' गुरुओं क आज्ञा अवश्य ही मानना चाहिये। चाहे वह आज्ञा रुचिकर हो य अरुचिकर' लेकिन गुरुजनो की आज्ञा के औचित्य-अनौचित्य पर विचार करने का हमे अधिकार नही है।

चरितनायक के रोम-रोम मे यह मत्र रमा हुआ था। आपके जीवन की धारा अनुप्राणित थी गुरोराज्ञा बलीयसी के आदर्श से। सेवाधर्मो परमगहनो योगिनाम्प्यगम्य की उक्ति को आपने सर्वथा झुठलाया था और अपने आचार से सर्वगम्य बना दिया था।

पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा. द्वारा स० १९९८ का चातुर्मास युवाचार्य श्रीजी आदि सन्तो सहित भीनासर मे करने का फरमा देने से भीनासर, गगाशहर, उदयरामसर, बीकानेर आदि आसपास के क्षेत्रो मे हर्षोल्लास छा गया था।

आषाढ़ मास का समय था। चातुर्मास-स्थापना के दिवस इने-

गिने रह गये थे। उन दिनों पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. बीकानेर मे श्री सेठिया जैन धार्मिक भवन मे विराज रहे थे और सरदारशहर श्रीसघ की अपने यहा सन्तो के चातुर्मास के लिये अत्याग्रह भरी विनती हो रही थी। वहां के श्रीसघ का प्रतिनिधि मण्डल पहले भी अपनी स्थिति की जानकारी कराने के लिये आचार्य श्रीजी की सेवा में उपस्थित हो चुका था और परिस्थिति को देखते हुए पूज्य आचार्य श्रीजी भी विद्वान सन्तो का सरदारशहर मे चातुर्मास होना आवश्यक समझते थे।

लेकिन सन्तों की शारीरिक स्थिति और समय की अल्पता के कारण कुछ निश्चयात्मक स्थिति नही बन रही थी। युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा के घुटनो मे दर्द बना रहता था तथा दूसरे सन्त भी आचार्य श्रीजी की सेवा मे रहने के लिये उत्सुक थे।

आचार्य श्रीजी की यह दुविधा देखकर चरितनायक युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा ने सेवा मे निवेदन किया कि आपको जो भी आज्ञा हो मुझे शिरोधार्य है। आपश्री इस दुविधा की स्थिति का मन पर असर न होने दें। आपके मन की समाधि रहना हमारे लिये श्रेयस्कर है। भावों के पारखी आचार्य श्रीजी ने विनीत शिष्य की अन्तर्ध्वनि को सुना और फरमाया— अभी तुम्हारा स्वास्थ्य अनुकूल नही है, ग्रीष्म-ऋतु प्रचंड है और समय भी कम है। अतः ऐसी स्थिति मे यथासमय सरदारशहर पहुंचना कठिन-सा है, बस यही विचार मेरे मन मे बार-बार उठ रहा है।

युवाचार्य श्रीजी ने अर्ज की कि जब सरदारशहर मे चातुर्मास होना जरूरी है तो आपश्री मेरे स्वास्थ्य का विचार न करें। आपके आदेश, आज्ञा और आशीर्वाद मे सब अनुकूल ही रहेगा। आपकी आज्ञा मेरे लिये नन्दनवन है। आपके आशीर्वाद से शरीर स्वस्थ और सबल बनेगा। बस अपना आशीर्वाद प्रदान कर प्रस्थान को प्रशस्त बनायें, और आचार्य श्रीजी ने शिष्य के गौरव को ध्यान मे रखते हुए युवाचार्य श्रीजी को सरदारशहर चातुर्मास हेतु प्रस्थान करने की आज्ञा प्रदान की।

उस समय उपस्थित जनसमूह यह सब देख रहा था। उसके मनोभाव आंखो से बह निकले, कठ भर आये, मुख मुरझा गये और शून्य आखें एक-दूसरे के अन्तर् की टोह लेने के लिये अपलक-सी रह गई। उन्हें आशा थी कि आचार्य श्रीजी एव युवाचार्य श्रीजी के उपदेशामृत पान का सुअवसर हमे सहज ही प्राप्त होगा। लेकिन अब यह आशा निराशा मे रूपान्तरित हो गई थी।

विनीत शिष्य तो आदेश के साथ ही आशीर्वाद ले प्रस्थान पथ पर अग्रसर होने के लिये चल पडे। समय मध्याह्न वेला का था। सहस्ररश्मि प्रचडता से प्रकाशमान था। आगे-आगे सन्त-मण्डल और पीछे-पीछे श्रावक श्राविकाओ का समूह आंखो मे आसू भरे चल रहा था और मौन वेदना वारम्वार व्यक्त करती थी कि आपश्री यहा विराजे।

चरितनायक जी ने उन सबको सांत्वना दी, समझाया और फरमाया— आपका धर्मोत्साह सराहनीय है। गुरुदेव की आज्ञा ही मेरे लिये मगलप्रद है। मेरे पास अपना कुछ नही है, मुझ अकिंचन ने गुरु-चरणो के प्रताप से जो कुछ विरासत मे प्राप्त किया है उसे ही वितरित कर देता हूँ और निजानन्दरसलीन हो सुखानुभव करता हूँ। रही प्राकृतिक वातावरण की सो आप उसका विचार न करें। मेरे लिये गुरुदेव का वरद आशीर्वाद सभी स्थिति मे शातिप्रद है। मैं अकेला नही हूँ, मेरे साथ गुरुदेव का आशीर्वाद है। उसकी मगलमयी किरणें मेरे लिये सदैव सहायक रही हैं, और रहेगी। आपकी भक्ति एवं धर्मप्रेम मुझे गुरुदेव की आज्ञा पालन मे सहायक होगा। आप लोग अपने को महावीर का अनुयायी मानते हैं, लेकिन आश्चर्य है कि आज अपनी वीरता को आंखो से बहा रहे हो! वीर तो बढते हुओ को वीरता का बोध देते हैं। इस प्रकार के आशय के भावो से उपस्थित जनसमुदाय को भली प्रकार आश्वस्त करके श्रमणसरदार ने संतमडल के साथ सरदारशहर की ओर प्रस्थान कर दिया।

विनयशीलता और अनुशासनप्रियता तो आपकी रग-रग मे

समाई हुई थी। कदाचित् प्रवचन करते समय गुरुदेव कभी टोक देते तो उसी समय असावधानी के लिये क्षमायाचना के साथ कृतज्ञता पूर्वक उनकी सूचना अंगीकार करते थे। चाहे फिर श्रोताओं की उपस्थिति सैकड़ों मे हो और श्रोताओ को सावधानी दिलाते हुए फरमाते कि गुरु-देव की शिक्षा प्रबल पुण्योदय से मिलती है और शिष्य के जीवन विकास के लिये आवश्यक है।

चरितनायक ने सदैव गुरु आज्ञा के अनुसार चलना सर्वोपरि माना था। यही कारण है कि आप पूर्णरूपेण गुरु का प्रसाद पाने मे सफल हुए। आपकी विनम्रता, भक्ति और कर्तव्यपरायणता इतनी उच्चकोटि की थी कि आपके जीवन का आदर्श युग-युग तक स्मरणीय रहेगा।

दारुण दुर्घटना

सरदारशहर थली प्रदेश का प्रमुख नगर है और थली प्रदेश मारवाड का मध्य क्षेत्र है। एक तो मारवाड की मरुधरा वैसे ही शुष्क होती है और उसमे भी थली प्रदेश की शुष्कता तो अपने ही प्रकार की है। वहां की भौगोलिक स्थिति ही ऐसी नही है किन्तु वहां के निवासियो के बहुभाग के हृदय भी शून्य, शुष्क हैं। इसके साथ ही वहां ऐसे-ऐसे व्यक्तियों का विशेष रूप से आवागमन हुआ है जो अपने उपदेशो मे मरते जीव को बचाना पाप है, प्यासे को पानी पिलाना पाप है, माता द्वारा बालक का पालन-पोषण होना और गर्भस्थ बालक की रक्षा करना एकान्त पाप है, माता-पिता की सेवा करना पुत्र के लिये पाप है आदि-आदि मानवता विरोधी और अविवेकता मे भरी हुई बातो का प्रचार करते हैं। लेकिन यह सब कहा जाता है परमकारुणिक भगवान महावीर के नाम पर कि हे भगवन ! तेरा पथ यह है। ऐसों ने धर्म को तीन तेरह करके तेरे के स्थान पर मेरे-मेरे का ढिंढोरा पीट रखा है।

यद्यपि ऐसे शुष्क जन-मनो को स्नेहासिक्त करने के लिये चरितनायकश्री का पहले भी पदार्पण हो चुका था लेकिन गरम लोहे पर दो-चार बूंद पानी डालने से शीतलता नही आती है, किन्तु उसको

शीतल करने के लिये जलधारा के सतत प्रवाह की आवश्यकता होती है। अतः शुष्क मानवो को आर्द्र करने के लिये परमकरुणा के दया-सागर की धारा का प्रवाह वहाने के लिये हमारे चरितनायक बढ़े जा रहे थे, बढ़े जा रहे थे।

थली क्षेत्र मे गाव दूर-दूर बसे हुए हैं और मानवता-युक्त मानवो की वस्ती भी कही-कही पर है। वीकानेर से शिववाडी, नापासर आदि क्षेत्रो मे विहार करते हुए आप तीन सन्तो के साथ श्रीडूगरगढ़ पधारे और तीन सन्त एकाध रोज के अन्तर से पीछे-पीछे आ रहे थे। श्रीडूंगरगढ पधारने पर आपश्री आशाराम जी झवर की बगीची मे विराजे और दोपहर वाद वहा से आगे के लिये विहार कर दिया।

तीन सन्त जो एक मजिल पीछे-पीछे आ रहे थे, श्रीडूगर-गढ से तीन कोस पहले एक गाव मे पहुंचे। वहा आहार-पानी का सयोग नही बना और विशेष रूप से पानी का। गरमी का मौसम था अत कम-से-कम तीन पात्र पानी चाहिये था लेकिन मिला एक ही जो तीनो सन्तो के लिये पर्याप्त नही था। उससे कुछ पिपासा शात करके उन्होने सोचा कि यहा से श्रीडूगरगढ तीन कोस है और वहा युवाचार्य श्रीजी आदि सन्त विराज रहे हैं एवं वादल होने से धूप भी कुछ कम है। अतः ऐसा विचार कर दोपहर के करीब उन्होंने श्रीडूगरगढ की ओर विहार कर दिया।

लेकिन थोड़ी देर वाद वादल विखर गये। सूर्य के प्रचड ताप के साथ लू के झोके आने लगे। रास्ते मे कोई छायादार वृक्ष नही था अत. एक खेजड़ी के नीचे वैठकर किसी तरह मध्याह्न का समय व्यतीत किया और पुनः करीव तीन वजे वहा से विहार कर दिया।

इन तीन सन्तों मे मुनिश्री मोतीलाल जी म. सा. वयोवृद्ध थे और श्रीडूंगरगढ करीव डेढ़ मील रहा होगा कि उनको चक्कर आने लगे। साथ के सन्तो से आपने कहा कि चक्कर आ रहे हैं, घवराहट हो रही है और कण्ठ सूख रहा है, जिससे चलने में कठिनाई मालूम

पड़ती है । इस स्थिति को देखकर साथ के दोनों सन्तो ने सहारा देकर उनको एक खेजड़ी के नीचे बैठा दिया और एक सन्त वहीं सेवा-वैया-वच्च के लिये ठहर गये एव दूसरे सन्त जल लेने के लिये श्रीडूंगरगढ़ की ओर चल दिये ।

श्रीडूंगरगढ की ओर जाने वाले सन्त ने गांव के निकट आकर किसी राहगीर से जाकर पूछा कि यहां ओसवालो का मोहल्ला किधर है । उसने मोहल्ले की ओर जाने वाले रास्ते का सकेत कर दिया । सकेतित रास्ते से होते हुए सन्त बाजार मे पहुंचे और ओसवाल भाइयो से पूछा कि यहां युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. किधर विराज रहे हैं । किन्तु उन्होने कुछ पता-ठिकाना न बताकर हसी-मजाक मे बात उड़ा दी । इस पर पुन सन्त ने बताया कि यहा से करीब डेढ मील पर एक वयोवृद्ध सन्त को तकलीफ है, प्यास के कारण कण्ठ सूख रहा है और घबराहट है । यहां कोई योग्य मकान बता दीजिये जिसमे पात्रादि भडोपकरण रखकर और आप लोगों के यहां से साध्वोचित जल की गवेषणा करके, उनके पास पहुंचू ।

फिर भी उन्होंने बात पर ध्यान नहीं दिया और न रास्ता ही बताया । बाजार के इस छोर से उस छोर तक घूमने पर भी सन्त को कुछ भी जानकारी न मिल सकी । अकस्मात श्री भंवर जी के घर के सामने से गुजरना हुआ । वहीं भवर जी मिल गये । बातचीत करते हुए सन्त ने पूछा कि युवाचार्य श्रीजी किधर विराज रहे हैं ? उत्तर मे श्री भवर जी ने बताया कि अभी कुछ देर पहले बगीची मे विहार किया है, आप सामान बगीची मे रखिये और मेरे घर से जल ले जाकर प्यासे सन्तो को शान्ति पहुंचाइये ।

सन्त पानी लेकर वापस सेवा मे आने के लिये चल पड़े । करीब फर्लांग, डेढ़ फर्लांग दूरी रही होगी कि वयोवृद्ध सन्त मुनिश्री मोतीलाल जी म. सा. ने संथारा पूर्वक प्राण त्याग दिये । रास्ता बताने के लिये जो भाई साथ में थे, उन्होंने वापस आकर सब घटना

श्री भ्रवर जी को सुनाई और बीकानेर के भाइयो को भी जो युवाचार्य श्रीजी के दर्शन कर बीकानेर जाने के लिये स्टेशन गये थे, वृद्ध सन्त के देहावसान की खबर दी।

इस दारुण दुर्घटना को सुनकर सभी जाने वालो ने टिकिट वापस कर स्वर्गस्थ सत के दाहसस्कार की तैयारी की। बाजार में चदन, नारियल आदि की तलाश की किन्तु मुह मागे दाम देने पर भी उपलब्ध नही हो सके। उन्ही दिनो श्री भ्रवर जी के यहा विवाह की तैयारी हो रही थी और इसके लिये नारियल आदि उन्होने ले रखे थे। लेकिन मागने मे सकोच हो रहा था। दुविधा का पता चलते ही श्री भ्रवर जी ने नारियल आदि की बोरिया दी और दाहसस्कार करके बीकानेर के भाई वापस बीकानेर लौटे।

जब इस दारुण दुर्घटना के समाचार चरितनायक जी को प्राप्त हुए तो श्रीडूगरगढ से विहार कर जहा पहुचे थे, वही रुक गये और चार लोगस्स का ध्यान किया।

जिस प्रकार श्रमणभगवान महावीर के अनार्य देश की ओर बढते चरणो को लाख बाधायें विचलित नही कर सकी, तो उनके अनुयायी श्रमणो को यह बाधायें कैसे विचलित कर सकती थी ? दुर्जन अपनी दुर्जनता नही छोड़ सकते हैं तो सज्जन भी अपने आरम्भ किये हुए जन-कल्याण के कार्यों से कभी भी विरत नही होते हैं। एक कवि ने कहा है—

त्यजति न विदधान कार्यमुद्विज्य धीमान् ।
खलजन परिवृत्तो स्पर्धते किन्तु तेन ॥

दुष्टजनो की चेष्टाओ से घबरा कर बुद्धिमान पुरुष अपने आरभ किये हुए कार्य का त्याग नही कर सकता, वरन स्पर्धा करता है अर्थात् जैसे दुष्ट अपनी चेष्टाओ से बाज नही आता, वैसे ही ज्ञानी पुरुष भी अपने कार्य को पूरा किये बिना विश्राम नही लेता है।

जब पीछे आने वाले शेष दो सन्त आपके पास आ गये तो उन्हें साथ लेकर पुनः सरदारशहर की ओर विहार कर दिया और

यथासमय सरदारशहर के निकट पधार गये ।

नगर-प्रवेश

सरदारशहर के बन्धुओं ने चातुर्मासार्थ नगर-प्रवेश के लिये ज्योतिषियों से मुहूर्त निकलवाया था। इसका संकेत उन्होंने चरितनायकजी की सेवा मे भी किया तो फरमाया— मैं तो गुरुदेव की आज्ञा से चातुर्मास करने के लिये आया हूँ, अत गुरु-आज्ञा ही सबसे अच्छा मुहूर्त है और क्षयतिथि के दिवस ही सरदारशहर मे प्रवेश किया ।

चातुर्मासार्थ नगर में प्रवेश करने के लिये मुहूर्त आदि देखने की परिपाटी श्रावको तक ही सीमित नही है, लेकिन कुछ एक साधु-सन्त भी चातुर्मास के निमित्त नगर-प्रवेश करते समय मुहूर्त आदि देख लिया करते है। मगर आपने सदैव गुरु-आज्ञा को ही मुहूर्त समझा। चाहे तिथि क्षय हो या रिक्ता तिथि हो, चौघडिया अनुकूल हो अथवा न हो, नक्षत्र और योग प्रतिकूल हो, चन्द्रमा और योगिनीवास पीठ पीछे हो, आपने इसकी कभी चिन्ता नही की। न कभी मुहूर्त निकाला और न इसका हिसाब लगाया। आपकी तो धारणा थी—गुरु-आज्ञा ही मेरे लिये शुभ मुहूर्त और सन्मुख चन्द्रमा है।

आपका यह चातुर्मास सरदारशहर के लिये ही नहीं। वरन समस्त थलीप्रदेश के लिये ही वरदान सिद्ध हुआ। आत्म-शुद्धि के लिये विभिन्न प्रकार के त्याग, प्रत्याख्यान और तपस्यायें होने के साथ साथ अनेक व्यक्तियो ने धर्म के स्वरूप को समझकर सत्य का अनुकरण करने की प्रतिज्ञा ली ।

श्री हुकमचन्द जी और श्री सुमेरमल जी की भागवती दीक्षा इसी चातुर्मास मे आपके द्वारा सम्पन्न हुई थी ।

पुनः गुरुचरणो में

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात थली प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में विचरण करते हुए चरितनायक जी पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. की सेवा में पधार गये। इस विहार से थलीप्रदेश मे काफी उपकार हुए

और सरलहृदय जनों ने धर्म के अंतरंग रहस्य को समझकर जड़ मान्यताओ के त्याग का संकल्प किया ।

बीकानेर मे कुछ दिन गुरु-सान्निध्य मे सेवा का लाभ लेकर गुरुदेव की आज्ञानुसार बीकानेर के निकटस्थ क्षेत्रो— झज्झू आदि की ओर आपने विहार किया ।

पूज्य जवाहराचार्य का अन्तिम समय

आपने जब विहार किया था तब पूज्य जवाहराचार्य का स्वास्थ्य वृद्धावस्था को देखते हुए साधारणतया ठीक था । कमजोरी और घुटनो मे दर्द तो था, लेकिन अन्य कोई ऐसे लक्षण नही दिखते थे जो चिन्ताजनक हो कि अकस्मात जेष्ठ शुक्ला १५ को आचार्य श्रीजी को पक्षाघात (लकवा) हो गया। इन दिनो चरितनायक देशनोक विराज रहे थे। सूचना मिलने पर आप श्री देशनोक से विहार कर यथाशीघ्र पूज्य आचार्य श्रीजी की सेवा मे पधार गये ।

शरीर मे विविध व्याधियों के प्रकोप और उनका प्रतिरोध करने वाली शारीरिक शक्ति की असमर्थता को देखकर आचार्य श्रीजी ने प्राणिमात्र से क्षमायाचना कर लेना उचित समझा ।

अत: आचार्य श्रीजी ने भीनासर में जीवन की आलोयणा, प्रायश्चित करने के पश्चात दि० १८-६-४२ को चतुर्विध संघ के समक्ष ८४ लाख जीवयोनि से क्षमायाचना की ।

क्षमायाचना सम्बन्धी विचारो के साथ ही चरितनायक युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. के बारे मे फरमाया—

> लगभग आठ वर्ष से शारीरिक अशक्ति के कारण मैंने साम्प्रदायिक शासन का भार युवाचार्य श्री गणेशलाल जी को सौंप रखा है । उन्होंने जिस योग्यता, परिश्रम और लगन के साथ इस कार्य को निभाया और निभा रहे हैं, वह आपके समक्ष है । मुझे इस बात का परम सतोष है कि युवाचार्य श्री गणेशलाल जी ने अपने को इस उत्तरदायित्वपूर्ण पद का पूर्ण अधिकारी प्रमाणित

कर दिया है और कार्य अच्छी तरह सम्भाल लिया है। साथ में इस बात की भी मुझे प्रसन्नता है कि श्रीसंघ ने भी इनको श्रद्धापूर्वक अपना आचार्य मान लिया है। इनके प्रति आपकी भक्ति, आप सभी का पारस्परिक प्रेम उत्तरोत्तर वृद्धिगत होता रहे और इसके द्वारा भव्य प्राणियों का अधिकाधिक कल्याण हो, यही मेरी हार्दिक अभिलाषा है।

आचार्य श्रीजी के लकवा की शिकायत अभी दूर भी नहीं हो पाई थी कि कमर के बायीं ओर जहरीला फोड़ा (कार्बंकल) उठ आया। फोड़े के कारण दुस्सह वेदना थी और बुखार भी हो गया था। शल्य-चिकित्सा से भी जीवन बचना असम्भव-सा प्रतीत होने लगा कि अकस्मात फोड़ा अपने आप फूट गया और १५-२० दिन बाद फोड़े में कुछ सुधार दिखाई देने लगा। करीब छह माह में फोड़ा तो ठीक हो गया लेकिन दांयी करवट लेटे रहने के कारण बायें अंगों में इतनी कमजोरी आ गई कि उठना-बैठना कठिन हो गया।

इस शारीरिक अस्वस्थावस्था के कारण आचार्य श्रीजी का संवत् १९९९ का चातुर्मास भीनासर हुआ। युवाचार्य श्रीजी आदि सन्त सेवा में सदैव उपस्थित रहते थे। यह चातुर्मास धार्मिक प्रभावना की दृष्टि से बड़ी सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। चातुर्मास-समाप्ति के अनन्तर मार्गशीर्ष कृष्णा ४ को देशनोक निवासी श्री ईश्वरचन्द जी सुराना और श्री नेमीचन्द जी सेठिया गंगाशहर निवासी की भागवती दीक्षायें आचार्य श्रीजी द्वारा सम्पन्न हुई। आचार्य श्रीजी के वरदहस्त से यह दो अन्तिम दीक्षायें हुई थीं।

आचार्य श्रीजी का पहले हुआ फोड़ा तो ठीक हो गया था और स्वास्थ्य सुधार पर भी था कि अकस्मात जुलाई ४३ के प्रारम्भ में पुनः गर्दन पर एक जहरीला फोड़ा उठ आया और उसी तरह के छोटे-छोटे फोड़े शरीर के दूसरे भागों में उठ आये। घोर वेदना थी, अतः रात्रि के समय सेवा के लिये सन्तों का बारीवार जागरण रहता था। स्वर्गवास होने के दिन की

पूर्व रात्रि मे प्रथम प्रहर तक स्वास्थ्य कुछ ठीक-सा प्रतीत होता था। युवाचार्य श्री अपने नित्य नियम करके प्रहररात्रि वाद पौढ गये और करीव ११ वजे जो सन्त सेवा में थे, उनमें से मुनिश्री नानालाल जी म. सा. को आचार्य श्रीजी म. सा की श्वासगति मे परिवर्तन प्रतीत हुआ और युवाचार्य श्रीजी को आचार्य श्रीजी की श्वासगति के वारे में वतलाया कि अव गति के लक्षण दूसरे प्रकार के हैं। युवाचार्य श्रीजी आचार्य श्रीजी के पास आये और नाडी की गति देखी, उसके परिस्पन्दन में परिवर्तन और निर्वलता प्रतीत हुई। लेकिन आचार्य श्रीजी होश-हवास में थे और उसी समय सवसे क्षमत-क्षमापना करने के पश्चात औषधोपचार आदि के साधारण टटो की स्थिति की भी आलोचना युवाचार्य श्रीजी के समक्ष कर ली। इस समय युवाचार्य श्रीजी ने विनम्र भाव से प्रार्थना की कि आप स्वय समर्थ हैं अतः स्वय ही प्रायश्चित लेने की कृपा करें और मेरे लिये क्या आज्ञा है, सो फरमावें। आचार्य श्रीजी ने इस प्रसग पर इस आशय के भाव फरमाये कि आप सव तरह से योग्य हैं, शास्त्रीय दृष्टि को सन्मुख रखते हुए अपनी अन्तरात्मा को जैसा जान पड़े, वैसा करना। अन्त मे आषाढ शुक्ला ८ के सायंकाल करीव ५॥ वजे सथारा पूर्वक इस नश्वर देह को त्यागकर आचार्य श्रीजी की आत्मा अनन्त मे विलीन हो गई।

सूर्यास्त के साथ ही ज्योतिपुज जवाहर-सूर्य अस्त हो गया। संघ की अनमोल धरोहर छिन गई और समस्त श्रीसघ इसकी सूचना मिलते ही शोक सतप्त हो गये। आवालवृद्ध नर-नारी, अमीर-गरीव, साक्षर-निरक्षर सभी के चेहरो पर अपूर्व विषाद दिखाई देता था। जगवधु, युगदृष्टा का वियोग हृदय मे चुभ रहा था, मानो किसी स्नेहपात्र आत्मीय जन का वियोग हो गया हो। पूज्य जवाहराचार्य के वियोग से जैनो ने अपना जवाहर खोया, सन्तो ने सिरताज खोया, धर्म ने आधार खोया, सघ ने सघनायक खोया, पडितो ने पथप्रदर्शक खोया, गुणो ने गुणाकर खोया, पथभ्रष्ट पथिको ने प्रकाशस्तम्भ खोया, ज्ञान पिपासुओ

ने अमृतस्रोत खोया।

श्री जवाहराचार्य शताब्दियों में दृष्टिगोचर होने वाली विरल विभूति थे। उनका जीवन राष्ट्र की एक निधि थी, उनके प्रति जनता और जननेताओं की अटूट श्रद्धा और निष्ठा थी। पूज्य जवाहराचार्य बीसवीं शताब्दी के अजोड़ आचार्य थे। भारतीय इतिहास में गांधीजी का नामोल्लेख जितने सम्मान एवं गौरव के साथ किया जाता है, उतने ही आदर से पूज्यश्री का पुण्यस्मरण किया जाता रहेगा। आपश्री की अनमोल वाणी ने राष्ट्र और समाज में नवचेतना का संचार किया है। खादी, गोपालन, गृह-उद्योग और अल्पारंभ, महारंभ के सम्बन्ध में सही विचारों का दिग्दर्शन कराकर उन्होंने समाज को दिव्यचक्षुओं का जो दान दिया है, उसके लिये समाज उनका ऋणी रहेगा और अपनी कृतज्ञता व्यक्त करेगा। जब धर्म के नाम पर महा-आरम्भजन्य उत्सवों, संवर के स्थान पर आस्रव, वैराग्य के स्थान पर विलास, त्याग के स्थान पर भोग का समाज में बोलबाला था, तब पूज्यश्री ने अल्पारंभ और महारंभ की व्याख्या समझाकर पवित्रता के पुनीत पथ पर प्रयाण करने का मार्ग प्रदर्शित किया था और जहां सूर्य का प्रखर प्रकाश भी नहीं पहुंच सकता ऐसे अज्ञान-अन्धकाराच्छादित हृदयपटलों को पूज्यश्री ने प्रकाशित किया था। दीर्घजीवी होना जीवन की विशेषता नहीं है किन्तु महत्त्व तो है आदर्श जीवन का। पूज्यश्री का जीवन आदर्श था, आदर्शपुंज था और आदर्श के कीर्तिमान स्थापित कर जन-जन के लिये आदर्श बन गये हैं। जिस प्रकार यात्रा के जल, थल और आकाश तीन मार्ग हैं और उनमें आकाश-मार्ग सर्वोत्कृष्ट है। इसी प्रकार जीवन-यात्रा के भी तीन मार्ग हैं— आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक। आध्यात्मिक मार्ग सर्वोत्तम है। पूज्य श्री ने अपनी जीवनयात्रा इसी मार्ग से पूर्ण की।

पूज्य जवाहराचार्य अध्यात्म-विज्ञानशाला की कसौटी पर परीक्षित खरे जवाहरात थे। उन्होंने वही कहा जो शास्त्रसंगत था

और उसे ही आचार मे उतारा जो शास्त्रनिरूपित था। वे निर्भय और निर्द्वन्द होकर ही चलते रहे। उन्हे लोकभय आदि भी अपने मार्ग से विचलित नही कर सके और न मान-सम्मान की आकाक्षा भी सत्यान्वेषण से विमुख बना सकी।

श्री जवाहराचार्य गये, किन्तु वे अपनी विरासत, अपने अनुभव, अपनी क्रांतिकारी विचारधाराओं का सुरक्षित कोष पाट-परम्परा मे नवाभिषिक्त चरितनायक आचार्य श्री गणेशलाल जी म सा. को सौंप गये। वह कोष आज भी सुरक्षित है, सवर्धित है और जब तक सन्तो की परम्परा चलती रहेगी, तब तक उनके आदर्श सदैव जीवन्त रहेगे।

आचार्य-पदप्राप्ति

प्रकृति प्रकाश मे ही विकसित होती है, यह सनातन का नियम है। नवोदित प्रकाशपुंज के स्वागतार्थ चराचर विश्व के कण-कण मे उत्साह की अरुणिमा व्याप्त हो जाती है। इसीलिये चतुर्विध सघ ने एक सूर्य के अस्त होते ही मानो द्वितीय सूर्य का स्वागत-सम्मान करते हुए युवाचार्य श्री गणेशलाल जी म सा. को सविधि आचार्य-पद की चादर ओढ़ाने की विधि की और आचार्य-पद का दायित्व आपके कधो पर आने के साथ एक नये युग का श्रीगणेश हुआ।

आचार्य-जीवन

आचार्य-पद का महत्त्व

शाब्दिक दृष्टि से आचार्य शब्द का अर्थ आचरण करने वाला होता है। लेकिन इतने से ही आचार्य-पद का महत्त्व स्पष्ट नहीं होता है। आचरण तो सभी करते हैं, अतः उन सबको आचार्य माना जाना चाहिये। लेकिन यथार्थतः आचार्य शब्द द्व्यर्थक है कि परम्परा से चलते आये हुए आचारपथ पर स्वयं चलना, दूसरों को चलाना और उसके रहस्य को प्रगट करना। इसी कारण आचार्य-पद का उत्तरदायित्व बहुत है। वह अव्यवस्था में सुव्यवस्था स्थापित करता है। मर्यादा का पोषण कर सन्कृति की उन्नति करता है और उसका उल्लंघन करने वालों का नियमन तथा समूह के कल्याण हेतु अपना उत्सर्ग करके भी समूह की रक्षा करता है। वह नीति से अनुप्राणित होता है और दूसरों को भी नीतिमय बनाने के लिये कृतसकल्प होता है।

आचार्य के अनेक प्रकार हैं, लेकिन उनमे धर्माचार्य का पद सर्वोपरि है। धर्माचार्य-पद शास्त्रोक्त विधि-विधान के जानकार एवं तदनुसार जीवन-निर्माता एवं विशिष्ट गुणयुक्त व्यक्ति ही जो चतुर्विध सघ का विश्वासपात्र हो, प्राप्त कर सकता है। धार्मिक क्षेत्र में प्रत्येक व्यक्ति धर्माचार्य नहीं हो सकता है। धर्मनीति में जबरदस्ती सम्भव नही है। सघ द्वारा अनुमोदित और मान्य व्यक्ति ही आचार्य माना जाता है।

शास्त्रानुसार धर्माचार्य मे ये तीन गुण—१. गीतार्थ, २ अप्रमादी, ३ सारणा वारणा करने वाला— होना चाहिये। अर्थात जो सूत्रार्थ को जानने वाला हो, प्रमाद रहित हो और संघ की व्यवस्था करने वाला हो। अन्यथा अयोग्य व्यक्ति को आचार्य-पद से पृथक् किया जा सकता है। अतः धर्माचार्य-पद बहुत ही उत्तरदायित्व पूर्ण होता है एवं आध्या-

त्मिक एव रचनात्मक साधनाशील प्रवृत्तियों से ओतप्रोत होता है।

आचार्य जीवन . कार्य क्षेत्र का विस्तार

चरितनायक जी आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए । आपकी धर्म के प्रति श्रद्धा, चारित्रबल और अनुशासन का परिचय चतुर्विध संघ को प्राप्त हो चुका था और वाणी प्रभावक थी एवं विचारो को व्यक्त करने का ढग इतना रमणीक था कि श्रोताओ के हृदय को आकृष्ट कर लेता था । सघव्यवस्था सम्बन्धी कार्यप्रणाली से चतुर्विध सघ अपने को सौभाग्यशाली मानता था। इस सबका प्रधान कारण विचारो की उदारता, शास्त्रसगत तात्त्विक विवेचना, रचनात्मक आदर्श, आस्तिकता का प्रतिपादन, दया का महत्त्व और कुतार्किको को धार्मिक सिद्धान्तो के यथार्थ आशय को समझाने की युक्तिपुरस्सर चिन्तन-मनन से समन्वित शैली थी ।

अभी तक तो पूज्य श्री जवाहराचार्य का वरद हस्त था और जिस किसी समस्या के बारे मे निर्णय लेने या विचार विमर्श, परामर्श करने की आवश्यकता प्रतीत होती तो, वह सब पूज्यश्री से आशीर्वाद के रूप मे प्राप्त होता रहता था । लेकिन अब आचार्य-पद पर प्रतिष्ठित हो जाने के पश्चात निर्णय स्वय करना था, विचार भी स्वय करना था और शुद्धि व वृद्धि की परम्परा को भी स्वय गतिमान रखना था।

पूज्य जवाहराचार्य के अवसान से आपको मार्मिक आघात पहुंचा । शोक का भार तो था ही और उसी के साथ आचार्य-पद का भार बढ गया । इतने दिनो तक पूज्यश्री की छत्रछाया थी, इसलिये सब कुछ करते हुए भी आप निश्चित थे और आध्यात्मिक-साधना मे सलग्न रहते थे । मगर अब समस्त उत्तरदायित्व आप पर आ पड़ा था।

महापुरुषो के जीवन मे ऐसे अवसर अकसर आते रहते हैं, जब वे एक तरफ तो शोक से दबे रहते हैं और दूसरी तरफ महान उत्तरदायित्व आ पड़ता है । इस समय शोक की अवगणना कर विवेक का सबल लेकर वे कर्तव्यमार्ग पर अग्रसर होते हैं । यह अवसर बड़ा ही

करुणाजनक होता है, किन्तु महापुरुष ऐसे विकटकाल मे भी कातर नहीं होते हैं। यह अवसर उनकी कसौटी का होता है।

पूज्य जवाहराचार्य के स्वर्गारोहण से चरितनायक जी पर चतुर्विध सघ की सुव्यवस्था का गुरुतर उत्तरदायित्व आ गया था और अपने जीवन के एक नवीन अध्याय मे आपने पैर बढ़ाया।

आचार्य-पद का प्रथम चातुर्मास

आषाढ़ शुक्ला ९ को पूज्य जवाहराचार्य के पार्थिव देह का अग्निसस्कार एव १० को दिवंगत आत्मा के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने हेतु श्रद्धाजलि सभा के आयोजन की परिसमाप्ति के पश्चात नवप्रतिष्ठित आचार्य श्री गणेशलाल जी म सा. आदि सन्तो ने स० २००० के चातुर्मास के लिये भीनासर से देशनोक को विहार कर दिया।

पूज्य जवाहराचार्य के अवसान से शोक-संतप्त देश के विभिन्न श्रीसघों के उपस्थित आबालवृद्ध भाई बहिनो ने अपनी मनोवेदना के ज्वार को पलको मे छिपाते हुए, उदासीन चेहरो पर सस्मित हास्य की रेखा-सी लाते हुए एव 'शिवास्ते पन्थानः सन्तु' की अजलि अर्पित करते हुए विदाई दी।

यथासमय देशनोक पदार्पण हुआ और चातुर्मास-प्रारम्भ के दिन आपने स्व० गुरुदेव पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. के लिये अपनी भावना व्यक्त करते हुए फरमाया— पूज्य गुरुदेवश्री का मुझ पर असीम उपकार है। मैं उनके ऋण से कभी भी उऋण नही हो सकता हूँ। मेरे जीवन-निर्माण मे जिस-जिस प्रकार से निर्देशन और आज्ञा दी है, उसके लिये मैं उनका सदैव कृतज्ञ रहूँगा। यद्यपि आज पूज्यश्री हमारे बीच नही रहे हैं, लेकिन उनके आदेश, उनके विचार, उनकी शिक्षायें हमे मार्गदर्शन कराती रहेंगी। मैं चतुर्विध सघ को यह विश्वास दिला देना चाहता हूँ कि सघसेवा और धर्मसेवा ही मेरे जीवन का ध्येय रहा है और रहेगा एव पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी म. सा आदि महापुरुषो की पवित्र परम्परा के गौरव की रक्षा करने मे

अपनी विवेकशक्ति से सदैव उद्यत रहूँगा ।

इसी सदर्भ मे मैं चतुर्विध सघ से अपेक्षा रखता हूँ कि वह इस गुरुतर भार को उठाने में अपना सहयोग प्रदान करे । उसके सहयोग के विना क्षण भर भी कार्य चलना कठिन है ।

व्यवहार मे आचार्य-पद सम्मान की वस्तु समझी जाती है। धार्मिक क्षेत्र मे ये सवसे वडा पद है। लेकिन मैं इसे सेवा का पद मानता हूँ । मैं अपने आपको तभी सौभाग्यशाली मानू गा जव पद के दायित्वों का भलीप्रकार से निर्वाह कर सकू । श्रीसघ की दृष्टि मे भले ही आचाय, पूज्य या सम्माननीय पद का मासीन समझा जाऊ लेकिन मैं अपनी आत्मसाक्षो से धर्म का एक अकिंचन सेवक ही रहूँगा ।

गुरुदेव के प्रति मेरी यही श्रद्धाजलि है कि उनके द्वारा प्रशस्त किये गये मार्ग पर सदैव सजग होकर चलता रहूँ और अपनी सयम-साधना का उत्तरोत्तर विकास करते हुए अपनी आत्मा का लक्ष्य—वीतराग-विज्ञानता—प्राप्त कर सकूं ।

आचार्यपद का यह प्रथम चातुर्मास प्रभावक सफलता से सम्पन्न हुआ । प्रतिदिन प्रवचन के प्रारम्भ मे परमात्मा की प्राथना-गान करते समय आपकी आत्मानुभूति मे तल्लीन मुखमुद्रा दर्शको को एक महान् भक्त, सतहृदय की अनुभूति कराती थी और जिस तन्मयता से स्तुति का सगायन करते, उसी तन्मयता से उसके हार्द का विवेचन करते थे । उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो परमात्मा के साथ आपकी आत्मा तदाकार हो गई हो ।

चतुर्विध संघ ने आपश्री की ओजस्वी वाणी-श्रवण का लाभ प्राप्त तो किया ही, साथ ही तपस्याओ आदि के द्वारा जीवन को शुद्ध, पवित्र और सयमित वनाने की प्रतिज्ञा ली । सभी मे एक ही भावना रम रही थी कि सयमसाघना एव सघचेतना का यह अक्षय कोष हम सबके लिये प्रेरणास्रोत वनेगा ।

थलीप्रदेश के सुज्ञ श्रावकों की भावना थी कि आपश्री पुन: हमारे क्षेत्र में पधारें। इसके लिये उनकी बारम्बार विनती हो रही थी। अत: चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात शांत, भद्र और कर्मठ शिल्पी चरितनायक आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा ने सन्तसमूह के साथ अनमोल अनुभवों की राशि लेकर देशनोक से जैन सिद्धान्तों– दया, करुणा, मैत्री, दान आदि का सन्देश मुखरित करने के लिये पुन: थलीप्रदेश की ओर विहार किया।

आप मानवता के प्रसारक थे। दया के लिये आपके मन में गहरी अनुभूति थी किन्तु दया दान विरोधी बन्धुओं की अज्ञानता देखकर आपश्री का हृदय दयार्द्र हो जाता था। भगवान महावीर के अहिंसा धर्म का विपरीत प्रचार देखकर और भोलीभाली जनता को धर्म के नाम पर अधर्म और निर्दयता का शिकार होते देखकर आपको बार-बार विचार होता था कि जीवरक्षा को पाप बतलाना मानवता व धर्म के नाम पर घोर कलंक है। ऐसी मूढ़ मान्यताओं के नागपाश से मनुष्यमात्र को शीघ्र मुक्ति मिलना चाहिये। जैनधर्म ही नहीं, वरन विश्व के सभी धर्म जीवरक्षा को प्रधान धर्म स्वीकार करते हैं। सन्तों ने कहा है—

कला बहत्तर पुरुष की तामें दो सरदार।
एक जीव की जीविका, एक जीव-उद्धार॥
दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छाड़िये, जब लग घट में प्राण॥

धर्म का यह सत्य मनचाही धारणाओं पर आधारित नहीं है, और न किन्हीं किंवदन्तियों के आवरण से आच्छादित है। बल्कि मानवमात्र की स्वाभाविक स्थिति का एक सजीव और स्वयंसिद्ध उत्तराधिकार है। आत्मिक-विज्ञान का एक तथ्य है। मानवीय स्वभाव के मूल मनोवेगों का परिणाम है। धर्म हमारी वर्तमान-कालीन सीमित चेतना का उपयोग उच्चतर, असीम आत्म-अस्तित्व और परम आनन्द की प्राप्ति के लिये सुदृढ़ आधार प्रस्तुत करता है। धर्म हमें आध्यात्मिक

हो जाते हैं, वही महापुरुष पुन करुणा करके करुणा का स्रोत वहाने थलीप्रदेश मे पदार्पण कर रहे हैं।

लेकिन आपश्री की भावना कुछ दूसरा ही चिन्तन करती थी कि दया-दान को पाप मानने के भ्रम मे पड़कर स्व-पर का अहित करने वाले भाई सन्मार्ग को समझें, बूझें और प्रेमपूर्वक विचार-विनिमय करें। पारस्परिक सौहार्द तथा स्नेह के वातावरण मे शास्त्रीय आधार से चर्चा हो, सवाद हो, प्रश्नोत्तर हो। आपने इस प्रकार की चर्चाओं का सदा स्वागत किया और जहां भी अवसर मिला वहा यथार्थ को समझाने का प्रयत्न भी किया। आप शुद्ध श्रद्धा पर सदैव भार दिया करते थे। आप एक ही वात कहते थे कि धर्म का पहला पाया शुद्ध श्रद्धा है और श्रद्धा का आधार शुभ भावना एव शुद्ध विचार हैं। शुद्ध विचारो की कसौटी सत्य-असत्य को परखने वाली विवेकशक्ति है और उपादेय, हेय मे से उपादेय को ग्रहण करना एवं हेय को त्यागना विवेक के विना सम्भव नही है।

आपश्री ने यह वात पहले भी अपने थलीप्रदेश में हुए विहार एव चातुर्मास काल मे समझायी थी। परिणामत: वहुत से वन्धु जैन-धर्म के सिद्धान्तों से परिचित हो चुके थे और वहुत से सत्यान्वेषण की ओर वढ़ने की प्रतीक्षा मे थे। अत: आपके इस वार के थलीप्रदेश मे हुए विहार और सरदारशहर के चातुर्मास से उन सभी को लाभ मिला और जैनधर्म की सत्य श्रद्धा ग्रहण की। फिर भी सरदारशहर मे विरोधी मान्यता वालों का आधिक्य था। वहा और उसके निकटस्थ क्षेत्रो मे वे जो कुछ भी कर सकते थे, करने से नही चूके। आपका प्रवचन सुनने के लिये आने वाले सरलहृदय साधारण जन भी इनकी कोप-दृष्टि के लक्ष्य वने और उनका वहिष्कार तिरस्कार, करने तो एक मामूली वात थी। वे उनकी आजीविका के साधनो पर कुठाराघात करने मे भी नही झिझकते थे। ऐसा करने मे शायद उनका यह विचार रहा हो कि ये हमारे वश मे आ-जायेंगे और जैसा चाहेंगे, इनसे करा सकेंगे।

लेकिन सरलहृदय जन तो पहले की तरह ही आपश्री के प्रवचन सुनने के लिये आते रहे ।

प्रतिदिन प्रातः प्रवचनो मे अथवा सायकाल प्रतिक्रमण के अनतर होने वाली तात्त्विक चर्चा मे आपश्री धर्म के यथार्थ चिन्तन-मनन और वस्तु-स्वरूप का विवेचन करते थे और जो कुछ कहते थे, उसमे किसी प्रकार की स्वार्थ-भावना या आत्म-प्रशसा नही होती थी। आपकी उदारता का द्वार सबके लिये खुला था । आपके कथन में दुराग्रह नही किन्तु सरलता रहती थी और सदैव यही कहते थे कि उचित एव युक्तिसगत प्रतीति को आचरण मे उतारो । ऐसे अनाग्रही महात्माओ के बारे में किसी कवि ने कहा है—

> निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ।
> नहि संहरते ज्योत्स्ना चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनः ॥

गुणहीन जनों पर भी साधुजन दया ही करते हैं । चन्द्रमा चांडाल के घर से भी अपनी चादनी को नही हटा लेता है ।

चातुर्मास काल मे जनता ने धर्म के कल्याणकारी आदर्शों को समझकर अपूर्व बोध प्राप्त किया । सैकडो व्यक्तियो ने यथायोग्य त्याग-प्रत्याख्यान किये और सम्यक् श्रद्धा को ग्रहण कर आपको अपना गुरु माना ।

चातुर्मास-समाप्ति और विहार

चातुर्मास-समाप्ति के अनन्तर आपश्री ने अपने अन्तिम प्रवचन में फरमाया कि मैं आपसे एक वस्तु मांगना चाहता हूँ कि धर्म को समझकर अपने कर्तव्य का निर्णय कीजिये और तदनुसार आचरण बनाइये । शुद्ध धर्म पर श्रद्धा रखिये और अहिंसा भावना को ही विश्व के लिये हितकर मानिये । सत्य को व्यक्त करते समय बहुत-सी कठोर प्रतीत होने वाली बातें कहने मे आ जाती है, लेकिन उसमे हित भावना रही हुई है । फिर भी किसी का मन क्षुब्ध हुआ हो तो क्षमा चाहता हूँ।

प्रवचन-समाप्ति के अनन्तर यथासमय विहार हुआ । विहार के अवसर पर वि. ' के लिये विविध क्षेत्रो के आबालवृद्ध जन उप-

वास्तविकताओ को मान्यता देने के प्रति सजग करता है।

इसीलिये धर्म का सार यह बताया गया है कि मानवीय आत्मा के गौरव को प्राप्त करो और उसी के अनुसार आचरण करो। दूसरो के साथ वैसा व्यवहार करो जैसा तुम अपने लिये दूसरो से अपेक्षा रखते हो। ऐसे लोगो को ही समाज के लिये विधान बनाने का अधिकार है जो सब जीवो के प्रति सहृदय हो। ऐसे लोग ही जो कुछ सर्वोत्तम होता है, उसे सुरक्षित रखते ।

दया और दान जनधर्म का हार्द है। जैनधर्म के श्वेताम्बर, दिगम्बर, स्थानकवासी— सभी सप्रदाय इस विषय में कोई मतभेद नही रखते और न कोई कुतर्क एव विवाद भी करते है। फिर भी एक ऐसा उपवर्ग है जो दया-दान को पाप मानता है। यदि कोई उस विपरीत मान्यता के निरसन के लिये प्रयत्न भी करे तो उसके प्रति अशिष्टता प्रदर्शित करने से भी नही चूकता है। ऐसो के बारे मे सकेत करते हुए किसी कवि ने कहा है—

क्षीणा नराः निष्करुणा भवन्ति।

थलीप्रदेश मे इसी वर्ग के बहुसख्यक व्यक्ति बसते हैं। जो अपने बौद्धिक स्तर की न्यूनता के कारण, धर्म के उदार व विशाल दृष्टिकोण को नही समझने के कारण मानवता विरोधी प्रवृत्तियो को प्रश्रय देते हैं और सत्य को स्वीकार न करने का दुराग्रह करते हैं। यही नही, अपनी भूल को छिपाने के लिये परमाराध्य भगवान महावीर को भूला-चूका बताने मे भी नही झिझकते हैं।

ऐसे व्यक्तियो के मुखियाओ के द्वारा निर्मित विषमताओं को हटाकर सब के वैयक्तिक कल्याण व विकास के लिये समान अवसर प्राप्त कराने एव उन सस्थाओ को जो सामाजिक न्याय एव प्राणि-मात्र के कल्याण के मार्ग मे दुर्जय बाधायें बन गई हैं, निरस्त करने के लिये, लोगो को वास्तविक स्थिति परखने का विवेक देने के लिये एव सही जीवन की भावना को पुनर्जीवित करने के लिये ही चरित-

नायक आचार्य श्री का पुन. थलीप्रदेश की ओर विहार हुआ था ।

थलीप्रदेश में पहले हुए विहारो से आपने अनेक प्रकार के कष्टो को सहन किया था। पग-पग पर अनेक असुविधायें उत्पन्न की गई थी । लेकिन आपश्री ने इस अवांछनीय व्यवहार को सन्त-स्वभावानुसार सहज भाव से स्वीकार करते हुए सहन किया था । वे बाधाये आपश्री को अपने सत्संकल्प से विचलित नही कर सकी थी ।

महापुरुषों का एक ही लक्ष्य होता है कि धर्म के नाम पर अनैतिकता या लोककल्याणविरोधी प्रथाओं, रीति-रिवाजो का प्रचलन नही होना चाहिये । इस कर्तव्यपालन में उन्हे चाहे कितने ही भीषण कष्टो का सामना करना पडे और प्राण जाने तक का भय हो, लेकिन वे न्यायमार्ग पर ही अग्रसर होते रहते हैं । ऐसे महापुरुषो के बारे मे महाकवि भर्तृहरि ने कहा है—

> निन्दन्तु नीतिनिपुणाः यदि वा स्तुवन्तु,
> लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
> अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
> न्याय्यात्पथ' प्रविचलन्ति पदं न धीरा. ॥

धीर गम्भीर पुरुष चाहे दुनियादारी की दृष्टि से कुशल लोग उनकी प्रशसा करे या निन्दा करे, चाहे उन्हें सम्पत्ति मिलती हो या चली जाती हो, चाहे तत्काल मृत्यु होती हो या दीर्घजीवन प्राप्त होना हो, लेकिन न्यायमार्ग से कभी विचलित नही होते हैं ।

आपश्री का सं० २००१ का चातुर्मास सरदारशहर हुआ । सरदारशहर मे चातुर्मास होने की खबर सुनकर विरोधी मान्यता रखने वालों में हलचल मच गई । पूर्वकृत कार्यो के अनुभव पुनः उनके मनो को भयभीत करने लगे और प्रतिरोध करने की योजनायें भी निर्मित की जाने लगी । उन्हें क्षण-क्षण प्रतिष्ठाभंग होने की आशंका बनी रहती थी । वे ऐसा गौन भी नही लगते थे कि जिनकी तेजस्विता और चारुचारित्र के समक्ष बड़े बड़े विद्वान एव विवेकशील भी नतमस्तक

स्थित थे। ऐसे समय मे स्थानीय जनसमूह की भावोर्मिया अनुभूति-गम्य थी और भरे मन से श्रद्धेय शास्ता को विहार के लिये विदाई दी और मीलो तक साथ-साथ चले और मागलिक श्रवण कर अपने-अपने आवास पर आये।

अनन्तर थली-प्रदेश के विभिन्न गावो और नगरो मे जैनधर्म का सन्देश मुखरित करते हुए आपश्री ने अजमेर-मेरवाड़ा क्षेत्र मे पदार्पण किया।

इस क्षेत्र मे विहार करके आपने समाज के आपसी वैमनस्य, कुरूढ़ियो के प्रति लगाव आदि का उन्मूलन किया। आप अपने प्रवचनो मे उन विषयो का विशेष रूप से सकेत करते थे जो जीवन को अनैतिकता की ओर बढाने मे जाने या अनजाने सहकारी कारण बन जाते हैं। जैसे धूम्रपान, विवाहादि अवसरो पर वारागना-नृत्य, दीपावली आदि अवसरो पर जुआ खेलना आदि।

समाजसुधार के विषय मे आपका स्पष्ट मत था कि ऐसा आचरण लाभकारी नही होगा, जिसमे मानवीय गौरव, स्वतन्त्रता और न्याय की रक्षा के लिये मौलिक आधार न हो। परिवर्तित परिस्थितियो के नाम पर अपने आधारभूत सिद्धान्तो मे सशोधन करने या छूट देने की सोचना अपनी परम्परा के सिद्धान्तो मे विश्वास की कमी का द्योतक होगा। कई बार ऐसा होता है जब मानव अपनी थकान के कारण विचारो के वात्याचक्र मे फसकर सोचता है कि अतीत को त्याग दें और पूर्णरूपेण नये सिरे से प्रारम्भ करे। लेकिन इस स्थिति मे उसके द्वारा उत्पन्न अव्यवस्था स्वय मानव की रक्षा नही कर पाती और नये सिरे से जीवन प्रारम्भ करने मे रुकावट बनती है। अत. समाजसुधार का यथार्थ आशय है कि मानवसंस्कृति के मौलिक आदर्शों का त्याग न कर अनुष्ठानो एव आचरणो द्वारा उनको साकार कर ऊपर उठायें। नूतन की उपलब्धियो को अतीत के प्रामाणिक सिद्धान्तो के साथ एकता के सूत्र मे गूथे।

आपके ओजस्वी प्रवचनों के फलस्वरूप अनेक सामाजिक कुरू-ढियों की जड़ हिल चुकी थी और समाज मे एक आशा की किरण चमकने लगी थी। वैसे तो कुरूढिग्रस्त समाज मे आदर्श की ओर कदम बढ़ाने मे सत्कार नही, वरन तिरस्कार का पुरस्कार मिलता है। ऐसी स्थिति मे आदर्श समाज रचना के प्रयत्न करना बड़े साहस का कार्य माना जाता है। लेकिन आपके उपदेशो ने समाज मे असीम स्फूर्ति, साहस और उत्साह का सचार कर दिया था।

समाजसुधार सम्बन्धी आपके विचारो को सुनकर प्रत्येक श्रोता की यह धारणा बनती थी कि मानवहित की भावना से ओत प्रोत आपश्री की देशना मे धर्म की व्यवहारिकता और व्यापकता समझने के लिये वह सब सामग्री मिलती, जो जीवननिर्माण के लिये आवश्यक है। आपश्री के आचार-विचार और व्यावहार में कृत्रिमता का अभाव और आत्मगौरव एव करुणा का सुन्दर सम्मिश्रण था। सक्षेप मे आपश्री के बारे मे कवि की यह उक्ति चरितार्थ होती है—

नारिकेल समाकारा दृश्यन्ते हि सुहृज्जनाः।
अन्ये बदरिकाकारा बहिरेव मनोहराः॥

सज्जन ऊपर से नारियल के समान दिखाई देते है— अर्थात् रूखे मालूम पड़ते हैं परन्तु अन्तरग सद्गुणो का भण्डार होता है और खलजन बेर के समान बाहर से सुन्दर, आकर्षक प्रतीत होते हैं परन्तु उनके अन्दर गुठली के समान कठोरता, परुषता भरी रहती है।

सयम के आकांक्षी

इस प्रकार जनसाधारण को धार्मिक, नैतिक कर्तव्य का प्रतिबोध कराते हुए सं० २००२ के वर्षावास हेतु ब्यावर नगर में पदार्पण किया। नगरप्रवेश के समय जनता के उत्साह का पार नही था। नगरजन अगवानी के लिये उमड़ पड़े थे। उनके हृदय की उमगे समाती न थी।

यद्यपि पहले भी आपश्री का कई बार ब्यावर नगर में पदार्पण हो चुका था और जनता ने आपके हृदयस्पर्शी उपदेशों से अपने

जीवन को सयमित बनाने के लिये अनेक प्रकार की प्रतिज्ञायें, नियम आदि लिये थे । उक्त अवसरो पर आपका थोडे-से समय के लिये पदार्पण होना रहा था, लेकिन अब की बार चार माह तक आपश्री की वाणी का पूरा-पूरा लाभ मिलने वाला था । अतः बडी उत्सुकता और उमग के साथ जनता ने स्वागत किया, अगवानी की ।

नगरवासियो की भावना थी कि अभी प्रातःकाल आपश्री शंकरलाल जी मुणोत की बगीची मे पधार जाये और तीसरे पहर करीब ४ बजे धूमधाम के साथ नगर मे पदार्पण कराया जाये ।

इस तरह की भावना को मन मे रखते हुए ब्यावर श्रीसघ ने श्री शकरलाल जी मूणोत की बगीची में विराजने की आग्रह भरी विनती की । लेकिन जब आपने बाहर से ही बगीची की ओर दृष्टि डाली तो चौक के अन्दर मकान मे प्रवेश करने के मार्ग मे हरी दूब थी । इसलिये यह सोचकर कि लोगो का इस पर आवागमन होगा। उससे वानस्पतिक जीवो की एव इसमे छिपे हुए अन्यान्य सूक्ष्म जीवो की विराधना होगी । अत· बगीची मे न विराज कर राजमार्ग से नगर की ओर विहार कर दिया और धर्मस्थानक मे प्रवेश किया ।

साधारण जन तो तीसरे पहर चार बजे स्वागत करने के विचार मे थे और उन्हे इस स्थिति की जानकरी भी नही मिल सकी थी । अतः उनके मन मे विविध विचार आने लगे और उनके समाधान के लिये उत्सुक थे । जैसे ही चार बजने का समय हुआ कि मूसलाधार वर्षा प्रारम्भ हो गई । उससे स्वयमेव ही समाधान मिल गया कि यदि प्रात काल आचार्य श्रीजी म सा का नगर मे प्रवेश न होता तो इस समय नगरप्रवेश की स्थिति बनना तो अशक्य ही था और विचारों का द्वन्द्व शात होकर गाढ श्रद्धा के रूप में परिणत हो गया ।

ईर्ष्याग्रस्त मानस

ब्यावर और उसके आसपास के क्षेत्रो मे विवेकीशील व्यक्तियो की बस्ती होने से स्थानीय और समागत सज्जन आपके प्रभावक प्रवचनो

का लाभ लेते थे। लेकिन कुछ विघ्नसंतोषी व्यक्ति भी थे। जो समय-समय पर अशांति फैलाने और रूढ़िवादी, पुरातनपंथी, दकियानूसी आदि शब्दो द्वारा मनघडन्त आरोप लगाने के प्रयत्न करते रहते थे। उन्हे दोषदर्शन के सिवाय और कुछ करने को सूझती ही नही थी। कुछ न कुछ अफवाहें फैलाना मानो दैनिक जीवनचर्या ही थी। लेकिन उनके सभी प्रयास आपके असीम शांतिसागर मे विलीन होते गये।

आप तो वीतराग-वाणी के माध्यम से मानव-जीवन के महत्त्व, विशेषताओ, कर्तव्यो आदि का अपने प्रवचनो मे विशद विवेचन करते थे। इनके सम्बन्ध मे आपश्री की महत्त्वपूर्ण विचारधारा का कुछ अंश यहा प्रस्तुत करते है—

'मनुष्य एक ऐसा विकासशील जीव है जिसने अपने मस्तिष्क की अत्यधिक प्रगति प्राप्त की है, उसका ज्ञान केवल बाह्य पदार्थो तक ही सीमित नही है, बल्कि उसने वैचारिक व आध्यात्मिक क्षेत्र मे भी आश्चर्यजनक उन्नति की है। उसकी जिज्ञासा वृत्ति इन क्षेत्रो मे और भी अधिक उग्र हो उठती है— जिसका सबूत है बड़े बड़े दार्शनिक और विचारक अपेक्षाकृत इस क्षेत्र मे नवीन-नवीन विचारधाराओं को जन्म देते हैं तथा बड़े-बड़े आध्यात्मिक साधक स्वकीय दिव्य शक्ति को प्राप्त कर ससार को सही रास्ते का उद्बोध देते हैं। यह वृत्ति इस बात की परिचायिका है कि शुद्ध आत्म-ज्योति का रूप हृदय से संलग्न होकर आकर्षण का केन्द्रबिन्दु बनती है, जिससे मनुष्य स्वयं सोचता है, जानता है, सीखता है और स्व-पर के लिये वस्तुत. कार्यक्षेत्र निर्धारित कर सकता है। मनुष्य इसी पवित्र शक्तिस्रोत के बल पर अपने स्वतन्त्र मस्तिष्क, स्वतन्त्र व्यक्तित्व व शुद्ध आचरण की अनुभूतियों द्वारा जीवन-निर्माण कर सकता है।

मनुष्य की सभी शक्तियां नवीन सत्कर्म से उद्बोधित रहती है। [illegible] सम्यक् विज्ञान में जुट जाती है। मनुष्य अपने सही लक्ष्य [illegible] के यदि इसके लिये उसकी सबसे पहले अनिवार्य आव-

की दृष्टि से उस क्षेत्र के लिये उपकारक सिद्ध हुआ। श्रावक-श्राविकाओं ने दया, पौषध, उपवास आदि विविध प्रकार की तपस्यायें की और त्याग-प्रत्याख्यान किये। आसपास के क्षेत्रो के श्रीसंघो एव स्वधर्मी बधुओं के आपसी मनमुटाव, वैमनस्य का निराकरण हुआ और अनेक मूक प्राणियों को अभयदान मिला।

सगठन-चेतना का युग

चातुर्मासकाल मे विभिन्न श्रीसघो की ओर से अपने-अपने क्षेत्रो को फरसने और आगामी चातुर्मास के लिये विनतियां प्रारभ हो गई थी। सभी अपने-अपने यहा पदार्पण कराने के लिये उत्सुक थे। चातुर्मास-समाप्ति के अनतर आसपास के क्षेत्रो में विहार करके अहिंसा की व्यापकता और धर्म के यथार्थ स्वरूप को बतलाया। जिससे देवी-देवताओ के नाम पर होने वाली मूक प्राणियों की हिंसा बद होने से जीवरक्षा की प्रवृत्ति को वेग मिला। बहुत से व्यक्तियों ने मद्य-मांस आदि के सेवन का त्याग करके जीवन-शुद्धि की ओर बढने का निश्चय किया।

यह समय राष्ट्रीय स्वाधीनता और सगठन का युग था। राष्ट्र अपनी परतन्त्रता से मुक्ति के लिये अहिंसक क्राति के दौर से गुजर रहा था। जनता की एक ही विचारधारा थी कि देश की स्वतन्त्रता के लिये चाहे जो कुछ भी कुर्बान करना पड़े, लेकिन स्वतन्त्र राष्ट्र के नागरिक बनने का हमे सुअवसर प्राप्त हो।

समस्त राष्ट्र एकता, सगठन के सूत्र मे आबद्ध हो चुका था। स्वाधीनता आदोलन मे ऐसा कोई गाव नही था जिसके निवासियो ने भाग नही लिया हो। 'स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' के विचार से राष्ट्र का कोना-कोना गूंज रहा था।

इसी समय स्थानकवासी समाज मे सघऐक्य के लिये पुन: प्रयत्न होना प्रारम्भ हो गये थे। स्व० पूज्य आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा. के समय मे सम्पन्न साधु सम्मेलन अजमेर के पश्चात स घऐक्य की आवश्यकता विशेषरूप से अनुभव की जाने लगी थी और एतद्विषयक

विचार-विमर्श होना प्रारम्भ हो गया था ।

ग्राम्य वातावरण : साधना में सहायक

चातुर्मास-समाप्ति के अनन्तर आसपास के ग्रामो की ओर आपश्री का विहार हुआ । ग्रामो का शांत, स्वच्छ वातावरण और वहा के सरलहृदय निवासियों के उत्साह के प्रति आपश्री का सदैव झुकाव रहा । आप मानते थे कि साधु-सन्तो के विहार और वर्षावास विशेषत: उन स्थानो पर होना चाहिये जहा संयम-साधना के लिये शात वातावरण हो और ज्ञानाभ्यास के लिये पर्याप्त समय मिल सके ।

आपका यह भी निश्चित मत था कि आत्म-साधको को लौकिक आडम्बरों और प्रचार, प्रसिद्धि से परे रहकर अपनी साधना में लीन रहना चाहिये । यदि वे साधना से उदासीन होकर लौकिक कार्यों में अपने आपको लगाते हैं तो चारित्र में न्यूनता आना स्वाभाविक है और उस स्थिति में साधकों द्वारा ऐसे कार्य हो जाना सभव है, जो साधना के लिये शोभाजनक नही कहे जा सकते हैं ।

आपको साधुता प्रिय थी, न कि शिथिलाचार से जर्जर साधु-सख्या की विपुलता । साधुता की महत्ता सख्या की विपुलता में नही है, किन्तु चारित्र की उच्चता और त्याग की गम्भीरता में है । अत: जिनके मन मे साधुता के प्रति श्रद्धा तो हो नही किन्तु क्षणिक आवेश एवं व्यामोहवश साधुवेश धारण कर लें तो वे साधुता को कलंकित करने के सिवाय और कुछ नही कर सकते हैं ।

अत: द्रव्य क्षेत्र-काल-भाव से किसी भी प्रकार संयम-साधना मे व्यवधान न आने देने की दृष्टि से शात, एकान्त, निर्जन ग्रामीण क्षेत्र आपको विशेषरूप से प्रिय थे ।

आगामी चातुर्मास का समय सन्निकट आ गया था और चातुर्मास स्वीकृति के लिये विभिन्न श्रीसघों की ओर से विनतियां हो रही थीं । लेकिन आपश्री ने अपने विचारों के अनुकूल क्षेत्र को देखते हुए सं० २००३ के वर्षावास-समय में बगड़ी (सज्जनपुर) में विराजने की

श्यकता होती है। यही कारण है कि आचार और विचार की दृष्टि से भी पिछड़ा नही रहना चाहता, उसे नही रहना चाहिये। वे इस बात की कोशिश करें कि ज्ञान के विशाल भडार मे वे प्रवेश करे, महान मनीषियो के तत्त्व-चिन्तन व आचरण को जानें, किन्तु उन सबको सम्यग्ज्ञान व आचरण मे रमाकर ग्रहण करे, अपनी शुद्ध-बुद्धि की कसौटी पर कसकर उसका मनन करें और यह मनोवृत्ति वास्तविक नवीन विचार तथा आचार क्रातियो का कारण बनती है।

'प्रचलित परिपाटियो मे इधर-उधर से विकार आ जाते हैं, उनको हटाने और चेतना जागृत करने के लिये मूलस्थिनि के रक्षण-पूर्वक जो भी विवेक सहित परिवतन लाये जाते हैं उन्हे भी नवीनता की सज्ञा दी जा सकती है। इन अर्थों मे नवीनता का यह अभिप्राय होना चाहिये कि जो परिवतन और एकरूपता को सतुलित रखती हुई मनुष्य की सही जिज्ञासावृत्ति को सतुष्ट करती है और उसे सत्य लक्ष्य की ओर प्रवृत्त होने मे जागृत रखती है, ऐसी सच्ची नवीनता है और उसके अनुगामी जीवन के सही प्रगतिमार्ग को निष्कटक बनाते हैं।

'यहा 'नवीन' व 'प्राचीन' शब्दो के अर्थ व अन्तर को समझ लेना चाहिये। इन दोनो शब्दो का अर्थ अपेक्षाकृत लेना चाहिये। जो नियमोपनियम सिद्धान्त को पुष्ट बनाने वाले हो, शुद्ध सयमी जीवन की उपयोगिता के लिये समाज व व्यक्ति मे जीवन का सन्देश फूकने वाले हो, वे बहुत वर्षो के बने हुए होने पर भी नवीन ही समझना चाहिये। किन्तु विवेक एव आत्मज्योति को भुलाने वाले नवीनता के नाम पर विकारी भाव व स्वार्थ के पोषक नैतिकभाव हीन सुन्दर शब्दो मे नवीन बने हुए कितने ही नियमोपनियम क्यो न हो, वे प्राचीन शब्द से कहे जाने चाहिये, इन शब्दो में समय का मापदड ठीक नही हो सकता, किन्तु सयमीजीवन की उपयोगिता का मुख्य महत्त्व होता है।

'इस दृष्टि से तत्त्वो का चयन किया जाना चाहिये। न कि आज के किन्ही जोशीले नवयुवकों की तरह कि पुरानी सब चीजे त्याज्य

है। मैं उन नवयुवकों को कहना चाहूँगा कि हठाग्रह अलग चीज है और विवेकपूर्वक समझना अलग बात है एवं मेरा ख्याल है सही समझ के लिये प्राचीन एवं नवीन का जो ऊपर मापदड बनाया गया है वह सभी दृष्टियो से काफी समुचित जान पडेगा।

'नवीनता के असली महत्त्व को नही समझने के लिये मैं केवल नवयुवको के लिये ही नही कहता, बल्कि उतने ही अशो मे विचारपोषक प्रथाओ के समर्थको के लिये भी कहता हूँ कि वे कई समाजघातक रीति रिवाजो से चिपके रहने पर भी सभ्यता के अनुपालन करने का घमण्ड करते हैं और उन्हें जो कोई उन सामाजिक कुप्रथाओं को छोडने का कहता है, उसे वे कुलपरम्पराओं की मर्यादाओं को तोडनेवाले उच्छृखल आदि कहकर तिरस्कृत करना चाहते हैं। अत: दोनो वर्ग ही इसी मर्ज के बीमार हैं। हठवाद को छोडकर संयमीजीवन की उपयोगिता और शुद्ध पवित्र अन्तरात्माओ की प्रेरणा के मापदड से किसी सिद्धान्त व नीति को परखना नवीनता के महत्त्व को भलीभाति समझना है।

'अत' इस अवसर पर निष्कर्ष रूप मे मैं यही कहना चाहता हूँ कि आप सच्चे त्यागमय जीवन की जागृति करें ताकि जीवन को सच्चे अर्थों मे सफल बना सकें। व्यावहारिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन दोनों का सम्यक् संतुलन और सही अर्थो मे जीवन मे समन्वय स्थापित कर आत्मीय सर्वांगीण विकास कर सकें।'

आपके इन विचारो के प्रकाश में आक्षेपकर्ताओं को मालूम होना चाहिये कि आप न तो रूढियो के पक्षपाती थे और न नवीनता या अन्धानुकरण ही उचित मानते थे। जो व्यक्ति शास्त्रीय मर्यादाओ की अजानकारी एवं सत्यनिर्णय करने में अपनी अक्षमता के कारण सत्य बात को बिगाडकर कहने से नही हिचकते एव दोषारोपण करने मे भी नहीं चूकते उन्हें चाहिये कि आपके विचारों को समझें, चिन्तन करें, मनन करें।

आपका यह चातुर्मास धार्मिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास

स्वीकृति फरमायी ।

आपश्री की सयम-साधना और धर्मदेशना से भव्यजन परिचित थे ही और समय-समय पर वाणी-श्रवण का लाभ भी उठाते रहते थे । अत चातुर्मास हेतु बगडी में आपश्री का पदार्पण होते ही हजारो बन्धुओं का बगडी मे जमघट होने लगा ।

साधु-सन्तो का चातुर्मास उस स्थान के समस्त निवासियो की भावनाओ का प्रतीक होता है । अत: बगडीवासियो ने धर्मलाभ लेने के लिये आने वाले बन्धुओ की सेवा, व्यवस्था का प्रत्येक कार्य स्वयं करने मे अपना गौरव माना ।

पर्यूषण पर्व के अवसर पर खूब तपस्यायें हुईं । अछूत माने जाने वाले बहुत-से स्त्री-पुरुष भी आपके प्रवचन सुनने के लिये आया करते थे । उन्होंने आपके उपदेशो से प्रभावित होकर मद्य-मास आदि अभक्ष्य पदार्थों के सेवन न करने की प्रतिज्ञा ली और सामाजिक सुधार की दृष्टि से भी कई महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुए ।

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात आपश्री ने मार्गशीर्ष कृष्णा १ को बगड़ी से विहार किया और मारवाड, मेवाड़ के क्षेत्रो मे विचरण करते हुए जनता को धर्मामृत का पान कराया ।

अहिंसा और करुणा की क्रांति

समयक्रम के अनुसार पुन आगामी वर्षावास का समय निकट आ गया था और विभिन्न क्षेत्रो की ओर से चातुर्मास के लिये विनतिया हो रही थी। अत. द्रव्य, क्षेत्र आदि को ध्यान मे रखते हुए स० २००४ का चातुर्मास बडीसादडी मे करने का निश्चय किया ।

इस समय देश की स्थिति बहुत हो विषम हो रही थी। राष्ट्र-विभाजन के फलस्वरूप आबादी की अदला-बदली से हजारो हिन्दू परिवारो को अपने जन्मस्थान छोड देना पड़े थे और उनके पुनर्वास की समस्या विकट बनी हुई थी । बात-बात मे दगे-फिसाद हो जाना तो एक साधारण-सी बात थी । जनता मे भय का वातावरण बना हुआ

था। वडीसादडी पहाड़ों की तलहटी में बसा गाँव है और वहाँ पहुंचने के लिये यातायात के साधन सरलता से उपलब्ध नहीं होते थे। वर्षा-ऋतु होने से रास्ते भी दुर्गम हो गये थे। फिर भी स्थानीय और बाहर से आगत हजारों भाई-बहिनों ने आपश्री की व्याख्यानवाणी का लाभ लिया एवं त्याग-प्रत्याख्यान, तपस्यायें करके आध्यात्मिक-विकास करने की ओर उन्मुख हुए।

इस चातुर्मास का एक उल्लेखनीय प्रसंग है—

वड़ीसादडी के जागीरदार के काका श्री भीमसिंह जी आपके प्रवचन सुनने प्रतिदिन आते थे। मद्य-मांस सेवन, शिकार करना आदि श्री भीमसिंह जी के दैनिक कार्य थे और ऐसा करना वे राजपूतों के लिये जरूरी मानते थे। ठिकाने की ओर से नवरात्रि के समय प्रतिदिन एक-एक की वृद्धि करके ४५ बकरों की जगदम्बा के स्थान पर हत्या कराई जाती थी और दशहरे (विजयादशमी) के दिन एक भैंसे की बलि भी दी जाती थी।

यद्यपि इस कार्य से सभी ग्रामवासियों को हार्दिक वेदना होती थी, लेकिन जब रक्षक ही विवेकहीन होकर भक्षक बनने को आमादा हो तो वे अपना दुःख किससे कहें? चातुर्मासकाल में इस रौरवकृत्य की जानकारी आपश्री को मिली। जिससे आपश्री का परदुःखकातर, करुणार्द्र मानस सिहर उठा। अन्धश्रद्धा के वश होकर धर्म को कलंकित करने वाले ऐसे कृत्यों का उन्मूलन करने के लिये आप सदैव तत्पर रहते थे और इस समय तो स्वयं आपकी उपस्थिति में ही ऐसा कुकृत्य होने वाला था।

यद्यपि आप अपने प्रवचनों में अहिंसा, दया, करुणा आदि भावनाओं का उपदेश करते ही रहते थे। लेकिन जब से आपको इन मूक प्राणियों की हत्या की जानकारी मिली तो प्रतिदिन के प्रवचनों में विस्तार से उनका विवेचन करना प्रारम्भ कर दिया। जिसका सारांश इस प्रकार है—

प्रत्येक प्राणी जीवित रहना चाहता है, कैसी भी स्थिति हो, लेकिन उसकी जिजीविषा की भावना सदैव बलवती रही है और मृत्यु का नाम सुनते ही भयभीत हो उठता है। मनुष्य होकर जो धर्म के नाम पर या अपनी आकाक्षापूर्ति के लिये प्राणिहत्या करते हैं वे मनुष्य के रूप मे राक्षस है। ऐसे व्यक्ति दूसरो का विनाश करने के साथ-साथ अपने लिये रौरव नरक का रास्ता बनाते हैं।

प्राणा यथात्मनोऽभीष्टा भूतानामपि ते तथा।
आत्मौपम्येन भूतेषु दया कुर्वन्ति साधवः॥

जैसे सभी को अपने प्राण अभीष्ट—प्रिय हैं, वैसे ही और प्राणियों को भी हैं। साधुजन उन्हें भी अपने प्राणो के समान समझकर सदा ही दया करते हैं।

हिंसा की भयानकता से आज विश्व सत्रस्त है। अपनी सुरक्षा और शाति के लिये मानवता का पाठ सीखने को तत्पर है। उस स्थिति मे धर्म के नाम पर मूक प्राणियो का कत्ल कर देना धर्म को कलकित कर देना है। धर्म प्राणिमात्र को जोड़ने का सबक सिखाता है। एक दूसरे के प्रति अपने कर्तव्य निर्वाह की सीख देता है। आत्मवत् सर्वभूतेषु से बढकर जीवन का अन्य कोई कर्तव्य नही है।

प्रत्येक प्राणी को अपने-अपने रूप मे जीने का अधिकार है। जो दूसरे जीव के अगोपाग नही बना सकता तो उनको छीनने का भी अधिकार उसको नही है। यदि दूसरे प्राणी भी मनुष्य से कहे कि मेरे खाने के लिये पैदा हुआ है तो मनुष्य उसकी यह बात मान लेगा? इसलिये मानव जीवन की यही सार्थकता है कि अपनी शक्ति और सपत्ति को प्राणिमात्र के दुःखो को दूर करने मे लगा दे। यही हमारे लिये सच्चे सुखानुभव का कारण हो सकेगा।

उदारता के साथ प्राणियो की सेवा करने तथा जगत के दुःख दूर करने के लिये पूर्णतया सलग्न रहने में ईश्वर और धर्म की आराधना तथा आत्मा की साधना है। जो दूसरो को दुःख देकर सुख की

खोज करता है और स्वार्थ के वशीभूत होकर अमानवीय क्रियाओं की ओर झुक जाता है, उसका परिणाम बहुसंख्यक अशक्तों की असह्य पीड़ा के रूप में प्रगट होता है।

अगर इस आत्मविस्मृति के विरुद्ध आत्मानुभव की भावना जाग सके और प्रत्येक कार्य को स्वानुभव की कसौटी पर कस ले तो मानव किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार से दुःखी करने, उनके प्राणों को हरने का प्रयत्न नहीं करेगा। इसके लिये आवश्यक है कि मानवीय नीतियों में स्वार्थत्याग की धर्ममय नीति के प्रवेश करने की।

आपश्री के प्रवचनों को सुनकर ठाकुर श्री भीमसिंह जी की अन्तर्चेतना जागृत हुई और धर्म के वास्तविक स्वरूप की जानकारी प्राप्त की। दृष्टि के बदलते ही अभी तक जो कुछ किया या धर्म के नाम पर जीवहत्या का कलंक लगाया, वह सब उन्हें घृणित और निन्दनीय जचने लगा और मन में विचार पैदा हुआ कि जगदम्बा के महान गौरवशाली पद पर आसीन भवानी अपने सपूतों के खून से कैसे खुश हो सकती है? यह सब तो धर्म को कलंकित करने वाले स्वार्थियों और धर्मद्रोहियों का पाखंड है, धर्म के साथ द्रोह करना है। मैं अन्धेरे में था, आज ही मुझे सद्गुरु का समागम हुआ है और उन्होंने सद्बुद्धि देकर सन्मार्ग के दर्शन कराये हैं।

ठाकुर सा. के मन में यह विचार कितने ही दिन तक चलते रहे और उनके समाधान के लिये विचारों की गहराई में उतरते, उतना ही हृदय पश्चाताप से भर जाता था। मूक प्राणियों की आकृतियां आंखों के सामने झलक उठती थीं। अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिये अनेक बार सोचा भी लेकिन मानसिक द्वन्द्व के कारण आत्मा की आवाज कहते कहते हिचक जाते थे।

एकदिन मन में कुछ निश्चय-सा करते हुए प्रवचन के समय अपने द्वन्द्व को निवेदन करते हुए ठाकुर सा. ने कहा कि मैं बहुत ही अन्धकार में था। भ्रान्त धारणाओं और अन्धश्रद्धा के वश होकर मेरे

द्वारा अनेक निरीह प्राणियो की हत्या हुई है। इसके लिये मुझे हार्दिक दुःख है और जीवनपर्यन्त के लिये प्रतिज्ञा करता हूँ कि देवी-देवताओ के नाम पर होने वाली वलि नही करूगा और न शिकार ही खेलूंगा। आपके सद्बोध से मेरा जन्म सुधर गया है।

इस प्रकार की प्रतिज्ञा करने के साथ-साथ ठाकुर श्री भीमसिह जी शुद्ध श्रद्धा धारण करके जैनधर्म के अनुरागी और आपके भक्त वन गये और पहले जो नवरात्रि के दिनो मे प्रतिदिन एक-एक वढाकर पैतालीस वकरो की वलि दी जाती थी उसके वजाय प्रतिदिन एक एक वढाकर पैतालीस वकरो को अभयदान देकर अमारिया घोषित करने की आज्ञा दे दी और दशहरे (विजयादशमी) के दिन भैसे के वध को तो सदा के लिये वद कर दिया गया।

इस अहिंसा और करुणा की क्राति के अतिरिक्त अनेक प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान, धर्म-ध्यान व प्रभावना के कार्यो के साथ चातुर्मास सम्पन्न हुआ। वडीसादडी श्रीसघ के हर्ष का पार न था कि वहुत समय से चली आ रही अन्धश्रद्धा-जन्य पाशविक प्रथा सदा सदा के लिये वद हो गई।

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात यथासमय अन्यान्य स्थानो मे आपके पधारने से ठाकुरो, जागीरदारों ने भी धर्मोपदेश को सुनकर शिकार, मासाहार, सुरापान और माता के स्थान पर वलि देने आदि का यावज्जीवन के लिये त्याग कर दिया। वडीसादडी मे हुई अहिंसा-प्रसार की क्राति की ऐसी लहर फैली कि विनाश की विचारधारा विकास मे रूपान्तरित हो गई। गाव-गाव मे यह प्रतिज्ञायें दुहराई गई कि हम लोग अपने-अपने गाव मे नवरात्रि। दशहरे के दिनो मे वकरो, भैसो की वलि नही देगे और दूसरे दूसरे स्थानों पर भी ऐसा न होने देने के लिये प्रयत्न करेगे।

शस्यश्यामला मालव की ओर

इस प्रकार मेवाड़ में अन्धश्रद्धा का उन्मूलन और धार्मिकता के

बीज वपन करते हुए आपने मालव भूमि की ओर विहार किया। इसकी जानकारी जैसे ही मालव श्रीसघो को मिली तो उनमे एक अपूर्व उत्साह व्याप्त हो गया। सभी श्रीसघो मे होड़-सी चल पड़ी कि हमारे क्षेत्र में तो आपका अवश्य ही पदार्पण हो और अपने-अपने क्षेत्र मे पधारने की विनती लेकर सेवा में उपस्थित होने लगे।

यथासमय विहारमार्ग मे आने वाले क्षेत्रो मे विचरण करते हुए आपने मदसौर में पदार्पण किया और राजकीय शाला मे विराजे।

मंदसौर मे होने वाले प्रवचनो का समस्त नगरवासियों ने लाभ लिया। वे सभी ऐसे प्रभावित हुए कि आप यहा विराजकर हमें धर्म के मर्म से परिचित कराते रहे। फलस्वरूप सभी ने आगामी चातुर्मास के लिये सामूहिक रूप में विनती करने का निश्चय किया। उनमे सिन्धी भाई भी थे जो अपने जन्मस्थानो को हजारो मील दूर छोड़कर शरणार्थी के रूप मे इस नगर मे आकर नये-नये ही बसे थे। उनकी भावना थी कि धर्म के दो शब्द सुनेंगे तो हमारे मन शात होंगे।

अभी चातुर्मास का समय दूर था अतः निश्चित रूप से प्रत्युत्तर न देकर इस सामूहिक विनती को आपश्री ने अपनी झोली में डाल कर मंदसौर से जावरा की ओर विहार कर दिया।

जावरा मे आपका पदार्पण होते ही आगामी चातुर्मास की स्वीकृति फरमाने की विनती लेकर रतलाम, कानोड़, जावरा, मदसौर आदि श्रीसघो के सदस्य उपस्थित हो गये और आगामी चातुर्मास के लिये पुनः अपनी-अपनी विनती दोहरायी और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को देखते हुए आपने कई आगारों के साथ सं० २००५ का चातुर्मास रतलाम करने की स्वीकृति फरमायी।

इस अवसर पर विनती करने वाले श्रीसंघों मे मंदसौर श्रीसघ के साथ यहा के और दूसरे नागरिक व सिन्धी भाई यह विश्वास लेकर आये थे कि आपश्री हमारी विनती पर अवश्य ही ध्यान देंगे और वर्षावास के चार माह विराजकर धर्मोपदेश सुनाने के साथ-साथ हमें जैन-

धर्म मे दीक्षित करने की कृपा करेंगे। लेकिन स्वीकृति न मिलने से उन्हें बडी निराशा हुई।

विचारो का अन्तर्द्वन्द्व

अकिंचन अनगार की दृष्टि मे राजा-रक सभी समान हैं। जिन्होने ऐहिक-भोगो की निस्सारता को परख लिया है, उन्हे सासारिक वैभव, मान-सम्मान, पूजा-प्रतिष्ठा आदि प्रलोभन किंचिन्मात्र भी आकर्षित नही कर पाते हैं। लेकिन वे श्रद्धालुओ की श्रद्धा और धार्मिक-जनो की धर्म-भावना के विकास मे सहकार देने के लिये सदैव तत्पर रहते है। अत· आपश्री को मदसौर श्रीसघ के सदस्यों और विशेषत: सिन्धी भाइयो के विश्वास और आन्तरिक भावना को ठेस पहुंचाना उचित प्रतीत नही हुआ। इसी के साथ-साथ यह विचार भी पैदा हुआ कि जब आगामी चातुर्मास के लिये स्वीकृति दे दी है तो अब अपने वचन से मुकरना साधुमर्यादा नही है।

आपश्री इस दुविधा के बारे मे जितना भी सोचते और समाधान का प्रयत्न करते, उतनी ही उलझन बढती जा रही थी। अत: आपने यह अन्तर्द्वन्द्व रतलाम श्रीसघ के श्रावको के समक्ष रखा और फरमाया कि चातुर्मास की स्वीकृति के समय विशिष्ट धार्मिक उपकार होने की सम्भावना से अन्यत्र चातुर्मास किये जाने का आगार रखा है। फिर भी आप लोगो की भावना से परिचित होना चाहता हूँ। आप लोग इस उलझन का समाधान बतायें।

रतलाम सघ के सदस्यो ने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को लक्ष्य मे रखते हुए और विशेष उपकार होने की आशा से आपस मे विचार-विमर्श करके प्रार्थना की कि आपश्री अपने आगारों के अनुसार विशेष परिस्थिति मे कही भी चातुर्मास में विराज सकते हैं और मदसौर की जनता की भावना को देखते हुए वहा धर्मप्रभावना होने की सम्भावना है। यद्यपि पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा के समय मे राजाओ द्वारा अपने नगर के लिये चातुर्मास मागने का प्रसंग आ चुका है लेकिन

किसी नगर के नागरिकों द्वारा सामूहिक रूप मे चातुर्मास की प्रार्थना होना पहली ही बार हम देख रहे हैं। अत. भविष्य के लिये अपना अधिकार सुरक्षित रखते हुए प्रार्थना करते हैं कि आपश्री इस वर्ष का चातुर्मास मदसौर करने की स्वीकृति फरमावें। साथ ही मदसौर सघ से आशा करते हैं कि आपकी धर्मभावना दिनोदिन वृद्धिगत हो और गुरुदेव के उपदेशों का लाभ उठायें।

रतलाम श्रीसघ की स्वीकृति मिलने पर आपने मंदसौर के उपस्थित नागरिकों और उनके अग्रणी प्रमुख सज्जनो से कहा कि आपकी धर्मभावना को समझकर रतलाम सघ ने भी अपनी उदारता दिखलाई है और मैं भी चातुर्मास की स्वीकृति के समय रखे हुए आगारो के अनुसार अन्यत्र चातुर्मास करने के लिये खुला हुआ हूँ। कदाचित् मंदसौर मे चातुर्मास की स्थिति बने तो साध्वाचार के अनुरूप विश्राम स्थान के बारे मे आप लोग बताइये।

सिन्धी भाइयों ने इस बात को सुनकर कहा कि आपश्री तो अपनी स्वीकृति फरमायें। योग्यस्थान की व्यवस्था करने मे हमे कोई कठिनाई नही होगी। सिर्फ आपकी स्वीकृति ही हमारे लिये महान प्रसन्नता और गौरव की बात होगी।

इस बात को सुनकर आपने फरमाया कि जब साधु अपने निमित्त बना हुआ भोजन भी नहीं ले सकता तो यह स्थिति कैसे सभव है कि आप लोग साधु के निमित्त मकान की व्यवस्था करें। साधु अपने निमित्त किसी को कष्ट दे तो उससे संयमसाधना निरतिचार कैसे पल सकेगी? इसलिये आप लोग ऐसा कोई स्थान बतायें, जिसमे किसी को भी कठिनाई न हो एवं साधुमर्यादा का पालन करते हुए साधु संत वर्षावास कर सकें। आप यह सोचें कि किराया देकर मकान ले लेंगे, तो भी यह साधु के लिये नही कल्पता है।

इस परिस्थिति को देखकर मंदसौर की जनता विवश हो गई और प्रार्थना की कि भगवन्! आपकी दयालुता महान है लेकिन साधु-

मर्यादा के देखते हुए हम विवश हैं। आपश्री जैसा निर्दोष स्थान फरमा रहे हैं, वैसी स्थिति अभी हमारे यहा नही है एव अपनी विवशता के लिये हमे दुःख है।

आपने पुनः फरमाया कि अब आप ही अपना निर्णय दे दीजिये कि संयमस्थिति का सरक्षण करते हुए हमे चातुर्मास मे कहा रहना उपयुक्त हो सकता है। साधु तो साधुता की रक्षा को ही सर्वोपरि मानता है।

इस समग्र परिस्थिति के विशद विवेचन से मंदसौर के निवासियो को सतोष हुआ और बड़े ही हर्ष के साथ प्रार्थना की कि आपश्री अपनी साध्वोचित मर्यादा के अनुनार सयम सरक्षणार्थ आगामी चातुर्मास रतलाम करने की कृपा करावें। आप जहा भी विराजेंगे, वही आकर दर्शन, व्याख्यान-वाणी का लाभ ले लेंगे। लेकिन सिर्फ अपने लाभ के लिये हम आपके साध्वाचार मे किसी भी प्रकार से अतिचार नही आने देना चाहते हैं। अत स० २००५ का चातुर्मास रतलाम घोषित हुआ।

अन्धविश्वास का परिमार्जन

जावरा से विहार कर आस-पास के क्षेत्रों में धर्मोपदेश देते हुए चातुर्मासार्थ आपका रतलाम पदार्पण हुआ। चातुर्मास काल में स्थानीय एव आस-पास के क्षेत्रों के श्रावक श्राविकाओ ने आध्यात्मिक विकास एव धर्मप्रभावना का लाभ प्राप्त किया। अनेक प्रकार के त्याग, प्रत्याख्यान हुए।

आपकी तात्त्विक विवेचना की अपनी अनूठी शैली थी कि जो कुछ विवेचन करना वह शास्त्रसम्मत हो एव जैनसिद्धान्तो के आधार पर करना। आपके प्रवचनो की छटा आलौकिक थी और उनका सबंध मानवजीवन, धर्म, समाजसगठन, जैनतत्त्वों की विशालता से रहता था। इनके सम्बन्ध मे आपके विचार मनन करने योग्य हैं। प्रसगानुसार आप फरमाया करते थे—

'ग्रन्थो मे धर्म की विभिन्न व्याख्याये की गई हैं, उनमे विभिन्न दृष्टिकोण होते हुए भी किसी दृष्टि से तात्पर्य की समता दिखाई देती

है। जैन-शास्त्रों मे साध्यागत धर्म की एक व्याख्या की गई है, वह अतीव संक्षिप्त है किन्तु सारगर्भित भी कम नही है। धर्म के वास्तविक एवं मूल रूप को सरलता पूर्वक समझने की दृष्टि से उस व्याख्या का कुछ विशेष महत्त्व भी है। वह व्याख्या कहती है— वत्थु सहावो धम्मो—जो वस्तु का (मूल) स्वभाव है, वही उसका लक्ष्यगत धर्म है।

धर्म कोई विशिष्ट प्रक्रिया या पद्धति ही नही, बल्कि एक स्थिति भी है अर्थात् विशिष्ट प्रक्रिया-पद्धति लक्ष्यगत धर्म को प्राप्त करने मे साधन रूप धर्म है। लेकिन वह साधनरूप धर्म लक्ष्य को सामने रखकर चलता है तभी वस्तुगत स्थिति पर पहुंच सकता है या अधिक स्पष्ट शब्दो में यह वही सनातन स्थिति है, जिसे हम निर्विकार, वीतराग या ऐसी ही उच्चतम स्थिति के रूप मे स्वीकार करते हैं। 'दुर्गतौ पतनां जनानां धारयतीति धर्मः'— इस कथन का यही अभिप्राय है कि जब आत्मा विकार की दशा मे फसकर अपने विकासशील स्वभाव मे अलग हो जाता है, गिरने लगता है तब उससे सजग होकर जिस वास्तविक मूल स्थिति को वह प्राप्त करने के लिये आगे बढता है और साधना के द्वारा आत्मगत स्वभाव मे प्रतिष्ठित हो जाता है, वही धारण करने की स्थिति, धर्म की मंजिल कहलाती है।'

'मानवजीवन की विशिष्टता का तभी अनुभव हो सकेगा कि आत्मा को पतन से बचाकर अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अनुकम्पा, सहानुभूति, उदारता, विशालता, विशुद्धता आदि प्रगतिशील वृत्तियो को ग्रहण करके विकास मार्ग पर कदम बढाये जाते हैं, क्योंकि इन वृत्तियो को अपनाने की शक्ति के फलस्वरूप ही संसार के अन्य प्राणियो मे मानव का विशिष्ट स्थान है और यदि मानव ही इन वृत्तियों से हीन रहता है तो वह 'पुच्छविषाणहीनः पशुभिः समानः' ही है। परन्तु मेरी दृष्टि मे तो कर्तव्यहीन मानव को पशु की उपमा देना भी पशुत्व का अपमान है, क्योंकि पशु तो ज्ञान के दर्जे में नीचे गिरा हुआ होता ही है लेकिन ज्ञान का ठेकेदार बना आज के वैज्ञानिक युग का मानव जब पशु से भी अधिक

वर्बर, अमानुषिक व अज्ञान हो जाता है तब पशु से भी अधिक निकृष्ट ही हुआ। आज के शोषक मानव की राक्षसी जिह्वा रातदिन निर्दोष प्राणियो के रक्त शोषण हित लपलपाती रहती है और यही विकृत वृत्ति उसे मानवता से गिराये हुए हैं।

'अतः मानव जीवन की विशिष्टता प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि आप प्राणिमात्र के सरल प्रेम से अपने हृदय को आप्लावित कर जीवन के प्रत्येक आचरण को अहिसा के तराजू पर तौले और यह जानने की चेष्टा करे कि कितने अशो में आपका जीवन अहिसामय और त्यागमय वन सका है, उसमे मानवता की प्रधानता स्थापित हो सकी है।

'आत्मा से परमात्मा तक के विकासक्रम का जिन्होंने ज्ञान प्राप्त किया है और ज्ञानी होकर उसमे अपनी आस्था जुटाई है, उन्हे सुज्ञानी कहा जायेगा। धर्म और उसके दर्शन की जो धुरी है वह है आत्मा का परमोत्कृष्ट विकास, इसलिये इस विकास का मूल है आत्मा ! कैसी आत्मा ? जोकि इस संसार के गतिचक्र मे भ्रमण कर रही है अर्थात् जडपुद्गलो के सयोग से जन्म-मरण करती हुई वन्धानुवन्ध करती रहती है। तो उस आत्मा का विकास कैसे हो ? कौन से कार्य हैं जिनसे आत्मा की भूमिका मे उत्थान पदा होगा और वह उत्थान ऊपर-से-ऊपर चढती हुई सासारिक सकट की जड़ को ही काट डालेगी, जड़ और चेतन का सम्बन्ध समाप्त हो जायेगा।'

'यह जो समस्त ज्ञान है, वही आत्मा की विकासगति को पूर्णतया स्पष्ट करता है और यही आधारगत ज्ञान है, जिसकी रोशनी मे अन्य सारी विचारसरणियां विश्लेषित होती हैं। इसलिये जैनदर्शन मे इस ज्ञान को विशिष्ट महत्त्व दिया गया है। उसे तत्त्वज्ञान कहते हैं।

'जैन शास्त्रो मे इस तत्त्वज्ञान का बडा विशद विवरण है और उसमे विस्तार से बताया गया है कि इन तत्त्वो पर ही आत्मा-परमात्मा और संसार की धुरी घूमती रहती है। यह तत्त्वज्ञान ससार के मूल से-लेकर मुक्ति के मुख तक समाहित माना गया है।'

इस प्रकार के मननीय विचारों से परिपूर्ण प्रवचन श्रोताओं के अन्तर् तक पैठ जाते थे। साथ ही प्रतिदिन सायंकालीन प्रतिक्रमण के पश्चात चर्चा-विचारणा होती थी। जिसमे मुनिश्री नानालाल जी म. सा. (वर्तमान आचार्यश्री) आदि सन्तों एवं अन्य जिज्ञासुओ के तात्त्विक प्रश्नो का समाधान करते थे।

इसी चातुर्मास समय की बात है। मुनिश्री आइदानजी म का शरीर रोगाक्रांत हो गया। मुनिश्री कृशकाया थे किन्तु रोग का दौरा होने पर बेहोश हो जाते और हाथ-पैर पछाड़ने लगते थे। दो-चार सत उन्हें सभालने का प्रयत्न भी करते, लेकिन उनके भी काबू से बाहर होते देख आपश्री रोगी की सेवा-शुश्रषा, परिचर्या के लिये पधार जाते थे।

आप अपने प्रारम्भिक जीवन से ही सेवाभावी रहे थे और रोगी की परिचर्या कैसे करना चाहिये आदि को भलीभांति समझते थे। आपकी करुणा और सेवाभावना मे पद बाधक नही बनता था और अन्य सन्तो द्वारा प्रत्येक प्रकार से परिचर्या करने का विश्वास दिलाये जाने पर भी रोगाक्रांत सन्त को सभालने के लिये आ ही जाते थे। बेभान अवस्था मे सत के हाथ पैर फड़फड़ाने से आपको पैर आदि से टक्कर भी लग जाती थी, लेकिन इस स्थिति से आपका मन द्रवित एव कर्म-विपाक की विडबना से चिन्तित हो उठता था और करुणाभावना रोग-शमन के उपाय करने के लिये बार-बार प्रेरित करने लगती थी।

योग्य उपचार होने पर भी रोग काबू में नही आ रहा था। अतः कई बंधुओ ने मकान मे खड़े पीपल के वृक्ष की ओर इशारा करते हुए कहा कि इसमें भूत का वास है। शायद मुनिश्री इसके नीचे समय-बेसमय बैठ गये होंगे। अत इसके लिये झाड़-फूंक कराना चाहिये।

आपने इन भूत-प्रेत की बात सुनकर फरमाया कि यह प्रेत-बाधा नही है, वरन शारीरिक रोग है जो किसी अनुभवी चिकित्सक के उपचार से दूर हो जायेगा। धर्मश्रद्धालु मानव को इस प्रकार के अन्ध-विश्वासों मे नहीं फसना चाहिए।

आपका जादू-टोना, नजर भूत-प्रेतबाधा आदि के बारे में कोई विश्वास नही था और इस सबको व्यर्थ की बाते समझते थे। इस सम्बन्ध मे आपके स्पष्ट विचार थे कि शास्त्रीय दृष्टि से देवयोनिया हैं, अवश्य लेकिन जहा कोई अपूर्व बात बने, उसे देवयोनि का प्रकोप नही समझना चाहिये। मूर्च्छा आदि आना कोई अपूर्व बात नही है, यह तो शारीरिक निर्बलता और वात आदि का विकार है। भूत-प्रेत की कल्पना करके बालको मे जो भय के संस्कार डाले जाते हैं, वे भविष्य में बडे हानिकर होते हैं और बालक भीरू बन जाते हैं। कभी कभी इन संस्कारो के फलस्वरूप आत्म-विश्वास की भावना पनप ही नही पाती है। जतर-मतर, टोना-तावीज आदि कोई करामात नही हैं, यह सब तो वहम है। इन के वहम मे पडकर आप लोग अपनी धर्म-श्रद्धा से च्युत न होओ। अपने कृतकर्मो के सिवाय कोई कुछ भी नही बिगाड़ सकता है। भ्रमित मान्यताओ के वश होकर, कपोल कल्पनाओ मे फंसकर अपनी आत्मा का पतन मत करो। धर्म पर दृढ श्रद्धा रखो। देवी-देवताओं, जादू-टोना, नजर आदि किसी से डरने की जरूरत नही है। ऐसी निराधार कल्पित घटनाओ का सम्बन्ध देवी-देवताओ से जोड़ना मनुष्य की मनोभावना पर आधारित है।

आपके इन विचारो का प्रभाव उपस्थित सज्जनो पर पड़ा। आपने कहा कि यदि कोई अच्छे चिकित्सक हो और वे निदान करें तथा रोगी की परिचर्या से जो मैंने समझा है, उसे समझाऊ तो रोग के काबू मे आने की आशा है। तदनुसार रोगी संत को वैद्य को दिखाया गया और आपने भी रोग के लक्षणो को बताया। परामर्श के अनुसार नियमित रूप से १५ दिन तक एरंडी का तेल, सूखे ब्राह्मी के पत्ते और साधारण देशी काष्ठौषधि देने से रोगी सन्त स्वस्थ हो गये।

आप प्रकृतिविरुद्ध आहार, विहार और निहार से शारीरिक मलों— वात, पित्त, कफ— के कुपित होने को रोगोत्पत्ति का कारण मानते थे तथा इनके शमन के लिये प्राकृतिक चिकित्सा—उपवास, योगासन,

प्राणायाम आदि में विश्वास करते थे। इस विश्वास का आधार यह था कि शरीर का सौन्दर्य एवं स्वास्थ्य उसे समरस व समतोल बनाये रखने मे है। शिशु जब मा का दूध पीता है तो न दूध मे मीठा घोलता है, न दूसरे स्वाद लेता है, न घूमने जाता है और न व्यायाम कुश्ती करता है। फिर भी शिशु का सौन्दर्य, मस्ती और स्वास्थ्य कितना प्रिय व मनोहर होता है। शिशु जगत का सर्वाधिक मनोरम रूप है। इसका कारण यही है कि शिशु अपने आहार—दूध—को पचाना जानता है। कभी उलटा होकर, कभी पैर फैलाकर, फड-फड़ाकर, कभी इधर-उधर लोट-पोट कर या ऐसी ही अन्यान्य हलचलें करके अपने आहार को पचा लेता है। लेकिन जब अपनी आयुवृद्धि के साथ यह सब बाल्यकालीन नैसर्गिक व्यायाम भूलता जाता है तो फूल-सा सुकुमार देह रसनिसृत वस्तु के समान तेजोहीन हो जाता है।

चिन्तनशील व्यक्ति को प्रतिदिन अपने शरीर और मस्तिष्क के मज्जातंतुओ व सूक्ष्म शिराओ को आसनो द्वारा बल देना चाहिये, जिससे उसे आत्मशाति के लिये मानसिक शाति का भी सहयोग प्राप्त होता रहे। मन की एकाग्रता के लिये आसन, प्राणायाम की आवश्यकता है। अगर मनुष्य सिद्धासन आदि आसन लगा सके तो निश्चित है कि उसका मन कदापि चंचल नही होगा।

मानव जाति का स्वास्थ्य यदि रोगों ने नष्ट किया है तो औषधियों ने भी अधिकाश रोगो को जन्म दिया है। आत्मघात करके या स्वय विषपान करके उतने व्यक्ति नही मरे हैं जितनों को औषधियो की बलिवेदी पर अपने प्राणों का उत्सर्ग करना पड़ा है। विष की अपेक्षा औषधियो के विष ने अधिक कहर ढाया है। वस्तुत आज की चिकित्साप्रणाली समाज के रोगी देह के लिये सफल सिद्ध नहीं हुई है। विजातीय द्रव्यो से भरी औषधियां यदि रोगो का उन्मूलन करती हैं तो अनेक नये रोगों को पैदा भी कर देती हैं।

प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपने शरीर का सुयोग्य चिकित्सक है।

प्रत्येक व्यक्ति को स्वय अपनी चिकित्सा करना चाहिये। यदि यह सभव न हो तो योग्य वैद्य से परामर्श करना चाहिये।

आप अपनी दैनिक चर्या मे इन विचारो का उपयोग करते थे। चाहे आप कितने ही व्यस्त हो, विहार मे हो या वर्षावास के निमित्त किसी एक स्थान पर विराज रहे हो, लेकिन शारीरिक अंग-प्रत्यगो को कतिपय आसनो द्वारा अवश्य ही श्रम प्रदान करते थे। आध-पौन घटे तक योगासनो का प्रयोग करते थे और शीर्षासन, उत्तानपादासन, पद्मासन, बद्धपद्मासन और मयूरासन आदि आसन शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से योग्य मानते थे।

लेकिन कभी कदाचित वातादिजनित साधारण व्याधि का प्रकोप भी होता तो सर्वप्रथम आप उपवास का अवलवन लेते और यदि औषधि का सेवन भी करना पड़े तो ऐसी सामान्य काष्ठौषधि लेते थे कि जिसके लिये न तो चक्कर लगाना पड़ें, गृहस्थ को निमित्त न जुटाना पड़ें और न डाक्टरो के आगे पीछे ही घूमना पड़े।

इन स्वानुभूत प्रयोगो से आप रुग्ण सत को साधारण-सी औषधियो के प्रयोग द्वारा निरोग करने मे सफल बने। आप जितने अध्यात्मविज्ञानी थे उतने ही शारीरिक विज्ञान के भी मर्मज्ञ थे। यही कारण था कि स्थूल शरीर होने पर भी आपके अंग-प्रत्यग मे वही लचक और स्फूर्ति दृश्यमान होती थी, जो युवावस्था मे किसी-किसी को प्राप्त होती है। यदि हम भी अपने शारीरिक स्वास्थ्य के लिये आप सदृश सन्तों के पथ का अनुसरण कर सकें तो तन, मन, धन को सुरक्षित रखने के साथ-साथ भक्ष्याभक्ष्य पदार्थो के भक्षण से वच सकते हैं।

श्रमणसगठन की विचारणा

इन्ही दिनो श्रमण-सगठन के लिये समाज में वातावरण बनाया जा रहा था। अग्रणी श्रावक मूर्धन्य सतो के साथ हुए विचार-विमर्श को ध्यान में रखते हुए योजना निर्माण में सक्रिय थे। उनके प्रयत्नो से प्रतीत होता था कि निकट भविष्य मे यह योजना कार्यान्वित हो सकेगी।

आपके पास भी चर्चा के लिये श्रावकों का शिष्टमंडल उपस्थित हो चुका था और समय-समय पर प्रगति की सूचना मिलती रहती थी।

आप संगठन के हामी थे। संघ ऐक्य के निर्माण मे योग देने का आश्वासन पहले ही दे चुके थे। आपको साम्प्रदायिक समाचारी का कट्टर पोषक समझा जाता था लेकिन संघ के निमित्त बड़े-से-बड़ा उत्सर्ग करने के लिये भी तत्पर रहते थे। संघ की एकता के निमित्त प्रयत्नशील रहने के संस्कार आपको गुरुपरम्परा से विरासत मे प्राप्त हुए थे। क्षण भर के लिये भी आपके अन्तःकरण मे आचार्य जैसे महनीय पद के लिये अनुराग नही रहा और इसीलिये संघ की एकता के लिये अपनी आचार्य पदवी का परित्याग कर देने की घोषणा करने मे नही झिझके। जबकि अन्य अनेक आचार्य या अन्य पदवीधारी संत इस स्थिति को उचित नही मान रहे थे।

संघ-ऐक्य योजना का शिष्टमण्डल

रतलाम चातुर्मास धर्मप्रभावना के कार्यो से समाप्त हुआ। चार माह का समय क्षणो मे बीत गया हो, प्रतीत होता था। चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर आपका रतलाम के आसपास के क्षेत्रो में विहार हुआ और वहा धर्मोपदेश देते हुए जावरा पधारे। इसी समय समाज के प्रमुख श्रावको का एक शिष्टमंडल जिसमें सर्वश्री कुन्दनमल जी फिरोदिया, बम्बई विधानसभा के अध्यक्ष, चिमनलाल चकुभाई शाह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं, संघ ऐक्य योजना की पूर्व भूमिका लेकर सेवा में उपस्थित हुआ।

शिष्टमंडल ने अपने द्वारा किये गये प्रयत्नो, मुनिराजो से हुए वार्तालाप और उसके परिणाम से आपको अवगत कराते हुए संघ ऐक्य योजना की रूप-रेखा प्रस्तुत की एवं यह प्रार्थना की कि आपश्री जब तक संघ ऐक्य योजना कार्यान्वित न हो, तब तक यह व्यवस्था रहे कि एक गांव मे एक ही चातुर्मास हो, एक ही व्याख्यान हो और प्रसंग आने पर समान समाचारी वाले सन्तों के साथ बैठकर व्याख्यान दिया जावे।

शिष्टमडल की धारणा थी कि ऐसा होने पर पृथक्-पृथक् संप्रदायो मे विभक्त साधु एक दूसरे के निकट आयेगे। विचारो का आदान-प्रदान होने से एक दूसरे की भावना को समझ सकेंगे और सघ-ऐक्य के लिये प्राथमिक भूमिका का निर्माण होने के साथ-साथ ऊपरी तौर पर एकता भी प्रतीत होगी।

आचार्य श्रीजी ने शिष्टमडल के विचारो को ध्यानपूर्वक सुना। उस समय कई एक सप्रदाय के साधुओ की विचित्र स्थिति हो रही थी। यदि स्वच्छन्द प्रवृत्ति को भी गौण मान ले तो भी कुछ एक घटनायें साधुओ द्वारा ऐसी हो चुकी थी जो सयम-साधना के विपरीत और अनाचार को वढावा दे रही थी। कुछ स्थानो पर तो ऐसी घटनायें भी हो चुकी थी कि जिनसे साधु-सन्तो के प्रति श्रावको की श्रद्धा ही डिग चुकी थी। आचार्य श्रीजी को इन सब घटनाओं की कुछ जानकारी समय-समय पर मिलती रहती थी, लेकिन आचार्य श्रीजी अपनी पृथक् संप्रदाय होने के कारण उनके बारे मे कुछ न कहकर मौन रहना उपयुक्त समझते थे।

अतः आचार्य श्रीजी ने फरमाया कि आप लोग सघ-ऐक्य योजना की भूमिका तैयार करने आये हैं और मेरे सामने ऐसे प्रसग हैं जिनमे कुछ एक सन्तो को पृथक् करने की स्थिति है। अतः आप ही बतलाइये कि मैं संघ ऐक्य योजना को आगे वढाने के लिये आपको आश्वासन दूं या अनुशासनहीन प्रवृत्ति करने वाले छद्मवेशी सतो को पृथक् करूं?

शिष्टमडल के सदस्यो ने वास्तविक बातो को सुनकर आचार्य श्रीजी से प्रार्थना की कि आपको जो भी शिथिलाचारी छद्मवेशी ज्ञात होते हो, उनको पृथक् कर दीजिये। ऐसो को छिपाये रखना या साधु-वेश मे अनाचार की प्रवृत्तियों को चलने देना सघ-ऐक्य योजना का उद्देश्य नही है। श्रमण-संस्कृति की पवित्रता की रक्षा होना सर्वोपरि है और इसी को लक्ष्य में रखकर हमारे प्रयत्न हो रहे हैं कि एक आचार्य के नेतृत्व में समस्त साधु, साध्विया धर्मसाधना मे प्रवृत्त हो, साधुमर्यादा

के विपरीत प्रवृत्ति करने वालों से संघ को बचाया जाये। अतः हमारा विनम्र निवेदन है कि ऐसे साधुओं को पृथक् कर दीजिये और सुदृढ धरातल पर ऐक्य-योजना को कार्यान्वित कराने में स्वीकृति फरमावें।

शिष्टमंडल के मनोभावों को समझकर पुनः आचार्य श्रीजी ने अपने अनुभव बताते हुए फरमाया कि कई साधुओं की ऐसी स्थिति है कि वे कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। अपनी भूल को भूल मानकर सुधारने का प्रयत्न न कर छिपाने की तरकीबें सोचते रहते हैं। एक ओर तो संघ-ऐक्य की उपयोगिता समझते हैं और उसे स्वीकार भी करते हैं लेकिन दूसरी ओर चालाकी से एक गाव में एक चातुर्मास स्वीकृत होने पर भी दूसरे चातुर्मास की स्वीकृति दे देते हैं। कई सत ब्रह्मचर्य महाव्रत का भग करने वालों को पहले तो दड-प्रायश्चित्त ही नही देते और देते भी हैं तो दोष के अनुसार दड-प्रायश्चित न देकर अपने साथ दोषी व्यक्ति को रख रहे हैं। प्रसग मिलने पर अन्य क्रिया-पात्र सतों के साथ स्वय बठ या उन व्यक्तियों को बैठाकर श्रावक-श्राविकाओ को धोखा देने की चेष्टा करने से भी नही चूकते और अकसर ऐसे मौकों की तलाश मे रहते हैं। कई एक रुपये-पैसे एकत्रित करने का प्रपच रचते हैं तथा सघ ऐक्य योजना का बड़ी लच्छेदार भाषा मे अनुमोदन कर वाह वाही लूटने से नही चूक रहे हैं। ऐसी स्थिति मे क्या यह सभव है कि एक स्थान पर एक ही व्याख्यान और एक चातुर्मास होगा? इसके अलावा एक बात और स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि दीक्षा लेने के बाद मैंने जिन पूज्य गुरुदेव के नेश्राय में संयमसाधना की है, निर्ग्रन्थ श्रमणसंस्कृति के अनुसार आत्मविकास की ओर अग्रसर हुआ हूँ, साद्वाचार का ज्ञान प्राप्त किया है, आचरण किया है और अनुभव किया है तदनुसार तो मैंने साधु-साध्वी वर्ग से बचे रहने में ही अपना और सघ का श्रेय समझता हूँ।

साधुओं और श्रावकों के सम्बन्धों के बारे में स्पष्ट उल्लेख है कि साधुओं के लिये श्रावक अम्मा-पिया— माता-पिता हैं। यद्यपि साधु

महाव्रतधारी और श्रावक अणुव्रतधारी होते हैं लेकिन श्रावकों को माता-पिता की उपमा इसलिये दी है कि जिस प्रकार माता-पिता संतान का लालन-पालन कर उसके जीवन को सुसस्कारी बनाने में सहायक होते है, उसी प्रकार श्रावक साधुओ की सयमसाधना मे सहायक बनें। यदि साधु की भूल की श्रावक उपेक्षा करते हैं तो उसका आशय यह हुआ कि वे साधुओ को स्वच्छन्द प्रवृत्ति करने मे सहायता देते हैं और फिर एक वार आदत बिगडने पर सुधार की आशा कम दीखती है ।

शिष्टमडल के सदस्यो ने इन विचारो के प्रति अपनी सहमति व्यक्त करते हुए कहा कि आपका फरमाना उचित है और इतने दिन जो कुछ हुआ, सो हुआ। परन्तु हम आपको यह विश्वास दिलाते हैं और भावना व्यक्त करते हैं कि अब ऐसी स्थिति नही रह पायेगी। हम अभी जिन सन्तो के पास होकर आये हैं, उन्होने जिस प्रकार से प्रेरणाप्रद आश्वासन दिये हैं, वैसे ही आपश्री भी स्वीकृति फरमावे। यदि आपश्री की स्वीकृति प्राप्त न कर सके तो शिष्टमंडल को यही निरस्त कर देगे। आपश्री की भावना के बारे मे हम इतना ही निवेदन कर देना चाहते हैं कि आपको जिन साधु-सन्तो की क्रियापात्रता और सयमसाधना की निर्दोषता मे विश्वास हो, उनके साथ बैठकर व्याख्यान दे किन्तु सघसगठन की योजना के लिये कम से कम इतनी छूट दीजिये कि एक गाव मे एक चातुर्मास हो।

शिष्टमडल के मनोभावो को समझकर आचार्य श्रीजी ने फरमाया कि परीक्षण के रूप मे तीन वर्ष तक एक चातुर्मास होगा। आप लोग इस विषय मे निष्पक्ष रहे और जहा जिनकी त्रुटि-स्खलना हो, उनसे सत्य बात कहने और परिमार्जन करने की स्थिति बनायेगे तो शायद कुछ सुपरिणाम निकलेगा।

आचार्य श्रीजी से स्वीकृति प्राप्त कर शिष्टमडल ने उद्देश्य की पूर्ति के लिये दूसरे-दूसरे साधु-सतो की सेवा मे जाने के लिये प्रस्थान किया और आपश्री भी जावरा से विहार करके अनेक ग्रामो को स्पर्श

करते हुए इन्दौर पधारे।

भूदानी नेता से साक्षात्कार

इन्दौर भूतपूर्व होलकर राज्य की राजधानी का नगर है। अपनी भौगोलिक स्थिति और उद्योग-व्यापार का केन्द्र होने के कारण धनधान्य सम्पन्न है तथा जैन समाज की दृष्टि से तो इन्दौर जैनियों का गढ माना जाता है। शैक्षणिक सस्थाओ और विद्वानों की सख्या भी काफी अच्छी है।

इन्दौर मे आपश्री महाराजा तुकोजीराव क्लोथ मार्केट के सभा भवन मे विराजे और प्रतिदिन वही आपके प्रवचन होते थे। जिनका नगरनिवासी लाभ लेते थे और तात्त्विक-चर्चा के समय विद्वानों का जमघट लग जाता था।

इन्ही दिनों इन्दौर से करीब तीन कोस की दूरी पर स्थित राऊ ग्राम मे सर्वोदय मडल का अधिवेशन हो रहा था। उसमे अनेक सर्वोदयी कार्यकर्ताओ के अतिरिक्त भूदान आन्दोलन के प्रेरक विनोवा जी भी आये हुए थे। विनोवा जी को आपश्री के इन्दौर मे विराजने की जानकारी मिली तो वे अपने कुछ सहयोगी कार्यकर्ताओ को साथ लेकर आपसे मिलने आये और करीब पौन घटे तक अहिंसा, सत्य, समाजवाद, सर्वोदय आदि के बारे मे वार्तालाप होता रहा।

वार्तालाप का उपसहार करते हुए विनोवा जी ने कहा—महाराज! भूल जाइये कि जैनियो की सख्या कम है। जैनो के आचार-विचार के सिद्धान्त विश्व की समस्त विचारधाराओं मे मिश्री की तरह घुल-मिल गये हैं। लेकिन एक बात मेरे मन में सदा खटकती रहती है कि जैनियो ने जिस दृढता के साथ अहिंसा को पकड़ा है, उसी लगन और निष्ठा से वे सत्य को नहीं पकड़ पाये है। अगर जैन-समाज ने सत्य और अहिंसा, दोनो को अपने जीवन का पाया बना लिया होता तो निश्चित है कि मानसरोवर से निकलने वाली गगा की धारा की तरह वह पृथक् ही दिखाई देती।

सत्य और अहिंसा के समन्वय पर ही गंगा और यमुना के सगम के समान दिव्यतीर्थ की प्रतिष्ठा हो सकती है। विश्व के मानव-समुदाय मे निरामिष भोजन और व्यसनविहीन जीवन के लिये जैसे जैनसमाज आदर्श है, वैसे ही मैं उसे सत्य और सरलता में, स्वावलंबन और स्वाधीनता के विषय मे भी आदर्श देखना चाहता हूँ।

आचार्य श्रीजी और विनोवा जी का यह समिलन बहुत सौजन्य-पूर्ण और मधुर रहा। यही कारण है कि आज भी विनोवा जी समय-समय पर आचार्य श्रीजी को स्मरण करते रहते है।

श्री विनोवा जी के विचार जैन समाज के लिये चिन्तन का अवसर प्रदान करते हैं और सत्य व अहिंसा के जीवनव्यापी प्रयोग के लिये प्रयत्नशील होने का आह्वान करते है। क्योकि सत्य से ऊंचा कोई धर्म नही और अहिंसा से बढ़कर कोई कर्तव्य नही है। आज विश्व इन्ही दोनो की असीम परधियो के चारो ओर घूम रहा है। मानवमात्र इनकी प्रेरणा से जीवन-यापन करने के लिये उत्सुक है, लेकिन दो समानान्तर रेखाओ के समान जीवन मे सत्य और अहिंसा के गतिमान होने से अधिकतर उन दोनो का समन्वय होने का अवसर नही दिख रहा है। यद्यपि मानवमात्र मे सुख की आंतरिक आकाक्षा तो है लेकिन सुख के कारणो की अवहेलना कर या गौण समझ कर। परिणामतः जीवन मे शून्यता है, उदासीनता है और क्षण-प्रतिक्षण विनाश की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

लेकिन इस स्थिति मे भी यदि जैन बधुओ मे जो यत्किंचित् भी मानवता के दर्शन हो रहे हैं, उसका कारण है धर्माचार्यों के उपदेश, अहिंसा, सत्य के प्रति लगाव और सत्साहित्य के अध्ययन-मनन के लिये पाई जाने वाली अभिरुचि।

जैनियो की सख्या लाखो से करोड़ो या उससे भी अधिक हो सकती है। किन्तु इसके लिये आवश्यक है कि हम अपने विचारो को वाणी से नही किन्तु आचरण द्वारा व्यक्त करें और उन अवसरो को

उपयोगिता समझें, जब मानवीय करुणा के लिये एकाकी रहकर भी बार-बार प्रयत्न करना जरूरी हो। ऐसा करने मे कठिनाइया भी आयगी और आना भी चाहिये, लेकिन अहिंसा के धरातल पर सत्य के प्रकाश मे समता के माध्यम से समन्वय के लिये सतत सजग और सचेष्ट रहे।

सर्वोदय की परिभाषा

श्री विनोबा जी गाधीवादी विचारधारा के प्रसारक जननेता है और सत्य, अहिंसा के सिद्धान्तो पर एक ऐसे मानव समाज के निर्माण मे सलग्न है जिसमे मानव, मानव के नाते अपनी जीवनोपयोगी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये न्याय-निष्ठा पूर्वक कर्तव्यशील रहकर दूसरे मानवो के प्रति अपने दायित्वो का निर्वाह करे। वर्गसघर्ष, जातिवाद, आर्थिक विषमता और अनैतिक आचार-विचार की सीमा से परे रहकर अपने-अपने विकास के लिये अवसरो की अनुकूलता प्राप्त हो। व्यक्ति की गरिमा का सदुपयोग हो। साम्यभाव के धरातल पर सब धर्म-समन्वय का आदर्श अवतरित हो। सर्वतोमुखी जीवन के विकास के लिये सर्वसत्तासपन्न विश्वराष्ट्र का निर्माण हो। इस भावना की अभिव्यक्ति का नाम सर्वोदयवाद है।

लेकिन जैनदृष्टि से सर्वोदय की सीमा मानव तक सीमित नही है। उसमे मानव भी अन्य सचेतन प्राणी की तरह एक इकाई है। अतः वह प्राणी मात्र के उदय का उदार दृष्टिकोण उपस्थित करता है। उसमे न तो मनुष्य मुख्य है और न अन्य प्राणधारी गौण। सभी को समान स्तर पर रखकर उत्कर्ष की भावना व्यक्त की गई है—

'सर्वापदामन्तकर निरन्त सर्वोदय तीर्थमिद तवैव'

पूज्यश्री इसी प्रकार के सर्वोदय मे विश्वास करते थे और अपनी निष्ठा को आचार के माध्यम से व्यक्त किया है। सर्वोदय के सम्बन्ध मे आपके माननीय विचार इस प्रकार हैं—

'जय जय जगत सिरोमणि........' इसमे कवि ने परमात्मा की जय का जो नारा लगाया है उसमे परमात्मा के साथ सारे ससार की

ही जय का नारा उठता है। लोकरूपी शरीर मे सिद्धात्माये शिरोमणि-स्वरूप हैं, क्योकि जिनके ज्ञान रूपी प्रकाश मे समस्त लोक 'हस्तामलकवत्' प्रतिभासित होता है। जहा मस्तिष्क की जय है वहा सारे शरीर की भी जय हो ही जाती है, क्योकि मस्तिष्क की जय मे भी सारे शरीर के कार्य का सहयोग छिपा हुआ है तथा छिपी है मस्तिष्क के स्वसचालन के हेतु शरीर को प्राप्त होने वाला सजग प्रेरणा।

'जिस प्रकार भारत के विषय मे केवल उस पर शासन करने वाली सरकार की ही विजय नही होती है, किन्तु उसके समस्त निवा-की विजय होती है। उसी प्रकार परमात्मा की जय मे ससार के सभी प्राणियो की जय है। इस भावना का नाम ही सर्वोदयवाद है। सबका उदय हो, सब मानवता के रहस्य को समझ कर अपनी अन्याय-पूर्ण नीति को छोड़ और विश्वबन्धुत्व की स्थापना करें—इसी मे परमात्मा की जय बोलने का सार रहा हुआ है।

'तात्पर्य यह है कि समाज के सहयोग से ही व्यक्ति का विकास होता है और वह उन्नत अवस्था को प्राप्त होता है। जैसे सभी अगो के कारण से मस्तिष्क विचारक्षम व गभीर चिन्तन करनेवाला होता है, उसी तरह समाज के सरल सौहार्दमय वातावरण मे ही महान विभूतियो और महात्माओ का जन्म होता है और जैसे मस्तिष्क अधिक विचारक्षम होने के पश्चात अन्य अगो का विशेष रूप से रक्षण व पोषण करता है उसी प्रकार वे महान विभूतिया और महात्मा अपना सब कुछ समाज के हितार्थ बलिदान कर देते हैं।

'सभी अङ्गो के समुचित सहयोग का प्रश्न समाज के निज के सामूहिक विकास के लिये भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। जब तक अन्न, वस्त्र आदि जीवनोपयोगी पदार्थो का समाज मे प्रत्यावर्तन होता रहता है तब तक सामाजिक जीवन मे शाति रहती है। किन्तु जब यह प्रत्यावर्तन बंद हो जाता है या रुक जाता है, चाहे वह समाज में हो या शरीर मे, तभी स्वास्थ्य बिगड़ने लग जाता है। जब समाज की

उपेक्षा करके व्यक्ति के हृदय में संग्रह की भावना उत्पन्न होती है तब समाज मे संघर्षपूर्ण विषमता पैदा होती है और वह सामाजिक अशांति का मूल कारण बन बैठती है।

'संग्रहवृत्ति की राक्षसी मदान्धता ने ही चोरबाजारी, रिश्वत आदि अमानुषिक प्रवृत्तियों को जन्म दिया है। अतः जब तक अपनी संचय-बुद्धि को त्याग कर अपने द्रव्य का आवश्यकतानुसार संपरित्याग करने की ओर नही झुकेंगे तब तक राष्ट्र और समाज मे विषमता का नाश होकर शांति की स्थापना होना दुष्कर है।

'अब मैं समाज की वर्तमान व्यवस्था के बारे मे बतलाना चाहता हूँ कि समाज के विभिन्न अंगों मे क्यो भेद उत्पन्न कर दिया गया और इसके कारण किस प्रकार एक अंग पोषण और दूसरा अंग पोषण के अभाव मे विकृत हो चला?

'जैसे शरीर के चार प्रमुख अङ्ग होते हैं, उसी प्रकार समाज मे कर्तव्यो को दृष्टि मे रखकर चार वर्णों की स्थापना हुई। समाज की सुव्यवस्था को लक्ष्य मे रखकर ही संभवत. यह वर्णविभाग हुआ होगा, किन्तु समयप्रवाह के साथ यह वर्ण-विभाग विकृति की ओर बढ चला। कर्तव्य की अपेक्षा जातिवाद को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। अपने को श्रेष्ठ बताकर अपनी ही पूजा-प्रतिष्ठा कराने के लिये अन्य वर्णों का तिरस्कार और निरादर किया जाने लगा। जबकि जैन-संस्कृति का स्पष्ट दृष्टिकोण है कि—

कम्मुणा बंभणो होई, कम्मुणा होई खत्तियो।
कम्मुणा वइसो भवई, सुद्दो हवई कम्मुणा॥

उत्तराध्ययनसूत्र

कर्म अर्थात् कार्य (आचार-विचार) से ही ब्राह्मणत्व आदि का आरोप किया जा सकता है। जैन-संस्कृति वर्ण को बपौती के रूप में नहीं मानती। जैन-संस्कृति के सामने वर्ण का कतई दृष्टिकोण नहीं है, उसके सामने तो आत्मिक-विकास की महिमा है।

'मेरे कहने का निष्कर्ष यही है कि सर्वोदयवाद के महत्व को समझे और परमात्मा की जय बोलने मे सब प्राणियो के साथ साम्य-दृष्टि को अपनाये। वैभव और ये शरीर आदि सब नश्वर हैं, एकदिन नष्ट हो जायेगे और साथ रह जायेगा वही जो कुछ किया है। जैन-शास्त्रो मे परदेशी राजा का उदाहरण आता है, जिसके हाथ निर्दोषो के खून से सने रहते थे। वह भी केशीश्रमण के उपदेश से त्यागपथ की ओर अग्रसर हुआ। आज भी उसी त्याग की आवश्यकता है, समाज की सघर्षमय विषमता को मिटाने के लिये। शोषण का हमेशा के लिये खात्मा कर दिया जाये, इसके लिये अपनी वासनाओ और आवश्यक-ताओ को सीमित करना चाहिये और अपने वैभव का अमुक हिस्सा दानादि शुभ कार्यो के लिये निर्धारित किया जाना चाहिये।

'अन्त मे यही कहना चाहता हूँ कि समस्त प्राणियो को आत्म-वत् समझे, सबसे प्रेम करे, सबकी रक्षा करें, यही सर्वोदयवाद है और इसी मे परमात्मा की जय यथार्थ रूप से बोली जा सकती है।,

आचार्यश्रीजी के इन विचारो से वर्तमान के जितने भी राज-नैतिकवाद — समाजवाद, साम्यवाद, प्रजातत्रवाद, अधिनायकवाद आदि— प्रचलित है, सबका सकलन हो जाता है। इन सबका दृष्टिकोण मानव को सुख-सम्पन्न, समृद्ध बनाना है। लेकिन जैनदृष्टि प्राणिमात्र के उत्कर्ष मे अपना विश्वास व्यक्त करते हुए प्रयत्न करने का आदर्श उपस्थित करती है।

आज नही तो कल विश्व की विवेकशील जनता को इन विचारो को कार्यान्वित करने मे सकोच नही करना पड़ेगा और जैसे-जैसे विश्व भौतिकता की चरम सीमा की ओर बढेगा, है उसी तरह से अध्यात्म-वाद की ओर उन्मुख होकर वास्तविक सर्वोदय की ओर बढ़ना आव-श्यक बनता जायेगा। समय की प्रतीक्षा तो करनी पड़ेगी लेकिन यह निश्चित है कि व्यक्ति का व्यक्तित्व समूह के समुत्थान में भी विकसित होता है और उस विकास का नाम सर्वोदय होगा।

एकता-विरोधी कार्य

आपश्री के इन्दौर विराजने के अवसर पर श्रीसंघ जावरा का शिष्टमंडल आगामी चातुर्मास जावरा में करने की विनती लेकर सेवा मे उपस्थित हुआ और विशेष उपकार होने की दृष्टि से आपश्री ने अनेक आगारों के साथ आगामी चातुर्मास जावरा मे करने की स्वीकृति फरमायी और वहा से विहार कर उज्जैन पधारे।

आपश्री के आगामी चातुर्मास की स्वीकृति से समस्त श्रीसघों को जानकारी हो चुकी थी और मालव प्रदेश मे तो अनोखा उत्साह, उल्लास दृष्टिगोचर हो रहा था। लेकिन सभी जगह कुछ-न कुछ विघ्न-संतोषी और समष्टि का कल्याण न होने देने में प्रसन्न होने वाले होते हैं, वैसे ही जावरा श्रीसघ में भी कुछ व्यक्ति थे। उन्होने संघ-ऐक्य योजना के मूल पर कुठाराघात करने के लिये दूसरे सतो से भी आगामी चातुर्मास जावरा मे करने की स्वीकृति प्राप्त कर ली।

उज्जैन पधारने पर आपश्री को जब यह बात मालूम पडी तो विचार किया कि क्या ऐसी स्थिति मे संघ-सगठन की योजना सफल हो सकेगी ? सतों का चातुर्मास होना विचारणीय नहीं था लेकिन सघ ऐक्य योजना के आधार— एक गाँव मे एक चातुर्मास हो— को लेकर समाज के अग्रणी श्रावको का प्रतिनिधि मडल विभिन्न सप्रदाय के मूर्धन्य मुनिराजो से स्वीकृति प्राप्त कर चुका था, विरुद्ध यह कृत्य अवश्य था। साथ ही यह भी सिद्ध हो गया था कि संघ-संगठन के विघातक तत्त्व चाहे वे मुनि हों या श्रावक, अपनी कुटिलवृत्ति के प्रदर्शन में सदैव तत्पर रहे हैं और रहेंगे एव संघ-ऐक्य उनके लिये खिलवाड़ मात्र है।

लेकिन सघ-ऐक्य के लिये प्रयत्न करने वाली संस्था— श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स और उसके पदाधिकारियों तथा संगठन के लिये विभिन्न सन्तों से सपर्क साधने वाले प्रतिनिधि मण्डल के सदस्यो ने इस स्वच्छन्द प्रवृत्ति का विरोध नहीं किया और समाज के समक्ष वास्तविक स्थिति रखने के प्रति उदासीनता बताई।

आचार्य श्रीजी ने इस स्थिति का मूल्यांकन करते हुए निर्णय किया कि दूसरे चाहे जैसा करें और अपने आश्वासन का पालन करे या न करें, लेकिन मुझे तो वैसा कुछ नही करके संघ-ऐक्य योजना की सफलता के लिये प्रतिनिधि-मडल को दिये गये अपने वचन का पालन करना उपयुक्त है ।

चातुर्मास परिवर्तन . जयपुर की ओर

आपश्री का आगामी चातुर्मास जावरा मे होने तथा एकता-विरोधियो की अनुचित प्रवृत्ति की जानकारी मालवा एव देश के विभिन्न श्रीसघो को हो चुकी थी । सभी इस स्थिति को सघहित मे योग्य नही समझते थे और भविष्य मे इसकी पुनरावृत्ति रोकने के लिये यथा-समय कार्य भी करना चाहते थे कि इसी समय श्रीसंघ जयपुर अपने यहा चातुर्मास करने की विनती लेकर सेवा में उपस्थित हुआ ।

इस विनती के पीछे यह एक विशेष हेतु था कि इस वर्ष जय-पुर से भिक्षु-परम्परा के मानने वाले तेरहपथ के आचार्य श्री तुलसी का चातुर्मास होने वाला था और उस अवसर पर धर्म के नाम पर होने वाली स्वच्छन्द प्रवृत्तियो के लिये अन्दर-ही-अन्दर जोर-शोर से तैयारियां हो रही थी । फिर भी ये तैयारिया जयपुर जैन समाज के प्रतिष्ठित अग्रगण्य सज्जनों से छिपी नही रह सकी और समाज के अन्यान्य व्यक्तियो को भी कुछ-न-कुछ जानकारी मिल चुकी थी । लेकिन उस समय तो यह तैयारियां पूर्ण रूप से स्पष्ट हो गई जब दयादानविरोधी संप्रदाय (तेरहपथ) के आचार्य का जयपुर मे आगमन हुआ । जनता ने देखा कि उनके साथ मे एक ओर अबोध बालको और दूसरी ओर बालिकाओ व नवयुवतियो की टोली चल रही है और इनमे से बहुतों को यहा दीक्षित किये जाने का निर्णय हो चुका है और इसी आयोजन के लिये यह प्रच्छन्न रूप मे तैयारियां हो रही थी ।

इस बात को जानकर नागरिको मे रोष व्याप्त हो गया था और जैन समाज भी अपने यहां ऐसे कार्यों के होने की कल्पना मात्र से आशंकित

था कि यदि यहां भी मानवता विरोधी मान्यताओं व प्रवृत्तियों की पुनरावृत्ति हुई तो निश्चित ही स्थानीय जैन समाज की प्रतिष्ठा को हानि पहुंचेगी और जैनधर्म के नाम पर कलंक लगाने की स्थिति बन सकती है।

श्रीसंघ जयपुर ने अपने यहां की इस स्थिति का विश्लेषणात्मक विवेचन करते हुए पूज्य आचार्य श्रीजी की सेवा में निवेदन किया कि आपश्री जयपुर में ही चातुर्मास करने की स्वीकृति फरमावें। आपश्री के विराजने से हमे धर्म-विध्वसनी हरकतों के उन्मूलन का साहस प्राप्त होगा और जैनधर्म व समाज की प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखने के प्रयास मे सफलता प्राप्त होगी।

श्रीसघ जयपुर के प्रतिनिधिमडल के विवेचन से आचार्य श्रीजी ने वहां की स्थिति और उसके परिणाम का अनुमान लगा लिया था। लेकिन समय की कमी शारीरिक निर्बलता और घुटनों मे पीड़ा के कारण अधिक लबा विहार न हो सकने की स्थिति को देखते हुए आपश्री ने फरमाया कि आप लोग मेरी शारीरिक स्थिति को जानते ही हैं और ग्रीष्मऋतु के प्रचड ताप के कारण इतने अल्प समय मे उज्जैन से जयपुर पहुंचना शक्य नही दिखता है। मैं जयपुर पहुचने की भावना भी रखूं, लेकिन पहुचना तो इस शरीर को है। अतः आप अन्य सन्तो का चातुर्मास कराने की चेष्टा कीजिये।

आपश्री द्वारा व्यक्त भावो के उत्तर में प्रतिनिधिमडल ने निवेदन किया कि शारीरिक स्थिति, समय की न्यूनता और भौगोलिक दूरी के कारण आपश्री ने जो कुछ फरमाया, वह उचित है। लेकिन जब हम अपने यहां की स्थिति की कल्पना करते हैं तो घबराहट होने लगती है कि हमारे यहां एक ओर तो धर्मनिन्दा के कार्यों की तैयारियां हो, जनसाधारण मे जैनधर्म के प्रति अनास्थाभाव बनने की स्थिति बन रही हो और दूसरी ओर हम परवश होकर उनके प्रतिकार के लिये कुछ भी न कर सकें। इस परिस्थिति मे आपश्री के सिवाय हमें अन्य कोई उबारने वाला नहीं दिखता है। आपश्री के जयपुर पधारने से ही

हमें सन्तोष मिल सकेगा ।

परमकारुणिक, परदु खकातर आपश्री ऐसी धर्मविरोधी प्रवृत्तियो को सहन करने के सर्वथा विरुद्ध थे । अतः शारीरिक स्थिति की अवगणना करके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को ध्यान मे रखते हुए स० २००६ का चातुर्मास जावरा न करके जयपुर करने की स्वीकृति श्रीसघ जयपुर के प्रतिनिधिमण्डल को दे दी ।

श्रेयांसि बहुविघ्नानि

स० २००६ का चातुर्मास जयपुर करने की स्वीकृति के साथ ही आपश्री ने जयपुर को लक्ष्य बनाकर उज्जैन से महीदपुर आदि की ओर विहार कर दिया और ग्रीष्मऋतु एव मार्गजन्य क्षुधा, पिपासा आदि विविध परिषहों को सहन करते हुए कोटा पधारे । शारीरिक अस्वस्थता और घुटनो मे दर्द तो पहले से चल ही रहा था लेकिन मार्ग में आने वाली परिषहो से पीड़ा कुछ विशेष वढ गई । अत कुछ दिन कोटा मे विश्राम कर आगे विहार करने का विचार किया ।

कुछ दिन विश्राम कर आपने कोटा से जयपुर की ओर विहार किया तो कुछ दूर वढने पर ही आपकी शारीरिक वेदना ने उग्ररूप ले लिया । जव यह खवर कोटा श्रीसघ ने सुनी तो उसने कोटा विराजने का विनम्र निवेदन करते हुए वापस कोटा की ओर विहार करवा दिया । वेदना की शाति और शारीरिक स्वास्थ्य मे कुछ परिवर्तन होने पर पुनः कोटा से विहार कर दिया और आषाढ शुक्ला १२ को जयपुर पधार गये ।

आपके पदार्पण से विवेकशील जैन वधुओ के हर्ष का पार न रहा और वडे ही उत्साह से अगवानी करते हुए नगर के प्रसिद्ध राज-मार्ग सवाई मानसिंह हाईवे (चौड़ा रास्ता) पर स्थित लालभवन में ससमारोह पदार्पण कराया ।

आपका स्वास्थ्य ठीक नही था और मार्ग मे रुग्ण हो जाने से कमजोरी वढ गई थी । कुछ समय विश्राम करने की जरूरत थी लेकिन जिज्ञासुओ की भावना को देखकर आपश्री ने प्रवचन फरमाना प्रारम्भ

कर दिया, जिनका जयपुर के नागरिक लाभ उठाते थे। आपके प्रवचनों के भाव इस प्रकार होते थे—

'आज मानव अज्ञान एव स्वार्थ के अन्धकार में भटक रहा है। उसका तेज, प्रतिभा एव प्रकाश क्षीण होता हुआ-सा लग रहा है। उसने अधिकांशतः अपने जीवन की महत्ता स्वार्थपूर्ति में ही समझने की चेष्टा करनी शुरू कर दी है। वह नही देखना चाहता है कि उसकी इस स्वार्थपूर्ति की चेष्टा मे कितना अन्याय, शोषण एव उत्पीडन उसके हाथों से हो रहा है।'

'व्यवहारिक जीवन को सयमपूर्वक सफल बनाने की कुछ कुजियां बताई गई है कि समय की अव्यवस्था मिटाकर प्रत्येक कार्य मे विवेक पूर्वक नियमितता लाना, आत्मनिर्भर होकर गृहस्थाश्रम मे भी स्वलक्षानुरूप उत्तरदायित्व का ध्यान रखना, चारित्र की महत्ता को दैनिक जीवन मे उतारना, आय और व्यय को असतुलित नही रखना, कुसगति से दूर रहने का ख्याल रखना, सबके साथ शिष्ट व शोभनीय व्यवहार का उपयोग रखना, पूर्ण विचारपूर्वक सही दिशा मे सोचे बिना कोई भी कार्यारम्भ नही करना आदि। जिन्हें प्रयोग मे लाकर लौकिकजीवन मे भी सयम का एक सरल सतुलन पैदा किया जा सकता है।'

'आज आप लोग देखते हैं कि कई व्यर्थ के लोक-व्यवहारों एव रीति-रस्मो मे लाखो रुपयो का पानी कर दिया जाता है, किन्तु सत्साहित्य-प्रसार व धर्म-प्रचार के नाम पर खर्च करने में नाक-भौं सिकोड़ा जाता है। यह बतलाने की आवश्यकता नही कि मनुष्य के जीवन-निर्माण में सत्साहित्य का अध्ययन एवं मनन कितना अमूल्य योग देता है। साहित्य मस्तिष्क का विकास करता है और मस्तिष्क उस आधार पर विचारश्रेणी को उच्च बनाकर सत्कार्यों मे प्रवृत्ति का मार्ग खोलता है।'

'आज देखा जाता है कि चेतन ससार जड़ अर्थ से शासित हो रहा है। मानव जी रहा है मानवता खोकर। इस अर्थमोह के पीछे जहां मानवता को विस्मृत किया जाता है वहां मर्यादा रक्षा और छाटुता

की आशा करना दुराशा-सी जान पडती है । अर्थसंग्रह की भट्टियों में ईर्ष्या, द्वेष, कलह, स्वार्थ, माया और लोभ की ऐसी भीषण आग जलती है कि आत्मोत्थान के पथ पर भयकर विस्फोट होते हैं, जो जन्म-जन्मान्तर तक आत्मा को विनाश एव पतन के अन्धकूप मे ढकेल देते है ।'

श्रोतागण ऐसे विचारो से प्रेरणा लेकर स्वय के द्वारा स्वय को समझने के लिये उन्मुख होते थे । आपश्री के चातुर्मास से जैनधर्म, जैनत्व और जैनाचार के प्रति जनता मे समान भावना विकसित हुई ।

यह आडम्बर : यह प्रदर्शन

तेरहपथ के प्रमुख आचार्य श्री तुलसी के आगमन और दीक्षार्थियो के नाम पर छोटे छोटे बालको, बालिकाओ व नवयुवतियों की टोली को साथ मे लाने के दृश्य को देखकर जनमानस मे व्याप्त रोष समय के साथ कुछ शात-सा दिखलाई देने पर पुन दीक्षा के नाम पर उन अबोध बालक-बालिकाओ को मूडने के प्रयत्न चालू हो गये । जनता पहले भी इस अयोग्य कृत्य के लिये अपना विरोध व्यक्त कर चुकी थी और पुन. अपने नगर की प्रतिष्ठा के विपरीत इस कार्य को किये जाने की तैयारी देखकर भड़क उठी । उसके क्षोभ और रोष का पार नही रहा एव विश्वासघात का प्रत्युत्तर देने के लिये आन्दोलन प्रारभ कर दिया ।

बालको को मूंडने की सब तैयारिता हो चुकी थी और कार्यक्रम, समय आदि की भी घोषणा की जा चुकी थी । अतः इस जन-आदोलन ने तेरहपथियो और उनके प्रमुखश्री को असमजस मे डाल दिया और अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया । अतः अपने कृत्य के समर्थन मे स्वयं को असमर्थ मानकर येनकेन प्रकारेण जनसाधारण को प्रभावित करने के लिये देश के राजनैतिक दलों के नेताओं को जयपुर लाना व उनके सार्वजनिक रूप में भाषण करवाना चालू किया । प्रतिदिन अनचाहे मेहमान की तरह कोई-न कोई नेता आते और अनुचित कृत्य से जनता का ध्यान बटाने के लिये वाक्चातुर्य प्रदर्शित कर चल देते थे । परन्तु उन नेताओ की तथ्यहीन भाषा जनता को विचलित

करने में सफल नहीं हुई ।

जनता की प्रतिक्रिया से तेरहपंथियो मे दिनोदिन भय और चिन्ता बढ रही थी और अपने भक्तो को इस भयावह स्थिति की जानकारी देते हुए अधिक सख्या मे जयपुर आने और चन्दा-चिट्ठा करने के समाचार तार व पत्रो द्वारा पहुंचाये जा रहे थे और कही कही तो प्रतिनिधियों को भी भेजा गया । फलस्वरूप अनेक व्यक्तियो का जमघट जयपुर मे होना शुरू हो गया और जनबल, धनबल या साम, दाम, दड, भेद की कूटनीति से जनता को प्रभावित करने की तजवीजें सोची जाने लगी । लेकिन इनका जनता पर उल्टा ही प्रभाव पड़ा और वातावरण दिनोंदिन उग्र-से-उग्र बनता गया ।

इन होने वाली अनुचित बाल दीक्षाओ के बारे मे आपश्री का मतव्य जानने के लिये प्रवचनो और तत्त्वचर्चाओ के समय स्थानीय विवेकशील विद्वान सेवा में उपस्थित होकर अपने प्रश्न रखते थे ।

आपश्री दीक्षा के विरोधी नहीं थे और फरमाया करते थे कि मैं शास्त्रीय दृष्टि से दीक्षा का विरोधी नही हूं । लेकिन वर्तमान समय मे अबोध बालको को दीक्षा देना उपयुक्त प्रतीत नही होता है । क्योकि तत्त्वज्ञान का अधिकारी वही हो सकता है जो हेयोपादेय का विवेक करने मे सक्षम है । जिसे अभी सीधा-सादा जीवन-व्यवहार भी चलाते नही आता, वह परमार्थ की विशेष स्थिति कैसे साध सकता है । ऐसे व्यक्ति भी तत्त्वज्ञान एव जीवनशुद्धि के क्षेत्र मे आने के प्राय. योग्य नहीं होते है जिन्होने जीवन मे असफलताओ के कारण पलायनवादी मनोवृत्ति को अपनाया है । सही मायने मे ऐसे उदासीन, अबोध और अतृप्त मानव तत्त्वज्ञान का विकास नही कर सकते और न ही शुद्धि के मार्ग पर बढने का अध्यवसाय कर सकते हैं ।

दीक्षा लेना अति गंभीर उत्तरदायित्व है और उसका जीवनान्त तक निर्वाह करना पड़ता है । अतः दीक्षा अंगीकार करने वाले की क्षमता को परख लेना जरूरी है । दीक्षा जीवन का मौलिक परि-

वर्तन है, इसमे क्षणिक आवेश के लिये अवकाश नही है, किन्तु जीवन-पर्यन्त स्थायी रहनेवाला मानसिक, वाचनिक और कायिक त्याग का मार्ग है और वैसा त्याग सर्वांगरूप से अन्तर् मे व्याप्त वैराग्य के विना नही टिक सकता है। सिर्फ वेश परिवर्तन से ही कोई प्रतिष्ठा-प्राप्ति का अधिकारी नही बन सकता है। अतः दीक्षा अगीकार करने वाला सक्षम, समर्थ और विवेकवुद्धि युक्त होना चाहिये। तभी वह भलीभांति दीक्षा के महत्त्व को समझ सकता है और उसके प्रति समाज की आदर समान की भावना विकसित होगी।

क्रमिक विकास के अनतर मुमुक्षु को स्वाधीन भाव से सोचने और अपने श्रेय का मार्ग निश्चित करने का अवसर दिया जाना चाहिये। ज्ञान और वैराग्यभावना आदि की पूरी तरह से परीक्षा हो जाने के पश्चात दीक्षा देने की बात पर विचार करना चाहिये।

कुछ एक शिष्य-लोभ से जो आये, उसे ही मूंडने की वृत्ति रखते हैं, तो कुछ एक की ऐसी भी धारणा है कि वैराग्य का आवेग आने पर तत्काल ही दीक्षित कर देने मे उसका कल्याण है। लेकिन ऐसा समझना ठीक नही है, क्योकि आवेग के शात होने पर विचारा संसार के जजाल मे पुन फस सकता है और भोग-लालसा का गुलाम बन सकता है। अत. सामान्य मानव की तुलना में दीक्षा लेने वाले मे महत्त्वपूर्ण आतरिक परिवर्तन की अपेक्षा है। तभी वह तत्त्व का तल-स्पर्शी चिन्तन और सदाचरण करने मे सफल होगा एव अधिक विनम्र बनने का प्रयत्न करेगा।

आपश्री के उक्त मतव्यो के अनुरूप ही जयपुर के विचारक और जागरूक बुद्धिजीवी वर्ग के विचार थे। उनका यही कहना था कि योग्य दीक्षार्थी को अवश्य दीक्षा दी जाना चाहिये और इस पुनीत कार्य के लिये मनसा, वाचा, कर्मणा हमारी सहमति है। लेकिन सिर्फ आडबर और प्रदर्शन के लिये इन अबोध बालको व किशोरियो की भावुकता का लाभ लेकर चेले मूंडने की प्रक्रिया के बारे मे हमारा विरोध है और ऐसे

कृत्य से हम अपने व अपने नगर के नाम को कलंकित नहीं होने देंगे। लेकिन इतनी सीधी और सरल बात भी इन अनुचित दीक्षाओं के कराने के लिये उतावले सज्जनो और उनके प्रमुख आचार्यश्री तुलसी की समझ मे नहीं आ रही थी।

आखिर नागरिको के रोष से परास्त होकर तेरहपंथियों ने एक नई पैंतरेबाजी चालू की और प्रचार के लिये मनघड़न्त आरोपो के साथ पपलेट प्रकाशित करना प्रारंभ किया और उनमे आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा पर आरोप लगाना शुरू कर दिया।

तेरहपंथियो के लिये यह परंपरा नई नही थी। पहले भी जब पूज्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. एवं उसके पश्चात चरितनायक जी विचरण करते हुए थलीप्रदेश मे पधारे थे तो उस समय इससे भी अधिक निन्दनीय वृत्ति का प्रदर्शन करने मे नही चूके थे। कई एक पाषाण-हृदयो ने तो गोचरी हेतु पधारे संतों के पात्रो मे आहार के बदले पत्थर रखने में भी संकोच नहीं किया था। कतिपय कृत्य तो इसकी अपेक्षा भी गर्हणीय हैं, जिनका उल्लेख करने से मानवता कलंकित और सभ्यता लांछित होती है तथा साधारण समझदार व्यक्ति उन कार्यों का अनुमोदन नही कर सकता है।

इसप्रकार के प्रचार और छीटाकशी ने आग में घी का काम किया। जनता का रोष भड़क उठा और इसकी जो प्रतिक्रिया हुई, उससे ऐसा मालूम होने लगा कि यह चिनगारी न जाने कितने घरों को फूंक डालेगी। जब इस बात के लिये अयोग्य कार्य करने वालों और उनके प्रमुख आचार्यश्री तुलसी से स्पष्टीकरण चाहा तो उत्तर देना दूभर हो गया और नये-नये उपाय सोचे जाने लगे।

मगर आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. इस भ्रांत प्रचार से किंचिन्मात्र भी विचलित नही हुए। विचलित वही होते हैं जिनकी आत्मा पक्षपात से भरी हुई हो और अपने अहम् के पोषण के लिये प्रतिपल प्रयत्नशील हों। आपश्री तो 'माध्यस्थभावं विपरीत वृत्तौ' के साधक थे।

आपका लक्ष्यविन्दु था— मुनियो ! तुम पृथ्वी के समान क्षमाशील वनो और निन्दा-प्रशसा के भेदभाव मे न पड़कर अपने आपको देखो। निन्दा करने वाला निर्मल वना रहा है, साधना में सहायक हो रहा है। अत उसके प्रति किसी प्रकार का द्वेषभाव न रखकर उसका कल्याण करो, उसको सुबुद्धि-प्राप्ति की सत्कामना और सद्भावना रखो।

तेरहपथी अपनी सुरक्षा के लिये विविध चक्रव्यूहो की रचना में लगे हुए थे। नेताओ को लाने का तांता तो चालू ही था लेकिन सफलता की आशा नही दिख रही थी। अत: इसी शृखला के वीच स्वार्थसाधना मे तन, मन, घन से सहयोग देने वाले कलकत्ता निवासी कतिपय घनिको के द्वारा दौड़घूप कराकर तत्कालीन जनता में विशेप रूप से प्रसिद्ध नेता श्री जयप्रकाशनारायण को भी जयपुर लाया गया। वायुयान से उतरते ही श्री जयप्रकाशनारायण को वडे आदर-सत्कार के साथ अपने प्रमुख आचार्यश्री तुलसी के पास ले गये और काफी समय तक एकान्त मे वातचीत होती रही। ऐसा भी सुना जाता है कि उनके समक्ष अनेक साकेतिक प्रस्ताव भी रखे गये। लेकिन उन्होने तत्काल ही अपना मतव्य व्यक्त न करते हुए कहा कि विश्रामस्थल पर पहुंचने के पश्चात ही शांति से सोच-समझकर कुछ कहा जा सकेगा।

अनतर जव श्री जयप्रकाशनारायण को उनके विश्राम-स्थल की ओर ले जाने के लिये कार को वढाया तो उन्होने लालभवन में विराजित आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. के पास चलने के लिये कार-चालक को सकेत किया और वहा आकर काफी देर तक आचार्य श्रीजी से वार्तालाप करते रहे।

वार्तालाप के प्रसग मे वालदीक्षा विषयक चर्चा भी चल पड़ी और श्री जयप्रकाशनारायण ने सम्वन्धित विषय मे आचार्य श्रीजी के विचारो को जानने की जिज्ञासा व्यक्त की। अत: आचार्य श्रीजी म. सा. ने अपने पूर्व मे व्यक्त किये गये भावो को पुन: स्पष्ट करते हुए फरमाया कि—

जैनदीक्षा के माने हैं अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और

अपरिग्रह— इन पांच महाव्रतों का सर्वांशतः शुद्ध पालन करने का जीवन-व्रत । इस व्रत के पालन करने की गंभीरता के बारे में दो मत नहीं हो सकते हैं । इस व्रत को अंगीकार करने के पश्चात् छोड़ देने की कोई व्यवस्था ही नहीं है । अर्थात् दीक्षित होने के अनन्तर कोई गार्हस्थिक जीवन मे पुन आने की आकांक्षा करे तो उसे शासकीय कानून की दृष्टि मे कोई जबरदस्ती नहीं रोक सकता है, परन्तु ऐसा करने वाले की धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में अप्रतिष्ठा होती है, सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता है, विश्वास का पात्र नहीं रहता है और प्रायः उससे कोई किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखता अर्थात् समर्थन नहीं देता है । जिसका दीक्षार्थी को भान करा देना चाहिये । लेकिन अपरिपक्व बौद्धिक-विकास की स्थिति में ऐसा ज्ञान होना संभव नहीं दीखता । इसलिये परिस्थिति की जानकारी न देकर किसी को भ्रम में रखना योग्य नहीं माना जा सकता है ।

मानव की शैशवावस्था संस्कारों के समार्जन की सर्वोत्तम स्थिति है । चाहे फिर वे संस्कार जीवन को विकास की ओर ले जाने वाले हों या ह्रास की ओर ले जाने वाले हों । दीक्षा— यह एक उच्चस्तरीय संस्कार है और इस संस्कार की वास्तविक स्थिति साकार रूप ले तो विश्व मे अभूतपूर्व आध्यात्मिक विज्ञान का आदर्श उपस्थित हो सकता है । यह एक वैज्ञानिक तथ्य है और मानवकल्याणार्थ ऐसे आदर्शों की आवश्यकता है । अतः शैशवावस्था की मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक शक्ति की दृष्टि से पूर्णरूपेण परीक्षा की जाये और परीक्षक को तटस्थ, निःस्वार्थ एवं अनासक्त वृत्ति वाला होना चाहिये एवं परीक्षार्थी की स्थिति भी स्वाभाविक होना चाहिये । वर्तमान में ऐसी स्थिति का प्रायः अनुभव नहीं हो रहा है । अतः शास्त्रीय दृष्टि से बालदीक्षा का निषेध नहीं होने पर भी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव आदि परिस्थितियों का ध्यान तो अवश्य ही रखना चाहिये । साधुओं की संख्या बढ़ाने के लिये येन-केन प्रकारेण किसी को भी साधुसंस्था में प्रविष्ट करा देना साधु-

सस्था, समाज और स्वयं व्यक्ति के लिये भी हितकर प्रतीत नहीं होता है।

दूमरी वात यह भी है कि दीक्षा देना सिर्फ व्यक्तिगत प्रश्न नही है किन्तु सामाजिक क्षेत्र को भी अतिनिकट से छूता है। यदि इससे भी आगे वढकर विचार करें तो ज्ञात होगा कि साधु-सस्था का यथार्थ उत्कर्ष अयोग्य दीक्षाओ के पोषण या उत्तेजन देने से नही हो सकता है। साधु-सस्था के वारे में ममत्व रखने वालो का आग्रह होना चाहिये कि हमारे साधुओ मे ऐसा एक भी व्यक्ति न हो, जिसे देखकर जनता हसी उडाये और उससे जैनधर्म को भी उपेक्षापात्र वनना पड़े।

इसलिये साधु-सस्था के गौरव को अक्षुण्ण वनाये रखने या उसे नष्ट करने का निर्णय विवेकशील, गंभीर चिन्तको को करना है। दीक्षाये हो, साधु सस्था के प्रभाव, उत्कर्ष मे वृद्धि हो और दीक्षार्थी अपने अगीकृत व्रत—प्रतिज्ञा की साधना मे पूर्ण निष्ठा, निर्भयता से तत्पर हो, इसी मे दीक्षार्थी और दीक्षागुरु का गौरव है।

सम्बन्धित प्रश्न के वारे मे श्री जयप्रकाशनारायण के भी ऐसे ही विचार थे और आचार्य श्रीजी के उक्त उदार विचारो को जानकर काफी प्रभावित हुए। वार्तालाप-समाप्ति के अनतर श्री जयप्रकाशनारायण ने वदना करते हुए कहा कि मैं जनता का विनम्र सेवक हूँ और उसके हितार्थ ही मेरी कार्य प्रवृत्ति है। उसमे आपका आशीर्वाद चाहिये।

एतदर्थ आचार्य श्रीजी ने इस आशय के भाव व्यक्त किये कि सार्वभौम महाव्रतों को स्वीकार करके साधुवृत्ति की भूमिका प्राप्त की जाती है। उस साधुवृत्ति मे विश्वकल्याण की भावना समाहित होती है और उसी वृत्ति के अनुरूप मानवकल्याण के शुभ कार्यों मे सदा आशीर्वाद रहता ही है।

तत्पश्चात् उपस्थित जनसमूह के समक्ष पूज्य आचार्य श्रीजी के प्रति आभार प्रदर्शित कर श्री जयप्रकाशनारायण ने अपने विश्राम-स्थल की ओर प्रस्थान किया।

बालदीक्षा के वारे मे अपना दृष्टिकोण व्यक्त करने और

सम्मति देने के लिये श्री जयप्रकाशनारायण द्वारा निर्धारित समय के पूर्व ही बालदीक्षा के सम्बन्ध मे अनुकूल सम्मति प्राप्त करने के लिये कतिपय व्यक्ति उनके पास पहुंचे और उसी समय सम्मति देने के लिये दबाव डाला। किन्तु इस प्रक्रिया से श्री जयप्रकाशनारायण का मानस क्षोभ से भर गया और असमानजनक कार्य के लिये आने वालो की भर्त्सना करते हुए अपने कक्ष में चले गये और अन्दर आने की भी मनाई कर दी।

निर्धारित समय पर जनसमूह के समक्ष आकर श्री जयप्रकाश-नारायण ने व्यक्ति, समाज और धर्म की दृष्टि से बालदीक्षा की हानियां बतलाते हुए बालदीक्षा के विरुद्ध अपना मत व्यक्त किया। वक्तव्य प्रकाशित होते ही दयादानविरोधियो एव बालदीक्षाओं के आयोजको मे खलबली मच गई और अपने विचारो को कार्यान्वित करने का पुनः साहस न कर सके।

पूर्वग्रह का प्रदर्शन

यद्यपि आचार्यश्री तुलसी और उनके अनुयायियो को जयपुर मे होने वाली अबोध बालक बालिकाओ को दीक्षा न देने के लिये विवश होना पडा था और अपना आत्म-विश्वास भी खो बैठे थे, लेकिन दयादान के सम्बन्ध मे बनाई गई भ्रांत मान्यताओं के समान ही यह धारणा बना ली कि इन जन आन्दोलन मे पूज्य आचार्य श्री गणेशलाल जी म सा. का सकेत है। पूर्वग्रह से ग्रस्त मानस की प्रतिक्रिया ऐसी ही होती है और उस स्थिति में सत्य को समझने का प्रयत्न होना असम्भव हो जाता है।

पूज्य आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. के प्रवचन पूर्ववत् लालभवन मे होते थे। जिनका आबालवृद्ध जनसमूह लाभ लेता था और दिनोदिन उपस्थिति बढ़ने से पर्युषणपर्व के दिनो में प्रवचनों के लिये सुबोध हाईस्कूल के प्रांगण मे व्यवस्था की गई।

पर्युषणपर्व संयम-साधना और धर्मप्रभावना के विविध आयो-जनों के साथ सम्पन्न हुआ। सांवत्सरिक प्रतिक्रमण पर्व के अवसर पर

गतवर्ष के प्रमादजन्य कार्यों के लिये प्रतिक्रमण कर चौरासीलक्ष जीव-योनि से खमतखामणा की गई।

सवत्सरी के अगले दिन सहयोगी सन्तो के साथ आचार्यश्रीजी म सा. प्रात.कालीन चर्या के निमित्त रामनिवास बाग की ओर पधारे। वही बाग मे आचार्यश्री तुलसी से साक्षात्कार हुआ।

पारस्परिक खमतखमापना के दौरान ही अप्रासगिक रूप मे आचार्यश्री तुलसी ने कहा— देखो गणेशलाल जी, मैं थाने एक बात कहूँ हूँ के थारो रवैयो ठीक नईं।

इस अप्रासगिक बात को सुनकर आचार्य श्रीजी ने फरमाया— कैसा रवैया ?

प्रत्युत्तर मे आचार्यश्री तुलसी ने कहा— थारी तरफ से छीटा-कसी हुई है, पपलेट बटावो हो, आ ठीक कोइनी, इने बद कर देनी चाहिजे।

तब आचार्य श्रीजी ने फरमाया कि यह आपका और आपके अनुयायियो का भ्रम है। न तो मैं छीटाकसी करता हूँ और न वैसे पपलेटो को छपवाता या बटवाता हूँ और न पपलेटो मे मेरा कोई सह-योग भी है। हां, श्रावको द्वारा लाये हुए कुछ पर्चे देखे जरूर हैं परतु उनमे ऐसी कोई बात मेरे ध्यान मे नही आई है जो निन्दाजनक हो या व्यक्तिगत आक्षेप किये गये हों। उनमे जो कुछ भी लिखा गया है, आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तको के उद्धरण मात्र हैं और उनमें छीटा-कसी मानना आपकी भूल है।

इस बात को सुनकर आचार्यश्री तुलसी पसीना-पसीना हो गये और अपने समीप मे खड़े शिष्य के कधे का सहारा लेकर खड़े होकर बोले— थे मने बदनाम करो!

इसके प्रत्युत्तर मे आचार्य श्रीजी ने फरमाया कि बदनाम करने जैसी कौनसी बात है। सैद्धान्तिक सत्य को स्पष्ट रूप से कहना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। तदनुसार तात्त्विकदृष्टि से प्रतिपादन मैं भी करता हूँ किन्तु विपरीत प्ररूपणा करने से जनता की गलत धारणायें

बनती हैं और वह जैनधर्म को उपेक्षणीय समझे तो ऐसा किसी भी जैनधर्मानुयायी को अभीष्ट नहीं हो सकता है। आप भी ऐसा ही मानते हैं और मैं भी जैनधर्म के आचार-विचारों का अनुसरण करनेवाला हूँ, अतः यदि मैं शुद्ध तत्त्व का प्रतिपादन नही करता या तदनुसार आचार-विचार नहीं रखता हूँ तो अपने कर्तव्य से गिरता हूँ।

दूसरी बात यह है कि आपको बदनामी का भय क्यों? आपके मान्य ग्रन्थ 'भ्रमविध्वंसन' में लिखा हुआ है— 'साधुथी अनेरो तं कुपात्र छे। अन्यने दीधा अन्य प्रकृतिनो वध छे। अन्य प्रकृति पापनी छे।' इस उल्लेख के अनुसार अभीप्सित के अतिरिक्त जितने भी मनुष्य हैं, उनको उनके योग्य आहार-पानी देने, सेवा-सहायता करने आदि मे आप एकान्त पाप बताते हैं और ऐसी मान्यता का प्रतिपादन करते हैं। यदि यह मान्यता आपकी व्यक्तिगत होती तो भी उपेक्षा कर देते, लेकिन जब जैनधर्म के नाम पर इन मानवता-विरोधी बातों का प्रतिपादन होता है तो जैनधर्म के बारे मे घृणा, भ्राति फैलना संभवित है और उस घृणा व भ्रांति को मिटाना प्रत्येक जैनधर्मावलंबी का कर्तव्य है।

यदि आप भूखे को भोजन, प्यासे को पानी, रोगी को औषधि देने एवं अन्य परोपकारी कार्य करने में पाप नही मानते हैं तो स्पष्ट घोषणा कर दीजिये कि मैं इन या ऐसे ही अन्यान्य दयादान-सम्बन्धी कार्यों मे पुण्य व धर्म मानता हूँ। मेरे पूर्ववर्तियों ने जो दयादान-विरोधी मान्यतायें प्रतिपादित की है, वे सब मिथ्या हैं, भूल भरी हैं और जैनधर्म के सिद्धान्तों के विपरीत हैं।

यदि इन सब बातो के बारे में आप और मैं यहीं किसी स्थान पर बैठकर निर्णय कर लें कि शुद्ध सिद्धान्त क्या है? यह स्पष्ट हो जाये और आपके भ्रम का विध्वंस हो जाये तो आप व आपके अनुयायी जैनधर्म के सिद्धान्तों के वास्तविक प्रतिपादन करने वाले कहला सकेंगे और स्थानकवासी समाज में रही हुई सम्प्रदायो की तरह आपकी भी एक सम्प्रदाय मानी जाने लगेगी।

अनतर अपने साथ के सतो की ओर सकेत करते हुए आचार्य श्रीजी ने फरमाया कि ये मेरी नेश्राय मे रहकर साध्वाचार का पालन कर रहे हैं, तो आप इनको सुपात्र मानते हैं या नही ?

पूज्य आचार्य श्रीजी के इस ओजस्वी और अर्थगभीर कथन को सुनकर आचार्यश्री तुलसी कुछ उत्तर न दे सके। चेहरे का रग क्षण-क्षण मे बदल रहा था। अत. विना कुछ कहे ही अपने समीपवर्तियो के कधो का सहारा लेकर आगे बढने का उपक्रम किया।

वाचनिक-सौष्ठव हेतु सकेत

वार्तालाप के प्रसग मे पूज्य आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा साधुमर्यादानुसार अपने कथन मे आचार्यश्री तुलसी को शिष्टजनोचित समानसूचक 'आप' शब्द से सम्वोधित कर रहे थे, जबकि आचार्य श्री तुलसी 'थे, थाने' आदि ग्राम्यबोली के सकेतो से सम्बोधित कर रहे थे।

इस प्रकार बिना कुछ उत्तर दिये आचार्यश्री तुलसी और उनके सहयोगियो को चलते देखकर आचार्य श्रीजी म सा. ने उन्हें रुकने का सकेत करते हुए फरमाया कि आप अपने पथ के आचार्य माने जाते हैं। यह शिष्ट और सस्कृत जनो मे उच्च पद माना जाता है। अत उस पद पर स्थित व्यक्ति को वार्तालाप करते समय शिष्ट और सभ्यजनोचित वचनोच्चारण करने की जरूरत है। मुझसे वार्तालाप करते समय आप मुझे थें, थानें या नाम लेकर या अन्य किसी भी शब्द से सम्वोधित करें, उसके लिये कुछ नही कहना है, परन्तु अन्यत्र वार्तालाप का प्रसग आने पर समक्ष बैठे व्यक्ति को सभ्य, शिष्ट भाषा में सम्बोधित करने का ध्यान रखे। अभी आप जो वार्तालाप के प्रसग मे 'थें थें' से सम्बोधित कर रहे हैं, यह शिष्टजनोचित भाषा नही है।

इस पर आचार्यश्री तुलसी ने कहा कि या तो म्हारे थलीरी ऊची बोली है।

हो सकता है, यह थली की ऊची बोली हो। परन्तु अभी आप थली से बाहर निकल आये हैं और अपने संप्रदाय के आचार्य माने

जाते है। इसलिये देशकाल के अनुकूल भाषा का प्रयोग करें— पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. ने फरमाया।

हमारे आपके बीच तात्त्विक दृष्टि से सैद्धान्तिक एव आचार-विचार का भेद है। मतभेद हो सकता है किन्तु मनभेद नहीं होना चाहिये। आत्मिकदृष्टि से आपकी आत्मा, मेरी आत्मा के समान है। इसलिये तात्त्विक विवेचना हेतु कुछ कहा गया है और उससे यदि आपकी आत्मा को कष्ट हुआ हो तो क्षमा चाहता हूँ।

इस सकेत पर आचार्यश्री तुलसी ने थली की ऊची भाषा का प्रयोग न कर शिष्टजनोचित आप शब्द से सम्बोधित करना प्रारभ किया और कहा कि आपकी तरफ से 'सुपात्र व कुपात्र चर्चा' पुस्तक प्रकाशित हुई है। जिसके मुख पृष्ठ पर छपा है कि— 'तेरहपथी साधु अपने साधु के सिवाय सबको कुपात्र समझते हैं।' क्या यह छींटाकसी नही मानी जायेगी ?

आप ऐसा ही तो मानते हैं, आचार्य श्रीजी ने फरमाया। यदि ऐसी मान्यता नही है तो मैं आपसे पूछता हूँ कि मेरे अनुशासन मे ये मुनिराज पच महाव्रतो का पालन और संयमसाधना कर रहे हैं। इनकी श्रद्धा किसी जीव को बचाने मे तथा साधु के सिवाय अन्य को दान देने में पाप मानने की नही है और न भगवान महावीर स्वामी को छद्मस्थ अवस्था मे चूका (भूला) मानते हैं। तो क्या इन्हें आप साधु एव सुपात्र मानते हैं ?

अपनी मान्यता की यथार्थता को प्रकट होते देखकर आचार्य श्री तुलसी बगलें झांकने लगे और उत्तर देते न बना तो समतसामणा जोर-जोर से बोलते हुए चल दिये।

इस दृश्य को देखने के लिये दर्शकों का समूह एकत्रित हो गया था। आचार्य श्री तुलसी को जाते देखकर उन्होंने आवाज लगाई कि बिना उत्तर दिये क्यों जा रहे है, समाधान करने से क्यों कतराते है। लेकिन जब स्वयं अपने को सभालना ही कठिन हो रहा था तो आचार्य

श्री तुलसी उत्तर क्या देते ? अतः अगल-बगल मे खड़े साधुओं के कधों का सहारा लेकर कापते हुए-से चल ही दिये ।

नागरिको के सत्य-आग्रह के कारण तेरहपथियो द्वारा अपरिपक्व वय के अबोध बालको की दीक्षाओ के रुकने और पूज्य आचार्य श्रीजी से हुए वार्तालाप से आचार्यश्री तुलसी के लिये आत्मनिरीक्षण का अवसर प्राप्त हुआ था, लेकिन वे अह के वश होकर वैसा न कर सके।

पल्लीवाल क्षेत्रो की ओर

चातुर्मास धार्मिक प्रभावना के साथ सम्पन्न हुआ । जयपुर के वातावरण का प्रभाव देश के समग्र जैन सघो पर पडा। अलवर श्रीसघ की हार्दिक भावना थी कि चातुर्मास समाप्ति के अनतर आचार्य श्रीजी म सा. का अलवर और उसके आसपास के क्षेत्रो मे पदार्पण हो । इस आकाक्षा को लेकर अलवर श्रीसघ, चातुर्मास काल के प्रारम्भ से ही विनती करता आ रहा था और समाप्ति के अन्तिम दिनो मे पुनः उसने अपनी विनती दुहराई ।

चातुर्मास समाप्ति के पश्चात पूज्य आचार्य श्रीजी के अलवर की ओर विहार होने की सम्भावना थी कि इसी समय पल्लीवाल जैनो के अग्रणी सेठ श्री ऋद्धिचन्द जी जगन्नाथ जी गगापुर, श्री नारायणलालजी जयपुर आदि-आदि के प्रतिनिधिमडल ने विनती की कि अनेक वर्षों से हमारे उधर के क्षेत्रो मे सन्तो का पदार्पण न होने से हम अपने धार्मिक आचार-विचारो को भूलते जा रहे हैं । नई पीढी का तो साधु-सन्तों से सपर्क बिल्कुल रहा ही नही है (आपश्री के अलवर की ओर विहार होने की सभावना है, अतः हमारी यह प्रार्थना है कि सवाईमाधोपुर, हिंडौन, महुवारोड़ मडावर आदि क्षेत्रो को जहां हमारी समाज के घर है, स्पर्श करते हुए पधारें तो बड़ा उपकार होगा ।

आचार्य श्रीजी ने परिस्थिति का विचार कर चातुर्मास-समाप्ति के अनंतर जयपुर से सवाईमाधोपुर आदि क्षेत्रो की ओर विहार किया। मार्गजन्य परिषहो की पग पग पर सभावना रहती थी किन्तु आपश्री

का लक्ष्य एक ही था कि मानवीय आत्मा में जीवन की यथार्थता को समझने की शक्ति प्राप्त हो एवं धार्मिक श्रद्धा और आचार-विचार की सुदृढ़ता से विश्व का वातावरण संदेह, अनिश्चय एवं भय से मुक्त बने। इसी लक्ष्य की पूर्ति हेतु पल्लीवाल प्रदेश में पदार्पण किया और ग्राम-ग्राम और नगर-नगर को पावन बनाया।

बृहत्-साधु-सम्मेलन से पूर्व

करीब ३॥ माह तक पल्लीवाल प्रदेश को धर्मदेशना से प्रभावित करते हुए आचार्य श्रीजी म. सा. हिन्डौन के आसपास विराज रहे थे। बृहत्साधु-सम्मेलन किये जाने की भूमिका बन रही थी और इस संबंध में आपश्री से चर्चा-वार्ता करने के लिये श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स का एक शिष्टमंडल पुनः सेवा में उपस्थित हुआ।

इन्हीं दिनों ब्यावर में भी स्थानकवासी जैन सन्तों की पांच-छह संप्रदायों का सम्मेलन होने जा रहा था। शिष्टमंडल ने विनती करते हुए निवेदन किया कि आपश्री उक्त अवसर पर ब्यावर पधारें और आपके नेश्राय में उसका कार्य-संचालन हो, ऐसी हमारी आकांक्षा है।

शिष्टमंडल के निवेदन पर विचार व्यक्त करते हुए आपने फरमाया कि जब बृहत्साधु-सम्मेलन होने के लिये आप प्रयत्न कर रहे हैं और उसके होने की सम्भावना भी दिख रही है तो यह पांच-छह संप्रदायों का अलग से संगठन बनाना महत्त्व नहीं रखता है। हां, यह बात जरूर है कि जो भी सन्त इस अवसर पर एकत्रित हों और वे सुसंगठन की भूमिका तैयार करें तो कोई हर्ज की बात नहीं है। मैं अभी इन क्षेत्रों में आ गया हूं और इधर सन्तों के विहार की विशेष आवश्यकता है। अगर मैं इन क्षेत्रों से विहार कर गया तो सम्भवतः पुनः स्पर्श नहीं आ सके। अतः अभी मारवाड़ की ओर आने की स्थिति बनना संभव नहीं दिखता है।

शिष्टमंडल जिस उद्देश्य को लेकर आया था, वह पूर्ण नहीं हो सका। आपश्री इस प्रकार के आयोजनों द्वारा एकता के कार्यों को वेग

मिलने की संभावना नही समझते थे। विशाल उद्देश्य की पूर्ति मनसा-वाचा-कर्मणा एकरूपता और शुद्धि के धरातल पर ही सम्भव है।

पूज्य श्री पृथ्वीचन्दजी म. सा से मिलन

पल्लीवाल प्रदेश के ग्रामो को स्पर्श करते हुए आप महुआरोड-मड़ावर पधारे। जनता के उत्साह का पार न था। स्थानीय और आस-पास के क्षेत्रो के श्रोतागण प्रवचनो का लाभ उठाते थे। प्रथम दिन के प्रवचन मे आपने धार्मिक-शिक्षण की आवश्यकता के बारे मे फरमाया कि— जैनधर्म की स्पष्ट मान्यता है कि मनुष्य स्वय ही अपने जीवन-विकास का आप विधाता होता है। उसका ही सद्गुणमय जीवन, त्याग व पराक्रम उच्चतम विकास के रूप में प्रतिबिम्बित होता है। सरल शब्दो मे कहे तो जीवनविकास की इस दौड में सभी हिस्सा ले सकते हैं, आत्म-विकास कर सकते हैं और अपनी दौड़ने की सत्पुरुषार्थवृत्ति के आधार पर प्रतियोगिता मे जीत हासिल कर सकते हैं। ऐसी अवस्था मे विकास के लिये जो प्रयास करने की आवश्यकता होती है वह यह कि छिपी हुई शक्ति को आत्मविकास की रचनात्मक कर्मठता के तेज से प्रदीप्त व प्रकाशित की जाये और इस शक्ति को तेजवती बनाने का प्रबल साधन है— सस्कारयुक्त सद्शिक्षा। शिक्षा या विद्या की प्राचीन परिभाषा है—

'सा विद्या या विमुक्तये'

अर्थात् वही शिक्षण वास्तविक विद्या है जो जीवन को विकृति के सारे बन्धनो से मुक्त कर दे। यही शिक्षण का स्वरूप है। केवल अक्षरज्ञान कर लेने और पुस्तकीयवृत्ति को पनपा लेने में ही शिक्षा का उद्देश्य पूरा नही हो जाता। पुस्तकीय शिक्षा तो सच्ची शिक्षा की साधिका मात्र हो सकती है, क्योंकि विवेकपूर्वक प्राप्त शिक्षा मस्तिष्क को सही दिशा में सोचने के लिये समर्थ व योग्य बनाती है। इस प्राप्त-शिक्षा द्वारा तदनन्तर मस्तिष्क एवं हृदय को परिष्कृत तथा विकसित करना होता है। अतः शिक्षा के साथ सस्कार-निर्माण के विषय मे साव-

धान रहना अति आवश्यक है।

वर्तमान समय मे ऐसी संस्कारयुक्त सद्शिक्षा का सत्र और प्रसार हो— ऐसे प्रयास की जरूरत है।

आचार्य श्रीजी के ऐसे विचारो का स्थानीय सघ और आस-पास के क्षेत्रो पर प्रभावक प्रभाव पडा था और सद्शिक्षा के प्रसार के लिये स्थान-स्थान पर धार्मिक शालायें स्थापित हुई। स्थानीय सघ के द्वारा भी धार्मिक-शिक्षण के लिये शाला स्थापित हुई।

जिस किसी ग्राम या नगर मे आपश्री का पदार्पण होता तो आसपास के सैकड़ों वधु प्रवचनों का लाभ लेने के लिये उपस्थित हो जाते थे। अलवर श्रीसघ के सज्जन तो पल्लीवाल जैनों के क्षेत्रों मे विहार होने के समय से ही प्रत्येक क्षेत्र मे उपस्थित होकर लाभ उठा रहे थे। आचार्य श्रीजी के महावर मे विराजने के अवसर पर श्रीसघ आगरा का शिष्टमण्डल आगरा की ओर विहार कर वहा विराजित ठाणापति पूज्यश्री पृथ्वीचन्दजी म. सा. आदि सन्तो को दर्शन देने की विनती लेकर उपस्थित हुआ कि पूज्यश्री पहले इधर पधार कर बाद मे अलवर पधारने की कृपा करावे।

इधर के क्षेत्रों मे अभी आचार्य श्रीजी का विहार होना आवश्यक था और श्रीसंघ आगरा अपने यहा पदार्पण कराने की अभिलाषा व्यक्त कर चुका था। अतः इस स्थिति के सम्बन्ध मे स्थानीय क्षेत्रो मे परिचित सज्जनो से विचार करना आवश्यक समझ प्रातःकालीन चर्या के लिये जंगल की ओर जाते हुए आपश्री डाकबंगला में पधारे और वहा ठहरे हुए अलवर श्रीसघ के प्रमुख-प्रमुख गणमान्य सज्जन श्री रतनलालजी सघेती आदि से पूज्यश्री पृथ्वीचन्दजी म. सा. आदि के आग्रह भरे अनुरोध को लेकर आये हुए आगरा श्रीसघ के प्रतिनिधि-मडल की भावना के बारे मे विचार किया और विचार-विमर्श द्वारा किये गये निर्णय के अनुसार आपश्री ने आगरा की ओर विहार करने के भाव प्रतिनिधिमंडल को बतलाये और आगरा की ओर विहार कर दिया।

श्रीसंघ आगरा स्वागत-समारोह के साथ अपने नगर में आपश्री का पदार्पण कराने का इच्छुक था लेकिन आप इस प्रकार के लौकिक प्रदर्शनो के प्रति उदासीन थे और इस प्रकार के आकर्षणो को साधु व साधुता के लिये श्रेयस्कर नही मानते थे। अतः किसी प्रकार का सकेत किये बिना अकस्मात लोहामडी स्थानक मे पधार गये।

आपश्री के पदार्पण की खबर सुनकर श्रद्धालु जनसमूह को आश्चर्य हुआ और परोक्ष मे अपने-अपने स्थान पर चरणारविन्दों की वदना कर लोहामंडी पहुंचने का ताता लग गया और पूज्यश्री पृथ्वी-चन्द जी म सा. आदि सन्तो के मध्य आपश्री को विराजित देखकर दर्शनार्थियो के मुखमंडल हषविभोर हो उठे।

कुछ समय लोहामडी, मानपाड़ा आदि आगरा नगर के विभिन्न क्षेत्रो की जनता को जैनधर्म के मौलिक सिद्धान्तो से अवगत कराया।

आगरा से अलवर की ओर

आगरा श्रीसघ की आकाक्षा थी कि आपश्री का कुछ समय यहा ही विराजना हो, लेकिन अभी पल्लीवाल जैन क्षेत्रो मे अनेक गांवों को फरसने की भावना होने से पुनः भरतपुर, बयाना आदि की ओर विहार कर दिया। आगरा श्रीसघ ने आभार मानते हुए विदाई दी।

आपश्री आगरा से विहार कर भरतपुर आदि आसपास के क्षेत्रो का स्पर्श करते हुए अलवर पधारे। समग्र जैन समाज और नाग-रिको ने भावभीना स्वागत करते हुए नगर मे प्रवेश कराया और श्री महावीर भवन मे विराजे।

श्री महावीर भवन मे प्रतिदिन होने वाले प्रवचनो का जनता लाभ उठाती थी। श्रोताओ की उपस्थिति की अधिकता से बहुत से श्रोताओ को वाहर वैठना पड़ता था। आपश्री सादा जीवन और उच्च आचार-विचार के प्रवल हिमायती थे अतः अपने प्रवचनों मे जीवन को सादा, सरल और धर्मानुकूल बनाने के बारे में बार-बार सकेत करते

थे । आदर्श जीवन के बारे में आपके विचारों का सारांश इस प्रकार है—

'प्राय: सभ्यता को आचार-विचार का विषय माना जाता है और इस दृष्टि से वही देश सभ्य कहलाने का अधिकारी है, जहा के निवासी सत्कर्म-निष्ठा, नैतिक जीवन बिताने वाले और इन्द्रियो एव आवश्यकताओ का दमन करने वाले होते हैं। सक्षेप में जो भौतिकता के गुलाम नही किन्तु भौतिकता जिनकी दासी है, वे ही सभ्य हैं और इन्ही स्रोतों से सुसभ्यता के मधुर प्रवाह प्रवाहित हुआ करते हैं। कोरा भौतिक विकास चाहे बाह्य रूप में विकास प्रतीत होता हो, किन्तु उसमे आध्यात्मिकता की उच्चता आये बिना आत्मोत्थान का मार्ग प्रशस्त नही हो सकता।

'यही कहा जा सकता है कि चूंकि जीवन-विकास की दीवार नीति, धर्म और चारित्र की नीव पर टिकी हुई रह सकती है, अत: उस नीव को उखाड कर कोरी दीवार खडी नही रखी जा सकती है। इसलिये यांत्रिक प्रसार और व्यवस्था को सही मानव-विकास के अनुकूल नही बनाया गया तो उससे निर्गत सभ्यता विकृति का विषैला वातावरण ही बनायेगी। यांत्रिक-सभ्यता जीवन-विकास की दिशा में सहायक बन सके— इसके लिये आध्यात्मिकता को जीवन के सभी क्षेत्रो में अपनाना कल्याणकारी हो सकेगा।'

अलवर श्रीसघ चातुर्मास करने के लिये पहले भी अनेक बार विनती कर चुका था और उस अवसर पर समस्त नगरवासियों ने सामूहिक रूप में अपनी भावना आपके श्रीचरणों में रखी और आपश्री ने भी विशेष उपकार होने की संभावनाओं को लक्ष्य में रखते हुए सं० २००७ का चातुर्मास अलवर करने की स्वीकृति फरमाई।

श्रीसघ दिल्ली का शिष्टमंडल

जब अलवर से आसपास के क्षेत्रों में आपश्री के विहार होने की संभावना दिख रही थी तो उसी समय दिल्ली के प्रमुख श्रावक श्री लाला कुन्दनमाल जी जौहरी के नेतृत्व में श्रीसघ दिल्ली का ए

शिष्टमडल दिल्ली पधारने की विनती लेकर सेवा में उपस्थित हुआ और अपने यहा की परिस्थितियो की विशद जानकारी दी ।

आपश्री ने समग्र परिस्थिति का पर्यालोचन करते हुए फरमाया कि चातुर्मास प्रारम्भ होने के पहले-पहले इधर के क्षेत्रो को फरसने की भावना है, उसमे दिल्ली क्षेत्र भी मेरे ध्यान मे है। लेकिन समय पर क्या कैसी परिस्थिति बनती है, अभी से कुछ निश्चियात्मक रूप मे नहीं कहा जा सकता है ।

आसपास के क्षेत्रो को फरसते हुए आपश्री ने दिल्ली की ओर विहार कर दिया । जब दिल्ली के भाइयो को यह जानकारी मिली तो उनके आने-जाने का ताता-सा लग गया। वे सोचते थे कि यदि दिल्ली पधारने के समय का कुछ सकेत मिल जाये तो ठीक रहेगा । लेकिन आपश्री इस प्रकार की प्रवृत्ति से साधु को विलग रहना ही श्रेयस्कर मानते थे । अतः दिल्ली सघ के आग्रह को देखकर आपने फरमाया कि साथ के सन्तो के विहार आदि के अनुसार ही स्थिति बन सकती है ।

इस उत्तर से दिल्ली श्रीसघ ने विचार किया कि अपने को ही कुछ ऐसी व्यवस्था कर लेना चाहिये, जिससे प्रतिदिन विहार-स्थिति मालूम होती रहे और वैसी जानकारी के लिये सघ ने अपनी व्यवस्था कर ली।

जब आपश्री का दिल्ली की ओर विहार हो रहा था तो उन्हीं दिनो महावीर भवन (बारादरी) मे स्थविरपदविभूषित मुनिश्री जग्गूमलजी म. सा. एव उनकी सेवा मे व्याख्यानवाचस्पति प. र. मुनिश्री मदनलालजी म. सा के सुशिष्य प. र. मुनिश्री सुदर्शनमुनिजी म सा आदि ठा. विराजते थे। बाद मे उपाध्याय कवि श्री अमरचदजी म. आदि ठा. भी आगरा से विहार कर दिल्ली पधार गये थे ।

अभूतपूर्व अगवानी-अभूतपूर्व स्वागत

आपश्री का दिल्ली मे पदार्पण हुआ । श्रीसंघ के हर्ष का पार न था और नगर की सीमा पर उल्लास एवं उत्साहपूर्वक स्वागत किया। जिन राजमार्गों से आपका पदार्पण हो रहा था, वहां जनता की इतनी

भीड़ हो गई कि कहीं कहीं मोटर-कार आदि का यातायात भी रुक जाता था। चांदनी चौक में आते-आते तो आबालवृद्ध जनो की सख्या इतनी हो गई कि ट्राम-मोटरगाडियो आदि का आवागमन बिल्कुल ही रुक गया।

विशाल जनसमूह के साथ आपने महावीरभवन (बारादरी) में प्रवेश किया और प्रतिदिन होने वाले आपके तात्विक प्रवचनो से श्रोतागण लाभान्वित होने लगे।

जनता की जिज्ञासा

आपश्री के प्रवचनों को सुनकर जनता में जिज्ञासा पैदा हुई कि अभी कुछ दिन पहले आचार्यश्री तुलसी नामक जैन साधु आये थे और उनके साथ करीब पचास साधु और साध्वी थे। अनेक धनी-मानी व्यक्तियो की मोटरें भी आगे पीछे दौड रही थी और कई लारियों मे समान लदा आ-जा रहा था। प्रचार के लिये प्रचारको की काफी बडी सख्या साथ मे थी और जिनमें से कुछ सामयिक पत्र-पत्रिकाओ के सम्पादको से सपर्क साधने में व्यस्त हैं तो कुछएक नेताओं और बड़े माने जाने वाले व्यक्तियों को बारम्बार आग्रह पूर्वक विनतियां कर आचार्यश्री तुलसी के पास लाने मे जुटे हुए हैं। जनसाधारण व शिक्षित समुदाय से सम्पर्क करने के लिये भी कुछ व्यक्तियों की नियुक्तिया की गई हैं और प्रचार के लिये एक कार्यालय खुला हुआ है, जिसमें हिन्दी, सस्कृत, अग्रेजी के जानकार कार्यरत हैं। फिर भी जनसमूह में आचार्य श्री तुलसी के प्रति कोई आकर्षण नही है और न वहां जाने का उत्साह है। अपितु हिचकिचाहट विशेष दिखाई देती है।

लेकिन एक ये जैन आचार्य है। जिन्हें न तो मान-सम्मान की आकांक्षा है और न प्रचार-प्रसार के द्वारा अपनी प्रसिद्धि के इच्छुक हैं, और न उनका अनुरागी वर्ग भी ऐसी कोई प्रवृत्ति करते देखा जाता है। फिर भी हजारों श्रोता उपस्थित होकर प्रवचनों का लाभ लेते हैं और तत्त्वचर्चा मे विद्वानो का काफी अच्छा जमघट हो जाता है।

इस प्रकार की तुलनात्मक जिज्ञासा में फलस्वरूप आज्ञा दोनों

आचार्यों की सैद्धान्तिक मान्यताओ को जानने के लिये उत्सुक हुई तो ज्ञात हुआ कि आचार्यश्री तुलसी धर्म के मूल उपादान—अहिंसा की विकृत व्याख्या कर प्रकारान्तर से ऐसी विचारधारा का प्रचार करने मे तत्पर हैं, जिसका समर्थन विश्व का कोई धर्म, मत या संप्रदाय नही करता और कोई भी सहृदय व्यक्ति किसी प्राणी पर दया करना या दान देना धर्मविरुद्ध नही मान सकता है। सभी विचारको और तत्त्व-मनीषियो ने दया करना और दान देना मानवता का अग माना है। इन मानवताविरोधी धारणाओ को जानकर जनता मे जैनधर्म के बारे मे भ्रम फैलने लगा और अन्यान्य आरोपों से लाछित करने लगी।

जनता की इस मानसिक स्थिति का समाधान करने के लिये आचार्य श्रीजी म. सा. ने प्रवचनो मे जैनधर्म के आचार-विचारमूलक सिद्धान्तो का विशद विवेचन करना प्रारम्भ कर दिया और प्रसगवश तुलनात्मक दृष्टि से दया-दान की विशदता और तेरहपथियो की मान्यताओ का भी संकेत कर देते थे।

इससे जनता को जैनधर्म के सिद्धान्तो की सही जानकारी मिली और समझ लिया कि जैनधर्म के नाम पर जिन मान्यताओ का प्रचार किया जा रहा है, उनका जैनधर्म से सामंजस्य नही है।

वैसे तो आपश्री के दिल्ली पदार्पण होने के समय से ही तेरहपथियो व आचार्यश्री तुलसी के मन मे एक प्रकार की घबराहट व्याप्त हो चुकी थी और अपनी मान्यताओं को छिपाने के लिये नित नई नई तरकीबें की जाने लगी थी। लेकिन जनमानस की प्रतिक्रिया से उनको यह आशका हुई कि यहां भी जयपुर की तरह तेरहपंथ खतरे मे पड़ सकता है। मौखिकरूप से प्रचार कार्य प्रारम्भ किया ही जा चुका था और उससे भी जब जनमानस की प्रतिक्रिया मे परिवर्तन न देखा तो पर्चेबाजी चालू कर दी। पर्चों मे आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. व अन्यान्य गणमान्य श्रावकों आदि पर आक्षेप करने के सिवाय सैद्धान्तिक मान्यताओ के बारे मे कुछ भी नही लिखा जाता था। अत. उनमे शिष्ट-

जनोचित भाषा के प्रयोग करने का तो सवाल ही नही रहता था।

इन्ही दिनो 'अमरभारत' पत्र मे आचार्यश्री तुलसी के अनुयायी श्री शुभकरणजी सुराणा चूरू का एक लेख प्रकाशित हुआ। जिसमें आचार्यश्री गणेशलाल जी म सा. पर मनचाहे आरोप लगाते हुए दम्भ-प्रदर्शन के साथ लिखा गया कि यदि किसी वात मे मतभेद हो और समझ मे न आती हो तो आचार्यश्री तुलसी से मिलकर समाधान प्राप्त कर लें। साथ ही चेतावनी देते हुए लिखा गया कि गदे प्रचार से तो रागद्वेष वढ़ने और जैनधर्म की अवहेलना होने की सम्भावना है।

तेरहपथियो की पर्चेवाजी का खेल दिल्ली की समग्र जैन-समाज शांति से देख रही थी, लेकिन श्री सुराणाजी के तथाकथित लेख ने समाज-मानस को झकझोर दिया। समाज के अनेक अग्रगण्य सज्जनों ने यह सब स्थिति आपश्री से निवेदन की। अतः श्रोताओ के वारंवार निवेदन करने पर आपने प्रवचन मे लेख का सवाँग स्पष्टीकरण किया कि जीवरक्षा करना परम धर्म है, हा उसमे विवेक परम आवश्यक है। हम साधु भी प्राणिरक्षा का कार्य कर सकते हैं और करते हैं। हमारे लिये शास्त्रो मे जो मर्यादाये वाधी हैं, उनका उल्लघन न करने हुए निर्दोष साधनों मे हम किसी भी कष्टग्रस्त प्राणी की कष्टमुक्ति में सहयोग दे सकते हैं। ध्यानस्थ व्यक्ति की नजर भी यदि किसी सताये जाते हुए प्राणी पर पड़ जाये तो ध्यान खोलकर उसको कष्ट से छुड़ाकर वापस ध्यान मे आकर वैठ जाये। यह तो हृदय की विशालता है। जिन लोगों का हृदय पत्थर का वना हुआ है, वही यह कह सकते हैं—रक्षा करना पाप है, मरने वाला अपने कर्मों को भुगत रहा है, अपने पूर्वजन्म का कर्जा चुका रहा है, तुम वीच मे पड़कर वाधा क्यो डालते हो। यह कथन शास्त्र और अनुभव के विरुद्ध है।

विचारकों का निश्चय

इस स्पष्टीकरण से प्रवचन में उपस्थित विद्वानों, विचारकों और जनसाधारण को सन्तोष हुआ और उन्होंने तय किया कि जब

दोनो सम्प्रदायो के आचार्य तथा अन्यान्य प्रमुख सज्जन दिल्ली में विद्यमान हैं तो दया-दान सम्बन्धी प्रश्नो के बारे मे चर्चा करके निर्णय कर लिया जाये। जिससे सही स्थिति सामने आ जाये और जनसाधारण मे भ्रात धारणायें न फैले।

उक्त विचारानुसार कुछ प्रमुख विचारक जैनबधु श्री रामकृष्णजी डालमिया के बगले पर पहुंचे। वहा आचार्यश्री तुलसी द्वारा भाषण दिये जाने का कार्यक्रम बनाया गया था। भाषण मे इनेगिने व्यक्तियों के अतिरिक्त विशेष रूप से आमत्रित सर्वश्री जैनेन्द्रकुमार जी जैन, पं० राजेन्द्रकुमार जी शास्त्री, लाला राजकृष्ण जी जैन उपस्थित थे। इन सज्जनो के पहुंचने पर श्री रामकृष्णजी डालमिया को भी बुला लिया गया।

भाषण-समाप्ति के अनन्तर आचार्यश्री तुलसी की अनुमति लेकर आने वालो मे से एक सज्जन ने आचार्यश्री तुलसी को सबोधित करके स्पष्ट शब्दो मे घोषित किया कि महाराज आप भी दिल्ली मे विद्यमान हैं और आचार्य श्री गणेशलालजी म. भी। अतः आप दोनो की दया-दान के सम्बन्ध मे धार्मिक और मानवीय दृष्टिकोण से स्पष्ट आशय व्यक्त करने के लिये चर्चा-वार्ता हो जाये, ताकि जनता को सही बात की जानकारी मिल सके।

इसके अतिरिक्त उन्होने उपस्थित महानुभावो के समक्ष यह भी स्पष्ट कर दिया कि आचार्यश्री तुलसी जीवरक्षा एव सहायता कार्य मे पाप मानते हैं। यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति पर तलवार से वार करने के लिये तैयार है और कोई तीसरा दयालु व्यक्ति उपदेश देकर या हाथ पकड़ कर हिंसा करने से रोकता है एव मारे जाने वाले की रक्षा करता है तो इस रक्षारूप पवित्र कार्य को पापयुक्त और हिंसामय कार्य बताते हैं एव रक्षा करने वाले को पाप रूप फल होना बताते हैं। इसी प्रकार शरणार्थियो और रेल दुर्घटना-ग्रस्त व्यक्तियो की मरहम-पट्टी या भोजनादि द्वारा सहायता करने में पाप मानते है। साधु के अलावा सब प्राणी असंयती हैं, अतः उनकी रक्षा करना या उनको

कुछ भी सहायता पहुंचाना पाप कार्य है, आदि। आचार्यश्री तुलसी की ऐसी प्ररूपणा और मान्यता है।

जबकि आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. इन कार्यों में धर्म, पुण्य मानते हैं। शुभनिष्ठा या शुभयोग तो प्रत्येक कार्य मे होना ही चाहिये, तभी वह धर्म, पुण्य की कोटि मे गिना जाता है। किन्तु आचार्यश्री तुलसी तो शुभनिष्ठा या शुभयोग पूर्वक भी उक्त कार्य किये जाये, तो भी इनका फल पाप होना बताते हैं। इनकी राय मे केवल साधु ही रक्षा और दान या सहायता का पात्र है और इसके अलावा अन्य सब कुपात्र हैं।

आचार्यश्री तुलसी तो मौन रहे किन्तु श्री जैनेन्द्रजी, श्री राजेन्द्र-कुमारजी और श्री डालमियाजी ने श्री शुभकरणजी सुराणा के लेख की निन्दा करते हुए पारस्परिक सौजन्यपूर्ण बरताव की अपील की। अनन्तर चर्चा या सम्मिलित व्याख्यान कराने के बारे मे विचार करने के लिये दोनो ओर के कुछ सज्जनो को श्री राजकृष्णजी जैन के निवास-स्थान पर सायकाल इकट्ठे होने का तय किया गया।

चर्चा के लिये समिति का गठन

पूर्व निश्चयानुसार श्री राजकृष्णजी जैन के निवासस्थान पर दिल्ली जैन समाज के प्रतिष्ठित अग्रगण्य सज्जन एकत्रित हुए। गोष्ठी मे स्थानकवासी जैन बंधुओं ने इस बात के लिये तत्परता बताई कि दया दान सम्बन्धी बातो के लिये दोनो आचार्यों मे चर्चा हो जाये, जबकि तेरहपंथी सज्जन इस बात पर अडे रहे कि हमे किसी बात की शंका नही है और जिसे शंका हो वह हमारे आचार्यश्री के पास आकर पूछ ले। उन्हें काफी समझाया गया लेकिन वे अपने दुराग्रह से टस-से-मस नही हुए। अन्त मे श्री जैनेन्द्रकुमार जी ने सुझाव रखा कि एक मध्यस्थ समिति बनाकर उसके माध्यम से सम्बन्धित बातों का स्पष्टीकरण हो जाये। ऐसा करने से चर्चा और शास्त्रार्थ में एक दूसरे को विजित करने की भावना नही बनेगी तथा सैद्धान्तिक तथ्यो का स्पष्टी-

करण भी हो जायेगा कि दया-दान के सम्बन्ध मे किस आचार्य की क्या मान्यता है और जनता को समझाने मे सुविधा होगी ।

श्री जैनेन्द्रकुमार जी के इस सुझाव को स्थानकवासी जैन बधुओ ने तत्काल स्वीकार कर लिया किन्तु तेरहपथी भाई तो अपने दुराग्रह पर ही अडे रहे कि हमे कुछ शंका ही नही है और न कुछ पूछना ही है । अत. इस प्रकार के आयोजन की आवश्यकता नही है । जिसे शका हो, हमारे आचार्यश्री से पूछ ले ।

इस सरल, सीधी-सादी बात के लिये भी तेरहपंथी सज्जनो के दुराग्रह को देखकर श्री जैनेन्द्रकुमार जी ने कुछ रोष प्रकट करते हुए कहा कि मेरे सुझाव में कुछ त्रुटि होगी, इसीलिये स्वीकार नही किया जा रहा है । अच्छा हो कि इस बात को यही पर समाप्त कर दिया जाये और जैसा समझे, कर लें । इस दो-टूक बात को सुनकर तेरह-पथी सज्जनो ने विवश होकर सोचा कि अगर हम अब भी दुराग्रह पर जमे रहे तो स्पष्ट हो जायेगा कि हमारी मान्यतायें कपोलकल्पित एवं भ्रमोत्पादक हैं और जैनधर्म के सिद्धान्तों के प्रतिकूल हैं । अतः अन्य कोई उपाय न देखकर उन्हें समिति-निर्माण के सुझाव को मानना ही पड़ा ।

जैसे-तैसे समिति के निर्माण की बात को स्वीकार भी कर लिया तो उसमें अपने एक सदस्य को शामिल करने की बात पर पुनः तेरहपथी भाई अड़ गये । उपस्थित सज्जनो का स्पष्ट मत था कि तेरह-पंथी सदस्य के बिना समिति का निर्माण पूर्ण और सर्वमान्य न होगा । सदस्य होने से समिति द्वारा किया गया कार्य तेरहपंथियो के लिये भी बधनकर्ता होगा तथा इससे सबका प्रतिनिधित्व सिद्ध हो जायेगा । अंत में जब पुनः बात टूटने को ही थी कि तेरहपंथी भाई अपना एक सदस्य समिति मे रखने के लिये राजी हुए और चर्चा की व्यवस्था करने के लिये निम्नलिखित सदस्यों की समिति गठित की गई—

१. श्री जैनेन्द्रकुमार जी, २. श्री राजेन्द्रकुमार जी, ३. श्री राज-कृष्णजी जैन, ४. लाला कुन्दनलाल जी पारख (स्थानकवासी),

५. श्री मोहनलाल जी कठौतिया (तेरहपंथी)। समिति के कार्य-सचालन के लिये श्री जैनेन्द्रकुमार जी संयोजक नियुक्त किये गये।

समिति का कार्य निश्चत किया गया कि चर्चा दया और दान से सम्बन्धित प्रश्नो तक सीमित रहेगी और एक दूसरे के प्रश्न दोनो आचार्यों को पहुंचा दिये जायें और उनसे जो उत्तर प्राप्त हों, प्रश्नों सहित प्रकाशित कर दिये जायें। जिससे जनसाधारण निर्णय कर सके कि सम्बन्धित प्रश्न के बारे मे किस आचार्य का क्या मतव्य है। समिति के पास दोनो आचार्यों की ओर से जो प्रश्न आयेगे, समिति के प्रश्न माने जायेंगे और उनका उत्तर दोनो आचार्यों को देना होगा।

उक्त निश्चयानुसार स्थानकवासियो की ओर से ६ और तेरहपथियो की ओर से ६ प्रश्न समिति को प्राप्त हुए, जिन्ह दोनो आचार्यो के पास उत्तर देने के लिये भेजा गया। दोनो ओर से प्राप्त उत्तरों पर समिति ने अपनी ओर से ८ प्रतिप्रश्न बनाकर पुन. दोनों आचार्यों के पास उत्तर क लिये भेजे। इन सब प्रश्नोत्तरो का सही दिग्दर्शन 'दिल्ली चर्चा' नामक पुस्तक मे किया गया है।

तत्त्वचर्चा मे भाव, भाषा या शाब्दिक छलकपट नही होना चाहिये। लेकिन इन प्रश्नोत्तरो को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि तेरहपथी सप्रदाय ने कभी भी सरलता के साथ अपनी मान्यता स्पष्ट नही की। यद्यपि शब्दाडबर के माध्यम से अपने उत्तरो की अपूर्णता को छिपाने का प्रयत्न करने से चर्चा निर्धारित लक्ष्य-पूर्ति को नहीं कर सकी, तो भी तटस्थ जिज्ञासुजनों को यथार्थता समझ मे आ गई।

इस प्रकार की चर्चायें उनके लिये ही लाभदायक होती है जो दुराग्रह और कदाग्रह से परे रहकर सत्य तथ्यों को समझना चाहते हैं, सत्य को सर्वोपरि मानते हैं, सत्य की आराधना को परम पुनीत कर्तव्य समझते हैं और सत्य की वरद छाया के आकांक्षी हैं।

ऐहिक-एषणा में अनासक्त

सांसारिक वैभव, मान-सम्मान को निस्सार समझकर तज देने

वाले अकिंचन, अनगार भिक्षु की दृष्टि मे राजा-रंक समान हैं। आध्यात्मिक-वैभव से विभूषित, भौतिक-वैभव की विविधता और विचित्रता से विलग ही रहते हैं। उनके लिये राजा होने से, शासन का उच्चाधिकारी होने से अथवा धनसम्पन्न होने से कोई व्यक्ति स्पृहणीय नही होता है और न रक होने के कारण कोई उपेक्षणीय हो जाता है।

दिल्ली श्रीसघ के अग्रणी श्रावको ने एक दिन सेवा मे निवेदन किया कि कुछ दिन पहले महामहिम राष्ट्रपति श्री राजेन्द्रप्रसाद जी से मिलने का अवसर मिला था तो उस समय साधुसन्तो के उल्लेख के प्रसग में आपश्री के दिल्ली विराजने की जानकारी उन्हें दी। उन्होंने आपश्री से मिलने की भावना दर्शाई थी। उन्ह आपश्री के उपदेश-श्रवण की आकाक्षा है, अतः आपश्री राष्ट्रपतिभवन पधारने की कृपा करावे।

दिल्ली श्रीसघ के उन अग्रणी श्रावको की वात सुनकर आपश्री ने फरमाया— मुझे वहाँ जाने की आवश्यकता प्रतीत नही होती है। राष्ट्रपति महोदय को शासन-सम्बन्धी वहुत जरूरी कार्य रहते हैं, अतः उनके कार्यक्रम मे व्यवधान डालना उचित नही समझता हूँ। राष्ट्रपतिजी को जब सुविधा होगी और मिलने की इच्छा होगी तो कही पर भी मिल सकेंगे। उनको परेशानी मे डालना मेरी दृष्टि से उचित नही है।

आपश्री के लिये ऐसे प्रसग कई बार आ चुके थे जब विभिन्न स्थानो के राजा, जागीरदारो की ओर से अपने राजमहलो मे आमन्त्रित कर वार्तालाप या प्रवचन फरमाने का निवेदन किया गया था। लेकिन न तो आपको ऐसी लौकिक एषणाओ की आकांक्षा थी और न राजमहलो मे व्याख्यान देने की भावना रखते थे। आपश्री के विराजने के स्थान पर यदि कोई आ जाये तो प्रमोद व्यक्त करते हुए तात्त्विक चर्चा, वार्तालाप अवश्य कर लेते थे।

भीड़भाड़ से दूर रहना आपको सदैव रुचिकर रहा है। नगरों की अपेक्षा भारतीय-सभ्यता के प्रतीक ग्रामो के एकान्त शात वातावरण मे विचरण करना साधना की दृष्टि से योग्य मानते थे। तव राजमहलो

मे जाना और राजपुरुषों से मिलना तो उससे भी दूर की बात थी।

इस सम्बन्धी अनेक प्रसग उल्लेखनीय है। लेकिन एक-दो प्रसंगो का उल्लेख यहां कर रहे हैं।

एक बार आपका देवगढ (मेवाड़) मे पदार्पण हुआ। वहां के रावसाहब ने राजभवन मे व्याख्यान देने की प्रार्थना की। प्रत्युत्तर में आपने फरमाया— मेरे लिये प्रत्येक स्थान समान है। किसी स्थान-विशेष को प्रमुखता देना मुझे रुचिकर नही है। धर्मशाला और राज-भवन, सभागार और मैदान मेरे लिये एक समान हैं। आजकल जहां व्याख्यान हो रहे हैं, वह स्थान भी अनुपयुक्त नही है और जब यह स्थान योग्य है तो फिर राजभवन को ही मुख्यता देने से क्या लाभ ? रावसाहब ने आपके कथन को शिरोधार्य कर व्याख्यान-स्थान पर आकर प्रवचन श्रवण किया।

स० २००१ का चातुर्मास उदयपुर था। वहा के महाराणा साहब ने आपश्री के प्रवचन सुनने की आकांक्षा व्यक्त करते हुए राज-महल मे व्याख्यान देने का आग्रह किया। परन्तु आपश्री ने अपनी मनोभावना का सकेत करते हुए फरमाया कि मेरी यह कभी भी आकांक्षा नही रही है कि राजमहलो मे व्याख्यान देने को मुख्य मानूं। आज-कल जहा व्याख्यान होते हैं, वह सार्वजनिक स्थान है, यहा किसी के आने-जाने पर प्रतिबंध नही है और यहां आकर कोई भी व्यक्ति अपनी सुविधानुसार व्याख्यान-श्रवण कर सकता है। यह स्थान महाराणा जी के लिये कोई बाधाकारी नही है। महाराणा साहब प्रवचन सुनने के लिये उत्सुक थे, अतः जब आपश्री विहार कर नगर के बाहर विराज रहे थे, वहा आकर उन्होंने व्याख्यान-श्रवण का लाभ लिया।

'प्रकृतिसिद्धमिद हि महात्मनाम्' कि उन्हें न तो समान करने वाले के प्रति राग होता है और न अपमान करने वाले के लिये द्वेष। उनका जीवन-प्रवाह तो समतल पर बहने जलप्रवाह की तरह गुण, शांति को पल्लवित, पुष्पित और समृद्ध करता रहता है।

जमनापार के क्षेत्रों में

कल्प-मर्यादानुसार आपश्री का दिल्ली मे विराजना हुआ। इस समय मे अनेक विद्वानों, नगर के सभ्रान्त नागरिको, राजनेताओं आदि ने सेवा में उपस्थित होकर जैन-सिद्धान्तो के बारे मे चर्चा-वार्ता कर जानकारी प्राप्त की।

स० २००७ का चातुर्मास अलवर में व्यतीत करने की स्वीकृति दी जा चुकी थी और चातुर्मास प्रारम्भ होने में अभी कुछ समय था। अत: दिल्ली के उपनगरो मे कुछ दिन विराजने के पश्चात अलवर की ओर विहार करने का विचार चल रहा था कि जमनापार के क्षेत्रों के अनेक भाई हिलवाड़ी ग्राम की हकीकत लेकर सेवा में उपस्थित हुए।

उन्होंने बताया कि हिलवाडी मे स्थानकवासी जैन समाज के करीब २०-२५ घर हैं। उनके सामने दया-दानविरोधी मान्यतायें इस प्रकार के शाब्दिक छल द्वारा रखी जा रही हैं, जिससे वे इनकी वास्तविकताओं को नही समझ पा रहे हैं। अत: आपश्री का इन क्षेत्रो में पदार्पण होना बहुत जरूरी है।

जमनापार के क्षेत्रो के बधुओ ने सीधे-सादे शब्दो मे अपने इधर की स्थिति का सकेत किया था और आपश्री भी परिस्थिति को देखते हुए उधर के क्षेत्रो मे विहार करना आवश्यक मानते थे। अत: शारीरिक स्थिति निर्बल होने पर भी जनकल्याण के लिये आपश्री ने दिल्ली से जमनापार के क्षेत्रो की ओर विहार कर दिया। क्रम-क्रम से आसपास के क्षेत्रो को स्पर्श करने के बाद आपश्री का पदार्पण हिलवाडी ग्राम मे हुआ।

आपश्री ने परिस्थिति को समझकर प्रतिदिन अपने प्रवचनो मे जैनधर्म के मौलिक सिद्धान्तो का विवेचन करना प्रारम्भ कर दिया। जिससे जैनधर्म और दया-दान के सम्बन्ध मे फैलाई गई भ्रात धारणाओ का निराकरण हुआ और विपरीत श्रद्धा-प्ररूपणा से ग्रस्त भाइयो ने धर्म के सही स्वरूप को समझा।

इस प्रकार धार्मिक श्रद्धा का स्थिरीकरण करने के पश्चात आपश्री अन्यान्य क्षेत्रो की ओर विहार न कर हिलवाड़ी से अलवर की ओर विहार करने का विचार कर रहे थे कि काधला, बड़ौत के धर्मप्रेमी भाइयो ने सानुरोध विनम्र विनती करते हुए निवेदन किया कि आपश्री चाहे हमारे यहा पर एक एक दिन ही विराजें, लेकिन अपने चरणकमलो से हमारे क्षेत्रो को अवश्य ही पवित्र करें। आपश्री के पधारने से हमारे क्षेत्रो का विशेष उपकार होगा।

आपश्री ने वहा के भाइयो को काफी समझाया और चातुर्मास प्रारम्भ होने के समय आदि के बारे मे सकेत भी किया किन्तु उन भाइयो ने निवेदन किया कि सिर्फ एकाध दिन का फर्क पड़ेगा और निकट मे ही हमारे गावो के होते हुए भी आपश्री का पदार्पण न हो तो हमें दुःख होगा। अतः आपश्री अपनी स्वीकृति फरमाकर कृतार्थ करें।

सन्त स्वभावतः दयार्द्र होते हैं। आपश्री ने हिलवाड़ी से बडौत होते हुए काधला की ओर विहार कर दिया। जब आपश्री ने काधला की सीमा मे प्रवेश किया, वहाँ के निवासियों की प्रफुल्लता का पार नही था। उस समय ऐसा मालूम पडता था, मानो प्रकृति के कण-कण मे एक नवीन चेतना का सचार हो गया है और उसका उल्लास जनमन मे नही समा रहा हो।

जैसे ही आपश्री ने संतमडल के साथ नगर के प्रवेशद्वार मे पदार्पण हुआ कि वहा के उत्साही धर्मप्रेमी सज्जनो ने बड़े ही उत्साह के साथ अगवानी की और जुलूस के साथ नगर के राजमार्गों से होते हुए धर्मस्थान मे पदार्पण कराया तथा राजमार्गों के दोनों ओर खड़े नागरिकों ने आपश्री के दर्शन कर अपने आपको धन्य माना।

आपश्री दो-चार दिन काधला विराजे और प्रवचनों में विशेष रूप से दया-दान सम्बन्धी सिद्धान्तों का विवेचन किया। अनेक विद्वानों और प्रमुख-प्रमुख व्यक्तियों ने जैनधर्म के सिद्धान्तों के बारे में अपनी-अपनी शकाओं का समाधान प्राप्त किया और आपकी विद्वत्ता, शैली आदि की प्रशंसा

कुछ साहस संकलित कर चिकित्सको ने रोका, सन्तों ने अनुनय की, श्रावको ने आग्रह किया, मगर यह सब पूज्य आचार्य श्रीजी के बढ़ते चरणो मे व्यवधान नही डाल सके। इस विकट परिस्थिति मे भी आपश्री का एक ही उत्तर था— मैं अपने लिये दूसरो को कष्ट नही देना चाहता हूँ।

मूत्रकृच्छ रोग की उग्रता चरमसीमा पर थी। वेदना उत्कट थी। पता नही कि जीवनरज्जु कब छिन्न-भिन्न हो जाये। इस स्थिति का विचार आते ही साथ मे रहने वालो के मन छिन-छिन में सिहर उठते थे। मन की टीस अन्दर-ही-अन्दर गहरी होती जा रही थी। लेकिन आचार्य श्रीजी तो इन सबसे परे जलकमलवत् निर्लिप्त थे और स्वस्थ शरीरधारी की तरह चरणो मे गति थी ईर्या-समिति पूर्वक। रोगजन्य निर्बलता और चलने मे श्रम का लेशमात्र भी आभास नही हो रहा था और शनै.-शनै. मथरगति से मार्ग तय करके आपश्री दिल्ली पधार गये।

आपश्री के विहार की कथा जिस किसी ने भी सुनी और चिकित्सको को अवगत कराई गई तो उनके आश्चर्य का पार न रहा। उन्हें विश्वास ही नही होता था कि इस सकटापन्न-स्थिति मे इतनी दूर पैदल कैसे आये ? जबकि चिकित्सा-विज्ञान की दृष्टि से ऐसे रोगी का एक कदम चलना भी जीवन को सकट मे डालना है।

चातुर्मास प्रारम्भ होने का समय सन्निकट था। दिल्ली के अच्छे-अच्छे चिकित्सको द्वारा रोग का निदान कराये जाने पर उन्होंने अपना निर्णय दिया कि इस रोग का उन्मूलन शल्यक्रिया (आपरेशन) के द्वारा ही हो सकेगा। लेकिन पूज्य आचार्य श्रीजी का विचार था— यदि आपरेशन कराने की वजाय अन्य उपचारो से रोग का उन्मूलन हो जाये तो अच्छा है। इसलिये आपश्री ने चिकित्सकों की राय पर विचार व्यक्त करते हुए कहा कि यदि निर्दोष औषधियों और आसन-प्राणायाम द्वारा रोग शांत हो जाये तो अच्छा है।

लेकिन चिकित्सकों ने रोग की सभी स्थिति बतलाते हुए कहा कि मूत्राशय मे गाठ पड गई है और वह बिना आपरेशन किये दूर नही की जा सकती है और शीघ्र ही आपरेशन करा लेना चाहिये। इसके बारे मे जितनी देरी होगी, उतना ही खतरा है।

चिकित्सकों की राय के बारे में विचार हो रहा था कि इसी बीच सदरबाजार दिल्ली के सुप्रसिद्ध यूनानी हकीम श्री प्रेमचन्द जी बरनालावाले आचार्य श्रीजी म. सा. के दर्शनार्थ आये। उन्होंने रोग के बारे में जानकारी करने के बाद संघ के प्रमुख सज्जनो से कहा कि मुझे भी आचार्य श्रीजी की सेवा का कुछ अवसर मिले तो मैं भी अपने नुस्खों को अजमा सकूं। वृद्धावस्था के कारण मूत्राशय में ऐसी गांठ प्रायः हो जाती है, लेकिन मुझे आशा है कि वह ठीक हो जायेगी। मैं भी आप जैसा एक श्रावक हूँ और मुझे भी सेवा करने का हक है। इसलिये सिर्फ तीन दिन मेरी दवा लें और उससे फायदा दिखे तो आगे चालू रखिये।

पूज्य आचार्य श्रीजी आपरेशन सम्बन्धी दोषो से बचना चाहते थे। अतएव हकीमजी की बात मान लेना आपने ठीक समझा। इस स्वीकृति से हकीमजी को प्रसन्नता हुई और उपचार चालू होने के दो-तीन दिन बाद रोग मे कमी दिखाई देने लगी और बेचैनी घट गई।

शारीरिक स्थिति, चिकित्सको की सलाह और दिल्ली श्रीसंघ की विनती को ध्यान में रखते हुए सं० २००७ का चातुर्मास अलवर न होकर दिल्ली हुआ।

दिल्ली का यह चातुर्मास विद्वन्मंडल एवं जनसाधारण के लिये प्रेरणादायक रहा। नगरजन आपश्री की विद्वता से परिचित ही थे, अतः प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल प्रवचन, तत्त्वचर्चा आदि के समय अधिक-से-अधिक श्रोताओं एवं जिज्ञासुओं की उपस्थिति होती थी।

हकीम श्री प्रेमचन्द जी की दवा से रोग मे काफी सुधार हो गया था, लेकिन ऐसा नहीं कहा जा सकता था कि आप पूर्ण स्वस्थ

करने में अपना गौरव माना। कांधला से विहार कर बड़ौत पधारे और वहां भी दो चार दिन विराजकर धर्मप्रेमी जनता को प्रतिबोध देते हुए आपश्री ने चातुर्मास हेतु अलवर की ओर विहार कर दिया।

रोग का आक्रमण

बडौतवासियो ने भरे हुए हृदयो से विदाई दी और कुछ एक सज्जन काफी दूर तक साथ-साथ चले। लेकिन ग्रीष्म-ऋतु की प्रचण्डता और मार्ग मे अनेक गांवो के होते हुए भी साध्वोचित आहारादि की सयोगस्थिति न बन सकने से टीटीरीमडी के निकट मूत्रकृच्छ्र रोग पैदा हो गया। जिससे एक डग चलना भी मुश्किल हो गया और जैसे-तैसे करके टीटीरीमडी पहुंचे। सहसा और सर्वथा पेशाव वन्द हो जाना शारीरिक स्वास्थ्य के लिये वडा खतरनाक होता है। मार्मिक पीड़ा, शारीरिक शिथिलता, विकलता आदि इस रोग के परिणाम हैं।

टीटीरीमडी मे जैनो के एक-दो घर थे। गाव के एक वैद्य ने कुछ उपचार भी किया लेकिन वेदना वढ़ती ही जा रही थी। जव इस विषमस्थिति की जानकारी अन्य बधुओ को मिली तो उन्होने दिल्ली श्रावक सघ को खवर दी और दो कोस की दूरी पर स्थित सरकारी अस्पताल से डाक्टर को वुलाया। डाक्टर ने परीक्षा कर नली से पेशाव कराई, जिससे वेदना कुछ कम हो गई।

आचार्य श्रीजी के स्वास्थ्य के समाचार मिलते ही दिल्ली के भाई विशेषज्ञो को लेकर टीटीरीमडी जा पहुचे तथा दूसरे क्षेत्रो के श्रीसघो को भी इस विषमस्थिति की सूचना मिलने पर रतलाम, व्यावर, वीकानेर, अलवर आदि से भी सैकडो भाई वहां पहुंच गये।

पूज्य आचार्य श्रीजी की शारीरिक स्थिति काफी गिर गई थी। कमजोरी इतनी वढ गई कि चलना-फिरना वन्द हो गया। विशेषज्ञों ने निदान करके वताया कि पेशाव की नली मे सूजन हो जाने से यह स्थिति बनी है और उपचार के लिये शीघ्र ही मोटर द्वारा दिल्ली ले चलने का कहा। जब उन्हें वताया गया कि जैन साधु पैदल विहार

करते हैं और किसी भी स्थिति मे मोटर आदि वाहन का उपयोग करना उनकी मर्यादा नही है । तब डाक्टरो ने कहा कि इसके लिये आप चाहे जो व्यवस्था करें लेकिन स्थिति को देखते हुए पैदल चलना खतरनाक है।

साधु पराश्रयी नहीं होते हैं । अस्वस्थ होने पर या तो वे अपनी परिचर्या स्वय करते हैं या समान समाचारी वाले संतो से सहयोग ले सकते हैं, गृहस्थो से तो किसी भी स्थिति मे सहायता ले ही नही सकते हैं। परिस्थिति की विकटता देखकर सतो ने आपको अपने कधों पर उठा लिया । उस समय सबके मन मे एक ही बात घूम रही थी कि किसी-न-किसी प्रकार दिल्ली पहुंच जायें ।

ग्रीष्मऋतु तो थी ही और आचार्य श्रीजी की इस शारीरिक वेदना आदि से सत भी स्वस्थ नही थे । फिर भी उनके मनो मे उत्साह था कि दिल्ली पहुंच गये तो आचार्य श्रीजी म. सा निरोग हो जायेंगे।

सत आपश्री को उठाकर कुछ दूर चले अवश्य, किन्तु कधो ने जवाब देना शुरू कर दिया और डोली के डडो से परेशान होकर बार-बार कधों की अदला-बदली करने लगे । अभी एक दो फर्लांग ही बढ़ होगे कि आपश्री ने स्थिति को देखकर सतों को रुकने का सकेत किया। सत रुक गये । डोली नीचे रख दी गई और आपश्री नीचे उतरे । सतो ने समझा कि लघुशंका मिटानी होगी ।

सत स्वयं कष्ट सहन कर लेते हैं, लेकिन अपने निमित्त दूसरे को कष्ट देना सहन नही होता है । परदु:खकातर और करुणामूर्ति सन्तजन खिन्न ही तब होते हैं जब दूसरों को क्लान्त देखते हैं । वे तो ममता त्यागकर आत्मा में रमण करते हैं और आत्मरमणता में उन्हें अपने शरीर का भान नही रहता है ।

कुछ ही क्षणो मे सन्तो ने देखा, श्रावको ने निरखा और चिकित्सकों ने पलक उठाई कि पूज्य आचार्य श्रीजी म सा. मथरगति से पैदल ही चल पड़े हैं । इस सकटापन्न स्थिति में भी अपूर्व साहस एव आत्मबल के दर्शन कर उपस्थिति के मस्तक श्रद्धावनत हो गये ।

कुछ साहस सकलित कर चिकित्सकों ने रोका, सन्तों ने अनुनय की, श्रावको ने आग्रह किया, मगर यह सब पूज्य आचार्य श्रीजी के बढते चरणो मे व्यवधान नही डाल सके। इस विकट परिस्थिति में भी आपश्री का एक ही उत्तर था— मैं अपने लिये दूसरो को कष्ट नही देना चाहता हूँ।

मूत्रकृच्छ्र रोग की उग्रता चरमसीमा पर थी। वेदना उत्कट थी। पता नही कि जीवनरज्जु कब छिन्न-भिन्न हो जाये। इस स्थिति का विचार आते ही साथ मे रहने वालों के मन छिन-छिन मे सिहर उठते थे। मन की टीस अन्दर-ही-अन्दर गहरी होती जा रही थी। लेकिन आचार्य श्रीजी तो इन सबसे परे जलकमलवत् निर्लिप्त थे और स्वस्थ शरीरधारी की तरह चरणो में गति थी ईर्या-समिति पूर्वक। रोगजन्य निर्बलता और चलने मे श्रम का लेशमात्र भी आभास नही हो रहा था और शनै.-शनै. मंथरगति से मार्ग तय करके आपश्री दिल्ली पधार गये।

आपश्री के विहार की कथा जिस किसी ने भी सुनी और चिकित्सको को अवगत कराई गई तो उनके आश्चर्य का पार न रहा। उन्हे विश्वास ही नही होता था कि इस सकटापन्न-स्थिति मे इतनी दूर पैदल कैसे आये? जबकि चिकित्सा-विज्ञान की दृष्टि से ऐसे रोगी का एक कदम चलना भी जीवन को सकट मे डालना है।

चातुर्मास प्रारम्भ होने का समय सन्निकट था। दिल्ली के अच्छे-अच्छे चिकित्सको द्वारा रोग का निदान कराये जाने पर उन्होंने अपना निर्णय दिया कि इस रोग का उन्मूलन शल्यक्रिया (आपरेशन) के द्वारा ही हो सकेगा। लेकिन पूज्य आचार्य श्रीजी का विचार था— यदि आपरेशन कराने की बजाय अन्य उपचारों से रोग का उन्मूलन हो जाये तो अच्छा है। इसलिये आपश्री ने चिकित्सको की राय पर विचार व्यक्त करते हुए कहा कि यदि निर्दोष औषधियो और आसन-प्राणायाम द्वारा रोग शांत हो जाये तो अच्छा है।

लेकिन चिकित्सकों ने रोग की सभी स्थिति बतलाते हुए कहा कि मूत्राशय मे गांठ पड़ गई है और वह बिना ग्रापरेशन किये दूर नही की जा सकती है और शीघ्र ही आपरेशन करा लेना चाहिये। इसके बारे मे जितनी देरी होगी, उतना ही खतरा है।

चिकित्सको की राय के बारे मे विचार हो रहा था कि इसी बीच सदरबाजार दिल्ली के सुप्रसिद्ध यूनानी हकीम श्री प्रेमचन्द जी बरनालावाले आचार्य श्रीजी म. सा. के दर्शनार्थ आये। उन्होंने रोग के बारे मे जानकारी करने के बाद सघ के प्रमुख सज्जनो से कहा कि मुझे भी आचार्य श्रीजी की सेवा का कुछ अवसर मिले तो मैं भी अपने नुस्खों को अजमा सकूं। वृद्धावस्था के कारण मूत्राशय मे ऐसी गांठ प्रायः हो जाती है, लेकिन मुझे आशा है कि वह ठीक हो जायेगी। मैं भी आप जैसा एक श्रावक हूं और मुझे भी सेवा करने का हक है। इसलिये सिर्फ तीन दिन मेरी दवा लें और उससे फायदा दिखे तो आगे चालू रखिये।

पूज्य आचार्य श्रीजी आपरेशन सम्बन्धी दोषो से बचना चाहते थे। अतएव हकीमजी की बात मान लेना आपने ठीक समझा। इस स्वीकृति से हकीमजी को प्रसन्नता हुई और उपचार चालू होने के दो-तीन दिन बाद रोग मे कमी दिखाई देने लगी और बेचैनी घट गई।

शारीरिक स्थिति, चिकित्सको की सलाह और दिल्ली श्रीसघ की विनती को ध्यान में रखते हुए सं० २००७ का चातुर्मास अलवर न होकर दिल्ली हुआ।

दिल्ली का यह चातुर्मास विद्वन्मंडल एव जनसाधारण के लिये प्रेरणादायक रहा। नगरजन आपश्री की विद्वता से परिचित ही थे, अत: प्रातः, मध्यान्ह और सायंकाल प्रवचन, तत्त्वचर्चा आदि के समय अधिक-से-अधिक श्रोताओं एवं जिज्ञासुओं की उपस्थिति होती थी।

हकीम श्री प्रेमचन्द जी की दवा से रोग मे काफी सुधार हो गया था, लेकिन ऐसा नहीं कहा जा सकता था कि आप पूर्ण स्वस्थ

माने जायें। फिर भी प्रतिदिन प्रवचन, तत्त्वचर्चा आदि का क्रम निर्बाध रूप से चलता रहा। स्थानीय विद्वानो के अतिरिक्त अन्यान्य विदेशी विद्वान भी जैनदर्शन के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिये आपके पास आते रहते थे। आपश्री उनकी जिज्ञासाओ का सयुक्तिक समाधान करते थे। एक दिन हगरी निवासी बौद्धधर्म के प्रमुख विद्वान डा. फैलिक्स-वैलो जैनसिद्धान्तो की विशेष जानकारी के लिये प्रवचन के समय पधारे और स्याद्वाद सिद्धान्त के बारे मे अपनी जिज्ञासा व्यक्त की। अतएव आचार्य श्रीजी ने वहुत ही सरल और सयुक्तिक शैली मे 'स्याद्वाद' के वारे मे प्रवचन फरमाया। प्रवचन का साराश यह है—

'जैनधर्म आत्म-विजेताओ का महान् धर्म है। जिन्होने राग-द्वेष आदि अपने आन्तरिक विकारो पर विजय प्राप्त करके सयम एवं साधना द्वारा निर्मल ज्ञान प्राप्त कर अपनी आत्मा को उत्थान के मार्ग पर अग्रसर किया है, उन्हें हमारे यहा 'जिन' (विजेता) कहा गया है तथा इन विजेताओ द्वारा प्रेरित दर्शन का नामांकन जैन-दर्शन के नाम से हुआ। अत: यह दर्शन किसी व्यक्ति विशेष, वर्ग-विशेष या शास्त्र-विशेष की उपज नही, वल्कि इसका विकास उन आत्माओ द्वारा हुआ है जिन्होने सारे सांसारिक (जातीय, देशीय, सामाजिक, वर्णिय आदि) भेदभावो व यहा तक कि स्वपर को भी विर्सजित कर अपने जीवन को सत्य के लिए होम दिया। यही कारण है कि इसका यह स्वरूप इसकी महान् आध्यात्मिकता व व्यापक विश्वबन्धुत्व का प्रतीक है।

'मैं यहां पर जैनदर्शन की मौलिक देन स्याद्वाद या अनेकान्त-वाद पर कुछ विशेष रोशनी डालना चाहता हूँ। जिस प्रकार सत्य के साक्षात्कार मे हमारी अहिंसा स्वार्थ सघर्षो को सुलझाती हुई आगे वढ़ती है, उसी प्रकार यह स्याद्वाद जगत् के वैचारिक सघर्षो की अनोखी सुल-झन प्रस्तुत करता है। आचार में अहिंसा और विचार मे स्याद्वाद—यह जैनदर्शन की सर्वोपरि मौलिकता कही है। स्याद्वाद को दूसरे शब्दों में वाणी व विचार की अहिंसा के नाम से भी पुकारा जा सकता है।

'किसी भी वस्तु या तत्त्व के सत्य स्वरूप को समझने के लिए हमें इसी सिद्धान्त का आश्रय लेना होगा। एक ही वस्तु या तत्त्व को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है और इसलिए उसमें विभिन्न पक्ष भी हो जाते हैं। अतः उसके सारे पक्षों व दृष्टिकोणों को विभेद की नहीं, बल्कि समन्वय की दृष्टि से समझकर उसकी यथार्थ सत्यता का दर्शन करना इस सिद्धान्त से गहन चिन्तन के आधार पर ही सम्भव हो सकता है। विज्ञान ने भी सिद्ध कर दिया है कि एक ही वस्तु की कई बाजुएं हो सकती हैं और उनमें भी ऐसी बाजुएं अधिक होती हैं, जिनका स्वरूप अधिकतर प्रत्यक्ष न होकर अप्रत्यक्ष ही रहता है। अतः इन सारे प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष पक्षों को समझने के बाद ही किसी भी वस्तु के सत्यस्वरूप का अनुभव किया जा सकता है।

'किसी वस्तु-विशेष के एक ही पक्ष या दृष्टिकोण को उसका सर्वांग स्वरूप समझकर उसे सत्य के नाम से पुकारना मिथ्यावाद या दुराग्रह का कारण बन जाता है। विभिन्न पक्षों या दृष्टिकोणों के प्रकाश में जब तक एक वस्तु का स्पष्ट विश्लेषण न कर लिया जाये, तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि हमने उस वस्तु का सर्वांग स्वरूप समझ लिया है। अतः किसी वस्तु को विभिन्न दृष्टिकोणों के आधार पर देखने, समझने व वर्णित करने वाले विज्ञान का नाम ही स्याद्वाद या अनेकान्तवाद या अपेक्षावाद (Science of Versatility or Relativity) कहा गया है।

'यह स्याद्वादी दृष्टिकोण किसी भी वस्तु के यथार्थ स्वरूप को हृदयंगम करने के लिए परमावश्यक साधन है। इसके जरिये सारे द्वन्द्ववादी या रूढ़िवादी विचारों की समाप्ति हो जाती है तथा एक उदार दृष्टिकोण का जन्म होता है, जो सभी विचारों को पचा कर सत्य का दिव्य प्रकाश खोजने में सहायक बनता है।

'एक ही वस्तु के स्वरूप पर विभिन्न लोग अपनी-अपनी अलग-अलग दृष्टियों से सोचना शुरू करते हैं। यहां तक तो विचारों का क्रम

ठीक रूप से चलता है। किन्तु उससे आगे होता है कि एक ही वस्तु को विभिन्न दृष्टियो से सोचकर उसके स्वरूप को समन्वित करने की ओर वे नही झुकते। जिसने एक वस्तु को जिस विशिष्ट दृष्टि से सोचा है, वह उसे ही वस्तु का सर्वांग स्वरूप घोषित कर अपना ही महत्त्व प्रदर्शित करना चाहता है। फल यह होता है कि एकान्तिक दृष्टिकोण व हठधर्मिता का वातावरण मजबूत होने लगता है और वे ही विचार जो सत्य ज्ञान की ओर बढा सकते थे, पारस्परिक समन्वय के अभाव मे विद्वेषपूर्ण सघर्ष के जटिल कारणो के रूप मे परिवर्तित हो जाते हैं। ऐसी परिस्थिति मे स्याद्वाद का सिद्धान्त उन्हें बताना चाहता है कि सत्य के टुकडो को पकडकर उन्हे ही आपस मे टकराओ नही, बल्कि उन्हे तरकीब से जोड़कर पूर्ण सत्य के दर्शन की ओर सामूहिक रूप से जुट पड़ो। अगर विचारो को जोडकर देखने की वृत्ति पैदा नही होती व एकागी सत्य के साथ ही हठ को बाध दिया जाता है तो यही नतीजा होगा कि वह एकागी सत्य भी सत्य न रहकर मिथ्या मे बदल जायेगा। अत यह आवश्यक है कि अपने दृष्टिबिन्दु को सत्य समझते हुए भी अन्य दृष्टिबिन्दुओ पर उदारतापूर्वक मनन किया जाये तथा उनमे रहे हुए सत्य को जोडकर वस्तु के स्वरूप को व्यापक दृष्टियो से देखने की कोशिश की जाये।

'सर्वसाधारण को स्याद्वाद की सूक्ष्मता का स्पष्ट ज्ञान कराने के लिए मैं एक दृष्टान्त प्रस्तुत कर रहा हूँ।

'एक ही व्यक्ति आपने अलग अलग रिश्तो के कारण पिता, पुत्र, काका, भतीजा, मामा, भानजा आदि हो सकता है। वह अपने पुत्र की दृष्टि से पिता है तो इसी तरह अपने पिता की दृष्टि से पुत्र भी। ऐसे भी अन्य सम्बन्धो के व्यावहारिक उदाहरण आप अपने चारों ओर देखते हैं। इन रिश्तो की तरह ही एक व्यक्ति मे विभिन्न गुणो का विकास भी होता है। अतः यही दृष्टि वस्तु के स्वरूप मे लागू होती है कि वह भी एक साथ सत्-असत्, नश्वर-अनश्वर, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष,

क्रियाशील-अक्रियाशील, नित्य-अनित्य गुणो वाली हो सकती है। जैसे एक ही व्यक्ति मे पुत्रत्व व पितृत्व दो विरोधी गुणों का सद्भाव सभव है, क्योकि उन गुणो को हम विभिन्न दृष्टियों से देख रहे हैं। उसी प्रकार एक ही वस्तु विभिन्न अपेक्षाओ से नित्य भी हो सकती है तथा अनित्य भी। जब स्थूल सासारिक व्यवस्था भी सापेक्ष दृष्टि पर टिकी हुई है तो वस्तु के सूक्ष्म स्वरूप को हठ मे जकडकर एकान्तिक बताना कभी सत्य नही हो सकता। यह ठीक वैसा ही होगा कि एक ही व्यक्ति को अगर पुत्र माना जाता है तो वह पिता कहला नही सकता और इसकी असत्यता प्रत्यक्षत सिद्ध है। चाहे तो यह सांसारिक व्यवस्था ले लीजिए या सिद्धान्तो की स्वरूप विवेचना—सब सापेक्षदृष्टि पर अवलम्बित है। अगर इस दृष्टि को न माना जायेगा व सम्बन्धित सारे पक्षो के आधार पर वस्तु के स्वरूप को न समझा जायेगा तो एक क्षण में ही जागतिक व्यवस्था मिट-सी जायेगी। आश्चर्य यही है कि स्थूल रूप से जिस सापेक्षदृष्टि को अपने चारो ओर सांसारिक व्यवहार मे देखा जाता है, उसी सापेक्षदृष्टि को वैचारिक सूक्ष्मता के क्षेत्र मे भुला दिया जाता है और फलस्वरूप व्यर्थ के विवाद उत्पन्न किये जाते हैं।

'यहा यह शका की जा सकती है कि एक ही वस्तु मे दो विरोधी धर्म एक साथ कैसे रह सकते हैं? शकराचार्य ने यह आपत्ति उठाई थी कि एक ही पदार्थ एक साथ नित्य और अनित्य नही हो सकता, जैसे कि शीत और उष्ण गुण एक साथ नही पाए जाते। किन्तु शका ठीक नही है। विरोध की शंका तो तब उठाई जा सकती है जबकि एक ही दृष्टिकोण—अपेक्षा से वस्तु को नित्य भी माना जाये और अनित्य भी। जिस दृष्टिकोण से वस्तु को नित्य माना जाये, उसी दृष्टिकोण से यदि उसे अनित्य भी माना जाये तब तो अवश्य ही विरोध होता है, परन्तु भिन्न-भिन्न दृष्टियों की आशा से भिन्न-भिन्न गुण मानने मे कोई विरोध नही आता, जैसे एक व्यक्ति उसके पुत्र की अपेक्षा से पिता माना जाता है व पिता की अपेक्षा से पुत्र, तब पितृत्व व पुत्रत्व

क्योकि अगर वर्तमान में फैला हुआ विचार सघर्ष और अधिकाधिक जटिलता का जामा पहनता गया तो आश्चर्य नही कि एक दिन पिछले युद्धो से भी अधिक खौफनाक युद्ध ससार व मानवजाति की विकसित सस्कृति को बुरी तरह तहस-नहस कर डालेगा ।

'विश्वशान्ति का प्रश्न धर्म सभ्यता व सस्कृति के विकास तथा समस्त प्राणियो के हित का प्रश्न है। कोई भी व्यक्ति चाहे किसी भी क्षेत्र मे कार्य कर रहा हो, इस प्रश्न से अवश्य ही सम्बन्धित है। इस प्रश्न की सही सुलझन पर ही मानवता की वास्तविक प्रगति का मूल्याकन किया जा सकता है और विश्व शान्ति की नीव को मजबूत करने का आज की परिस्थितियो मे सबसे प्रमुख यही उपाय है कि चारो ओर फैला हुआ विचारो का विषैला विभेद शांत किया जाये और एक दूसरे को समझने के उदार दृष्टिकोण का प्रसार हो सके। ऐसे व्यापक वातावरण का सर्जन जैनदर्शन के स्याद्वाद सिद्धान्त की सुदृढ़ आधारशिला पर ही किया जा सकता हं। यदि प्रत्येक व्यक्ति व सापृहिक रूप से विभिन्न राष्ट्र व समाज इस स्याद्वाद दृष्टि को अपने वैचारिक क्रम मे स्थान देने लगे तो विश्वशान्ति की कठिन पहेली सहज ही मे शान्ति व सद्भावना से हल की जा सकती है। इस महान् सिद्धान्त के रूप मे जैनधर्म विश्व की बहुत बडी सेवा बजाने मे समर्थ है।

'उपसहार रूप मे मुझे यही कहना है, जो कि इस शास्त्र-वाक्य मे कहा गया है—

"अत्थि सत्थेण परेण पर, नत्थि असत्थं परेण परं"

'सत्य का साक्षात्कार ही जीवन का चरम साध्य है। जीवन उन अनुभवो व विभिन्न प्रयोगो का कर्मस्थल है, जहाँ हम उनके जरिये सत्य की साधना करते हैं, क्योकि सत्य ही मुक्ति है, ईश्वरत्व की प्राप्ति है। जीवन के आचार विचार की सुघड़ता व सत्यता में व्यक्ति, समाज व विश्व की शांति रही हुई है तथा शांति के शुभ्र वातावरण मे ऊँचे-से ऊंचा आध्यात्मिक विकास भी सबके लिए सरल बन सकता

है। अतः विचारों की उदारता, पवित्रता, शांतिपूर्ण प्रेरणा की जागरूकता के लिए आज स्याद्वाद के सिद्धान्त को बड़ी बारीकी से समझने, परखने व अमल मे लाने की विशेष आवश्यकता आ पड़ी है, जिसके लिए मैं आशा करूं कि सब तरफ से उचित प्रयास अवश्य किये जायगे।'

सन्तो और श्रावको ने विविध प्रकार की तपस्यायें की तथा धर्मप्रभावना के आयोजनो से चातुर्मास समय समाप्त हुआ। आचार्य श्रीजी पूर्ण रूप से निरोग नही हुए थे। दिल्ली श्रीसघ और चिकित्सकों ने साग्रह निवेदन किया कि रोग निर्मूल नही हुआ है और जब तक उपचार पूरा नही हो जाता, आपश्री दिल्ली मे ही विराजें। यहा उपचार के अच्छे से-अच्छे साधन और विशेषज्ञ हैं और आपरेशन कराये बिना रोग दूर नही होगा, अतः आपरेशन कराने की स्वीकृति दीजिये।

पूज्य आचार्य श्रीजी ने उत्तर में फरमाया कि यह शरीर तो क्षणभंगुर है, इसकी कितनी भी सभाल करे तो भी नष्ट होगा। यदि कुछ कष्ट भी सहना पडे तो कोई हर्ज नही, किन्तु आपरेशन कराने की इच्छा नही है। व्यर्थ ही इस शरीर के निमित्त सयम-साधना मे व्यवधान नही डालना चाहिये। जितने दिन इस शरीर का उपयोग होगा, सो हो जायेगा।

यह है विरागियो की वीतरागता। वे आत्मोपलब्धि को सर्वोपरि मानते हैं। वे अपने सयम-तप-त्यागमय जीवन, निरीहवृत्ति एवं उपदेशों से सुख शांतिप्रद वातावरण का निर्माण करते हैं। ऊपरी तौर पर देखने से कुछ भी प्रतीत नही होता है, लेकिन वे जो निर्माण करते हैं वह आंतरिक होता है और उसकी नीव गहरी, दृढ और स्थायी होती है। मानवजाति के सबल और व्यापक सस्कारों का निर्माण सन्तो की बदौलत हुआ है। सन्त चलते-फिरते विद्यालय हैं, विश्वकोष हैं और स्वतः प्राप्त विशुद्ध परामर्शदाता हैं। वे तीर्थरूप होकर दूसरों को तैरने का योग बनाते हैं, तिन्नाणं तारयाणं हैं।

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् कुछ दिनों तक दिल्ली के विभिन्न

के दो विरोधी धर्म एक ही व्यक्ति में अपेक्षाभेद से रह सकते हैं, उसमें कोई विरोध नही होता। विरोध तो तब हो जब हम उसे जिसका पिता माना है, उसी का पुत्र भी माने। इसी तरह भिन्न-भिन्न अपेक्षा से भिन्न-भिन्न धर्म मानने मे कोई विरोध नही होता।

'जैनदर्शन की मान्यता के अनुसार प्रत्येक पदार्थ उत्पन्न होने वाला व नष्ट होने वाला और फिर भी स्थिर रहने वाला बताया गया है। "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत्" यह पदार्थ के स्वरूप की व्याख्या है। आश्चर्य मालूम होता है कि नष्ट होने वाली वस्तु भला स्थिर कैसे रह सकती है, किन्तु स्याद्वाद ही इसको सुलझा देता है। ये तीनो पर्यायें सापेक्षदृष्टि से कही गई हैं। एक दूसरे के विना एक दूसरे की स्थिति बनी नही रह सकती है। उदाहरण स्वरूप समझ लीजिये कि एक सोने का कड़ा है और उसे तुड़ा कर जजीर बना ली गई तो वह सोना कड़े की अपेक्षा से नष्ट हो गया एव जंजीर की अपेक्षा से उत्पन्न हो गया, किन्तु स्वर्णत्व की अपेक्षा से वह पहले भी था और अब भी है, वह उसकी स्थिर स्थिति हुई। पदार्थ की पर्याय बदलती है। उसमे पूर्व-पर्याय का विनाश व उत्तर-पर्याय की उत्पत्ति होती रहने पर भी पदार्थ का द्रव्यस्वरूप उसमे कायम रहता है। इस तरह पर्यायार्थिक नय (दशा-परिवर्तन) की अपेक्षा से पदार्थ अनित्य है और द्रव्यार्थिक नय (स्थिरस्थिति) की अपेक्षा से नित्य भी है। यही स्याद्वाद का गौरव-पूर्ण एव मार्मिक स्वरूप है।

'स्याद्वाद के सिद्धान्त को जैनदर्शन का हृदय कहा जाता है। जैसे हृदय शुद्ध किया गया रक्त सभी अगो मे समान रूप से संचारित करता रहे तो शरीर का टिकना सम्भव होगा। उसी तरह स्याद्वाद सभी सिद्धान्तो को समझने मे समन्वय की उदार भावना की बराबर प्रेरणा देता रहता है। जैनदर्शन की सबसे बडी विशेषता तो यह है कि वह अपनी मान्यता के प्रति भी हठवादी (दुर्नयी) नही है। वहां तो सत्य से प्रेम किया जाता है और निरन्तर अपने स्वरूप

तो यह है कि वह अपनी मान्यता के प्रति भी
है। वहा तो सत्य से प्रेम किया जाता है और

को सत्य के रंग मे रगा रखने में परम सन्तोष की अनुभूति की जाती है। सत्य की आराधना जैनदर्शन का प्राण है। वह न अपनी मान्यता के विषय मे दुराग्रही है और न दूसरो की मान्यताओ का किसी भी रूप मे तिरस्कार करना चाहता है। वह तो केवल यह चाहता है कि समस्त विश्व पूर्ण सत्य के स्वरूप को समझने के सही राह पर आगे बढ़े।

'स्याद्वाद एक तरह से ससार के समस्त विचारको व दार्शनिको का आह्वान करता है कि सब अपने आपसी हठवाद व एकांगी दृष्टिकोणो के कलह को त्याग कर एक साथ बैठो तथा एक दूसरे की विचारधाराओ का स्पष्ट रूप से आदान-प्रदान करो। इस तरह जब सामूहिक रूप से व शुद्ध जिज्ञासा व निर्णय बुद्धि से सम्मिलित विचार-विमर्श किया जायेगा, उनका मन्थन होने लगेगा तो जरूर ही छाछ-छाछ पेंदे मे रह जायेगी और साररूप मक्खन ऊपर तैर कर आ जायेगा। तब स्याद्वाद का सन्देश है कि उन विचारधाराओं के समूह मे से असत्य अंशो को निकाल कर अलग कर दो, हठवाद, एकान्तवाद और अपने ही विचारो में पूर्ण सत्य मानने की दुराग्रही वृत्तियो को पूरे तौर पर तिलाजलि दे दो। सत्य के भिन्न-भिन्न खडों का चयन करो, उन्हे जोड़ कर पूर्ण सत्य के दर्शन की ओर उन्मुख होओ। सूंड ही हाथी है, पाव ही हाथी है या पीठ ही हाथी है मान सकते रहने से कभी भी हाथी का असली स्वरूप समझ में नही आयेगा बल्कि ऐसा हठाग्रह करने पर तो ऐसा मानना एकागी सत्य होने पर भी हाथी के पूर्ण स्वरूप की दृष्टि से असत्य ही कहलायेगा। अतः सिद्धान्तो और विचारो के क्षेत्र में इसे गम्भीरतापूर्वक समझने व सुलझाने की जरूरत है कि सूंड ही हाथी नही है, पांव ही हाथी नहीं है या पीठ ही हाथी नही है, बल्कि ये सब अलग अलग हिस्से मिलकर पूरा हाथी बनाते हैं। आज उन अन्धो की तरह हाथी देखने की मनोवृत्ति चल रही है—क्या तो दार्शनिक क्षेत्र मे और क्या वैचारिक क्षेत्र में, उसे इस स्याद्वाद के प्रकाश मे शुद्ध बना देने का आज महान् उत्तरदायित्व आ पड़ा है।

उपनगरो मे विराजे। जब सदर बाजार पधारे तब वहाँ पर पंजाब सम्प्रदाय के सन्त स्थविर मुनिश्री भागमलजी म., मुनिश्री तिलोकचन्दजी म आदि विराजते थे। उनसे आचार्य श्रीजी म सा. का मिलन हुआ। उसी अवसर पर स्थविर मुनिश्री भागमलजी म. के पास होने वाली एक वरागी भाई की भागवती दीक्षा आचार्य श्रीजी म. सा. के मुखारविन्द से सम्पन्न हुई। इसी तरह पजाब की प्रसिद्ध महासती श्री पन्नादेवीजी म. की सतियो के पास होने वाली एक बहिन की भागवती दीक्षा भी आचार्य श्रीजी म सा. के द्वारा सम्पन्न हुई।

अयोग्य को दीक्षा नहीं

दीक्षा-सम्पन्न होने के पश्चात दिल्ली के एक लालाजी करीब १३-१४ वर्ष के एक लडके को लेकर सेवा मे उपस्थित हुए और कहने लगे कि मुझे एक चेला भेट करना है, आप इसको ग्रहण कीजिये। तब आचार्य श्रीजी म. सा ने फरमाया कि यदि दीक्षा लेने वाला दीक्षार्थी स्वत: दीक्षा लेने की भावना से आता है तो सबसे पहले उसकी भावना की परीक्षा की जाती है और सयम की योग्यता मालूम होने पर उसके सरक्षको की आज्ञा पूर्वक दीक्षा दी जा सकती है। लेकिन इस तरीके की भेट नही ली जाती है। इसी तरह दूसरे भी पाच-सात व्यक्तियो ने दीक्षा ग्रहण करने के भाव व्यक्त किये, लेकिन कसौटी पर खरे नही उतरने से आचार्य श्रीजी म. सा. ने दीक्षा नही दी।

स० २००७ का चातुर्मास अलवर होना था, लेकिन शारीरिक कारणवश दिल्ली विराजना पड़ा था। इससे अलवर के नागरिको को कुछ निराशा भी हुई, किन्तु परिस्थिति को देखते हुए उन्हें निराशा मे भी विश्वास की एक किरण दिखाई दे रही थी कि आचार्य श्रीजी म. सा. स्वस्थ रहेंगे तो आगामी वर्ष अवश्य ही चातुर्मास होना सभव है।

अलवर श्रीसघ को पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. के स्वास्थ्य-सुधार से संतोष था। अत: पुन: आगामी वर्ष का चातुर्मास अलवर करने की विनती लेकर सेवा मे उपस्थित हुआ और पूज्य आचार्य श्रीजी

म. सा. ने द्रव्य-क्षेत्र आदि को ध्यान में रखते हुए विविध आगारों के साथ सं० २००८ का चातुर्मास अलवर मे करने की स्वीकृति फरमाई ।

अलवर की ओर विहार करने के लिये आचार्य श्रीजी म सा सब्जीमण्डी से विहार कर नई दिल्ली पधारे। वहा पर उपस्थित सब्जी-मण्डी, सदर बाजार, चांदनी चौक दिल्ली तथा आस-पास के क्षेत्रो के सैकडो भाई-बहिनों के समक्ष आचार्य श्रीजी म. सा. ने फरमाया कि परिस्थितिवश मुझे दिल्ली क्षेत्र में रहना पड़ा और रोगशमन के लिये जहां तक हो सका निर्दोष उपायो का अवलम्बन लिया गया । फिर भी डाक्टरो को दिखाना, जाच करवाना आदि लाचारीवश सयमी-मर्यादा मे लगे दोपो का मैं प्रायश्चित ग्रहण करता हूँ ।

आचार्य श्रीजी म सा की सयम-मर्यादा के प्रति निष्ठा और जाग्रति देखकर उपस्थित दिल्ली श्रीसंघ और दूसरे-दूसरे श्रीसघों के सदस्यों पर अत्यधिक प्रभाव पडा । वहां के बुजुर्ग कहने लगे कि विशेष दोष नही लगने पर भी जनता के समक्ष यत्किंचित दोषो का भी शुद्धि-करण करके प्रायश्चित ग्रहण करना हमारे दिल्ली नगर के लिये यह पहला ही अवसर है ।

पुनः रोग-उदय

औषधोपचार से यद्यपि रोग उपशांत हो गया था और आचार्य श्रीजी म. सा. विहार भी करने लगे थे, फिर भी पैदल चलने से पुनः रोग उभर आया । लेकिन रोगजन्य वेदना को समतापूर्वक सहन करते हुए स० २००८ के चातुर्मास के निमित्त यथासमय अलवर पधार गये ।

अलवर श्रीसघ ने अगवानी करते हुए नगर-प्रवेश कराया । शारीरिक अस्वस्थता के कारण आचार्य श्रीजी म. सा को विश्राम करने की जरूरत थी, किन्तु दर्शनार्थियों के आने जाने, प्रातः प्रवचन, मध्याह्न वाचणी और सायंकाल तत्त्वचर्चा मे अधिकांश समय लगने से विश्राम करने के लिये अवकाश नहीं मिलता था । यद्यपि अलवर के स्वच्छ जलवायु का स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव भी पड़ा, लेकिन अधिक परि-

श्रम के कारण रोग मे वृद्धि के लक्षण दिखाई देने लगे। फिर भी पहले की तरह ही मुखमडल पर मधुर मुस्कान और तपोपूत तेजस्विता झलकती रहती थी।

अलवर-नरेश की आकांक्षा

पूज्य आचार्य श्रीजी के प्रतिदिन प्रवचन महावीर भवन में होते थे। जिनका लाभ आबालवृद्ध श्रोतागण उठाते थे। एक दिन अलवर नरेश ने स्थानीय श्रीसघ के प्रमुख सज्जनो के द्वारा आचार्य श्रीजी की सेवा मे निवेदन करवाया कि आचार्य महाराज महलो में पधार कर हमे दर्शन और सेवा का अवसर प्रदान करे और दो शब्द सुनावे।

उक्त भावना को सेवा मे निवेदन किये जाने पर आपश्री ने प्रत्युत्तर मे फरमाया कि अलवर नरेश की धर्मभावना एव साधु सन्तो के प्रति आदरभाव प्रशसनीय है। लेकिन मेरे लिये तो राजा और रक सभी समान हैं। किसी विशिष्ट स्थिति के अतिरिक्त वर्तमान स्थान को छोड़कर अन्यत्र जाने-आने की भावना नही रखता हूँ और इससे अन्य व्यक्तियो को भी असुविधा हो सकती है। दूसरो के साथ अलवर नरेश भी यहा पर धर्म लाभ ले सकेगे।

ऐसा स्पष्ट उत्तर वही दे सकते हैं जो मानापमान की अनुभूति से उदासीन है और जिनको किसी से कोई आकाक्षा नही है। वे तो जलकमलवत् ससार मे रहकर निर्लिप्त भाव से विचरण करते रहते हैं। सन्तो की महिमा महान है। इन महापुरुषो के बारे मे कहा गया है—

चाह गई चिन्ता मिटी, मनुआ वेपरवाह।
जिनको कछु न चाहिये, वे शाहन के शाह ॥

अरि-मित्र, महल-मसान, कंचन-काच, निन्दन-थुतिकरन।
अर्घावतारन, असिप्रहारन मे सदा समता धरन ॥
जग-सुहितकर सब अहितहर श्रुति-सुखद सब संशय हरे।
भ्रमरोगहर जिनके वचन मुखचन्द्रतें अमृत झरे ॥

लाभालाभे सुहे दुक्खे जीविए मरणे तहा ।
समो निंदापसंसासु तहामाणावमाणओ ॥

पूज्य आचार्य श्रीजी की भावना का संकेत अलवर नरेश को करा दिया और उन्होंने विजयादशमी (दशहरा) के दिन स्वयं महावीर भवन मे आकर प्रवचन-श्रवण का लाभ उठाया ।

संगठन के लिये घोषणा

समाज की धर्मकरणी के आधार संत-सतियां जी म. को एक आचार्य के नेश्राय मे श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के नाम से संगठित देखने की चतुर्विध श्रीसंघ उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा था। वैसे तो एकता सम्बन्धी प्रयत्नो का सूत्रपात पूज्य आचार्य श्री जवाहर-लालजी म. सा. के समय सन् १९३३ से ही हो चुका था और यह प्रयत्न उसी के आगे की कडी थे ।

संगठन के प्रयत्नो मे वेग लाने की दृष्टि से श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स के एक शिष्टमंडल ने पूज्य आचार्य श्रीजी की सेवा मे उपस्थित होकर एक गांव मे एक चातुर्मास होने की विनती की थी और परीक्षण के रूप मे तीन वर्ष तक आचार्य श्रीजी ने अपनी ओर से ऐसा करने की मंजूरी फरमा दी थी । फलस्वरूप शिष्टमंडल को निकट भविष्य मे पुनः श्रमण-समेलन होने के कुछ कुछ आसार दिखाई देने लगे थे और इस सम्बन्ध मे शिष्टमंडल ने अन्यान्य मुनिराजो से परामर्श करके प्रारूप तैयार किया ।

संगठन-विषयक प्रारूप तैयार हो जाने के पश्चात् पुनः श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स का शिष्टमंडल साधु-सम्मेलन के बारे में निश्चित प्रस्ताव लेकर पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. की सेवा में उपस्थित हुआ और अपने कार्यों का विवरण बताया ।

शिष्टमण्डल के प्रयत्नों के लिये अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. ने फरमाया कि एक समाचारी, एक शिष्यपरम्परा तथा एक के हाथ में प्रायश्चित आदि व्यवस्था और गुरु

आचार्य के नेश्राय में समस्त साधु-साध्वियां साधना करने की भावना रखते हैं तो मैं और मेरे नेश्राय मे रहने वाले साधु-साध्वी सघ-ऐक्य के लिये अपने आपको विलीन करने मे सर्वप्रथम रहेगे। आपश्री के हृदय मे सघ-ऐक्य की भावनायें हिलोरें ले रही थीं अत. अलवर मे उपस्थित चतुर्विध श्रीसघ के समक्ष अपनी महत्त्वपूर्ण घोषणा करते हुए फरमाया—मुझे किसी सप्रदाय विशेष के प्रति न मोह है, न ममता है और न लगाव है। सत-जीवन ममता-विहीन होना चाहिये। किन्तु अपने कर्तव्य-पालन के लिये सप्रदायान्तर्गत कार्यरत रहना पडता है। यदि एक आचार्य की नेश्राय मे एक समाचारी आदि का निर्णय करते हुए सयम-साधना के पथ पर चारित्रिक दृढता के साथ अग्रसर होने की स्थिति के योग्य कोई सगठन बनता है तो मैं प्रथम मुनि होऊगा जो अपनी आचार्य पदवी को छोडकर सगठन के अधीन चतुर्विध सघ की सेवा करने के लिये सहर्ष तत्पर रहूँगा। जो निष्ठा पूज्य गुरुदेव श्रीमज्जवाहराचार्य के हृदय मे विद्यमान थी, वही निष्ठा मेरे मानस मे रम रही है।

उक्त घोषणा की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए शिष्टमण्डल एव उपस्थित चतुर्विध संघ ने अभिनन्दन किया। संघ-ऐक्य के बारे में आपकी अटूट निष्ठा का सक्षिप्त दिग्दर्शन मात्र यहां कराया गया है और इसकी पूर्ति के लिये यावज्जीवन प्रयत्नशील रहे।

इस घोषणा से स्थानकवासी समाज को एकसूत्र मे आबद्ध होने का सूत्रपात हुआ। लेकिन उद्देश्य रूप मे स्वीकार किये जाने पर भी भविष्य मे भावनानुसार कार्य किये जाने की किसी ने आवश्यकता अनुभव नहीं की और स्वार्थपूर्ति के प्रयत्न प्रच्छन्न रूप से चलते रहे। लेकिन आचार्य श्रीजी म. सा. इस उद्देश्य पर दृढ रहे और तदनुसार चलने वाले सत-सतियो का एक सगठन बनाकर सगठन-सम्बन्धी उद्देश्य को अमली रूप दे दिया।

रोग की विषमतम स्थिति

चातुर्मास का समय धार्मिक प्रभावना के साथ सम्पन्न हो रहा

था। लेकिन पूज्य आचार्य श्रीजी की शारीरिक स्थिति दिनोदिन विषम बनती जा रही थी। जिस समय आप लघुशंका से जैसे-तैसे निवृत्त होकर उठते तो शरीर पसीने से सराबोर हो जाता था और मालूम पड़ता था कि स्नान के बाद जैसे शरीर पोछना बाकी हो। बूंद-बूंद कर पेशाब निकलता था लेकिन असह्य वेदना होते हुए भी मुख पर पीड़ा की रेखा तक नही दिखती थी।

रोग की इस विषम स्थिति से सतो और श्रीसघ की चिन्ता का पार नही था। अतः अलवर श्रीसघ ने निश्चय किया कि रोगोन्मूलन के लिये तत्काल आपरेशन करवाया जाये। राजकीय चिकित्सालय के प्रमुख शल्यचिकित्सक एव अन्य प्रमुख चिकित्सको ने तो पहले ही निर्णय कर दिया था कि शल्यक्रिया शीघ्रातिशीघ्र हो जाना चाहिये। इसके लिये जितनी देरी होगी, उससे जीवन को खतरा है।

लेकिन पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. निर्दोष उपचार के लिये तो तैयार थे और शल्यचिकित्सा जैसे उपचार से बचना चाहते थे। इस सम्बन्ध मे आप फरमाया करते थे— भोले भाइयो! कर्मो की व्याधि का मूल इस आपरेशन से निर्मूल होने वाला नही है। कर्म-व्याधि का मूल बहुत गहरा है, इसका उन्मूलन यह डाक्टर नही कर सकेगे। हा ये शारीरिक व्याधि को मिटाने मे निमित्त हो सकते हैं, लेकिन कर्मो को मूल से उखाड़ने के लिये तो आत्म-पुरुषार्थ की जरूरत है। आत्मा मे पैठे हुए दोषजनक तत्त्वो को निकाल कर फेंकना होगा। अत आपरेशन के बिना ही अगर काम चलता हो तो चला लेना चाहिये।

पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. अपनी शारीरिक व्याधि के लिये जितने उदासीन थे उतनी ही अलवर श्रीसघ एवं बीकानेर, रतलाम, ब्यावर आदि आदि अन्यान्य नगरो और ग्रामों के उपस्थित श्रावक-श्राविकाओ की चिन्ता बढ़ती जा रही थी। अतः इस जटिल स्थिति से चिन्तित अलवर श्रीसघ ने उस समय उपस्थित अपनी श्रावकों की सभा का आयोजन किया। सभा मे स्थिति की विषमता पर विचार कर

सर्वानुमति से निर्णय किया गया कि आचार्य श्रीजी के विचार सयम-साधना के अनुरूप हैं। लेकिन आचार्य श्रीजी का जीवन एवं शरीर श्रीसघ के लिये अमूल्य है और उन पर श्रीसघ का अधिकार है। अत. हम सब अपने दायित्व को लक्ष्य मे रखते हुए पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा की सेवा मे निवेदन करे कि सघहितार्थ आप अपना शरीर सघ को समर्पित कर देने की कृपा करे, जिससे सघ जैसा उचित समझे वैसी व्यवस्था कर सके।

सघ के विनम्र निर्णय को पूज्य आचार्य श्रीजी की सेवा मे उपस्थित किया गया तो सघ के आग्रह और युक्तियो को ध्यान मे रखते हुए आपने वैसा ही उत्तर दिया जैसा आपके गुरुदेव स्व पूज्य जवाहराचार्य ने भीनासर मे दिया था। उन्होंने फरमाया था— इस शरीर पर सघ का भी अधिकार है, यह शरीर मेरे अकेले का नही है, श्रीसघ का भी है। श्रीसघ की जो इच्छा हो वही कर सकता है। मुझे अपनी ओर से कुछ भी नही कहना है।

आचाय श्रीजी की कितनी महानता थी कि श्रीसघ के आग्रह के समक्ष अपना अस्तित्व गौण कर लिया और सघ की इच्छा का तिरस्कार नही किया। श्रीसघ ने समग्र परिस्थिति का गम्भीरता से विचार कर आपरेशन करवाना तथा भारत के सुप्रसिद्ध सर्जन व पूज्य आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. के जलगाव मे किये गये आपरेशन से श्रीसघ के विश्वासपात्र डा श्यामराव रामराव मूलगावकर बबई से आपरेशन कराना तय किया।

सभी उपस्थित सज्जन इस अवसर पर अपनी-अपनी सेवायें देने के लिये आग्रह कर रहे थे, लेकिन बीकानेर निवासी दानवीर सेठ श्री गोविन्दराम जी भीखनचन्द जी भसाली की विनम्र विनती और निवेदन पर श्रीसघ ने श्री भसाली जी को लाभ-प्राप्ति की स्वीकृति दी। इस महान् सुअवसर की प्राप्ति होने से श्री भसाली जी के हर्ष का पार न रहा और श्रीसघ ने अभिनन्दन करते हुए अपना प्रमोद व्यक्त किया।

आपरेशन होने के पूर्व

आपरेशन गम्भीर था। डा. मूलगावकर से संपर्क स्थापित कर समय निश्चित हो चुका था और देश के कोने कोने में इसकी जानकारी हो जाने से दर्शनार्थियों का अलवर आने का ताता लग गया। स्थिति की गम्भीरता से सभी के चेहरों पर चिन्ता झलक रही थी। अलवर निवासियों के द्वार आगत बन्धुओं के लिये खुले थे और श्रीसंघ के कार्यकर्ता बडी तत्परता से प्रबन्ध कर रहे थे।

आपरेशन का दिन भी आ गया। डा. मूलगावकर अपने अन्य चार सहयोगी डाक्टरों के साथ बंबई से अलवर आ गये थे और उन्होंने राजस्थान के प्रसिद्ध शल्यचिकित्सक डा बापू से मिलकर आपरेशन की तैयारी की। श्री महावीर भवन के एक कमरे में ही आपरेशन के लिये स्थान बनाया गया था। डा. मूलगांवकर ने पूज्य आचार्य श्रीजी की शरीर-परीक्षा की और आपरेशन की गम्भीरता को देखते हुए आवश्यक साधनों को एकत्रित कर लिया गया।

क्षण-क्षण और पल-पल करते-करते आपरेशन होने का अवसर भी आ गया। महावीर भवन के चारों ओर जनमेदनी का जमाव हो चुका था और जिधर भी देखो उधर जनसमूह महावीर भवन की ओर आता दिखाई दे रहा था और वातावरण में निस्तब्धता छाई हुई थी।

आपरेशन स्थल पर प्रवेश करने से पूर्व पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. उपस्थित जनसमूह के सन्मुख पधारे। दर्शनार्थियों ने जयघोष करते हुए सविधि वंदना की और अपने नेत्रों को आचार्य श्रीजी के शांत, गम्भीर मुखमंडल पर केन्द्रित कर लिया। निस्तब्धता व्याप्त होने पर आचार्य श्रीजी म. सा. ने अपनी भावना व्यक्त करते हुए फरमाया—

'आज चतुर्विध श्रीसंघ यहां उपस्थित है। पूर्वोपार्जित असाता-वेदनीय कर्म के उदय से शरीर में रोग की उत्पत्ति हुई है, जिसे मैं समतापूर्वक सहन करके और तपस्यादि में प्रवृत्त होकर निर्जरामार्ग की ओर अग्रसर होना चाहता था, किन्तु चतुर्विध संघ की आज्ञा इसके

अनुकूल न होने की जानकर, सघ की आज्ञा मानते हुए मैं शल्यचिकित्सा के लिये प्रस्तुत हो रहा हूँ। ऐसी परिस्थिति में मुझे क्रिया एवं दोषों का लगना अवश्यभावी है। इसलिये मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि जब तक मैं इस प्रवृत्तिमार्ग से निवृत्त होकर प्रायश्चित न कर लू और लगे हुए दोषो व क्रियाओ के लिये समुचित दड ग्रहण न कर लूं, तब तक मुझे वदन न करें। स्थिति गम्भीर है, इसलिये आपरेशन कराने के पूर्व मैं ज्ञात एव अज्ञात अवस्था मे अथवा सघहित के कार्यों में भी यदि मेरे किसी क्रियाकलाप से श्रावक, श्राविका, साधु, साध्वी रूप चतुर्विध श्रीसघ को किसी प्रकार क्लेश पहुंचा हो तो अन्तर्मन से सबसे क्षमत-क्षमापना करता हूँ और आशा करता हूँ कि आप सब जीवन के इस कटकाकीर्ण पथ पर भगवान महावीर द्वारा प्रदर्शित अखड ज्ञानज्योति को हृदयगम कर शाश्वत सुख की ओर अग्रसर होते रहेंगे।

'मुझे जो कुछ भी प्राप्त हुआ है वह सब गुरुदेव का प्रसाद है और समाज के सहकार का फल है। मैं गुरुदेव और समाज का ऋणी हूँ।'

पूज्य आचार्यश्री के उल्लिखित भाव श्रमणसस्कृति के त्याग-प्रधान प्रकृति के प्रतीक थे। उनमे हृदय की अभिव्यक्ति, जैन-शासन की पावन परपरा को अक्षुण्ण बनाये रखने की अभिलाषा और सतजनोचित उच्चकोटि की उदारता व्यक्त की गई थी।

उपस्थिति ने आचार्यदेव के शब्दो को सुना तो अवश्य था किन्तु हृदय थम न सका। अधिकाश के नेत्रो से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी और कई एक की आखे सूखी भी थी तो मन की पीड़ा मन ही अनुभव कर रहा था और ऐसे ही वातावरण मे निमग्न जनसमूह को छोड आचार्यदेव आपरेशन के लिये पधार गये।

आपरेशन करने के पूर्व डाक्टरो ने आचार्य श्रीजी के शरीर व हृदय की धड़कन की पुन. परीक्षा की। डाक्टरो को यह सब करते देख आचार्यदेव ने स्मित हास्य किया। खातरी कर लेने के बाद आपरेशन प्रारम्भ हो गया। डाक्टरो के कुशल हाथ शारीरिक रोग-

उन्मूलन के लिये चपलता से शस्त्रों से अठखेलियां करने लगे। रक्त की धारा बह निकली, किन्तु पूज्य आचार्यदेव सब कुछ देखते हुए भी डाक्टरों से बातचीत कर रहे थे। मुख पर वेदना की रेखा तक नही थी। मानो देहातीत स्थिति मे विचरण कर रहे हों।

अत्यधिक रक्तप्रवाह के अनुमान से डाक्टरों ने रक्त चढाना चाहा किन्तु आचार्यदेव ने अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहा कि यदि जीवन समाप्त होता हो, तो हो जाये किन्तु इस नश्वर शरीर के लिये अन्य किसी जीव को कष्ट पहुंचाना मुझे अभीष्ट नही है। डाक्टरगण पहले ही आपकी सहनशीलता देखकर विस्मित हो रहे थे और इस बात ने तो उन्हें और भी आश्चर्य मे डाल दिया। बेहोशी के लिये क्लोरोफार्म सूंघे विना ही इतने गम्भीर आपरेशन के लिये तैयार हो जाना एक आलौकिक घटना ही थी। वस्तुतः महात्माओं का हृदय दूसरों के लिये तो फूल-सा होता है और अपने प्रति वज्र-सा कठोर।

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणा चेतासि को हि विज्ञातुमर्हति ॥

लोकोत्तर पुरुषों के चित्त को परखना बड़ा ही कठिन है। एक ओर वे वज्र के प्रतिरूप प्रतीत होते हैं तो दूसरी ओर कुसुम से भी कोमल और फिर हमारे आचार्यदेव ने तो उस संस्कृति के वायुमडल में सासें ली थीं जो विधान करती है—

अवि अप्पणो वि देहमि नायरन्ति ममाइयं।

महात्मागण अपनी देह के प्रति भी ममता का भाव उत्पन्न नही होने देते। जिन्होंने काया को भी पराया समझ लिया और अपने शुद्ध आनन्दमय स्वरूप में अवगाहन कर लिया है उन्हें संसार की कोई भी घटना व्यथा नही पहुंचा सकती है। जिनके सामने गजसुकुमार सा उच्चतर आदर्श है, वे शारीरिक व्यथा से कब व्याकुल होते हैं?

डाक्टरों ने सफलता पूर्वक रोगाक्रान्त अवयव को निकाल लिया। आपरेशन सफल हुआ और सोत्सुक जनसमूह को सफलता के

समाचार सुनाने के लिये हाथ मे एक मासग्रन्थि लेकर डाक्टर मूलगांवकर ने बाहर आकर कहा—

महाराजश्री का आपरेशन सफल हो गया है। तेरह तोले की गाठ काटकर बाहर निकाल दी गई है। आश्चर्य है कि महाराजश्री ने क्लोरोफार्म सूघ कर बेहोश होना पसन्द नही किया। उनकी मानसिक शक्ति अजेय है, सकल्प बल विस्मयजनक है। मैंने कई लोगो के आपरेशन किये और बडे-बडे सहनशील व्यक्ति भी देखे, किन्तु इतने शक्तिशाली और सहिष्णु महापुरुष पहले कभी देखने मे नही आये हैं।

इन शब्दो ने सुधा का सिंचन सा कर दिया। गम्भीर और व्याकुल वातावरण हर्ष और उल्लासमय हो गया। तत्काल ही देश के समस्त श्रीसघो की जानकारी के लिये आकाशवाणी, तार, टेलीफोन द्वारा आपरेशन की सफलता के समाचार प्रसारित कर दिये गये और अनेक व्यक्तियो ने हजारो रुपये दान मे दिये।

शुद्धि हेतु प्रायश्चित

धीरे-धीरे घाव भर गया। शनै शनै. कमजोरी दूर होने से शरीर मे विहार करने योग्य शक्ति आ गई थी। आचार्य श्रीजी चाहते थे कि चिकित्साकाल मे हुए दोषो की आलोचना कर प्रायश्चित ले लिया जाये। यद्यपि आचार्य श्रीजी स्वयं इस विधि-विधान के विज्ञ थे, फिर भी उन्होने पजाब संप्रदाय के आचार्य श्रीजी से आलोचना विधि मगवाई। उन्होने प्रत्युत्तार मे लिखवाया कि आप स्वयं विज्ञ हैं, किन्तु यह आपकी महानता है कि मुझसे प्रायश्चित मगवा रहे हैं। जिस स्थिति मे आपने आपरेशन करवाया है, वह आपवादिक स्थिति है। ऐसी स्थिति मे लगे हुए दोषो का शुद्धिकरण गुरु चौमासी तप (१२० उपवास) का प्रायश्चित लेकर कर लेवें। लेकिन आचार्यश्री ने इससे भी भारी चार मास दीक्षाछेद का प्रायश्चित लिया।

विहारवेला का अवसर

आचार्य श्रीजी शीघ्र विहार करना चाहते थे। समयक्रम से

विहार का भी क्षण आ पहुंचा। महावीर-भवन श्रोताओ से खचाखच भरा हुआ था। काफी समय के पश्चात श्रोताओ को प्रवचन-प्रसाद की प्राप्ति का अवसर प्राप्त हुआ था। सभी के मन वचन-माधुर्य से पूरित हो रहे थे। अतः प्रवचन परिसमाप्ति का सकेत ही न लग सका। आखिर तल्लीनता भग हुई और सूने मन से श्रोतागण उठ खड़े हुए।

सन्तमंडली से परिवेष्टित पूज्य आचार्य श्रीजी ने महावीर-भवन से बाहर पदार्पण किया। जनता ने जयघोष किया लेकिन उसमें उमंग नही थी, उत्साह नही था, सिर्फ भावभरे हृदयो की अनुभूति का उच्छ्वास झलक रहा था।

प्रायश्चित की घोषणा

अलवर से जयपुर की ओर विहार हुआ। नगरान्त का अतिम विश्राम स्थल सस्कृत महाविद्यालय मे किया। अन्तिम प्रवचन सुनने का सौभाग्य आज ही मिलने वाला है अतः अलवर श्रीसंघ के आबालवृद्ध नरनारी महाविद्यालय के प्रांगण मे एकत्रित हो गये। आचार्यश्री ने जनमेदनी के सन्मुख अपना प्रवचन फरमाया और प्रवचन के अन्त में निम्नलिखित घोषणा की—

'आप सब लोगों को मालूम है कि रोगग्रस्त अवस्था में मुझे प्रमादजन्य कतिपय दोषों एवं क्रियाओ का भागी बनना पड़ा है और इसीलिये आपरेशन के पूर्व मैंने कहा था कि जब तक दोष निवृत्ति हेतु मैं आलोचना, प्रायश्चित न कर लूं, आप मुझे वंदना-नमस्कार न करें। उपचार के पश्चात मैंने अपने दोषो का प्रायश्चित्त किया है और अब श्रीसघ की साक्षी में एतद्विषयक दड-विधान— चार मास का दीक्षाछेद स्वीकार करता हूँ। आज से ४ माह की दीक्षावधि कम होने से जो मुझसे छोटे होकर मुझे नमस्कार करते थे, अब मैं उन्हें बड़ा मानकर नमस्कार करूंगा। साथ ही उपचारावस्था मे जो मुनिवृन्द मेरी सेवा-शुश्रुषा में रत रहे, उन्हें भी क्रियाओ के लिये दोषी मानते हुए यथा-योग्य दड-प्रायश्चित देता हूँ।'

पूज्य आचार्य श्रीजी की उक्त घोषणा को उपस्थित चतुर्विध श्रीसंघ ने सुना और मुनिवृन्द ने आज्ञानुसार दंड-प्रायश्चित्त विधान को अंगीकार किया। अन्त में उपस्थिति ने पुनः-पुनः वंदना कर पूज्य आचार्य श्रीजी को विदाई दी।

अलवर चातुर्मास अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यों के होने से स्मरणीय रहेगा। इसी समय मे संघ-ऐक्य की योजना को कार्यान्वित करने के लिये घोषणा की गई और आचार्य श्रीजी के स्वस्थ होने से समाज की चिन्ता दूर हुई। तप, त्याग, संयम आदि का जो प्रभाव जनमानस पर पड़ा, वह तो अलवर श्रीसंघ की अमरनिधि रहेगी।

संघ ऐक्य : दो विचारधारायें

एक ही आचार-विचार परम्परा के अनुगामी सन्त-संप्रदायों को एकसूत्र मे आवद्ध करने के लिये पूज्य आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा. के समय से प्रयत्न हो रहे थे। पहले सन् १९३३ में अजमेर में एक वृहत्साधु-सम्मेलन हुआ था। उक्त अवसर पर पूज्यश्री जवाहरलालजी म. सा. ने विभिन्न सप्रदायों मे विभाजित श्रमणवर्ग को एक आचार्य और एक समाचारी के आधार का शिलान्यास कर दिया था। लेकिन वैसी स्थिति नही बन सकी थी। अतः उसी समय से ही संघ-ऐक्य के लिये प्रयत्न हो रहे थे।

अलवर चातुर्मास के समय में आपका वक्तव्य प्रकाशित होते ही स्थानकवासी सन्त-सम्प्रदायो मे एकता, सम्प्रदाय-विलीनीकरण और संघ-निर्माण की योजनाओ पर चर्चा विचारणा प्रारम्भ हो गई थी। इस समय में साधु मुनिराजो मे विभिन्न प्रकार की विचारधारायें विद्यमान थी। वहुत से आचार्यों के मन में सभी सम्प्रदायो के विलीनीकरण और सर्वसम्मत ऐक्य-योजना के स्वीकृत होने मे सन्देह था कि क्या सैकडो वर्षों से चले आये संप्रदायो का विलीनीकरण हो सकेगा? अत. वे एक साथ कोई वड़ा कदम उठाने के विरोधी थे। वे चाहते थे कि फिलहाल सप्रदाय पूर्ववत् बने रहें और एकता के वदले पारस्परिक

संगठन किया जाये। यह संगठन परीक्षण के रूप में अस्थायी हो। जब यह परीक्षण सफल हो जाये और एकता की भूमिका निर्मित हो जाने पर संघ-ऐक्य का आदर्श रखा जाये। अभी ऐसा वातावरण नहीं दिखता है कि सभी सन्त-मुनिराज एक ही आचार्य के आदेश और निर्देश में रह सकें। अतः इस परिस्थिति में संगठन के लिये मध्यम मार्ग का अवलम्बन करना योग्य है।

लेकिन कुछ दूसरे सन्त एकता का पूर्ण समर्थन करते थे। उनका अभिप्राय था कि चारों ओर से एकता की प्रबल माग हो रही है। एकता की कल्पना मात्र से श्रावक-श्राविकायें हर्ष प्रकट कर रहे हैं। परिस्थितियां भी एकता के अनुकूल हैं। जब तक भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों की सत्ता रहेगी, पारस्परिक स्पर्द्धा और संघर्ष चालू रहेंगे और सम्प्रदायों में हमारी शक्ति विभाजित रहेगी तो संगठन को बल कहां से मिलेगा? सांप्रदायिक भेदभाव के विषाक्त फल हम खूब चख चुके हैं एवं चखते-चखते संघ-मानस दूषित हो चुका है। यही अवसर है कि एकता की सुधा पिलाकर संघ को पुनः स्फूर्तिमय और सजीव बनाया जाये। यदि इस बार भी हम उदारता प्रदर्शित करके एकता का निर्माण न कर सके तो श्रावकवर्ग की उग्र प्रतिक्रिया होगी। इसके सिवाय एकता के लिये उठाया जा रहा कदम आकस्मिक नहीं, वरन् पूर्व विचारित है। पूर्व में एक बार हमारे महारथी अजमेर में मिल चुके हैं। हम दूसरी बार मिल रहे हैं। अगर हर बार वातावरण के नाम पर कोई उपयोगी और क्रान्तिकारी कदम उठाने से हिचकते रहे तो कभी भी एकता के लक्ष्य को प्राप्त न कर सकेंगे।

वातावरण का निर्माण स्वयं तो होता नहीं, किन्तु हमारे मन का सुदृढ़ संकल्प और हृदय की उदार भावना ही उसका निर्माण करती है। अतएव ज्ञान, दर्शन, चारित्र की अभिवृद्धि हेतु यदि हम संघ की सेवा में अपनी समस्त महत्वाकांक्षायें समर्पित करने को उद्यत हैं और विराट संघ के उत्कर्ष में ही अपना उत्कर्ष मानने को तैयार हैं तो

फिर कोई कारण नही कि हम एकता के लिये भविष्य की ही प्रतीक्षा करते रहे। जो कर्तव्य हमारा है, उसे हमें करना चाहिये, उसका भार अगली पीढ़ी पर डालना उचित न होगा। हमे पथ का निर्माण कर देना चाहिये, जिससे भविष्य के सन्त उस पर सकुशल अग्रसर हो सकें।

वृहत्साधुसम्मेलन होने की घोषणा

इस प्रकार की विचारधाराओ के होने पर भी सघ-ऐक्य के लिये प्रयत्न करना योग्य माना जा रहा था। इसी बीच सघ-ऐक्य योजना के बारे मे पूज्य आचार्य श्रीजी के उदार विचारों की घोषणा हो चुकी थी। जिससे जनता मे आशा और उत्साह की लहर व्याप्त हो गई थी। श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरेन्स के कार्यकर्ता सम्मेलन की भूमिका तैयार करने मे सलग्न थे। उनका प्रयास सफल हुआ और सन्त-मुनिराजो की सुविधा व स्थिति को देखते हुए दिनाक २७-४-५२, स० २००९, वैशाख शुक्ला ३ से घाणेराव सादड़ी मे वृहत्साधु-सम्मेलन होने का निश्चय किया गया।

सगठन की भावना समाज मे तीव्र रूप से व्याप्त थी। अतः सम्मेलन के समय, स्थान के निश्चय से समाज मे नवस्फूर्ति के दर्शन होने लगे। सम्मेलन के समय दर्शनार्थ जाने के लिये सभी भाई-बहिन अपने-अपने कार्यक्रम नियत कर रहे थे और बहुत से मुनिराज सम्मेलन-स्थान से काफी दूर थे, लेकिन सघ ऐक्य के प्रयत्नो मे सहयोगी बनने के लिये उन्होंने भीषण गर्मी मे भी उग्र विहार करके समय से पूर्व सादड़ी पहुंचने के लिये अपने-अपने स्थानो से विहार कर दिया था।

आचार्य श्रीजी का सम्मेलन क्षेत्र की ओर विहार

पूज्य आचार्य श्रीजी स्वास्थ्यलाभ के पश्चात् अलवर से विहार कर जयपुर पधारे। उपाध्याय कवि श्री अमरचन्द जी म. जयपुर विराजते थे और प र. मुनिश्री सिरेमलजी म सा. भी दक्षिण की तरफ से विहार करते हुए जयपुर पधार गये और सम्मेलन के बारे मे वार्तालाप करते हुए वहां से अजमेर पधारे। अजमेर मे वयोवृद्ध स्थविरपद

विभूषित मुनिश्री पूरणमल जी म. सा., श्री इन्द्रमल जी म सा., श्री मोतीलाल जी म. सा. आदि साधु-सन्तों का मिलन हुआ। पंजावकेसरी मुनिश्री प्रेमचन्द जी म. भी अजमेर पधार गये थे। यहा भी सम्मेलन सम्बन्धी कुछ चर्चा-वार्ता हुई।

अजमेर से सुविधानुसार विहार करते हुए पूज्य आचार्य श्रीजी आदि सन्त व्यावर पधारे। व्यावर मे कुछ अर्से से समाज मे पारस्परिक मनोमालिन्य था, रागद्वेष की तीव्र परिणति हो गई थी। एक दूसरे के यहां जाना-आना वन्द हो गया था। इससे वहां के विवेकशील बन्धु खेद-खिन्न थे और चाहते थे कि यह मनोमालिन्य दूर होकर संघ में वात्सल्यभाव की वृद्धि हो। पूज्य आचार्य श्रीजी के समक्ष उन्होंने अपने विचार रखे। आपश्री ने पारस्परिक सघर्ष से उत्पन्न समाज की दयनीयावस्था का सकेत करते हुए वात्सल्य–वृद्धि का उपदेश दिया और साधुमर्यादानुसार निर्णय दिया। उक्त निर्णय सभी के लिये हित-मित और पथ्य था और सभी ने एक स्वर से अगीकार किया एवं व्यावर में कुछ दिन विराज कर आपश्री ने सम्मेलन के निमित्त घाणेराव सादडी की ओर विहार कर दिया।

सम्मेलन का शुभारम्भ

घाणेराव सादड़ी मारवाड़ की मरुधरा के बीच बसा एक छोटा-सा कस्वा है। ग्रीष्मऋतु के कारण मारवाड में काफी गरमी पडती है, लेकिन सम्मेलन के व्यवस्थापकों ने श्रावकों के लिए आवास, पानी आदि की बहुत ही अच्छी व्यवस्था की थी और पधारने वाले साधु-सन्तो के लिये श्री लोकाशाह जैन गुरुकुल के भव्य भवन मे विराजने तथा उसके विशाल सभाकक्ष मे सम्मेलन की बैठकें करने का प्रबन्ध किया था। बा[illegible]र से आगत दर्शनार्थियो के लिये गुरुकुल के आसपास के मैदान में सं[illegible] [illegible] बसाया गया था। [illegible] की दृष्टि से व्यवस्था के लिये [illegible] [illegible] निःसदेह उल्लेखनीय थे। लगभग १५,००० भाई-[illegible] [illegible] से दर्शनार्थ पधारे थे।

सम्मेलन-प्रारम्भ होने के एक-दो दिन पहले ही साधु-मुनि-राजो के पधार जाने और दर्शनार्थियो का आवागमन चालू हो जाने से सादडी मे चहल-पहल बढ गई।

सम्मेलन मे भाग लेने के लिये २२ सम्प्रदायो के ५१ प्रतिनिधियो सहित मुनि ३४१ और आर्याजी ७६८ पधारे थे।

पूर्व निश्चयानुसार स० २००६, वैशाख शुक्ला ३, दि० २७-४-५२ को दिन के ३ बजे सम्मेलन का शुभारम्भ हुआ। पूज्य आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. सम्मेलन की कार्रवाई को सुव्यवस्थित और सुचारु रूप से सचालित करने के लिये शातिरक्षक निर्वाचित किये गये और आपकी सहायता के लिये व्याख्यानवाचस्पति प. र. श्री मदनलालजी म सा. भी शातिरक्षक चुने गये। यह चुनाव सर्वसम्मति से हुए थे।

अनन्तर सघ-ऐक्य के उद्देश्य के सम्बन्ध मे विभिन्न मुनिराजो ने अपने-अपने विचार व्यक्त किये और सर्वानुमति से लक्ष्य— एक आचार्य के नेतृत्व मे श्रमणसघ की स्थापना – स्वीकृत हो गया तो उसकी पूर्ति के साधनो पर विचार-विनिमय प्रारम्भ हुआ।

उस समय प्रतिनिधि मुनिवरो ने भाव दर्शाये कि विभिन्न सम्प्रदाये सुदीर्घकाल के अनन्तर परस्पर मिल रही हैं, अत. लक्ष्यपूर्ति की दिशा मे क्रम-क्रम से बढना उचित होगा। प्रतिनिधियों द्वारा व्यक्त विचारो और भावनाओ को ध्यान में रखते हुए पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा ने अपनी योजना को तत्काल ही समग्र रूप से स्वीकार करने पर अधिक बल नही देकर नवनिर्मित श्रमणसघ मे सशर्त सम्मिलित होने की स्वीकृति प्रदान की।

सगठन से सम्बन्धित मुख्य मुख्य विषयो पर गम्भीरता से विचार करने के बाद मुनिराजो की संसद जब ऐक्ययोजना के बारे मे सहमत हो गई तो प्रश्न उठा—समस्त स्थानकवासी जैन सघ का आचार्य किसे बनाया जाये ? जिसके नेतृत्व में शताब्दियों से बिखरा समाज, पृथक्-पृथक् आचार्यों के निर्देशन मे चलने वाला साधु सम्प्रदाय और भिन्न-

भिन्न सम्प्रदायो के सम्पूर्ण सत्तासम्पन्न आचार्य एक रूप से आबद्ध हो सकें।

संघ ऐक्य योजना की स्वीकृति ही कठिन थी किन्तु आचार्य-निर्वाचन की समस्या तो उससे भी अधिक कठिन थी। प्राचीन और अर्वाचीन विचारधारायें आपस में टकरा रही थी, फिर भी सभी यह चाहते थे कि ऐसे महापुरुष निर्वाचित किये जाये जो समग्र संघ का योग्यतापूर्वक संचालन कर सकें और सबके श्रद्धा-केन्द्र हो।

सम्मेलन मे संघऐक्य की रूपरेखा निर्णीत हो चुकी थी और मुख्य-मुख्य प्रश्नों के बारे मे सर्वानुमति से निर्णय भी किये जा चुके थे, सिर्फ कुछ-एक छोटे-मोटे प्रश्नो पर विचार करना शेष रहा था। अतः ग्रीष्मऋतु की उग्रता और दर्शनार्थियों का जमघट विशेष होने से प्रतिनिधि मुनिराजों ने निश्चय किया कि यहां आचार्यपद पर सर्वमान्य सन्तप्रवर का चयन करके चतुर्विध संघ की उपस्थिति मे ही उन्हें आचार्य पद प्रदान कर दिया जाये और शेष प्रश्नों के सम्बन्ध मे विचार-परामर्श और निर्णय करने का अधिकार आगे होने वाले पदाधिकारी मुनिराजो के सम्मेलन को सौंपना उचित है।

सुझाव का सभी ने स्वागत किया। अतः वैशाख शुक्ला ८ को रात्रि की बैठक में आचार्य पद के लिये सुयोग्य सन्तप्रवर के चयन पर विचार प्रारम्भ हुआ। तब सबका ध्यान पूज्य आचार्य श्रीजी पर केन्द्रित हो गया। पूज्य श्री हस्तीमलजी म. सा. ने श्रमण संघ के आचार्य पद के लिये पूज्य आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. का नाम प्रस्तावित करते हुए इस आशय के भाव व्यक्त किये कि आप सब गुणो से सम्पन्न है। आपकी शास्त्रो पर प्रगाढ श्रद्धा है आप में चारित्र की दृढता है और ज्ञान की गरिमा से ओतप्रोत है। ऐसे आचार्य के नेतृत्व मे ही हम ज्ञानदर्शनचारित्र की अभिवृद्धि अच्छी तरह कर सकते हैं, अतः आपको श्रमणसंघ के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया जाये।

लेकिन पूज्य आचार्यश्रीजी ने प्रस्ताव समर्थन से बीच ही फरमाया कि आपकी भावना अच्छी है, लेकिन मुझसे बिना पूछे मेरा नाम

कैसे रख दिया ? मैं तो अपना पूर्व भार ही कम करने की सोच रहा हूँ और इच्छुक हूँ कि ज्ञान-दर्शन-चारित्र-सयम-साधना की समुचित व्यवस्था बन जाये तो अपने उत्तरदायित्व से हलका होकर आत्मसाधना मे तल्लीन होऊ। लेकिन आप लोग मुझ पर और अधिक उत्तरदायित्व डालने की चेष्टा कर रहे हैं। यह मैं अपने लिये उपयुक्त नही समझता। आप सब मुनिवरो का मेरे प्रति वात्सल्यभाव सराहनीय है और उसके लिये मैं आपका आभारी हूँ। लेकिन इस सघ-सचालन के दायित्व से मुझे विमुक्त ही रखे और अन्य किसी भी मुनिवर को इस पद पर प्रतिष्ठित किया जाये।

लेकिन सभी उपस्थित बडे-बड़े विद्वान, दीक्षावृद्ध, वयोवृद्ध और विभिन्न सप्रदायो एव गणो के सचालक अनुभवी सन्तो ने एक स्वर से पूज्यश्री की सेवा मे सानुरोध निवेदन किया कि आपश्री ही इस नव-निर्मित श्रमणसघ के आचार्य पद को स्वीकार करने की कृपा करे।

प्रतिनिधि मुनिवरो की तो एक ही प्रार्थना थी कि यह आचार्य-पद के चयन का विषय है जो समस्त मुनिवरो की भावना पर निर्भर है। वे जिनको मनोनीत करना चाहें, उसमे पूछने जैसी बात कौन-सी रह जाती है। आपश्री के चरणो में समग्र सत नेतृत्व समर्पण करना चाहते है इसीलिये सभी प्रतिनिधि-सन्त प्रस्ताव का समर्थन कर रहे हैं और आप इस नेतृत्व को अगीकार करे। अत. पूज्य श्री हस्तीमलजी म सा. द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव— पूज्य श्री गणेशलालजी म सा श्रमण सघ के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किये जायें— सर्वसम्मति से पारित हुआ।

अनन्तर पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म. सा. ने अतीव मार्मिक शब्दो मे साधु-समुदाय के समक्ष आत्मनिवेदन उपस्थित करते हुए कहा— मेरा शरीर वैसा नही रहा जैसा कि जवानो का होता है। मैं वृद्ध हो चला हूँ और रुग्ण रहता हूँ। आप वृहत् श्रमणसंघ का महान् उत्तरदायित्व मुझ पर डाल रहे हैं, आपके इस विश्वास का मैं आभारी हूँ, किन्तु उसे उठाने मे मैं कठिनता अनुभव कर रहा हूँ। अत यह

उत्तरदायित्व किसी अन्य योग्य, ज्ञानवृद्ध और उत्कृष्ट संयमी महात्मा को सौंपा जाये तो मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होगी।

पूज्यश्री की इस उदारता और महानुभावना ने एक सुन्दर और स्पृहणीय वातावरण का निर्माण कर दिया। सभी सन्त आपकी उत्कृष्ट त्यागशीलता के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने के साथ-साथ सर्वसम्मत निर्वाचन को स्वीकृति देने के लिये साग्रह अनुरोध करने लगे।

इस प्रकार जब यह प्रश्न चर्चा मे पड गया तो प्र. व. मुनिश्री सौभागमलजी म. ने एक सुझाव रखा कि पंजाब संप्रदाय के पूज्य श्री आत्मारामजी म. सा. एक माने हुए महान सन्त हैं। उनकी साहित्य-सेवा से समाज ऋणी है। अतः उनको भी कोई-न-कोई उच्चपद देना चाहिये। उन्हें भी आचार्य का पद दिया जाये तो अच्छा रहेगा। लेकिन उनके लिये यह पद सिर्फ सम्मानार्थ ही माना जायेगा और कार्य करने की समग्र सत्ता एवं अधिकार के लिये पूज्यश्री गणेशलालजी म. सा. का निश्चय हो ही चुका है।

इस पर प्रश्न उपस्थित हुआ कि दो आचार्य बनाने से तो हमारा उद्देश्य— एक आचार्य के नेतृत्व में श्रमण संघ बनाना— पूरा नहीं हो सकेगा। इसलिये उद्देश्य की पूर्ति में किसी प्रकार से व्यवधान भी न आये और पूज्यश्री आत्मारामजी म. सा. को उच्चपद भी दिया जा सके, इन दोनों बातों पर विचार करना जरूरी है।

इस पर कुछ एक प्रतिनिधि सन्तों ने कहा कि जिस प्रकार राजनैतिक क्षेत्रों में महाराजप्रमुख और राजप्रमुख शब्दों का प्रयोग किया जाता है, उसी तरह यहां भी दो शब्द निश्चित कर, पद के नामाभिधान में कुछ भिन्नता रखने से यह गुत्थी सुलझ सकती है। इस सुझाव पर सर्वसम्मति से पूज्यश्री आत्मारामजी म. सा. सम्मान की दृष्टि से आचार्यपद से विभूषित किये गये और पूज्यश्री गणेशलालजी म. सा. श्रमण-संघ-संचालन की पूर्ण सत्ता के साथ उपाचार्य पद पर निर्वाचित किये गये।

सा. इस भार को लेने के लिये सहमत नही हुए और उधर मुनिवरो के सामने दूसरा कोई विकल्प नही था । इसी विचारणा मे रात्रि काफी वीत चुकी थी अतः पुनर्विचार के लिये इस चर्चा को प्रात.काल के लिये स्थगित कर दिया गया ।

पूज्य आचार्य श्री गणेशलालजी म सा ध्यान आदि कर श्रमापहार हतु शयनासन पर आसीन भी हुए किन्तु विचार-तरगो में निद्रा नही आई और परिस्थिति के विचारो मे निमग्न रहे । इसी प्रकार प्रतिनिधि मुनिवरो के मनो मे भी अन्तर्द्वन्द्व चलता रहा । रात्रि के तीसरे पहर करीव तीन वजे होगे कि प्रमुख सन्तो मे से एक के बाद एक आपश्री के निकट एकत्रित होने लगे और उन्होने हर प्रकार से प्रार्थना की, आश्वासन दिये कि आपश्री नेतृत्व सम्भालने की स्वीकृति फरमावे । आप यदि इस पद को स्वीकार नही करेंगे तो यह सगठन नही बनेगा । हम सभी जनसाधारण मे भी हास्यास्पद माने जायेगे कि इतने वडे साधु-समुदाय मे नेतृत्व सम्भालने वाले सक्षम सन्तप्रवर के नही होने से संगठन नही वन सका ।

कई एक का तो इस स्थिति के कारण गला भर आया और आसू वहाते हुए वोले—हम सव आपका अनुशासन चाहते हैं, आप जो भी आदेश देंगे, सहर्ष पालन करेंगे और क्रियात्मक रूप देंगे । सुबह की बैठक मे आपको इस पद के लिये स्वीकृति देनी ही पडेगी ।

वार्तालाप करते-करते प्रात.काल हो गया था और प्रतिक्रमण आदि का समय हो जाने से निश्चय किया गया कि प्रात कालीन बैठक मे इस चर्चा को पुनः आरम्भ किया जाये ।

प्रातकालीन दैनदिनी कृत्यों से निवृत्त होने के अनन्तर प्रतिनिधि मुनिवरो की वैठक प्रारम्भ हुई । वातावरण मे गम्भीरता थी । विचारो मे डूवे मनों की परछाइं वोली और मुखो पर झलक रही थी ।

मगलाचरण के पश्चात आचार्यपद-स्वीकृति की अधूरी चर्चा पुनः प्रारम्भ हुई । उपाध्याय कविरत्न श्री अमरचन्दजी म. ने समस्त

प्रतिनिधि मुनिवरों की ओर से पूज्य आचार्य श्रीजी के प्रति भावभीनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए प्रासंगिक वक्तव्य दिया—

'मैं दो वर्षों से पूज्यश्री के परिचय में आया हूँ। आगरा और देहली मे मुझे चरणसेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ है। मैंने सुन रखा था कि पूज्यश्री चट्टान की तरह कठोर हैं व अनुशासन मे पूरे कड़क कदम उठाते है। परन्तु प्रत्यक्ष दर्शन करने और सेवा में रहने का प्रसंग आने पर मुझे अनुभव हुआ कि अनुशासन के नाते जितने कठोर हैं, उससे ज्यादा नरम एवं उदार भी हैं। हमने आचार्य श्री आत्मारामजी म. को नियत किया है परन्तु शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा न होने के कारण वे एक स्थान मे ही केन्द्रित हैं। उनकी साहित्य-सेवा से संघ ऋणी है। इसी हेतु से उनके प्रति श्रद्धा एवं सद्भावना प्रकट की गई है। परन्तु हमारे विराट संघ को अनुशासित करने के लिये योग्य आचार्य की आवश्यकता है जो साधु-साध्वी और श्रावक संघ मे श्रद्धा एवं प्रेम की लहर पैदा कर सके। हम देखते आ रहे हैं कि छोटे-मोटे साधुओं के आचार्य चुने जाते हैं, उसमे भी एकाध व्यक्ति अड़े रहते हैं। परन्तु अखिल भारतवर्ष के लिये आपको सर्वानुमति से नियत कर रहे हैं। मुनिमंडल आपके अनुशासन की आवश्यकता महसूस करता है। अतः मैं निवेदन करूंगा कि आप हमारी तुच्छ प्रार्थना को जरूर स्वीकार करेंगे।

'आपके पीछे फौज तैयार है। आप जो भी आज्ञा प्रदान करेंगे, हम उसे मूर्तरूप देंगे। बहुत दिनों का बिछुड़ा हुआ संघ मिलता है तो कठिनाई जरूर आ सकती है, परन्तु आचार्यश्री ! आप उदार एवं अनुभवशील हैं। ऊंची-नीची भावनाओं को परखने वाले भी हैं और आपके नीचे आपके कार्यभार को संभालने के लिये मन्त्रीमण्डल रहेगा। वह व्यवस्थित रूप से सारा कार्य संभालेगा। अतः मैं आचार्य श्री से प्रार्थना करता हूँ कि वे उपाचार्य पद को स्वीकार कर लें।'

प्रतिनिधि मुनिवरों की ओर से जब उपाध्याय श्री अमरचन्दजी

म. उक्त वक्तव्य दे चुके तो सबके चेहरों पर मन्द मुस्कान मुखरित हो उठी। पूज्य आचार्य श्रीजी भी उस प्रेममय वातावरण मे अपने आपको अलिप्त नही रख सके और सब मुनिवरों के प्रेमभरे आग्रह और सहयोग के आश्वासन को मान देकर श्रमण सघ के नेतृत्व को सुशोभित करने के लिये आपने अपनी स्वीकृति प्रदान की।

जब पूज्य आचार्य श्रीजी अपनी स्वीकृति फरमा चुके तो सब मुनिवरो की ओर से मरुधरकेशरी श्री मिश्रीमलजी म. ने पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. की सेवा मे अभिनन्दन अर्पित करते हुए निम्नलिखित वक्तव्य दिया—

"अत्यन्त खुशी का समय है कि अखिल भारतवर्षीय स्थानकवासी जैन समाज के लिये सर्व-सम्मति से आचार्य का चुनाव हो गया है। सादडी के लिये हम लोग रवाना हुए और यहां तक पहुंचे, तब तक लोग यही कहते थे कि महाराज दिन पूरे क्यो करते हो ? किन्तु शासनदेव की कृपा से कहिये या विकास और सगठन का समय पक चुका, इस कारण कहिये आज हम सर्वसम्मत होकर महर्ष आचार्य की नियुक्ति कर सके हैं। विशेष प्रसन्नता की बात यह है कि जैनजगत के चमकते सितारे पूज्यश्री गणेशलालजी म ने इस पद को स्वीकार करके हमे कृतज्ञ किया है। एतदर्थ मुनिमण्डल की ओर से उन्हें कोटिशः धन्यवाद प्रदान करता हूँ।'

इस प्रकार जब आह्लादमय वातावरण में चुनाव का कार्य सम्पन्न हो गया तो निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया गया—

'आचाय पद चद्दर की रस्म वैशाख शुक्ला १३, स० २००६, बुधवार को दिन के ११ बजे अदा की जावेगी। इसके पूर्व सर्व मुनि प्रतिज्ञापत्र मयदस्तखत के तैयार रखेगे जो आचाय पद पर विराजते ही आचार्यश्री के चरणो मे भेट कर देंगे।'

आचार्य पद का चुनाव हो जाने के बाद अन्यान्य व्यवस्थाओं के लिये मन्त्रीमण्डल के १६ सदस्यों का चुनाव हुआ। जिसमे प्रधा[illegible]-

मन्त्री प मुनिश्री आनन्दऋषि जी म सा. निर्वाचित किये गये एवं अन्य १५ प्रमुख सन्तों को सहमन्त्री चुना गया और उन–उनके कार्य निश्चित कर दिये गये।

इस प्रकार श्रमणसघ के व्यवस्था-सम्बन्धी निर्णय लिये जा चुके थे तथा समाचारी-सम्बन्धी मुख्य-मुख्य धारायें तो बन चुकी थी लेकिन उन धाराओ मे अभी कुछ चर्चनीय होने से विचार करके निर्णय के लिये किसी योग्य स्थान पर व्यवस्थापक मण्डल का सम्मेलन करने का निश्चय किया गया।

सम्मेलन के अवसर पर श्री अ. भा. श्वे स्थानकवासी जैन कान्फरन्स का अधिवेशन बम्बई धारासभा के अध्यक्ष श्री माऊ सा. कुन्दनमल जी फिरोदिया की अध्यक्षता में हुआ। श्री फिरोदिया जी श्रावक-श्राविकाओं की ओर से सम्मेलन की कार्रवाई मे दर्शक के रूप मे भाग लेते थे। सम्मेलन की सुव्यवस्थित कार्रवाई को देखकर आपने प्रशंसा करते हुए कहा था कि इतनी व्यवस्था तो धारासभा की कार्य-प्रणाली में भी मुझे देखने को नहीं मिली है तथा वैशाख शुक्ला ३ से १२ के मध्य पूर्ण हुई सम्मेलन की कार्रवाई का विवरण उपस्थित श्रावक-श्राविकाओ को बतलाया।

आचार्य-पदारोहण महोत्सव

सम्मेलन में पारित प्रस्तावानुसार वैशाख शुक्ला १३ को दिन के ११ बजे श्री लोकाशाह जैन गुरुकुल के प्रागण में आचार्य पद की चादर समर्पित करने का समारोह आयोजित किया गया।

इस समारोह को देखने के लिये प्रातःकाल से ही दर्शकों का आवागमन प्रारम्भ हो गया था और दस बजे तक तो करीब पैंतीस-चालीस हजार भाई-बहिनों की उपस्थिति हो चुकी थी। लेकिन अभी भी दर्शक-दर्शकों के आने का क्रम जारी था।

सन्त-सतियां जी म. अपने-अपने योग्य स्थान पर विराज रहे थे और अब प्रमुख मुनिराजों के साथ पूज्य आचार्य श्री गणेशलालजी

म सा. का पदार्पण हुआ तो दर्शकों ने जयघोष से स्वागत करते हुए अभिनन्दन किया।

पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार समारोह का शुभारम्भ हुआ। उस समय का दृश्य तो दर्शनीय ही था जब उच्चकोटि के संतो, आचार्यों, उपाध्यायो, प्रवर्तको आदि ने स्वहस्ताक्षरित प्रतिज्ञापत्र के साथ अपनी-अपनी पदविया सघऐक्य के आदर्श को फलितार्थ करने के लिये समर्पित करना प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम चरित्रनायक पूज्य आचार्य श्रीजी ने स्वय अपना प्रतिज्ञापत्र प्रस्तुत किया। अनन्तर पंजाब-सम्प्रदाय के आचार्य श्री आत्माराम जी म. सा. का आचार्यपद के परित्याग का पत्र और सघऐक्य योजना के अनुसार व्यवहार करने का सन्देश पढकर सुनाया गया। सन्देश मे संघ-ऐक्य के लक्ष्य को फलितार्थ करने के लिए अन्तरात्मा के स्वर सकलित किये गये थे।

इस कार्य के सम्पन्न होने के अनन्तर समस्त मुनिराजों की ओर से प्रतिनिधि मुनिवरो ने आचार्यपद की चादर पूज्य आचार्य श्री गणेशलाल जी म सा. को ओढाई। विभिन्न मुनिराजो ने प्रासगिक प्रवचन फरमाये। जिनमे एकता के सूत्र को सुदृढ, समृद्ध और पल्लवित करने की भावना के स्वर गूंज रहे थे।

सम्मेलन के प्रति जनभावना

बृहत्साधुसम्मेलन की योजना ने समस्त जैन समाज का ध्यान आकर्षित किया था। अतः सभी मे इसका फलितार्थ जानने की उत्सुकता थी। सम्मेलन से लौटकर जाने वाले दर्शनार्थियो से मिलने वाले प्रायः प्रश्न पूछते थे कि सम्मेलन में क्या हुआ? सम्मेलन के मुख्य मुख्य प्रस्तावो के बारे मे बतलाओ और आचार्यपद किन सन्तप्रवर ने सुशोभित किया है? समस्त जैन पत्रों और अग्रणी कार्यकर्ताओ ने सम्मेलन की सम्पूर्ण कारंवाई की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए आशा व्यक्त की कि वह दिन दूर नही, जब समस्त जैन बन्धु एकता के सूत्र मे आबद्ध होकर जिनशासन की विश्वव्यापी प्रभावना करने मे सफल होगे।

प्रस्ताव का अमल

संगठन का शंखनाद होने के पूर्व श्रमणवर्ग पृथक् पृथक् सम्प्रदायो में विभक्त था। मूलभूत सिद्धान्त, मान्यतायें और आगम आदि एक समान होने पर भी कतिपय सम्प्रदायो मे पारस्परिक वदन व्यवहार होना तो दूर रहा, सभाषण करने का भी व्यवहार नही था। सम्मेलन मे इस परिस्थिति पर विचार-चर्चा करके पारस्परिक सम्बन्धो को चालू करने का निर्णय किया गया था। फिर भी सदियों पुराने भेदभाव को मिटाकर परस्पर मे अपनत्व की भावना का विस्तार करने एव अन्यान्य दीक्षावृद्धो को अपने ही गुरुजनो के समान वदना और सत्कार करने मे सकोच दिखलाई देता था।

लेकिन इस सकोच को दूर करने का श्रीगणेश स्वय चरित-नायक पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा के अपनी ओर से किया। व्यक्ति का वास्तविक विकास पद से नही, अपितु आन्तरिक सद्वृत्ति, विराट, एवं भव्य अन्तरात्मा से होता है और यही जगत के लिये कल्याणकारी है। आपने नवनिर्माण के समय भविष्य की उज्ज्वल कल्पना को दृष्टि मे रख कर पुरानी स्थिति को गौण कर दिया था। आपश्री की विनय, सेवावृत्ति, स्नेहशीलता, सौजन्य शिष्टता और सद्भावना के फलस्वरूप सैकड़ों वर्षों से पृथक् पृथक् संप्रदायो मे विभक्त सन्तो मे अपनेपन का भाव उत्पन्न हुआ और समग्र सघ एक प्राणचेतना से परिस्पन्दित होने लगा।

पूज्य आचार्य श्रीजी ने सघोत्थान सम्बन्धी निजी विचारो का सम्मेलन के समय विशद रूप से व्यक्त किया था और विभेदक कारणो को दूर करने के लिये प्रत्येक पूर्व सम्प्रदाय मे एक दूसरे सम्प्रदाय के मुनिराजो का सयुक्त रूप मे चातुर्मास कराना आवश्यक समझा था और इस प्रवृत्ति को आपने अपने से ही प्रारम्भ किया।

पूज्य आचार्य श्रीजी का स० २००९ का चातुर्मास उदयपुर था और आपके साथ ही स्थविर श्री प्यारचन्द जी म सा. जो जैन-दिवाकर श्री चौथमलजी म. के शिष्य थे, का भी चातुर्मास हुआ। इस

चातुर्मास की ऐतिहासिक महत्ता थी । वैसे तो पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी म. सा. की सप्रदाय के आचार्य के रूप मे पहले भी आपश्री के अनेक चातुर्मास उदयपुर में हो चुके थे लेकिन समस्त स्थानकवासी जैन साधु-साध्वियो के सर्वसत्ता-सम्पन्न आचार्य के रूप मे यह प्रथम चातुर्मास था । उदयपुर श्रीसघ मे अभूतपूर्व उत्साह व्याप्त था । आचार्य श्रीजी के दर्शनार्थ एव प्रवचन-प्रमाद की प्राप्ति के लिये प्रतिदिन बाहर के सैकडो भाई-बहिन आते रहते थे और कितनेक तो समस्त चातुर्मास काल को यहा ही व्यतीत करने के लिये बस गये थे ।

चातुर्मास काल में सहमन्त्री श्री प्यारचन्द जी म. ने अपने भाव व्यक्त किये थे कि हमारे इतने वर्ष दूर रहने से मनो मे कई तरह की भ्रान्तिया थी। लेकिन निकट मे रहने से वे सब भ्रातिया दूर हुई और आचार्य श्रीजी के हृदय को नजदीक से समझ पाया हूँ । आपश्री के वर्ताव ने मुझे श्री जैनदिवाकर जी म. को भुला दिया है । अब चाहे कुछ भी हो, हम कभी अलग नही होगे । कदाचित श्रमणसघ विखर सकता है किन्तु पूज्य श्री हुक्मीचन्द जी म. की सम्प्रदाय नही विखर सकती । आपश्री जो भी हुक्म देंगे, हम उसको शिरोधार्य करेंगे। यदि मुझे धूप मे खड़ा कर देंगे तो भी मैं कोई तर्क नही करूंगा । हमारी आप पर पूर्ण श्रद्धा हो गई है ।

नवनिर्मित श्रमणसघ की व्यवस्था मे दृढता लाने के लिये विचारविमर्श की आवश्यकता थी । अत. वर्षावास काल मे भी सहमत्री मुनि श्री प्यारचन्द जी म. से व्यवस्था-विषयक अनेक बातों पर विचारो का आदान-प्रदान हुआ था । इसी प्रसग में यह भी विचार किया गया कि मन्त्रिमण्डल की एक बैठक होना चाहिये, जिससे सघव्यवस्था मे रही हुई कमियो का परिमार्जन किया जा सके और सगठन के आदर्श की पूर्ति हो सके ।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रयत्न प्रारम्भ हुए और निर्णय किया गया कि चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात मन्त्रिमण्डल का सम्मेलन

आयोजित किया जाये। अत. अधिकारी मुनिवरो के विचार-परामर्शानुसार स० २००९, माघ शुक्ला २, दि० १७-१-५३ से सोजत मे मन्त्रि-मण्डल का सम्मेलन किये जाने का निश्चय करके सब अधिकारी मुनिराजों को इसकी सूचना भिजवा दी गई।

चातुर्मास में श्रोतओ ने प्रवचनो का लाभ उठाया और अत्यधिक प्रभावित हुए। इन्ही दिनो मे श्री सेठ लक्ष्मीचन्द जी घाडीवाल के ज्येष्ठ भ्राता श्री नथमलजी घाडीवाल की सुपुत्री श्री सूरजकवरबाई की भागवती दीक्षा सम्पन्न हुई।

मन्त्रिमण्डल-सम्मेलन के पूर्व

चातुर्मास धार्मिक प्रभावना के साथ सानन्द सम्पन्न हुआ और मगसिर कृष्णा १ को आचार्य श्रीजी म. सा. सन्तमण्डली के साथ उदयपुर नगर से विहार कर हाथीपोल के बाहर शासकीय अधिकारी श्री भभूतमल जी के बगले पर पधारे। वहा पर पाली के कवि श्री हस्तीमल जी और श्री ताराचन्द जी ने आचार्य श्रीजी के गुणगान करते हुए कवितापाठ किया एव अन्य कई व्यक्तियों ने भी आचार्य श्रीजी की सेवा में प्रांजल भावो से समन्वित अपने-अपने हृदयोद्‌गार व्यक्त किये।

दूसरे दिन प्रातःकाल वहा से विहार करके आचार्य श्रीजी म. सा आदि सन्त नाई गांव पधारे और वहा एक-दो दिन विराजकर पुनः उदयपुर की प्रसिद्ध शिक्षणसंस्था विद्याभवन में पधारे और विद्यार्थियो एवं प्राध्यापको के समक्ष, शिक्षा संस्कृति आदि के सम्बन्ध में मननीय प्रवचन फरमाया और वहा से विहार कर भुवाना पधारे और जैन मन्दिर मे विराजे।

दूसरे के उत्कर्ष एव प्रभाव को सहन नही करने वाले कतिपय कलहप्रिय व्यक्ति सभी जगह होते है। उदयपुर में भी कुछ एक ऐसे व्यक्ति थे, जिन्हें चातुर्मास काल मे होने वाले प्रवचनो का प्रभाव, आचार्य श्रीजी के प्रति जनता की श्रद्धा-भक्ति, भागवती दीक्षा के समारोह की भव्यता सहन नही हुई और ईर्ष्या-द्वेष की प्रतिक्रिया को व्यक्त

करने के लिये अवसर की टोह में रहते थे ।

उदयपुर मे तो इन व्यक्तियो को अवसर नही मिल सका । किन्तु भुवाना गांव मे वे अपनी मनोवृत्ति का प्रदर्शन करने से नही चूके । उन्होंने मन्दिर मे आकर शोरगुल मचाना चालू कर दिया कि भगवान के मन्दिर मे ये साधु क्यो ठहर गये हैं ? इनके यहा ठहरने से भगवान की आसातना होती है । यहा साधुओ को आहार-पानी, उठना-बैठना आदि नही करना चाहिये ।

उन अनर्गल प्रलाप करने वालो को समझाते हुए आचार्य श्रीजी म. सा. ने फरमाया कि भगवान ने चतुर्विध सघ की स्थापना की है । जिसमे साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका चारो तीर्थ आ जाते हैं । भगवान के पास बहुत से गणधर आदि सत विराजमान थे । वे उन्ही के पास बैठकर आहार-पानी करते थे और उन्ही की चरणछाया मे शयन आदि क्रियाये होती थी तो वहा साक्षात् भगवान की आसातना नही होती, बल्कि उनकी भक्ति और सेवा का दृश्य रहता था । जब कि यहा पर तो प्रतिमा है और वह भी खास मन्दिर के भाग मे है । वहां पर सन्तो के बैठने का प्रसग ही नही आता है। बाहर के भाग मे जहां पर आप लोग भी बैठते-उठते हैं, वहा पर सत ज्ञान-दर्शन-चारित्र की वृद्धि करते हुए रहते है। इसमें आसातना जैसी कौन-सी बात है ?

आचाय श्रीजी के शात, गंभीर और युक्तियुक्त वचनो को सुनकर वे कलहप्रिय निरुत्तर हो गये और आचार्य श्रीजी के समक्ष विशेष न बोलते हुए पास ही मन्दिर के प्रांगण मे जहा अन्य सन्त बैठे हुए थे, आकर हो-हल्ला मचाने लगे कि यहा से बाहर निकलो, हम भगवान की पूजा करना चाहते हैं । इस स्थिति को देखकर भुवाना के श्री सोहनलाल जी आदि कुछ प्रमुख श्रावको ने शान्ति रखने का संकेत करते हुए उन भाइयो को समझाया कि आप पूजा करना चाहते हैं तो खुशी से कीजिये । संत महात्मा तो एक तरफ विराजमान हैं । उनसे आपको क्या लेना-देना है !

लेकिन उन लोगो का पूजा करना तो केवल बहाना था। वास्तव मे उन्हें तो अपने मन की ईर्ष्या और द्वेष का प्रदर्शन करना था और चातुर्मास काल मे आचार्य श्रीजी के प्रवचनो से जनता मे हुए प्रभाव को धूमिल करना चाहते थे। ये सब बातें पूर्व नियोजित कार्यक्रम की अंग थी, जिसको तटस्थ दर्शक प्रकारान्तर से समझ गये।

कलहप्रिय व्यक्ति फिर भी शात नही हुए और मन्दिर के द्वार पर आकर पुनः ही हल्ला मचाना चालू कर दिया और जबरदस्ती मन्दिर मे प्रवेश करने का प्रयास करने लगे। तब श्री सोहनलाल जी ने पुनः उन लोगो को समझाने और शान्ति रखने का प्रयत्न किया कि आप लोगो को पूजा करना है तो शाति से कीजिये। लेकिन उन्हे तो किसी भी प्रकार से शान्तिभग करना अभीष्ट था और पूर्व निर्धारित योजनानुसार पुलिस को भी बुला लिया एवं मारपीट, दगे का रूप देने का प्रयास किया।

पुलिस अधिकारी ने आकर सारी स्थिति का गहराई से निरीक्षण किया और पूछा कि इस मन्दिर की मालकी किसकी है? श्री सोहनलाल जी आदि श्रावको ने बताया कि यह मन्दिर हमारा है, हम भुवानावासियो की मालकी का है। ये आने वाले उदयपुर के निवासी हैं और यहा इनका कोई अधिकार नही है। फिर भी ये यहा आये हैं तो लाठी आदि से रहित होकर शान्तिपूर्वक मन्दिर मे जाना चाहें, जा सकते है। लेकिन पूजा न करके अशाति फैलाने का प्रयत्न करना योग्य नही है।

पुलिस अधिकारी ने सही स्थिति को समझ लिया और आये हुए कलहप्रिय लोगों को उपालंभ देते हुए उदयपुर की ओर रवाना कर दिया। ये लोग आये तो थे उपद्रव करने की भावना से, लेकिन आचार्य श्रीजी म. सा. की शांति, गंभीरता एवं भुवाना संघ के विवेकशील सज्जनो की दृढता और शिष्टता से अपने प्रयत्न मे सफल नहीं हुए और लज्जित होकर निराश लौटना पड़ा। विवेकहीनता का ऐसा

ही कटु परिणाम होता है ।

भुवाना मे सुखेसमाधे विहार कर सीरवा के घाटे पर एक मकान मे रात्रि विश्राम किया और वहां के चौकीदार ने आपके हितोपदेश को सुनकर मद्यमास आदि का त्याग किया । दूसरे दिन प्रातःकाल वहां से विहार कर एकलिंगजी पधारे। एकलिंगजी वैष्णव समाज का तीर्थस्थान माना जाता है । उदयपुर राज्य मे एकलिंगजी की गादी मानी जाती है । वहा के महन्त की वैष्णव समाज मे बडी प्रतिष्ठा है । वहा एकलिंगजी के मन्दिर मे आचार्य श्रीजी का एक प्रवचन हुआ ।

एकलिंगजी से विहार करके देलवाड़ा पधारे और प्रधानमन्त्री श्री आनन्दऋषिजी म से श्रमण सघ के सम्बन्ध मे विचार विमर्श हुआ । प्रधानमन्त्रीजी ने सघ विषयक कई उलझन भरी समस्याये रखी, जिनका आचार्य श्रीजी म सा. ने समाधान किया ।

देलवाडा मे कुछ दिन विराजने के पश्चात वहां से विहार कर नाथद्वारा पधारे । यहा पर भूतपूर्व मेवाड सप्रदाय के सन्तो व भूतपूर्व मेवाड सम्प्रदाय से अलग हुए सन्तो के बीच मनमुटाव था । उस समस्त स्थिति को आचार्य श्रीजी म. सा. की सेवा मे निवेदन किया गया । जिसका आपश्री ने -योग्य रीति से समाधान करके परस्पर मे खमतखामना कराया । यहा पर सेवाभावी मुनिश्री इन्द्रचन्दजी म सा. के अस्वस्थ हो जाने से प० मुनिश्री नानालालजी म. सा. (वर्तमान आचार्य श्रीजी) को सेवा मे रखकर आचार्य श्रीजी म. सा. विहार करते हुए सेवाज पधारे । बाद मे स्वस्थ होने पर सेवाभावी मुनिश्री इन्द्रचन्दजी म. सा. एव प० मुनिश्री नानालालजी म सा भी सेवा मे पधार गये ।

इन दिनो आचार्य श्रीजी म. सा. की भी शारीरिक स्थिति कमजोर चल रही थी । अत. आचार्य श्रीजी म सा. सोच रहे थे कि सघ सचालन सम्बन्धी कार्यभार अन्य किन्ही मुनिराज को सौंप कर आत्मसाधना में लगूं । लेकिन जब यह बात समाजदर्शी वरिष्ठ श्रावकों

एवं सन्तों को मालूम हुई तो उन्होंने आपश्री से ऐसा नहीं करने की प्रार्थना करते हुए साग्रह निवेदन किया कि बड़ी मुश्किल से श्रमणसंघ बना है और वह भी आपके इस भार को ग्रहण करने से ही। यदि आपश्री अभी से ही इस भार को छोड़ देते हैं तो यह सब कुछ बिखर जायेगा और दूसरे लोग हंसी उड़ायेंगे। क्योंकि आपके अलावा इस समय सबके विश्वासपात्र अन्य कोई मुनिवर नहीं हैं। कुछ संत राजनैतिक दलों की तरह पैंतरेबाजी में लगे हुए हैं। अतः आपको इस नाजुक स्थिति में इस भार को कतई नहीं हटाना चाहिये।

इन प्रार्थनाओं पर आचार्य श्रीजी म. सा. ने गंभीरता से विचार किया और अपनी शारीरिक स्थिति को गौण कर दिया।

मन्त्रिमण्डल का सम्मेलन

मन्त्रिमण्डल के समय व स्थान को ध्यान में रखते हुए आचार्य श्रीजी म. सा. मेवाड़ के विभिन्न क्षेत्रों को धर्मदेशना से पावन बनाते हुए सोजत की ओर विहार कर रहे थे। अन्य अधिकारी संत-मुनिराजों ने भी यथासमय सोजत पधारने के लिये चातुर्मास-समाप्ति के अनंतर अपने-अपने क्षेत्रों से विहार कर दिया।

पूर्व निश्चयानुसार सं० २००६, माघ शुक्ला २ से आचार्य श्रीजी म. सा. के नेतृत्व में मन्त्रिमण्डल की बैठक प्रारम्भ हुई। सम्मेलन में सचित्ताचित्त-निर्णायक समिति के ६, तिथिनिर्णायक समिति के ८ एवं मन्त्रिमण्डल के ११ सदस्य मुनिराजों या उनके प्रतिनिधि संतों के अतिरिक्त विशेष रूप से आमन्त्रित पं० मुनिश्री समर्थमलजी म., पं० मुनिश्री मदनलालजी म., कवि श्री अमरचन्दजी म. उपस्थित थे।

प्रतिदिन प्रातः ६ से १०॥ और दोपहर १ से ३ बजे तक पूज्य आचार्य श्रीजी की अध्यक्षता एवं व्या. वा. मुनिश्री मदनलालजी म. सा. की सान्निध्यता में मन्त्रिमण्डल तथा दोनों निर्णायक समितियों का कार्य संयुक्त रूप से चला।

प्रत्येक विचारणीय विषय पर सुन्दर विचारविमर्श हुआ।

सचित्ताचित्तनिर्णय और ध्वनिवर्धकयन्त्र को लेकर समाज में खूब ऊहापोह चल रहा था। उनका समाधान होना आवश्यक था। नवीन और पुरातन विचारधाराओ मे भी मेल बैठाना आवश्यक था। सोजत मे दोनो धाराओ के गुणावगुणो के निरीक्षण का अवसर प्राप्त हुआ।

ऐसे समय मे आचार्य श्रीजी की समता और उदारता अनायास ही सबके सामने झलकती रहती थी। आपश्री का आदर्शों के प्रति प्रगाढ़ स्नेह था। तप त्याग ही आपके साधकजीवन के एक मात्र भोजन थे। सयम ही आपके जीवन का श्वास था।

दृष्टिकोणो की विभिन्नता के कारण आपका किसी से विरोध नही था, द्वेष नही था, किन्तु सभी दृष्टिकोणो को भलीभांति समझने की एक सरल जिज्ञासा आप मे सतत विद्यमान रहती थी। आपके मन की मृदुता वार्तालाप करने वाले के मन मे असद्भाव उत्पन्न नही होने देती थी किन्तु वार्तालाप करने के पश्चात प्रत्येक व्यक्ति को अपने विचारो का पुनर्निरीक्षण करने की इच्छा होती थी। यही कारण है कि आपसे मतभेद रखने वालो मे भी आपके प्रति मनभेद उत्पन्न नही होता था। अपनी इस उदारवृत्ति के कारण ही आप सघ-संगठन के साधक और शाति के सन्देशवाहक के रूप मे प्रसिद्ध रहे।

सम्मेलन में बहुत से प्रश्नो पर निर्णय हो चुका थे। मन्त्रिमण्डल के कार्यों का विभाजन हो चुका था। लेकिन अभी भी कुछ ऐसे प्रश्न शेष रह गये थे जिन पर शास्त्रीय दृष्टि से विचार करना आवश्यक था। इसके बारे मे सोचा गया कि आचार्य श्रीजी के नेतृत्व मे कविवर्य श्री अमरचन्दजी म., व्याख्यानवाचस्पति श्री मदनलाल जी म. सहमन्त्री श्री हस्तीमल जी म., प्र. मन्त्री श्री आनन्दऋषि जी म., और पं० र श्री समर्थमल जी म. का सयुक्त रूप से आगामी चातुर्मास किसी एक स्थान पर कराया जाये और उस समय फिर न प्रश्नो के बारे मे चर्चा करके निर्णयात्मक रूप चतुर्विध सघ के समक्ष रख दिया जाये।

पूज्य आचार्य श्रीजी से इस सम्बन्ध मे स्वीकृति मागने पर आपने फरमाया कि विचार स्तुत्य है लेकिन सयुक्त चातुर्मास मे विचारणीय विषयो की रूपरेखा, तत्सबन्धी शास्त्रीय प्रमाण आदि की तैयारी हो जाना चाहिये। रूपरेखा व्यवस्थित होने पर मैं इसके बारे में कुछ निश्चयात्मक कह सकता हूँ। सत-मुनिराजों ने आपके विचारो को महत्त्वपूर्ण माना और कहा कि आपके विचारानुसार कार्य की रूपरेखा तैयार कर ली जायेगी।

इस सम्मेलन मे तेतीस विषयों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण निर्णय किये गये और उनमे से पच्चीस निर्णयों को चतुर्विध सघ की जानकारी के लिये यथासमय घोषित कर दिया गया। सम्मेलन दि० १०-१-५३ को समाप्त हुआ।

मैत्री और शांति के दूत

सोजत सम्मेलन के अवसर पर विभिन्न श्रीसघों ने पूज्य आचार्य श्रीजी से अपने-अपने क्षेत्र पावन करने की विनतियां की। उनमे ब्यावर श्रीसघ भी एक था। उसने अपनी प्रार्थना मे कहा—भते ! हम पर भी कृपा कीजिये . ब्यावर का सामाजिक विरोध सघ-सगठन मे चट्टान की तरह बाधक बन रहा है। आपकी पीयूषवर्षी वाणी द्वारा स्नेहसुधा का सिंचन होने से वहाँ एकता स्थापित हो सकती है। अतएव हमारी प्रार्थना स्वीकार करके ब्यावर पदार्पण कीजिये। हमारा पथ प्रदर्शन कीजिये। आपका पुण्य पदार्पण हमारे लिये मगलमय होगा। महापुरुषो का सहवास महानता का महोत्सव है।

जब मनुष्य स्वार्थपरक विचारो से प्रभावित होकर सग्रह की भावनाओ में लिप्त हो जाता है तो वह उन साधनो को एकत्रित करने मे व्यस्त रहता है, जिससे समूहगत साधनो का व्यक्तिमूलक रूप रह जाये। इस स्थिति मे विषमता का जन्म होने से सभी दुखी होते है। स्वाभाविक सरलता, मृदुता एव आनन्द का रूपान्तरण हो जाता है और स्वार्थ का आवरण अनेक समस्याओ को जन्म देता है जो नैतिक मूल्यो

के विकास को अवरुद्ध कर देता है। लेकिन महापुरुषो की यह विशेषता है कि वे उस विषमता मे समता, समस्या मे समाधान और शांति का सृजन करते हैं। उनकी अन्तर्मुखी वृत्ति आधारभूत तथ्यो पर प्रकाश डालकर सदैव निकट से निकटतर और निकटतम आने के लिये अनुप्रेरित करती रहती है।

पूज्य आचार्य श्री का हृदय नवनीत-सा कोमल था। आपने सब सुना और गुना। आपने सोचा— व्यावर में ईर्ष्या-द्वेष की आग धधक रही है और वहा से उठने वाली ज्वालायें आस पास के क्षेत्रों को भी सतप्त कर रही हैं। लोग कषाय से प्रेरित होकर व्यर्थ ही कर्म-बध कर रहे हैं। उनके चित्त में शाति स्थापित हो, मैत्रीभावना का विकास हो, स्वधर्मी-वात्सल्य का विस्तार हो और सघ से द्वेष दूर हो जाये तो उत्तम रहेगा। यह सोचकर आपश्री ने व्यावर सघ की प्रार्थना को स्वीकार कर यथावसर वहाँ पहुंचने के भाव व्यक्त किये।

व्यावर सघ की विनती मे आत्मवेदना की अभिव्यक्ति का स्वर सजोया गया था। लेकिन उसमे इतना विश्वास भी विद्यमान था कि पूज्यश्री के पदार्पण से हमारा ईप्सित प्राप्त होगा। विनती की तत्काल स्वीकृति को व्यावर श्रीसघ ने शांति और मैत्री के लिये शुभ शकुन माना।

सोजत से विहार कर क्रम-क्रम से विभिन्न क्षेत्रो में विशिष्ट उपकार करते हुए पूज्य आचार्य श्रीजी व्यावर नगर के वहिर्भाग मे आ पहुचे और एक योग्य स्थान मे ठहर गये। सभी सज्जन आपके आगमन की टकटकी लगाये राह जोह रहे थे। शुभागमन की अगवानी करने के लिये सेवा मे उपस्थित हुए लेकिन आपश्री ने फरमाया—जब आपके सघ मे पारस्परिक शांति स्थापित हो जायेगी, तभी हम सन्तो का नगर में प्रवेश होगा।

आचार्य श्रीजी का यह निर्णय व्यावर श्रावक सघ के लिये आत्मनिरीक्षण का अवसर वन गया कि हमारे अहोभाग्य से महान

तों का पदार्पण हमारी नगर-सीमा तक तो हो चुका है लेकिन पसी फूट, कलह और द्वेष का वातावरण नगर-पदार्पण मे व्यवधान ा है । आत्मग्लानि की अग्नि मे द्वेष गलने लगा । अन्तर् में वक्र भिमान मृदुता में रूपान्तरित होने लगा । कलह का ककास सुलह के लकल में परिवर्तित होना लगा । परिणामतः संघ में शांति व सम-ाते का वायुमण्डल बना और मैत्री, शांति स्थापित हो गई ।

आपश्री ने यथासमय नगर मे प्रवेश किया । उस समय ब्यावर अपूर्व उल्लास फैल गया था । बरसो के बिछुड़े हुए गले लग हे थे और नये प्रकाश मे नये निर्माण की नीव रख रहे थे । पूज्य ाचार्य श्रीजी के दूरन्देशी निर्णय में आदेश नही लेकिन सत्य के प्रति ाग्रह था । समूह की शक्ति को छिन्न-भिन्न करने वाले व्यवहार ौर पारस्परिक असहयोग, अमहकार एव अन्याय का प्रतिकार नही किया जाये तो उससे व्यक्ति ही नही, वरन समाज और राष्ट्र विपत्ति मे फसता है । उसका प्रतिकार करना साधु पुरुष अपना कर्तव्य सम-झते हैं । प्रभावशाली, महत्त्वपूर्ण और व्यवहार्य उपाय खोज निकालना उनके सत्य-आग्रह का ध्येय होता है । पूज्य आचार्य श्रीजी ने यही आदर्श अपने निर्णय द्वारा व्यक्त किया था । इसीलिये तत्काल सुमति के माध्यम से समता और शांति का वातावरण बन गया ।

ब्यावर में समता का सन्देश मुखरित कर और अपने प्रभाव-शाली प्रवचनों द्वारा उसको स्थायी बनाकर आपश्री ने वहाँ से जैतारण की ओर विहार किया । रास्ते मे थानना ग्राम से कुछ ही आगे एक गाव पड़ता है । वहा अधिकतर राजपूतो के घर हैं । जो देवी-देव-ताओ के नाम पर या भोजन के हेतु जीवहिंसा करना साधारण कार्य समझते थे । ऐसा कोई तीज त्योहार नहीं होता था जब दो चार मूक पशु मौत के घाट न उतार दिये जाते हों । सारा गाव अपरिचित था और जैनो का एक भी घर नहीं था । वहाँ आपश्री का एक प्रभाव-शाली प्रवचन हुआ । जिसे सुनकर ग्रामवासी गद्गद हो गये । आपश्री

ने प्रवचन मे उन मानवीय भावो को स्पष्ट किया था जिनके अभाव में मनुष्य ही नही, प्राणिमात्र दुखी होता है। राजपूतो को अहिंसा का महत्त्व समझाते हुए आपने फरमाया—

'अहिंसा वीरो का साधन है। कायर तो सबसे पहले मानसिक हिंसा से ही अधिक पीड़ित है। ऐसा व्यक्ति मानसिक हिंसा से दूसरो को तो गिरा सके या नही, किन्तु अपने आपको तो बहुत गहरे अवश्य ही गिरा देता है।

'इसलिये मेरा आप लोगो से कहना है कि यदि आप अपने आपको परमात्मा का वफादार सेवक बनाना चाहते हैं और इस सृष्टि में उत्कृष्ट समानता का वातावरण बनाना चाहते हैं तो समग्र रूप में अहिंसा का पालन कीजिये। अहिंसा ही वह सशक्त साधन है, जिसके द्वारा आत्मसमानता यानि परमात्मवृत्ति के साध्य को साधा जा सकता है।'

प्रवचन का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि ३५ व्यक्तियो ने तत्काल शिकार खेलने का परित्याग कर दिया। जुआ खेलने, मद्य-पान करने तथा तमाखू आदि नशीली चीजो के सेवन करने का भी बहुत-सो ने त्याग किया।

सन्तो के सहज प्रेममय प्रवचन का जो अमृतपान कर लेता है, वह सदा के लिये सन्तो का बन जाता है। सन्तो का अपना स्वार्थ क्या है? वे स्वात्मकल्याण के साथ परहित मे स्वहित मानते हैं। परोपकार को भी आत्मकल्याण की साधना का अग समझकर जगत का कल्याण करते हैं। इस उदात्त भावना के कारण वे जगत का महान्-से महान्तम कल्याण करते हुए भी अहकार का अनुभव नही करते हैं। उन्हें यह गर्व नही होता कि उन्होंने दूसरो को उपकृत किया है। सन्तो के जीवन की यही विशेषता होती है कि उनमे जीवन के सहायक तत्त्वो का स्वाभाविक समावेश होता है।

संयुक्त-चातुर्मास

सोजत में मन्त्रिमण्डल की बैठक के अवसर पर यह विचार

किया गया था कि तपोपूत और ज्ञानवृद्ध सन्तो को यदि एक ही स्थल पर लम्बे समय तक निवास करने का अवसर मिले तो बहुत-सी सैद्धांतिक, आगमिक गुत्थियो को सुलझाया जा सकता है, विवादास्पद विषयों पर तथ्यसगत समाधान खोजा जा सकता है तथा सन्तो मे भावात्मक एकता की प्रतिष्ठा की जा सकती है। समाज मे एकता का शीतल समीरण प्रवाहित होगा। महान सन्तो का विशुद्ध प्रेम समाज की धमनियों में अमृत का सचार करने मे सहायक होगा। इन्हीं सब दृष्टिकोणों को ध्यान मे रखते हुए स० २०१० का चातुर्मास सयुक्त रूप में करने की योजना निश्चित की गई थी।

इस प्रकार के आयोजन के सम्बन्ध में पूज्य आचार्य श्रीजी के विचारो का पहले ही सकेत किया जा चुका है कि यह कल्पना अच्छी है, किन्तु जब तक इसके लिये कोई ठोस योजना तैयार नही कर ली जाती, तब तक उसमे पूरा लाभ नही उठाया जा सकता है। चातुर्मास के लिये तो योजना बनी लेकिन विचारणीय विषयों की सूची अभी तक नही बनी थी और प्राय: सभी ने कहा कि चातुर्मास-स्थल पर पहुंचने के बाद बना ली जायेगी।

संयुक्त-चातुर्मास सम्बन्धी पूर्व तैयारी हो चुकी थी। अब सिर्फ योग्य स्थान का निश्चय होना शेष रहा था। चतुर्विध संघ संयुक्त-चातुर्मास के बारे मे आतुरता से प्रतीक्षा कर रहा था कि चातुर्मास किस स्थान पर होता है। राजस्थान के सभी सघ इस अवसर का लाभ उठाने के लिये उत्सुक थे, लेकिन सुविधाजनक स्थान कौन सा होगा, बस यही विचारणीय रह गया था, जिसमे सभी सन्त उक्त स्थान पर पधार सकें।

ब्यावर से विहार करते-करते पूज्य आचार्य श्री जी म. सा. ग्राम ग्राम मे उपदेशामृत की वर्षा करते हुए जब मेड़ता पधारे तो जोधपुर श्रावक संघ सं० २०१० का संयुक्त चातुर्मास करने की प्रार्थना लेकर सेवा में उपस्थित हुआ। पूर्व मे अपने द्वारा की गई कार्यवाही को पूज्यश्री के समक्ष निवेदन किया और आपने परिस्थिति को जानकर जोधपुर

मे चातुर्मास करने की स्वीकृति फरमाई ।

पूज्य आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा., प्र. मन्त्री श्री आनंदऋषिजी म. सा, वयोवृद्ध स्वामी श्री पूरणमलजी म. सा., व्या. वा. श्री मदनलाल जी म. सा., कविरत्न श्री अमरचन्दजी म. सा., सहमन्त्री श्री हस्तीमलजी म. सा. आदि ठाणा २८ एव महासतियां जी म. सा. ठा ६२ का जोधपुर मे सयुक्त चातुर्मास हुआ । प. र. बहुश्रुत श्री समर्थमल जी म. सा का भी चातुर्मास वही करवाया गया ।

इस चातुर्मासकाल मे शास्त्रीय चर्चा हुई । विवादास्पद विषयों का मथन हुआ । सादड़ी व सोजत मे किये गये निर्णयों का पर्यवेक्षण हुआ । सामाजिक एकता का आधार सुदृढ बनाने के विषय मे मत्रणा हुई । फिर भी जितने लाभ की आशा थी, उतना लाभ समाज को नही हुआ । चतुर्विध श्रीसघ ने वृहत्साधुसम्मेलन सादड़ी के अवसर पर जिस उत्साह और दृढता का परिचय दिया था, वह सोजत-सम्मेलन के अवसर पर परिलक्षित नहीं हुआ और जो सोजत में था, वैसा यहा दृष्टिगत नही हुआ था । ऐसा प्रतीत हो रहा था कि औपचारिकता का निर्वाह करने के लिये ही यह सब हो रहा हो । सयुक्त-चातुर्मास में सम्मिलित होने वाले मुनिवरो में भी उत्साह मन्द था । जिस उद्देश्य को लेकर यह आयोजन किया गया था, उसमे उलझने सुलझने के बजाय उलझती ही गई और किसी प्रकार की निर्णयात्मक भूमिका नहीं बन सकी ।

लेकिन इसका आशय यह भी नही कि चातुर्मास असफल रहा । इस समय में पूज्य आचार्य श्रीजी के तलस्पर्शी शास्त्रीय दृष्टिकोण, संघ-नेतृत्व की कुशलता के दर्शन हुए । आपकी सूझबूझ और हार्दिक उदारता ने सन्तो में साम्य बनाये रखने के लिये कड़ी का काम किया । सन्तो मे पारस्परिक प्रीतिभाव मे जो वृद्धि हुई, वह कोई साधारण बात नही थी । सबने पारस्परिक दृष्टिकोण पर उदारता पूर्वक विचार किया । दृष्टिकोणो के प्रति मतभेद था किन्तु मनभेद नही था । सभी सन्त यह चाहते थे कि आगम के आलोक में अनिर्णीत को निर्णीत बनायें एवं

बृहत्साधुसम्मेलन में स्वीकृत संघऐक्य के आदर्श को प्रतिफलित करें।

पुनः साधुसम्मेलन का निश्चय

चातुर्मास काल में कुछ निर्णय करे भी गये। फिर भी कुछ ऐसे प्रश्न थे, जिनके समाधान के लिये समस्त साधु-सन्तो की राय लेना उचित प्रतीत हुआ और पुनः बृहत्साधुसम्मेलन किया जाना उपयुक्त समझा गया। इसके लिये काफी विचार-विमर्श के बाद अन्ततोगत्वा निश्चय किया गया कि अभी तक व्यवस्थापकमण्डल ने जो भी कार्रवाई की है, उसकी सम्पुष्टि के लिये बृहत् सम्मेलन किया जाना चाहिये।

चातुर्मास काल मे श्री अ. भा. श्वे. स्था. जैन कान्फरन्स की जनरल कमेटी की बैठक जोधपुर श्रावकसंघ द्वारा जोधपुर में बुलाई गई। जिसमे समाज के प्रमुख अग्रणी श्रावकों ने भाग लिया एवं संघ-संगठन बनने के बाद श्रावकसंघो मे जो परिवर्तन हुए अथवा नहीं हुए, उन सबकी समीक्षा कर संगठन को सुदृढ बनाने के निश्चय किये गये।

जोधपुर का यह चातुर्मास ऐतिहासिक था। देश के कोने-कोने से आगत स्वधर्मी बन्धुओ की व्यवस्था बहुत ही उत्तम और सुविधापूर्ण थी। सैकडो की संख्या मे प्रतिदिन दर्शनार्थी आते परन्तु उनका प्रबंध इस रीति से होता था कि उन्हें यह अनुभव ही नहीं हो पाता कि हम परदेश मे आये हैं। संघ के अग्रणी प्रमुख श्री कानमल जी नाहटा आदि सज्जनो की प्रबन्ध—व्यवस्था सराहनीय थी।

इस काल में श्रावक-श्राविकाओ और महारथी सन्तो और सतियों ने पूज्य आचार्य श्रीजी की महानता के निकट से दर्शन किये, उनके हृदय की कोमलता, परहितवृत्ति, परदुःखकातरता और सेवा-भावना आदि विशिष्टताओं का साक्षात्कार किया। संयम की साधना, ज्ञान की गम्भीरता, तात्त्विक विवेचनाशक्ति को परखा। देदीप्यमान प्रभामण्डल मे दमकते मुखमण्डल की मनोहर छटा मानवीय मनों को आकृष्ट कर लेती थी।

इन्हीं सब विशेषताओं को अभिव्यक्त करते हुए कविवर्य

श्री अमरचन्द जी म. सा. ने कहा था— पूज्यश्री का व्यक्तित्व भले ही ऊपर से लोहवत् कठोर दिखाई देता हो, किन्तु जिन्होने उन्हें निकट से देखा है, उन्हे तो अन्तर् मे कोमलता ही दिखलाई दी है। किसी ने ठीक ही कहा है— लोकोत्तर पुरुषो के चित्त को पहचानना बड़ा कठिन कार्य है। एक ओर उनमें वज्र से भी अधिक कठोरता प्रतीत होती है तो दूसरी ओर उनमें फूल से भी अधिक कोमलता के दर्शन होते हैं। यह कठोरता और कोमलता का अपूर्व सगम महापुरुषो की लोकोत्तर महिमा का द्योतक है।

संयुक्त चातुर्मास के पश्चात

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात मगसिर कृष्णा १ को आचार्य श्रीजी का नागौर आदि क्षेत्रो की ओर विहार हुआ। इस क्षेत्र के गोगालाव, व्यावर, कुचेरा, बीकानेर आदि सभी सघ अभी से आगामी वर्ष के चातुर्मास के लिये कुछ न-कुछ आश्वासनात्मक सकेत प्राप्त करने के लिये विनती करने लगे। लेकिन अभी चातुर्मास पूर्ण ही हुआ था और भविष्य की स्थिति भावी के अधीन थी, अत. अभी से किसी को भी सकेत देने की स्थिति नही वन सकी।

लेकिन कुचेरा श्रीसघ के अग्रणी श्रावक स्व. सेठ श्री इन्द्रचन्दजी गेलडा की धर्मपत्नी की हार्दिक इच्छा थी कि पूज्य श्रीजी का आगामी चातुर्मास कुचेरा हो। उक्त आग्रह को लेकर समय-समय पर कुचेरा श्रीसघ के अग्रणी सेठ श्री मोहनमल जी चोरड़िया, श्री भागचन्द जी गेलड़ा आदि प्रमुख सज्जन पूज्यश्री की सेवा मे उपस्थित होते रहे थे।

स्थिति और समयादि को देखते हुए पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. ने स० २०११ का चातुर्मास कुचेरा करने की स्वीकृति फरमाई और यथावसर पूज्य श्रीजी ने चातुर्मास हेतु पदार्पण किया। आपश्री के साथ ही स्थविरपदविभूषित मुनिश्री हजारीमल जी म. सा जो पूज्यश्री जयमलजी म सा. की सम्प्रदाय के थे, का भी कुचेरा चातुर्मास हुआ।

अधिकारी मुनिवरो के सोजत-सम्मेलन और जोधपुर-चातुर्मास

में हुई कार्रवाई चतुर्विध संघ को ज्ञात हो चुकी थी। संघ-ऐक्य योजना पर एक आवरण-सा पड़ता जा रहा था। अपने विचारों से आगे कोई बढ़ना नही चाहता था और एक प्रकार से गतिरोध की स्थिति बन चुकी थी।

चातुर्मास काल मे ही कान्फरन्स की जनरल कमेटी की बैठक कुचेरा मे हुई। पुनः बृहत्साधु-सम्मेलन का आयोजन करने के लिये कान्फरन्स की ओर से प्रयत्न हो रहे थे। श्रमणसघ की प्रगति मे उत्पन्न अवरोधो का निराकरण ऐसे सम्मेलन द्वारा ही हो सकता है। अतः जोधपुर चातुर्मास के अवसर पर सम्मेलन होने की भूमिका बन चुकी थी, लेकिन अब सिर्फ उपयुक्त स्थान के चयन का ही प्रश्न था कि सम्मेलन कहा किया जाये ? कान्फरन्स का शिष्टमण्डल एतद्विषयक विनती लेकर पूज्य आचार्य श्रीजी की सेवा मे उपस्थित हुआ और निवेदन किया— भगवन् ! आगामी बृहत्साधु-सम्मेलन के लिये कौन सा स्थान उपयुक्त रहेगा ?

पूज्य आचार्य श्रीजी ने फरमाया— जोधपुर में सम्मेलन के स्थान के बारे मे भी विचार विनिमय हुआ था। उस समय मैंने अपने विचार व्यक्त किये थे कि मेरे सान्निध्य में सम्मेलन सम्बन्धी तीन कार्य हो चुके हैं, इसलिये आगामी बृहत्साधु-सम्मेलन लुधियाना आदि क्षेत्रों मे पूज्यश्री आत्माराम जी म. के सान्निध्य में होना उपयुक्त रहेगा। आज भी मेरे यही भाव हैं।

पूज्य आचार्य श्रीजी के विचारानुसार कान्फरन्स की जनरल कमेटी ने लुधियाना में बृहत्साधु-सम्मेलन होने का निश्चय कर वहां के संघ को सम्बन्धित जानकारी दी। लुधियाना संघ ने सम्मेलन के लिये कान्फरन्स को आमन्त्रण भेज दिया और वहां बृहत्साधु-सम्मेलन होना निश्चित हो गया।

इन्हीं दिनों के आसपास कान्फरन्स के तत्कालीन अध्यक्ष सेठ श्री चम्पालाल जी बांठिया पूज्य आचार्य श्रीजी के दर्शनार्थ पुनः कुचेरा पहुँचे। वार्तालाप के प्रसंग में सम्मेलन सम्बन्धी चर्चा भी हुई। अध्यक्ष

महोदय ने कहा कि वर्षावास के पश्चात आपश्री का विहार लुधियाना की ओर होगा ? इस पर आचार्य श्रीजी ने फरमाया कि मैं चाहता हूँ कि लुधियाना पहुंचू, लेकिन यह भावी के अधीन है, उस समय तक कौन जाने क्या बने। पहुंचना तो इस शरीर से होगा। यह शरीर कुछ शिथिल हो रहा है। घुटनो और पैरो में पीडा रहती है। इस अशक्ति-वश यथासमय लुधियाना, पहुंच सकूं या न पहुंच सकूं, कुछ निश्चित कह नही सकता। मैं न भी पहुंच सकूं, किन्तु मेरी ओर से कुछ सन्त लुधियाना पहुच ही जायेंगे। अन्य प्रमुख मुनिवर वहां पहुंचेंगे ही, उन्हें समस्त कारवाई और विचारणीय विषय ज्ञात हैं। सादडी-सम्मेलन मे उद्देश्य निश्चित हो चुका है और अब तो उसमे रही हुई कमियो को दूर कर अमली रूप देना है।

अध्यक्ष महोदय को यह परिस्थिति विचारणीय प्रतीत हुई। उन्होने मन्त्री मुनिवरो की सेवा मे सूचना भेजी और समस्त स्थिति सामने रखी। साथ ही पथ-प्रदर्शन के लिये प्रार्थना की कि हमें क्या करना चाहिये और सम्मेलन कहां करना चाहिये। कान्फरन्स-कार्यालय को भी सम्बन्धित जानकारी दी कि आचार्य श्रीजी लुधियाना-सम्मेलन मे पहुच सकेगे या नही, यह सन्देहास्पद है।

समाज के प्रमुख-प्रमुख श्रावको, कार्यकर्ताओं का एक शिष्ट-मण्डल इस परिवर्तित परिस्थिति पर मार्गदर्शन प्राप्त करने हेतु पूज्यश्री आत्माराम म. सा. की सेवा मे उपस्थित हुआ और प्रार्थना की—भगवन् ! आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. शरीर के कारण आपकी सेवा मे उपस्थित होने मे असमर्थ हैं। वह सम्मेलन मे सम्मिलित न हो सके तो क्या करना उचित होगा ?

पूज्य श्री आत्माराम जी म. सा. भद्र, सरलस्वभावी थे। उन्होने फरमाया— आज तक सम्मेलन का सचालन सफलता के साथ आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. करते आये हैं। उन्हें सम्पूर्ण कार्र-वाई का प्रत्यक्ष अनुभव है और किसी भी परिस्थिति से अपरिचित

नही है. अतएव सम्मेलन मे उनकी उपस्थिति आवश्यक है। साधु-सम्मेलन होना गुरुतर कार्य है। अतएव संघ नेतृत्व के सर्वाधिकार सम्पन्न अधिकारी जहां भी सुगमता पूर्वक पहुच सकते हों, वही सम्मेलन होना चाहिये। मैं स्वय नही पहुंच सकू गा तो मेरी सद्भावनायें अवश्य वह रहेंगी। सघ सगठन का आदर्श फलित हो, यही मेरी आकांक्षा है।

इस प्रकार दोनो महापुरुषो ने विचार व्यक्त किये थे। यद्यपि दोनों महापुरुषों की उपस्थिति सम्मेलन मे नूतन चेतना का सचार करती और संगठन को अपूर्व बल प्राप्त होता, मगर दोनो की वृद्धावस्था और शारीरिक दुर्बलता से ऐसा होना सम्भव नही दिख रहा था। अतः सम्मेलन के आयोजको के समक्ष एक जटिल समस्या उत्पन्न हो गई। सम्मेलन होना आवश्यक था, किन्तु करे तो करे कहा ?

मन्त्री मुनिवरो से इसके समाधान के लिये राय पूछी गई उनकी राय हुई कि दोनो पूज्यश्री सम्मेलन के अवसर पर उपस्थित हो तो सर्वोत्तम है। लेकिन ऐसी परिस्थिति नही बनती हो तो आचार्यश्री गणेशलालजी म. सा. की उपस्थिति तो सर्वाशतः आवश्यक है ही पूज्यश्री आत्माराम जी म. सा. अपने सघ मे सम्माननीय स्थिति के स्वामी हैं और आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. का सघ सचालन एवं अनुशासन पालन करवाने आदि का दायित्व व श्रमणसघ सम्बन्धी अनुभव मूल्य रखता है। ऐसी स्थिति में पूज्यश्री का आशीर्वाद प्राप्त करके आचार्य श्रीजी के सान्निध्य मे सम्मेलन करना ही उपयुक्त होगा।

इन विचारो को साथ लेकर कान्फरन्स का शिष्टमण्डल कुचेरा मे पूज्य आचार्य श्रीजो की सेवा में उपस्थित हुआ और प्रार्थना की कि पूज्यश्री आत्माराम जी म. सा. ने फरमाया है कि आपश्री जहां पर उपस्थित हो सके, वही पर सम्मेलन करना उपयुक्त होगा। अतः आपश्री कितनी दूर और कितने समय में पधार सकेंगे, इसका कुछ आभास हो जाये तो उसी स्थान पर सम्मेलन करने का सोचा जाये।

आचार्यश्री ने प्रत्युत्तर मे फरमाया कि मैं इस समय क्या कहूँ,

मेरे शरीर की स्थिति प्रत्यक्ष है। घुटनो मे दर्द और कमजोरी विशेष प्रतीत होती है। इसलिये इस स्थिति मे निश्चित स्थान का निर्णयात्मक उत्तर कैसे दे दूं ?

शिष्टमण्डल ने निवेदन किया कि आपश्री यहां से शनै. शनैः विहार कर भीनासर तक तो पधार ही जायेंगे। उपचार की दृष्टि से भीनासर, बीकानेर आदि क्षेत्रो की अपेक्षा अन्य कोई स्थान योग्य प्रतीत नही होता है। उधर का सूखा जलवायु स्वास्थ्य की दृष्टि से अच्छा है और भीनासर, बीकानेर आदि क्षेत्रो का इसके लिये आग्रह भी अधिक है। अत. आगामी बृहत्साधु-सम्मेलन भीनासर में हो, ऐसी हम लोगों की भी राय है। इसलिये आपश्री भीनासर मे बृहत्साधु-सम्मेलन होने की घोषणा फरमाकर साधु-मुनिराजो को सूचना करवाने की कृपा करें।

पूज्य आचार्यश्री ने प्रत्युत्तर मे फरमाया कि बृहत्साधु सम्मेलन आचार्यश्री आत्माराम जी म. के समीप हो आदि इस विषयक अपने विचार मैं पहले व्यक्त कर चुका हूँ। इस समय भी वैसे ही विचार रखता हूँ। फिर भी आप आचार्यश्री आत्माराम जी म. व अन्य अधिकारी मुनिवरो के अभिप्राय को लेकर पुनः यहा उपस्थित हुए हैं और अधिकारी मुनिवर भी मेरी उपस्थिति अनिवार्य समझते हैं, सो ज्ञात हुआ। लेकिन मैं अपने पूर्व के विचारानुसार मेरे सान्निध्य मे बृहत्साधु सम्मेलन होने की घोषणा करना उपयुक्त नही समझता। पर यह अवश्य कहता हूँ कि सत-सगठन सर्वतोभावेन सुदृढ बने। उसके निर्णयो का उसी रूप मे अनुपालन हो। प्रत्येक सन्त सयम-तप-त्याग का स्वय पालन करे और इसी प्रकार दूसरो से पालन कराने का ध्यान रखवाये। तभी सघ सगठन सबल, प्राणवान और सफल हो सकेगा। अत. यह विषय अधिकारी मुनिवरो के उत्साह पर निर्भर है।

शिष्टमण्डल भी इस स्थिति को समझता था। साथ ही स्थिति की गम्भीरता का तकाजा था कि वर्तमान परिस्थिति के समाधान के लिये पुन साधु-सम्मेलन का आयोजन हो जाना चाहिये। शिष्टमण्डल

ने पुनः मन्त्री मुनिवरों आदि से विचार-परामर्श कर प्रधानमन्त्री श्री आनन्दऋषिजी म. सा. द्वारा भीनासर में वृहत्साधु-सम्मेलन करने की घोषणा करवाई।

आचार्यश्री की शारीरिक स्थिति

इन दिनों आचार्य श्रीजी म. सा की शारीरिक दुर्बलता इतनी अधिक बढ गई थी कि दो-ढाई मील पैदल चलते ही सर्वांग में पसीना हो जाता था। घुटनों मे दर्द बना ही रहता था। लेकिन इतना सब होने पर साध्वोचित आचार-विचार में किसी प्रकार की शिथिलता, उदासीनता या उपेक्षा नही थी। साधना के प्रति सतत जागृति पूर्ववत थी।

बीकानेर क्षेत्र की ओर विहार

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात कुचेरा से बीकानेर क्षेत्र की ओर पूज्य आचार्य श्रीजी का विहार हुआ। विहार बहुत ही धीमी गति से होता था। कुचेरा से फिरोद पधारे। यहां के श्रावकसंघ की विशेष अभिलाषा थी कि पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. कुछ दिन यहा विराजें। कुचेरा में इसके लिये सेवा मे विनती की थी। फिरोद पधारते ही वहां के श्रीसघ मे विशेष उत्साह व्याप्त हो गया। जहां पर सन्तो का पदार्पण होता है वहा सद्भावना, सद्विचार और सद्गुणों का वातावरण स्वयमेव निर्मित हो जाता है। फिरोद मे ज्ञान-साधना के साथ सयम साधना का विशेष उद्योत हुआ। स्थानीय सघ की ओर से दो अठाइयां एव अनेक बेला, तेला, चौला आदि तपस्यायें शक्त्यनुसार हुई।

फिरोद से आप डेह पधारे। किन्तु आपके पदार्पण से पूर्व ही आपकी यशःकीर्ति का आगमन हो चुका था। यहां के दिगम्बर जैन बन्धुओ ने आपके पदार्पण के अवसर पर मंगल महोत्सव मनाया। साधु किसी वर्गविशेष के नही होते हैं, उनके सभी पूजक होते हैं। गुण पूजा के योग्य होते हैं अत. पूज्य आचार्य श्रीजी के शुभागमन पर समस्त जैन बन्धुओं ने श्रद्धा व्यक्त की तो इसमें कोई आश्चर्य नही है। डेह मे भी अच्छी धर्म प्रभावना हुई। डेह से नागौर आदि क्षेत्रों को पवित्र

करते हुए देशनोक पदार्पण किया ।

चातुर्मास हेतु बीकानेर संघ की विनती

बीकानेर श्रावकसंघ वर्षों से पूज्य आचार्य श्रीजी का चातुर्मास अपने यहा होने के लिये लालायित था । इसके लिये पहले भी अनेक स्थानो पर एतदर्थ विनती कर चुका था और कुचेरा मे तो सघ के सभी प्रमुख श्रावको ने उपस्थित होकर स० २०१२ का चातुर्मास बीकानेर में ही करने के लिये कुछ-न-कुछ आश्वासन प्राप्त करने के लिये आग्रहपूर्ण विनती की थी । लेकिन अभी समय दूर था, अतः ऐसी स्थिति नही बन सकी थी कि तत्काल उत्तर दिया जा सके ।

पूज्य आचार्य श्रीजी के देशनोक पधारने पर स्थानीय संघ के आबालवृद्ध नरनारी आगामी चातुर्मास की स्वीकृति फरमाने के लिये सेवा मे उपस्थित हुए । नोखामण्डी, देशनोक, भीनासर, गगाशहर आदि सभी क्षेत्र इसका लाभ प्राप्त करने के लिये इच्छुक थे और इस अलभ्य अवसर से चूकना नही चाहते थे ।

लेकिन सभी क्षेत्रो के केन्द्र मे बीकानेर था और बीकानेर में चातुर्मास होने से स्थानीय एव आसपास के क्षेत्रो मे विशेष धर्मप्रभावना होने की सभावना होने से पूज्य आचार्य श्रीजी म सा ने स० २०१२ का चातुर्मास सभवित अगारो के साथ साधु-मर्यादानुसार बीकानेर मे करने की स्वीकृति फरमाई ।

गरलपान

जैसे-जैसे चातुर्मासकाल निकट आ रहा था कि उसी समय बीकानेर के कतिपय मूढ़जनो ने कलुषित वातावरण बनाने के प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये । उस वातावरण का सम्बन्ध स्थानीय श्रावकसंघ से था । फिर भी प्रकारान्तर से उसमें आचार्य श्रीजी को सबद्ध करने का प्रयास किया गया । आपसी विचारभिन्नता एव मनमुटाव को सम्पूर्ण सघ पर लादने के प्रयत्न हुए और उनके इस कार्य में प्रत्यक्ष रूप से तो बीकानेर के एक-दो व्यक्ति शामिल थे, लेकिन अप्रत्यक्ष में और भी

थे ऐसी कल्पनायें चलती थीं।

इस वातावरण की जानकारी पूज्य आचार्य श्रीजी को भी हुई और वे अपने आगारों के साथ अन्यत्र चातुर्मास करने के लिये स्वतन्त्र थे। लेकिन स्थानीय संघ के वयस्क सदस्यों ने सामूहिक रूप में अपने हस्ताक्षरों से युक्त लिखित प्रार्थना-पत्र सेवा में प्रस्तुत कर चातुर्मास करने की स्वीकृति प्राप्त कर ली थी।

यथासमय पूज्य आचार्य श्रीजी का चातुर्मास हेतु बीकानेर पदार्पण हुआ। नगरप्रवेश के समय जो जुलूस निकला और भव्य वातावरण बना, वह न र के इतिहास में अनूठा था। शाही जुलूसों में विविधता हो सकती है और दर्शनीय वस्तुओं को जुटाया जा सकता है, लेकिन मानसिक उल्लास का भी उसमें समन्वय हो, ऐसा निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। लेकिन इस संत-स्वागत-जुलूस में मानवीय मनों की उत्साह, श्रद्धा, विनम्रता का विकसित रूप था और इनके विकास के कारण थे वंदनीय संत और उनमें भी प्रमुख पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा.। राजमार्ग पर बढ़ते चरणों में सहस्रों मस्तक झुक जाते थे, अतृप्त नेत्र एकटक लगाये बहुत दूर से ही पलक-पांवड़े बिछा देते थे और जयघोषों का समवेत स्वर चतुर्दिक् को गुंजायमान कर देता था।

आचार्य श्रीजी चातुर्मास हेतु श्री अगरचन्द भैरोंदान सेठिया पारमार्थिक ट्रस्ट भवन में विराजे। बीकानेर की आबाल-वृद्ध जनता आपकी प्रवचन-गंगा में डुबकियां लगा रही थी। प्रतिदिन सहस्रों नर-नारी आपकी व्याख्यान-वाणी-पीयूष का पान करके अपने जीवन को धन्य मान रहे थे। जिज्ञासु-जन सिद्धान्तों की गूढ़ गुत्थियों को सुलझा रहे थे। सर्वत्र शान्ति का संचार हो रहा था। आसपास के क्षेत्रों के भव्यजन भी सैकड़ों की संख्या में उपस्थित होते थे। प्रतिदिन नये-नये क्षेत्रों के दर्शनार्थी आते और सहज प्राप्त अवसर से लाभ उठाते थे।

पहले जो विषाक्त वातावरण बना था, शांत हो चुका था।

लेकिन विघ्नसतोषी व्यक्ति कुमन्त्रणाये कर रहे थे कि यह शांति किस प्रकार भग की जाये ? यह बना-बनाया खेल किस प्रकार बिगाडा जाये ? कुमन्त्रणाओ का जोर था। जगत मे सर्वत्र, सर्वदा इस प्रकार के लोगो की न कमी रही है और न रहेगी। मनुष्य के मन का पाप पुण्य का परिधान धारण करके सदा मानवजाति को धोखा देता आया है। इस पाप का विस्फोट जिस रूप मे हुआ उससे समाज में रोष व्याप्त हो गया। यह मन का पाप वाचनिक न रहकर लिखित रूप मे फैलने लगा। प्रतिदिन नये-नये आरोपो के साथ पर्चे प्रकाशित होने लगे कि किसी-न-किसी प्रकार बीकानेर सघ मे आपसी मनमुटाव बढ़े, उसकी एकवाक्यता छिन्न-भिन्न हो। लेकिन बीकानेर श्रावकसघ में सूझबूझ-वालों की कमी नही थी।

पूज्य आचार्य श्रीजी पर प्रायः प्रतिदिन पर्चे रूपी पुष्पवर्षा होती। चार माह तक विघ्नसतोषियो, परनिन्दको की जितनी कलुषता हो सकती थी, वह उभर रही थी। अन्तर् की मलिनता बाहर आ रही थी और धीरे-धीरे अन्तरंग साफ होता जा रहा था। इसके लिये सतो के पास एक ही अमोघ औषधि थी— क्षमा। क्षमा, समता, सहिष्णुता के समक्ष पाप, बुराई, निन्दा, चुगली एव आरोप-प्रत्यारोप टिक नही सकते। निन्दकों ने पूज्यश्री की निन्दा की, उपसर्ग किये, घृणित आरोप लगाये। निन्दा के रोग से आक्रान्त व्यक्तियो के द्वारा जो कुछ भी किया जा सकता था, सब किया गया, करने मे किसी प्रकार की कसर नही छोडी, फिर भी आप सागरवत् गम्भीर, हिमालयवत् सुस्थिर महादेव की तरह इस गरल का पान करते रहे। इससे जनता मे बहुत रोषयुक्त वातावरण बन गया और उससे वह उत्तेजना कभी-कभी बाहर व्यक्त होने को तत्पर-सी परिलक्षित होती थी। लेकिन आचार्यवर की शात, सुधारसमय वाणी उस उत्तेजना को प्रशान्त बना देती थी। आचार्यश्री फरमाते थे कि आप लोग मेरे ऊपर होने वाली अनुचित बातो से उत्ते-जित न होवें। ऐसे व्यक्तियो से जीवन में प्रेरणा लेना चाहिये कि

सदा ही साधकों को सावधानी दिलाते हैं।

भगवान महावीर का क्षमाधर्म कितना जीवन में उतर पाया है ? इस बात की एक तरह से परीक्षा है। अत. उनको शत्रु न समझ कर जीवन-साधना मे जागृत करने वाले सहायक समझो। नीतिकारों ने भी कहा है कि— जीवन्तु मे शत्रुगणाः सदैव, एषां प्रसादात्सु-विचक्षणोहम्— आदि आशय के भावो को सुनकर जनता मन्त्रमुग्ध सी हो जाती। दूध के उफान मे पानी का छींटा पड जाने से जैसे दूध शान्त हो जाता है, वैसे ही आचार्य श्रीजी म. सा. के वचनामृत-जल से जनता का उफान शान्त हो जाता था। इस प्रकार की आपश्री की वृत्ति को देख मानो कवि की वाणी मुखरित हो उठी कि ये गणेश हैं या महादेव—

तन पर है धर्म धूलि खासी,
मृगछाल महाव्रत ओढ़े हैं।
जिन-वृष पर हैं आरूढ, उमा—
अनुभूति से प्रीति जोडे हैं।
तिरसूल सदा रत्नत्रय ले,
मानस-सर नित तीर बसें।
गुरुवर तुम सच्चे महादेव,
तुमको गणेश हम कैसे कहें ?
पुरुषार्थ चतुष्टय भुजा चार,
शशिकला कीर्ति छवि छायी है।
उपदेशामृत पावन गंगा भी
वसुधा पर आज बहाई है।
पी लिया कषाय कठिन विष को,
शल्यत्रय त्रिपुर भी धू-धू दहे।
गुरुवर तुम सच्चे महादेव
तुमको गणेश हम कैसे कहें ?

अन्त में उन सन्त-निन्दको को निन्दाजनित अवहेलना, जनता की घृणा और अन्तःकरण के पश्चात्ताप की प्राप्ति हुई। अधिक आवेश मे किये गये कृत्य का परिणाम सदैव दुखद, दुस्सह होता है।

लेकिन इस वातावरण से पूज्य आचार्य श्रीजी को अक्षय यश और जनता की अटूट श्रद्धा की प्राप्ति हुई। इसका एकमात्र कारण थी अनुपम सहिष्णुता की शीतल छाया, सयम के प्रति सतत चेतना और आत्मालोचन के स्वतःप्राप्त अवसर का सदुपयोग करने की सहज, स्वाभाविक वृत्ति। आचार्य श्रीजी म. सा. की इस प्रकार की अनुपम सहिष्णुता, गम्भीरता एवं उदारता आदि अन्य सन्तों के लिए भी अनुकरणीय है।

चातुर्मास के चार माह छिन मे व्यतीत हो गये। चार माह के दिन, चार दिन जैसे ही प्रतीत हुए। ऐसा मालूम पड़ता था कि अभी कल ही तो चातुर्मास प्रारम्भ हुआ था। पूज्य आचार्य श्रीजी की दिव्य देशना कल ही तो प्रारम्भ हुई थी और आज पूरी भी हो गई। श्रोताओ को होश तब आया जब सुना कि चातुर्मास समाप्त हो गया और कल आचार्य श्रीजी का विहार होगा। सन्त तो अपने कल्पकाल तक ही एक स्थान पर विराज सकते थे, अतः जनता का मोह उन्हे रोक नही सकता था।

स. २०१२, मगसिर कृष्णा १ का प्रभात हुआ। पक्षियो के कलरव के साथ जनता में भी कलरव प्रारम्भ हो गया। आज मन भारी थे। सदगुरु के सदुपदेश-श्रवण का अन्तिम दिवस जो था। सुबह से ही सेठिया कोटड़ी का सभामडप श्रोताओं की समुपस्थिति से सपूर्ण होने लगा। विशाल सभामण्डप सकुचित हो गया हो, ऐसा प्रतीत होता था। यथासमय सन्तशिरोमणि पधारे और वीतराग वाणी की अभिव्यजना से भव्यजनो को प्रबोध देने लगे। हजारो-हजारो नेत्र अपलक अपने श्रद्धेय पर केन्द्रित थे। नीरवता मे सिर्फ श्रद्धेय की गिरा गूंज रही थी। यथासमय प्रवचन समाप्त हुआ।

अनन्तर विरागियो के विहार की वेला सन्निकट आ पहुंची थी।

मध्याह्न होते-होते विहार-पथ पर पूज्यश्री ने पदार्पण किया। सहस्रो विनम्र मस्तक चरणरज प्राप्ति के लिये चरणारविन्दो मे नत हो रहे थे और सहस्रो साश्रुनेत्र पादपद्मो को पखार रहे थे।

आखिर सन्तो ने गतव्यमार्ग पर गमन किया। जनमेदनी के बीच घिरे हुए जनमान्य मथरगति से गमन करने लगे। छज्जो और अट्टालिकाओ से जय-जय के वाक्पुष्पो की वरसा होना प्रारम्भ हो गई। सन्त-मण्डली ने देशनोक, नोखा-मण्डी की ओर गमन किया। सैकड़ो व्यक्ति तो साथ साथ चल पड़े।

साधु-सम्मेलन से पूर्व की स्थिति

यद्यपि सादड़ी मे वृहत्साधुसम्मेलन होकर एक श्रमणसघ का ऊपरी ढाचा वन चुका था। लेकिन कुछ प्रश्न ऐसे थे, जिनका निर्णय पारस्परिक विचार-विमर्श और शास्त्रीय आधार से हो सकता था। इसी वात को लक्ष्य मे रखकर सोजत मे मन्त्री मुनिवरो का सम्मेलन हुआ और उसके पश्चात जोधपुर मे सयुक्त चातुर्मास भी हुआ था। उक्त दोनो अवसरो पर प्रत्येक अनिर्णीत विषय पर काफी विचार-चर्चा हुई, लेकिन निष्कर्ष कुछ भी नही निकल सका।

यद्यपि एक आचार्य के नेश्राय मे समस्त साधु साध्वी वर्ग ने निष्ठा व्यक्त भी की थी, लेकिन पूर्ववत् अलग-अलग सिघाड़ो की परिपाटी चालू थी। अधिकाश इस परम्परा का उन्मूलन करने का साहस नही दिखा सके। सचित्ताचित्त, ध्वनिवर्धक यंत्र, एक सवत्सरी आदि प्रश्न ऐसे जटिल वन गये कि जिनका निर्णय सर्वमान्य होना सभव नही रहा था। कोई भी अपने विचारो से किचिन्मात्र भी डिगने को तैयार नहीं था। ध्वनिवर्धक यन्त्र के प्रश्न को लेकर तो कुछ श्रावको ने आन्दोलन-सा चालू कर दिया था। उनके रुख से ऐसा मालूम पड़ता था, मानो कोई निश्चित योजनानुसार समस्त कार्रवाई हो रही है और कुछ मुनिवरों एवं श्रमणो श्रावकों का पीठबल हो। अभी तक मुनियों की स्खलनासम्बन्धी जो कुछ भी घटनायें होती थी, उन्हें उन-उन

सम्प्रदायो के श्रावकगण और साधुवृन्द अन्दर-अन्दर ढाकने का प्रयत्न करते थे। लेकिन एक श्रमणसघ बनने से और सबल नेतृत्व के कारण स्खलना की घटनायें चतुर्विध सघ के समक्ष प्रगट होने लगी। इस कारण शिथिलाचारी साधु किसी-न-किसी प्रकार से अपनी मान-प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिये अपनी-अपनी पूर्व सम्प्रदाय के श्रावको को भड-काने के प्रयत्न करते थे। इन सब कारणो से सादड़ी मे निर्मित श्रमण-सघ दिनोदिन निर्बल होता जा रहा था।

पूज्य आचार्य श्रीजी इस स्थिति से बहुत कुछ अवगत होते जा रहे थे। आपश्री को यह स्पष्ट दिख रहा था कि सादडी-सम्मेलन मे स्वीकृत उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रयत्न न होकर दलबन्दी के द्वारा अपने-अपने स्वार्थ सिद्ध करने की भावना मुनियो मे बढ़ती जा रही है। साधुवर्ग मे सादड़ी-सम्मेलन के समय उत्पन्न उत्साह, विवेक और लगन लुप्तप्राय है और उसके स्थान पर औपचारिकता का पालन अथवा दिखावा किया जा रहा है। इस स्थिति मे सम्मेलन की सफलता सदेहास्पद थी।

समाज के अग्रणी श्रावको को भी इस प्रकार के वातावरण से सम्मेलन की सफलता के बारे में शका थी। श्रमणसघ के गठन की जो प्रतिक्रिया होना चाहिये थी, उसके अनुकूल वातावरण समाज मे नही बन सका था। साधु-सन्तो मे कुछ साधु और श्रावक समुदाय मे कुछ श्रावक ऊपर से अच्छा बर्ताव दिखाते थे लेकिन अन्तरग में कुछ सन्तो के प्रति ईर्षाभाव रखते हैं ऐसा प्रतीत होता था। यद्यपि ऊपरी तौर से एक सगठन का रूप दिखता अवश्य था, लेकिन अन्तर् में ऐसे प्रपच चल रहे थे कि किसी-न-किसी प्रकार यह सगठन छिन्न भिन्न हो जाये और इसके लिये दूसरो पर दोषारोपण किया जाये।

यद्यपि सम्मेलन की सफलता की दृष्टि से इस प्रकार का वातावरण उपयोगी-सा नही था। किन्तु सम्मेलन होने की घोषणा हो गई थी और चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात कुछ एक साधु-सन्तो का सम्मेलन के निमित्त भीनासर की ओर विहार भी हो चुका था। अतः

सम्मेलन को स्थगित करना उपयुक्त नही समझा गया ।

साधु-सम्मेलन की तैयारियाँ

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात भीनासर मे होने वाले वृहत्साधु-सम्मेलन की तैयारिया प्रारम्भ हो गई । साधु सन्तो ने भी सम्मेलन को लक्ष्य मानकर भीनासर की दिशा में विहार कर दिया था । सम्मेलन प्रारम्भ होने मे काफी समय था अतः पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. भी धीरे धीरे बीकानेर से विहार करते हुए नोखामण्डी पधार गये ।

आचार्य श्रीजी म. सा. के नोखामण्डी पदार्पण के समय और भी कतिपय प्रमुख सन्त वहां पधार गये थे और अनौपचारिक रूप से सम्मेलन के विषय मे विचारो के आदान-प्रदान का क्रम चालू हो गया और सभी ने अपने-अपने दृष्टिकोणो को प्रस्तुत किया । इसी वार्तालाप के प्रसंग मे यह सुझाव रखा गया कि सं० २०१२, मिती चैत्र कृष्णा ३, गुरवार से सम्मेलन प्रारम्भ होगा, लेकिन उसके पूर्व कुछ औपचारिक कार्यविधि को इन्हीं दिनो मे कर लिया जाये तो ठीक रहेगा ।

इस सुझाव के लिये सभी उपस्थित मुनिराजो ने अपनी सहमति दर्शाई । अतः माघ शुक्ला ५ से १२ तक सात दिन मुनिवरो ने जोधपुर सयुक्त चातुर्मास की कार्रवाई, प्रधानमन्त्री जी एवं मन्त्रिमंडल के प्रतिवेदन पर विचार-विमर्श किया तथा प्रायश्चित्तविधि के निर्माण के बारे में भी कुछ कार्रवाई हुई ।

नोखामण्डी मे सात दिन विराजने के अनन्तर सभी सन्त जो वहां थे और विहार करते हुए पधार गये थे, सामूहिक रूप में विहार कर देशनोक पधारे । देशनोक में साधु-मुनिराज काफी बड़ी संख्या में पधार गये थे और जो पधारने वाले थे उनकी भी जानकारी प्राप्त हो चुकी थी, अतः विचार किया गया कि यहीं पर सम्मेलन की कार्रवाई में भाग लेने वाले मुनिराजो के प्रतिनिधियों का चुनाव कर लेना चाहिये । सुझाव सर्वानुमति से स्वीकार किया गया ।

अतः दि० १-१-५६ को मध्याह्न २ बजे प्रतिनिधियों के चुनाव

के लिये श्री भीकमचन्द जी भूरा के मकान पर उपस्थित सभी मुनिराज एव महासतियाजी म. सा. एकत्रित हुए और पूज्य आचार्य श्री गणेश-लालजी म. सा. की अध्यक्षता मे कार्रवाई प्रारम्भ हुई ।

सर्वप्रथम आचार्य श्रीजी म. सा. ने नवकारमन्त्र का घोष करते हुए भगवान विमलनाथ की प्रार्थना की और प्रासगिक व्याख्यान फरमाया । आपश्री ने सादडी-सम्मेलन से लेकर अभी तक की स्थिति पर सक्षिप्त प्रकाश डालते हुए जो भाव फरमाये उनका सारांश यह है—

जिस आयोजन के लिये तयारियां हो रही हैं, उसका समय निकट आ गया है । सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिये भीनासर की ओर विहार कर बहुत से मुनिराज तो यहा आपके समक्ष विराज रहे हैं और कुछ विहार मे हैं । वे भी यथाशीघ्र सम्मेलन से पूर्व भीनासर पधारने के भाव रखते हैं ।

सम्मेलन में सम्मिलित होना किसी तरह के मान-सम्मान के लिये नही है, किन्तु सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि की शुद्धि और वृद्धि मे लिये है इसमें सभी को निष्पक्ष और परस्पर प्रेमपूर्वक मिलकर एक समाचारी के लिये अपनी-अपनी राय व्यक्त करना चाहिये और जिस पर साधु सम्मेलन शास्त्रीय दृष्टि से विचार कर किसी निर्णय पर पहुचे । इसी में साधु-सम्मेलन की सफलता है और इसी ध्येय से सभी इसमें सम्मिलित हो रहे हैं । शास्त्रीय प्रमाणपूर्वक सच्चे हृदय से अपने विचार प्रगट करने के लिये सम्मेलन में प्रत्येक मुनि को भाग लेना चाहिये । धर्म-चर्चा द्वारा धार्मिक उन्नति करने के लिये एक स्थान पर सम्मिलित होना सभी के लिये योग्य और लाभदायक हैं ।

वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए समाज के अग्रणी इस बात का अनुभव कर रहे थे कि साधुओं मे ज्ञान-दर्शन और चारित्र की उन्नति के लिये तथा संगठन के लिये एक साधुसम्मेलन करने की आव-श्यकता है । इसी को लक्ष्य में रखते हुए सादड़ी मे एक सम्मेलन हो चुका है और उसके निर्णयो को अमली रूप देने के लिये सोजत व

जोधपुर में चर्चा हुई और कुछ निर्णय भी किये गये हैं। लेकिन कुछ प्रश्न ऐसे हैं, जिनका समाधान व निर्णय पुनः बृहत्साधुसम्मेलन होने से हो सकता है। इसी को ध्यान में रखते हुए भीनासर में बृहत्साधुसम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है।

यद्यपि इस सम्मेलन में सभी साधु-संत समान रूप से उपस्थित होकर कार्रवाई मे भाग लेंगे, फिर भी व्यवस्था की दृष्टि से उनके प्रतिनिधियो का चुनाव हो जाना सुविधाजनक होगा। कार्रवाई भी सुचारुरूप में चल सकेगी और प्रत्येक विषय में विचार-विमर्श करने के लिये काफी समय भी मिलेगा। इस सुविधा को ध्यान मे रखते हुए प्रतिनिधियो का चुनाव किया जा रहा है।

इस प्रासंगिक वक्तव्य के पश्चात प्रतिनिधियों का चुनाव इस प्रकार हुआ—

	सिंघाड़ा नाम	प्रतिनिधि संख्या
१	आचार्यश्री आत्माराम जी म. सा.	५
२	उपाचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा.	५
३	प्र. मन्त्री श्री आनन्दऋषि जी म. सा.	५
४	सहमन्त्री श्री प्यारचन्द जी म. सा.	५
५	सहमन्त्री श्री हस्तीमल जी म. सा.	३
६	मन्त्री श्री मोतीलाल जी म. सा.	२
७	मन्त्री श्री पृथ्वीचन्द जी म. सा.	१
८	मन्त्री श्री मिश्रीमल जी म. सा.	१
९	मन्त्री श्री फूलचन्द जी म. सा.	१
१०	स्था. मुनि श्री हजारीमल जी म. सा.	४
११	स्व. श्री शार्दूलसिंह जी म. सा.	१
१२	स्व. श्री रामकुमार जी म. सा	१
१३	मुनि श्री जीतराज जी म. सा.	२
१४	मन्त्री मुनि श्री पन्नालाल जी म. सा.	१

१५ स्थ. श्री भूरालाल जी म. सा. १
१६ स्थ. श्री ताराचन्द जी म. सा ३
१७ मुनि श्री जीवनराम जी म. सा. १
१८ मन्त्री श्री किशनलाल जी म सा. ५
१९ स्थ. श्री पूरणमल जी म. सा १
२० स्थ. श्री फतेहचन्द जी म. सा १
२१ मुनि श्री छोटेलाल जी म. सा. १
२२ स्थ. श्री कपूरचन्द जी म सा. १

इस प्रकार बाईस सिंघाड़ो के साधु-साध्वी वृन्द की ओर से ५२ प्रतिनिधियो का चुनाव हुआ।

अनन्तर अन्यान्य सम्बन्धित विषयो पर विचार-विमर्श होता रहा। निर्णयात्मक रूप तो सम्मेलन के अवसर पर ही दिया जा सकता था अतः करीब ४ बजे सभा की कार्रवाई समाप्त हुई।

देशनोक से विहार कर सभी सन्त-सतिया जी बीकानेर पधारे और वहां भी पहले की तरह प्रात एव मध्याह्न अनौपचारिक विचार-गोष्ठियो का आयोजन होता रहा। इस समय बीकानेर मे १३५ सन्त एव १४७ सतियां जी विराज रहे थे और इन बैठको मे प्रतिनिधि मुनियो के अतिरिक्त अन्य सन्त-सतिया जी को दर्शक के रूप मे विराजने की व्यवस्था की गई थी।

साधु-सम्मेलन के अवसर पर ही श्री अ भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स का स्वर्णजयन्ती अधिवेशन दि० ४, ५, ६ अप्रैल '५६ को श्री विनयचन्दभाई दुर्लभजीभाई जवेरी जयपुर की अध्यक्षता में होने वाला था।

इन दोनों महत्त्वपूर्ण समारोहो पर उपस्थित होने वाले स्वधर्मी बन्धुओं की आवास-व्यवस्था के लिये शामियाने आदि लगाकर नगर का निर्माण किया गया था।

बीकानेर श्रावक-संघ की ओर से भी बीकानेर में बाहर से

आने वाले दर्शनार्थी श्रावक-श्राविकाओं के आवास, भोजनादि का सुन्दर और उचित प्रबन्ध किया गया था, जो साधुसम्मेलन एवं कान्फरन्स का अधिवेशन सम्पन्न होने के बाद तक भी चलता रहा।

साधुसम्मेलन सं० २०१२, मिती चैत्र कृष्णा ३, दि० २९-३-५६ से भीनासर मे विधिवत् प्रारम्भ होने वाला था। अतः चैत्र कृष्णा २, दि २८-३-५६ को बीकानेर मे विराजित समस्त सन्त-सतियां जी विहार कर भीनासर पधार गये और चैत्र कृष्णा ३ के प्रातः ८ बजे बृहत्साधुसम्मेलन की कारंवाई प्रारम्भ हुई और उसमें सभी उपस्थित सन्त सतिया जी म. सा ने भाग लिया।

पहले सादड़ी में सम्पन्न बृहत्साधुसम्मेलन के अवसर पर साधु-सन्तों ने मिलकर जिन अंशो मे हृदय की सरलता से सघश्रेय की भावना व्यक्त की थी, तदनुरूप कार्य को प्रायः सफलता मिल चुकी थी। अनन्तर उस भावना को यथार्थता की कसौटी पर परखने और सतत गतिशील बनाये रखने के प्रयत्नो की अपेक्षा थी, इसीलिये सोजत मे मन्त्रिमण्डल के मुनिवरों का सम्मेलन हुआ और उसमे उपस्थित प्रश्नो, व्यवस्था आदि के बारे में कुछ निर्णय किये गये। उक्त निर्णयो के सम्बन्ध मे भी अन्यान्य सन्तो के विचारो को जानने और परामर्श करने की दृष्टि से जोधपुर मे संयुक्त चातुर्मास का आयोजन किया गया था।

लेकिन इन दोनो आयोजनों की कार्यप्रणाली से यह स्पष्ट हो गया था कि संगठन के प्रति जितनी सदाशयता होना चाहिये, नहीं है। अतः संगठन को सबल बनाने की दृष्टि से समग्र स्थिति का पुनर्निरीक्षण करने, समस्याओं का समाधान खोजने के लिये यह सम्मेलन हो रहा था।

मंगलाचरण और प्रारम्भिक वक्तव्य के अनन्तर चतुर्विध संघ से सम्बन्धित प्रश्नो पर विचार-विमर्श प्रारंभ हुआ। लेकिन वातावरण मे उत्साह नही था। अधिकांश मुनियों में शास्त्रीय दृष्टिकोण की अपेक्षा अपने-अपने दृष्टिकोण के लिये भी आग्रही बने रहने का रंग विशेष रूप से परिलक्षित होता था। अतः सम्मेलन के समक्ष विचारणीय प्रश्नों के

स्पष्ट होते हुए भी समाधान नही हो पा रहा था। इसका परिणाम समाज को भुगतना भी पड़ा। जो समय-समय पर होने वाली प्रवृत्तियो से स्पष्ट हो जायेगा।

सम्मेलन की कार्रवाई का संक्षिप्त दिग्दर्शन

सम्मेलन मे एकलविहारी साधु-साध्वी को सघ मे सम्मिलित करने, प्रतिक्रमण की आज्ञाविषयक, मकान सबन्धी, सुत्तागमे के बारे मे और ध्वनि-वर्धक यन्त्र विषयक प्रश्नो पर शास्त्रप्रमाण, परम्परा, साध्वाचार की अनुकूलता-प्रतिकूलता आदि की दृष्टि से विशेष रूप मे चर्चा-वार्ता हुई। साथ ही व्यवस्थापक मण्डल मे भी हेरफेर किया गया। उसमे से कुछ एक निर्णयों को अविकल रूप से यहां उपस्थित किया जा रहा है—

(१) सचित्ताचित्त विषयक निर्णय

बादाम, पिस्ता, नोजा (चिलगोजा), चारोली की मज्जा, सफेद और काली मिर्च अखण्ड नही लेंगे और पीपल वगैरह पीसी नही लेंगे। पानी का बर्फ नही लेंगे।

डोचरा, काकड़ी, एरण्ड काकड़ी (पपीता), खरबूजा, तरबूज, आम्रफल, नारगी, सतरा की फाकें, केला, किसमिस आदि वस्तुओ के लिये मतभेद बहुत अर्से से चला आ रहा था, उसके लिए एकमत होकर प्रेम, ऐक्यता एव संगठन हेतु इस निश्चय पर पहुंचे कि आचार्यश्री उपाचार्यश्री की आज्ञानुसार श्री वर्द्ध. स्था. जैन श्रमणसघ ने मर्यादा स्थापित की है कि बिना शस्त्रपरिणत इनको नही लेंगे। किन्तु उसके सघट्टे के लिए किसी को कुछ कहने का अधिकार नही होगा।

इसी प्रसग मे ध्वनि-वर्धक-यन्त्र के उपयोग का प्रश्न भी उपस्थित हो गया। इसके सम्बन्ध में आगे सकेत किया जा रहा है।

(२) संवत्सरी सम्बन्धी

स्थानकवासी समाज मे सवत्सरी के बारे में तीन विचार-मान्यताये प्रचलित हैं। एक है— दो श्रावण हो तो दूसरे श्रावण मे और

दो भाद्रपद हो तो प्रथम भाद्रपद मे संवत्सरी करना । दूसरी विचार-धारा है— दो श्रावण हो तो भाद्रपद मे और दो भाद्रपद हो तो प्रथम भाद्रपद मास में संवत्सरी करना। तीसरी विचारधारा है--दो श्रावण हों तो भाद्रपद मे और दो भाद्रपद हो तो द्वितीय भाद्रपद मे संवत्सरी करना चाहिये ।

सादडी सम्मेलन मे सवत्सरी के प्रश्न का समाधान करने के लिये गम्भीरतापूर्वक प्रयास किया गया था । किन्तु आधार के बारे मे मतैक्य नही हो सका था । इसलिये प्रेम और सम्पूर्ण सगठन को लक्ष्य मे रखते हुए दो श्रावण हो तो भाद्रपद में और दो भाद्रपद हो तो दूसरे भाद्रपद मे सवत्सरी करना चाहिये, ऐसा प्रस्ताव स्वीकृत किया गया था । यद्यपि बहुमत इस पक्ष में नही था, किन्तु अल्पसख्यक वर्ग के साथ प्रेम एव सद्भावना रखने के लिये यह प्रस्ताव सर्वानुमति से स्वीकार किया गया था ।

उक्त प्रस्ताव पारित होने पर भी सवत्सरी की समस्या का समाधान हुआ नही और जो ध्येय था वह भी सफल नही हो सका । परन्तु सादडी-सम्मेलन के सवत्सरी सम्बन्धी प्रस्ताव के क्रियान्वित होने से सौराष्ट्र स्थानकवासी जैनसघ एक प्रकार-से पृथक्-सा हो गया । अतः उसे सयुक्त करने के लिये इस प्रश्न को पुनर्विचारणा हेतु उपस्थित करना पड़ा । इसके लिये निम्नलिखित सन्तो व श्रावको की एक समिति नियुक्त की गई है । यह समिति आगामी सवत्सरी तक उचित निर्णय देने का प्रयत्न करे । निर्णय करने मे सुविधा हो, इसके लिये हमारी सूचना है कि लोकमान्यता की ओर दृष्टि न रखते हुए शास्त्रीय मान्यता को महत्त्व दिया जाये । यदि श्रावण, भाद्रपद और आसोज दो आते हैं तो दो आषाढ़ मास माने जायें । ऐसा करने से प्रत्येक मान्यता वाले को सन्तोष हो सकेगा ।

समिति— १. पं. मुनिश्री कस्तूरचन्द जी म., २. श्री सूर्यमुनिजी म. ३. पं. समर्थमल जी म., ४. मन्त्री श्री शुक्लचन्द जी म., ५. मरुधर-

यह मन्त्रिमण्डल की व्यवस्था सदा के लिये चलेगी, इस भावना से नही किन्तु यह अभिप्राय व्यक्त हो रहा था कि श्रमणसंघ में स्वीकृत उद्देश्य की पूर्णरूपेण पूर्ति होने में कुछ समय लग सकता है, अतः जब तक उद्देश्य का पूर्ण अमली रूप न हो जाये, तब तक जो कुछ बना है उसकी व्यवस्था बनी रहे, इसके लिये मन्त्रिमण्डल का गठन किया गया था। लेकिन उपाध्याय पद अवशेष रह गया था। अतः उसकी पूर्ति वृहत्साधुसम्मेलन मे करना आवश्यक था ही। तदनुसार चार उपाध्यायों का चुनाव कर लिया गया। साथ ही उद्देश्य के अनुरूप एक ही की नेश्राय मे दीक्षा, शिक्षा, प्रायश्चित्त, विहार आदि व्यवस्थित करने के लिए भी सोचा जा रहा था। लेकिन सादडी-सम्मेलन के अन्दर उद्देश्यपूर्ति की जो उदात्त भावना परिलक्षित हो रही थी वह इस वृहत्साधुसम्मेलन तक प्राय मन्द-सी हो गई थी। समय-समय पर प्रसंगोपात्त सावधानी भी दिखलाई जाती रही लेकिन अधिकाश सात-मानस मे उद्देश्य के प्रतिकूल ही कुछ क्रियायें चल रही थी। इसका नतीजा यह हुआ कि कुछ खास अधिकार जो प्रधानमत्री आदि के लिये ऊपर की स्थिति मे सुरक्षित थे, वे भी सम्पूर्णरूप मे मन्त्रिमण्डल बाटना चाहता था यानि सादड़ी सम्मेलन के लक्ष्य के प्रतिकूल ही व्यवस्था सोची जा रही थी और वहुमत की बातो को मुख्य रखकर मन्त्रिमण्डल वनाया गया।

उपाध्याय मण्डल और मन्त्रिमण्डल के वारे मे निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वानुमति से स्वीकृत हुआ—

श्रमणसघ निम्नलिखित चार उपाध्याय स्वीकार करता है—
१ प. आनन्दऋषिजी म., २ प. प्यारचन्दजी म., ३ कविश्री अमरचन्दजी म., ४ प श्री हस्तीमलजी म.।

मन्त्रिमण्डल की नामावली व क्षेत्रविभाग

प्रधानमन्त्री— व्याख्यानवाचस्पति श्री मदनलालजी म.
मन्त्री— मुनिश्री पृथ्वीचन्दजी म.—अलवर, भरतपुर, उ. प्र.
„ „ शुक्लचन्दजी म.—पंजाब, पेप्सू

मन्त्री—मुनिश्री—प्रेमचन्दजी म. —दिल्ली, बांगड़, हरियाणा, जंगलप्रदेश

" " सहस्रमलजी म. —मध्यभारत, ग्वालियर, कोटा राज्य

" " पूर्णमलजी म. —थलीप्रदेश

" " मिश्रीमलजी म. —मारवाड़-बिलाड़ा, जयतारण, सोजत, देसूरी, पाली, सिवाना, जोधपुर, जालोर क्षेत्र

" " हजारीमलजी म.—डेगाना, पर्वतसर, नागौर, डीडवाना, फलौदी, साभर, शेरगढ़, साकड़ा, मेड़तापट्टी रेल्वे लाइन से उत्तर दिशा तरफ

" " पन्नालालजी म.—जयपुर, टोंक, माधोपुर, अजमेर राज्य

" " किशनलालजी म.—खानदेश, बरार, सी पी., बम्बई

" " विनयऋषिजी म.—महाराष्ट्र, मद्रास, मैसूर

" " फूलचन्दजी म. —बंगाल, बिहार, आसाम, उड़ीसा

" " मोतीलालजी म. —मेवाड़, पचमहाल

" " पुष्करमुनिजी म — " "

इस प्रकार क्षेत्रीय वर्गीकरण करने से चतुर्विध संघ की धर्म-कारिणी-सम्बन्धी व्यवस्था मन्त्रिमण्डल के अधीन हो गई और उपाध्याय-मण्डल की नियुक्ति से मुनियों के शिक्षण, साहित्य-सर्जन और आगम-प्रकाशन के बारे में संभावना व्यक्त की गई और शास्त्रीय दृष्टि से शंका-समाधान का अवसर आने पर उपाध्याय-मंडल को उसका निराकरण करने का भार सौंपा गया।

(४) ध्वनिवर्धक यन्त्र विषयक

ध्वनिवर्धक-यन्त्र से बोलने या न बोलने के बारे में साधु-सन्तों में दो विचारधारायें विद्यमान थीं। एक विचारधारा थी कि श्रमण-

केसरी मन्त्री श्री मिश्रीमल जी म., ६. उपाध्याय कविश्री अमरचन्द जी म, ७. प. श्री जीतमल जी म , ८. प. श्री कुन्दनमल जी म., ९. पं. पद्म-मुनिजी म., १०. श्री सदानन्दी छोटेलाल जी म, ११. उमरशी कानजी-भाई १२. लोकागच्छीय श्री पूज्य जी का मत लिया जाये, १३. श्री कुन्दनमल जी फिरोदिया, १४. श्री दुर्लभजी केशवजी खेताणी, १५. श्री मणिलाल वनमालीदासभाइ, १६. श्री वेलशी लखमशी नप्पु, १७ श्री गिरधरलाल दफ्तरी।

इस समिति का यथाशक्य सर्वानुमति के किया गया निर्णय सभी को मान्य होगा। इस समिति के सयोजक मरुधरकेशरी मन्त्री मुनिश्री मिश्रीमल जी म. होगे।

उदय और अस्त तिथि का निर्णय भी इस समिति के साथ ही सम्बद्ध किया जाता है।

नोट— श्वेताम्बर मूर्तिपूजक, स्थानकवासी और तेरहपंथी वगैरह विभिन्न परम्पराओ के श्वेताम्बर सघ यदि सवत्सरी की एकता के लिये कोई एक निर्णय कर सकते हों तो उसके लिये श्री व. स्था. जैन श्रमणसघ उदारतापूर्वक अपना उचित सहकार देने के लिये तैयार हैं।

यह प्रस्ताव और आचार्यश्री की मान्यता

सम्मेलन मे जब सवत्सरी विषयक प्रश्न चल रहा था तब आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा. ने दीर्घदृष्टिपूर्वक अपने उदात्त विचार सभी के सम्मुख रखे और फरमाया कि सवत्सरी का प्रकरण मुख्यतया परम्पराओ की दृष्टि से उलझ-सा रहा है और समस्त जैन समाज मे विभिन्न तरीको से सवत्सरी पर्व मनाया जा रहा है। यद्यपि श्रमणसघ ने स्थानकवासी समाज के तत्त्व को सामने रख कर कुछ सोचा है, लेकिन मैं इतने मात्र से ही इस विषय मे सतुष्टि मानने की स्थिति मे नही हूँ। मेरा अन्त करण तो यह चाहता है कि कम-से-कम सवत्सरी जैसे महापर्व के विषय मे एक ही दिन पर्व मानने की सोचना चाहिये। यदि समग्र जैनसमाज सवत्सरी विषयक अपनी-अपनी परम्पराओ के

आग्रह की स्थिति को ढीला कर एक ही रोज संवत्सरी पर्व (चाहे वह दूसरे श्रावण में हो या भादवे मे हो) मनाने को तत्पर हो जाये तो श्रमणसंघ को भी पूरी उदारता के साथ सवत्सरी-विषयक एकता में सहयोग देना चाहिए आदि। उक्त आशय के वक्तव्य के पश्चात् श्रमणसघ ने संवत्सरी-विषयक प्रस्ताव के नीचे उपर्युक्त नोट लगाया जो कि यहां यथास्थान उद्धृत कर दिया गया है।

आचार्य श्रीजी म. सा. के संवत्सरी के सम्बन्ध मे स्पष्ट विचार थे कि मेरी भूतपूर्व मान्यता द्वितीय श्रावण की ही थी परन्तु जब अल्प-सख्यक सप्रदाय के मुनिवरों को प्रेम एवं सद्भावना के नाते वचन देकर सादडी में प्रस्ताव बनाया गया तो जब तक सौराष्ट्र सघ नही मिले या ऐसी कोई बडी बात न हो तब तक दिये गये वचनों से श्रमणसंघ में रहते फिरना उन मुनिवरो के प्रति हमारा विश्वासघात जैसा होगा।

इन्ही सब दृष्टिकोणों को लक्ष्य मे रखते हुए और संगठन के सूत्र को सुदृढ बनाने के लिये संवत्सरी विषयक प्रस्ताव पुनर्विचारणा के लिये सम्मेलन के समक्ष उपस्थित किया गया था। लेकिन प्रस्ताव कहा तक सफल हो सका, यह यथाप्रसग बतलाया जायेगा।

आचार्य श्रीजी प्रत्येक विवादास्पद प्रश्न पर अपनी एक प्रबल और शास्त्रीय प्रमाणों से पुष्ट दृढ राय रखते थे, फिर भी आपश्री ने अपनी सम्मति को आग्रह का रूप कदापि नही दिया। आपश्री एक ही बात जानते थे कि तर्क की कसौटी पर कसने योग्य प्रत्येक विषय को तर्क की कसौटी पर कसो, जो विचार हों उन्हे निस्संकोच व्यक्त करो और मंथन करो। लेकिन जो सर्वमान्य निर्णय हो जायें, उन पर दृढ रहना चाहिये। वाक्छल या सुविधा के नाम पर स्वच्छन्द प्रवृत्ति नहीं होना चाहिये। तभी संगठन को बल मिलेगा और उसकी भावना से श्रावक-श्राविकाओं में सगठन की शक्ति व्याप्त होगी।

(२) उपाध्यायमण्डल की स्थापना व मन्त्रिमण्डल का पुनर्गठन

यद्यपि सादडी में मन्त्रिमण्डल की व्यवस्था की गई थी, लेकिन

वर्ग का चरित्रबल बना रहना आवश्यक है। शास्त्रानुसार उसकी क्रियायें हो। स्वच्छन्द और अवैधानिक प्रवृत्तियों के लिये सुविधा न दी जाये। ध्वनिवर्धक-यन्त्र के प्रयोग मे विद्युत का उपयोग होता है और विद्युत तेजस्काय है और जो सचित्त है। अतः उसकी विराधना करना श्रमणधर्म की परम्परा नही है। सैद्धान्तिक भ्रान्तियो के साथ ध्वनिवर्धक-यन्त्र की स्वच्छन्द प्रवृत्ति से समाज की स्थिति डावाडोल और अस्थिर हो जायेगी। अतः साधुजीवन के उत्कर्ष की दृष्टि से श्रमणवर्ग के लिये ध्वनिवर्धक-यन्त्र का उपयोग उचित नही है। यदि ध्वनिवर्धक-यन्त्र के उपयोग करने की सुविधा दी जाती है तो उस सुविधा के नाम पर बिजली के पखे, रोशनी, टेपरिकार्डर और वातानुकूलित गृह के उपयोग की परम्परा भी चल पड़ेगी और इसके जो परिणाम निकलेंगे, धर्मानुरागियो को इसके कुपरिणाम भुगतने के लिये तैयार रहना चाहिये। दूसरी विचारधारा थी कि ध्वनिवर्धक-यन्त्र का उपयोग आवश्यकतानुसार किया जाये तो कोई हानि नही है, उससे मुनिधर्म के पालन मे दोष नही लगता और उसके उपयोग के लिये प्रायश्चित्त लेने की जरूरत नही है। ध्वनिवर्धक-यन्त्र का उपयोग साधु अपनी सुविधा के लिये नही करते वरन् श्रावक अपने लिये करते हैं। इसलिये मुनिचर्या मे मुनि के निमित्त यह कार्य न होने से मुनि को दण्ड-प्रायश्चित्त लेने का प्रश्न ही नही उठता है। दूसरी बात–विद्युत् अचित्त है और जब वह अचित्त है तो उसके उपयोग से साधु को जीवो की विराधना का दोष नहीं लगता है। साथ ही जब हम जैनधर्म के प्रचार की बात करते हैं तो समयानुकूल प्रचार-साधनो को जुटाना आवश्यक हो जाता है तथा पहले इतने बडे-बडे नगर देश मे नही थे, जितने आज हैं। उस स्थिति मे जैन गृहसख्या नगरो में बढी है और वे सभी एक स्थान पर प्रवचन आदि का लाभ प्राप्त करने के लिये एकत्रित होते हैं। सख्या की बहुलता के कारण सभी श्रोताओ तक आवाज पहुंच सके, यह संभव नही है। इसलिये उस स्थिति मे ध्वनिवर्धक-यन्त्र का उपयोग होता

है तो करना चाहिये ।

इस बात का उत्तर शास्त्रीय परम्परा वाले यह देते थे कि इसमे बहुत बडी हानि हो सकती है । क्योकि ध्वनि यन्त्र मे विद्युत का प्रयोग होता है और विद्युत अग्निकाय के अन्दर है । इसके लिए उत्तराध्ययन सूत्र के ३६ वें अध्ययन में जहां बादर तेऊकाय का प्रकरण चला है वहा तेऊकाय के भेद गिनाते हुए शास्त्रकार ने 'इगलि' (अगार) आदि के साथ 'विज्जू' (विद्युत) अर्थात् अंगार अग्नि की तरह विद्युत अग्नि को भी तेऊकाय में स्पष्ट गिनाया है । इसी तरह अन्य शास्त्र मे भी अग्नि के भेद गिनाते हुए 'सघर्ष समुत्थिय' अर्थात् सघर्ष से पैदा होने वाली को भी अग्नि कहा है, आदि कई शास्त्रीय प्रमाणों से विद्युत को तेऊकाय के अन्दर प्रतिपादन किया है और कहा है कि यदि इसको काम मे लिया जाता है तो तेऊकाय (अग्निकाय) की विराधना होने से साधु के पहले महाव्रत की खण्डना होती है । महाव्रत की खण्डना की स्थिति के साथ यदि प्रचार का कार्य चालू किया गया तो अन्य महाव्रतों के खण्डन का भी प्रसग आ सकता है और यह सिलसिला आगे चलते हुए समग्र श्रमणसस्कृति का घात करने वाला भी बन सकता है । अत: इसको काम में लेना बहुत हानि का कार्य है ।

इन दोनो विचारधाराओ का सघर्ष समेलन मे स्पष्ट रूप से सभी के समक्ष आ गया था । ऐसा मालूम पडता था कि ध्वनिवर्धक-यन्त्र मे बोलने में प्रतिष्ठा और न बोलने मे अप्रतिष्ठा हो । जहा आदर्श को सुरक्षित रखने की भावना गौण और अहम् की भावना मुख्य हो जाती है, वहां शुद्धता के लिये अवकाश नही रह जाता है । 'स्वार्थी दोष न पश्यति' की उक्ति बात-बात मे व्यक्त होने लगती है । सम्मेलन मे भी यही बात हुई । यहां तक दिखने लगा कि यदि साधुओं को ध्वनिवर्धक-यन्त्र के उपयोग करने की अनुमति न मिली तो श्रमण संगठन को खण्ड-खंड करने मे भी झिझक नही होगी ।

वातावरण बड़ा क्षुब्ध था । अत. स्वाभाविक था कि ऐसे वाता-

वरण मे कोई निर्णय नही किया जा सकता था और हुआ भी वैसा ही। चर्चा-विचारणा के पश्चात् जो प्रस्ताव हुआ, वह इस प्रकार है—

'ध्वनिवर्धक यन्त्र में बोलना मुनिधर्म की परम्परा नही है। यदि अपवाद मे बोलना पडे तो उसका प्रायश्चित्त लेना होगा। किन्तु स्वच्छन्दरूप से ध्वनिवर्धक-यन्त्र का उपयोग नही करना चाहिये।'

इस प्रस्ताव पर उपाध्याय श्री हस्तीमल जी म. सा., प. मुनिश्री पन्नालाल जी म सा, प मुनिश्री नानालालजी म. सा. (वर्तमान आचार्यश्री) तटस्थ रहे और प मुनिश्री लालचन्दजी म सा. ने विरोध मे मत दिया। प्रस्ताव सर्वानुमति से न होकर एकमत के विरोध से स्वीकृत हुआ।

प्रस्ताव पारित होने के बाद जो ध्वनि-यन्त्र मे बोलने के पक्ष में थे, उन्होने प्रस्ताव के शब्दो पर गहराई से विचार न कर अपने मन मे सतुष्टि मान ली कि हमारे लिए प्रायश्चित्त के साथ अपवाद में ध्वनि-यन्त्र खुल गया है। लेकिन जो शास्त्रानुसार ध्वनि-यन्त्र में नही बोलने के पक्ष मे थे, उन्होने गहराई से सोचा कि प्रस्ताव की भाषा मे ध्वनि-यन्त्र खुलने जैसी कोई बात नही है। प्रस्ताव मे सिर्फ शास्त्रीय शब्दो का सकलन मात्र है। 'मुनिधर्म की परम्परा नही है' इन शब्दो से मुनिधर्म जो महाव्रतादि हैं उनमे यह चीज आ नही सकती और 'अपवाद मे बोलना पडे तो' इन शब्दो मे भी 'तो' शब्द से अपवाद भी साधारण नही, लेकिन अत्यन्त विवशता की स्थिति का द्योतन करता है। अर्थात् जहा साधु का सयमी जीवन खतरे मे पड़ने की स्थिति मे हो, वहा साधु की अत्यन्त विवशता की स्थिति आती है। जन समुदाय के एकत्र होने मात्र से अधिक को सुनाने की स्थिति में साधु की विवशता नही आती। क्योंकि साधु ऐसी स्थिति मे अधिक को नही सुनाता है तो साधु का जीवन खतरे मे नही पड़ता है। प्रस्ताव मे जो प्रायश्चित्त अनिवार्य रूप से रखा गया है, इससे विद्युत को अचित्त मानना स्वतः निरस्त हो जाता है और अनिवार्य प्रायश्चित्त से विद्युत स्वय सचित्त सिद्ध हो जाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त ध्वनियन्त्र विषयक प्रस्ताव मे उल्लिखित शब्दो द्वारा शास्त्रीय सिद्धान्त और श्रमण सस्कृति की सुरक्षा की स्थिति दृढ बन गई। अत. शास्त्रानुसार ध्वनि-यन्त्र मे नही बोलने वाला पक्ष अपनी स्थिति को सुरक्षित समझकर चुप हो गया। क्योकि प्रस्ताव में उल्लिखित शास्त्रीय शब्दो की शास्त्रीय दृष्टि से जिस समय व्याख्या की जायेगी, उस समय ध्वनि-यन्त्र का अधिक सख्या मे सुनाने का अपवाद बन ही नहीं सकेगा और न कोई बोल सकेगा। यदि उसके पहले कोई बोल देगा तो वह श्रमणसघ के नियमानुसार नियम को तोड़ने वाला माना जायेगा। अतः इस प्रस्ताव से ध्वनि-यन्त्र मे नही बोलने वाले पक्ष को भी सतुष्टि हो गई। यही कारण है कि भीनासर साधु-सम्मेलन मे जनता की पर्याप्त सख्या होते हुए भी, वहां कोई भी साधु ध्वनि-यन्त्र मे न बोल सका।

इन प्रस्तावों के अतिरिक्त अन्य भी कई प्रस्ताव पारित हुए। लेकिन उनका यहा कोई खास प्रसंग न होने से उद्धृत नही किये जा रहे हैं। सिर्फ एक प्रस्ताव जिसका पूर्व मे सकेत किया गया, यहा दिया जा रहा है :—

> 'श्री वर्द्ध॰ स्था॰ जैन श्रमणसघ के श्रद्धेय उपाचार्यश्री (आचार्यश्री) पर जो अनर्गल मिथ्या एवं अशोभन आक्षेप किये गये हैं, उनको उपाचार्य श्रीजी म. ने जिस गम्भीरता, शांति एव उदारता से सहन किया एव विष को अमृत में बदलने के लिये जो निरन्तर प्रयत्न किया, इसके लिये समस्त प्रतिनिधि मुनिमण्डल अपनी हार्दिक श्रद्धा-जलि अर्पण करता है और इस आदर्श कार्य को अनुकरणीय समझता है।'

साधु-सम्मेलन मे पारित प्रस्तावों के साथ अन्यान्य औपचारिक कार्यवाई के पश्चात् बृहत्साधु-सम्मेलन दि. ४ अप्रेल '५६ को समाप्त हुआ।

आचार्यश्री का दृष्टिकोण

बृहत्साधु-सम्मेलन सादड़ी में मुनिमण्डल द्वारा प्रदर्शित मन-स्थिति इस सम्मेलन के पूर्व से ही लुप्तप्रायः होने लगी थी। वृद्ध,

सगठन, प्रवेशपत्रों मे व्यक्त भावनायें तिरोहित हो चुकी थी, किन्तु व्यक्तिगत प्रभाव प्रदर्शित करने एव शास्त्रीय मर्यादाओं का सुविधानुसार उपयोग करने की प्रवृत्ति वृद्धिगत थी। एक आचार्य के नेतृत्व में एक श्रमणसघ का ध्येय अवश्य घोषित किया था किन्तु उस घोषणा को साकार करने की प्राय: किसी मे आकांक्षा नही थी। वही ढाक के तीन पात जैसी बात चल रही थी।

लेकिन पूज्य आचार्य श्रीजी इस स्थिति को संघ के लिये, श्रमण-परम्परा के लिये एवं सघ के उद्देश्य के लिये श्रेयस्कर नही मानते थे। चर्चा-वार्ता के प्रसंग में मुनिमण्डल के समक्ष भी इन्हीं विचारों को व्यक्त किया था कि इस सम्मेलन मे हमे सादडी-सम्मेलन का अवशिष्ट कार्य पूर्ण करना चाहिये, जिससे हम सगठन की दिशा मे बढ़ें और सगठन सुदृढ बने तथा सम्मेलन होने का उद्देश्य सार्थक हो।

लेकिन हो रहा था इस भावना के प्रतिकूल ही। आचार्यश्री के विचारो में अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था कि इससे अपने को निर्लिप्त रखते हुए कर्तव्यदृष्टि से यथावसर योग्य सलाह सूचना के सकेत के साथ तटस्थ रहना ही उपयुक्त है। यदि ये मुनिवर सादडी-सम्मेलन मे दिये गये सोत्साह आश्वासन के अनुसार अपने वचन पर दृढ रहे एवं सघ-ऐक्य योजना को कार्यान्वित करेंगे तो सगठन पल्लवित-पुष्पित होगा और यदि उद्देश्य को गौण कर अथवा दलबन्दी के रूप मे छिन्न-भिन्न कर दिया तो मैं अपने प्रवेश-पत्र मे लिखित सकेत के अनुसार अलग हो सकता हूँ। निर्ग्रन्थ श्रमण-सस्कृति की सुरक्षा के सिवाय मेरा व्यक्तिगत स्वार्थ नही है और सिर्फ सुरक्षा का प्रयास कर रहा हूँ। इतना होने पर भी श्रमण-संस्कृति की शुद्धता खडित हुई तो सहयोग देना योग्य नही है। वार्त-मानिक कार्यावस्था साधारण रूप की है। अत: इस स्थिति मे मूकदर्शक के रूप मे रहना चाहिये, अन्यथा हितावह कहना भी प्रच्छन्न दलबन्दी दूसरा ही आशय लगायेगी।

ऐसा विचार कर पूज्य आचार्य श्रीजी सम्मेलन मे मुनिवृन्द

की प्रक्रिया देखते-सुनते रहे और सन्तोषजनक न होते हुए भी भविष्य की सुखद कल्पना से कि आज नहीं तो कल इनमें सद्बुद्धि पैदा होगी, दलबन्दी का परित्याग कर लक्ष्य के अनुरूप संगठन को बनायेंगे, सम्मेलन की कार्रवाई मे योग देते रहे ।

लेकिन सन्तो की मनोवृत्ति मे सादड़ी-सम्मेलन जैसा परिवर्तन नही आया, सो नही आया । इसका परिणाम यह हुआ कि भविष्य में श्रमणसघ कूटनीति का अखाडा बना और उद्देश्य तिरोहित हो गया । इस सम्मेलन से समाज को जो आशायें थी, निर्मूल सिद्ध हुई ।

स्वर्णजयन्ती-महोत्सव

इसी अवसर पर श्री अ भा श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स का स्वर्णजयन्ती अधिवेशन दि ४, ५, ६ अप्रैल '५६ को श्री विनयचन्दभाई दुर्लभजी जवेरी की अध्यक्षता में किया गया । समारोह का उद्घाटन भारत के तत्कालीन माननीय गृहमन्त्री श्री गोविन्दवल्लभ पत ने किया । वृहत्साधु-सम्मेलन और यह अधिवेशन होने से देश के कोने-कोने से श्रावक-श्राविकाओं की उपस्थिति आशातीत हुई थी । बीकानेर, गंगाशहर, भीनासर सघों ने सामूहिक रूप से इस अधिवेशन में योग दिया । महिला-सम्मेलन, युवक-सम्मेलन, पत्रकार-परिषद आदि विविध कार्यक्रमों से अधिवेशन में समाज की सभी समस्याओं पर विचार किया गया ।

इसी अवसर पर दि. ५-४-५६ को आचार्यश्री आत्मारामजी म सा. एव आचार्यश्री गणेशलालजी म. सा. की दीक्षा के ५० वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में दीक्षा-स्वर्णजयन्ती महोत्सव त्याग-प्रत्याख्यान व व्याख्यान आदि के रूप मे मनाया गया । उपस्थित मुनिवर्य, महासतियांजी म. एव श्रावक-श्राविकाओं ने अपनी-अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए भाव व्यक्त किये थे ।

इसी प्रकार से देश के विभिन्न श्रीसंघो ने भी अपने-अपने यहां दीक्षा-स्वर्णजयन्ती मनाई और अपनी-अपनी श्रद्धा व्यक्त की—आपकी साधना हमारी मार्गदर्शक बने ।

कान्फरन्स-अधिवेशन का अनोखा प्रस्ताव

श्री अ भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स के अधिवेशन में राष्ट्र, समाज से सम्बन्धित प्रश्नो पर विचार-विमर्श कर कुछ निर्णय किये गये। उनके साथ ही ध्वनिवधक-यन्त्र के बारे मे एक ऐसा प्रस्ताव भी पारित कर दिया, जिसके बारे मे वृहत्साधु-सम्मेलन भी अनिश्चयात्मक प्रस्ताव बहुमत के आधार पर पारित कर सका था। प्रस्ताव इस प्रकार है—

'वर्तमान युग मे बहु जनसख्या के कारण ध्वनिवर्धक-यन्त्र का उपयोग आवश्यक हो जाता है। इस सम्बन्ध मे श्रमणसघ ने जो प्रस्ताव किया है, वह निम्नानुसार है—

ध्वनिवर्धक यन्त्र मे बोलना मुनिधर्म की परम्परा नही है। यदि अपवाद मे बोलना पड़े तो उसका प्रायश्चित्त लेना होगा। किन्तु स्वच्छन्द रूप से ध्वनिवर्धक यन्त्र का उपयोग नही करना चाहिये।

इस प्रस्ताव को लक्ष्य मे लेकर जिन संघों को ध्वनि-वर्धक-यन्त्र का प्रबन्ध करना आवश्यक हो, वे कर सकते हैं।'

इस प्रकार के प्रस्ताव से अधिवेशन में उपस्थित बधुओ मे रोष का वातावरण व्याप्त हो गया, क्योंकि यह प्रस्ताव कान्फरन्स के कतिपय नेताओ का था। श्रमणसघ ने जो प्रस्ताव पास किया, वह भी बहुमत का है और उसमे भी शब्दो का जो सकलन हुआ, उन शब्दों की वास्तविक शास्त्रीय व्याख्या हुए विना ध्वनियन्त्र के लिए श्रावकों को प्रस्ताव करने की कतई आवश्यकता न थी। फिर भी प्रस्ताव घडकर अनधिकार चेष्टा की, उसका नतीजा अशु-द्धता के रूप मे तत्काल ही परिलक्षित हो गया। मानो सगठन रूपी महल को छिन्न-भिन्न करने के लिए उसकी ईंट खिसकाना प्रारम्भ कर दिया गया हो। विषय निर्वाचनी समिति में भी मतैक्य नही था, फिर भी इस प्रस्ताव को खुले अधिवेशन में स्वीकृत्यर्थ उपस्थित किया गया। प्रस्तावक महोदय ने सोचा होगा कि सम्मे-लन मे तो बहुमत से प्रस्ताव स्वीकृत हो चुका है अतः यहा तो

व्यक्तिगत प्रभाव से स्वीकृत हो ही जायेगा। लेकिन उपस्थिति में जब रोष का वातावरण बना तो उसका निराकरण करने में स्वयं समर्थ नहीं हो सके और परिस्थिति को शांत करने के लिये मुनिराजों का सहारा लिया गया। उनके पधारने से विरोध ऊपरी तौर पर शांत हो गया, लेकिन मनों में अस्वस्थ वातावरण की कसक अवश्य ही छोड़ गया। परिणाम यह हुआ कि कान्फरन्स के समस्त समाज के प्रतिनिधित्व रूप को आघात पहुंचा और वह कुछ एक व्यक्तियों की संस्था-मात्र रह गई। इसके कारण श्रमण-संगठन का ढांचा भी लड़खड़ाया और समाज की आशायें भी निर्मूल सिद्ध हुईं।

सम्मेलन और अधिवेशन के पश्चात

भीनासर में चतुर्विध संघ का जमघट हुआ और समाजोन्नति के लिये योजनाबद्ध कार्य करने के निश्चय भी हुए। लेकिन कार्य के लिये प्रेरक शक्ति के विद्यमान होते हुए भी प्रायः साधुओं में राजनीति-जैसी कुत्सित गुटबंदी के कारण निराशा दृष्टिगोचर होती थी। संक्षेप में कहें तो सभी अनेक आशंकाओं को लिये अपने-अपने क्षेत्रों की ओर जा रहे थे। मनों में एक प्रकार का अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था कि आगे क्या होता है? यह संगठन टिकेगा या नहीं? किन्हीं-किन्हीं को आशंका थी कि संगठन से पहले जो व्यवस्था थी, वह तो अब नष्टप्राय: है और नया संगठन सबल बनने के पूर्व ही छिन्नभिन्न होता दिखाई देता है। अस्तु अब जो हो चुका है, उसके परिणाम देखने की ही अपने को प्रतीक्षा करना चाहिये।

इसप्रकार की विचारधारा का ही परिणाम था कि श्रमणसंघ के अधिकारी मुनिराजों की ओर से समय-समय पर संगठन के निश्चयों, प्रस्तावों के क्रियान्वित कराने के लिये प्रेरणा तो दी जाती थी और श्रावकों के द्वारा भी संगठन को मजबूत बनाने के लिये बार-बार घोषणायें होती रहती थीं, लेकिन शक्ति का अपव्यय हो रहा था और समाज की गरिमा क्षीण होती जा रही थी।

सम्मेलन के पश्चात साधु-सन्तो का विभिन्न क्षेत्रो की ओर विहार हुआ । सगठन की सुदृढता के लिये साधु एवं श्रावकवर्ग यह अनुभव करता था कि विभिन्न सिघाड़ो के साधु-सन्तो की पारस्परिक अदला-बदली हो और एक-दूसरे के विशेष सम्पर्क मे आयें तो सगठन को वल मिल सकता है । पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. भी स्वय इस बात को फरमाते थे कि श्रमणसघ को सबल वनाने एवं उसमें आगत विकृतियो का उन्मूलन करने के लिये एक-दूसरे सिघाड़े के सन्तों को एक-दूसरे सिघाड़े के साथ रखना आवश्यक है । इस बात को सम्मेलन की विचारणीय विषयसूची में भी रखा गया और सन्तो ने इसके लिये काफी विचार-विमर्श कर उपयोगी माना और तदनुकूल कार्य करने की भावना भी व्यक्त की थी। लेकिन हृदय की दुर्बलता या मन-वचन-काया की अन्यथा प्रवृत्ति के कारण यह विचार मूर्तरूप नही ले सका । इतना प्रवल शिष्यमोह परिलक्षित हुआ कि विरागी और रागी मे भेद करना भी कठिन-सा दिखता था ।

आचार्य श्रीजी द्वारा निर्णयों का कार्यान्वयन

आचार्य श्रीजी श्रमणसघ को अखण्ड, एक, सुदृढ संगठन के रूप मे देखना चाहते थे और इसके लिये जो उचित समझते थे, सदैव करने के लिये उत्सुक थे । सम्मेलन मे तो एक-दूसरे के सन्तों की अदला-वदली का निर्णय अभी हुआ था किन्तु सादडी-सम्मेलन के समय से ही आचार्य श्रीजी ने इस परम्परा का सूत्रपात कर दिया था । सह-मन्त्री मुनिश्री प्यारचन्दजी म. सा आदि का अपने साथ ही उदयपुर मे चातुर्मास कराया था और अपने सन्तो को दूसरे-दूसरे सिघाड़ो मे रहने की अनुमति प्रदान की थी ।

सयुक्त चातुर्मास के समय स्थविरपद विभूषित मुनिश्री पूरणमलजी म. सा. जोधपुर मे स्थिरावास मे विराजमान थे । आपके साथ एक शिष्य था जो साथ रहने के लिये तैयार नही था और उचित वैयावृत्ति करने मे भी प्रमाद कर देता था । यह स्थिति मुनिश्री पूरण-

मलजी म. ने आचार्य श्री एवं उपस्थित अन्य सन्तों के समक्ष रखी और कहा कि संयम-साधना के अनुकूल मेरी व्यवस्था करा दी जाये, जिससे मेरी आत्म-साधना में व्यवधान न आये। यहां विराजित शास्त्रज्ञ मुनिश्री समर्थमलजी म. के समक्ष भी यही संकेत किया है तो कहते हैं कि श्रमणसंघ छोड़ो तो मैं सन्त दूं। यद्यपि श्रमणसंघ में अभी कई बातें सन्तोपकारक नहीं हैं और आपश्री उनके उचित समाधान के लिये प्रयत्नशील हैं। मैं भी उनके समाधान में अपना योग देने के तैयार हूँ। लेकिन श्रमणसंघ में मेरी योग्य व्यवस्था न हो सकी और साधना में व्याघात आया तो आत्महित और इतने समय की संयम-साधना के फलितार्थ को पूर्ण करने के लिये श्रमणसंघ को छोड़ने के लिये भी मुझे विवश होना पड़ेगा।

आचार्य श्रीजी म. सा. ने इस स्थिति को समझा। इस चातुर्मास काल में श्रमणसंघ के तत्कालीन प्रधानमन्त्री मुनिश्री आनन्दऋषिजी म. सा. भी साथ में थे। उनसे आपश्री ने कहा कि मुनिश्री पूरणमलजी म. की स्थिति की व्यवस्था करना अपना कर्तव्य है। एक सन्त आप दीजिये और एक सन्त मैं दूं, जिससे इनकी सेवा भी हो और आत्म-साधना में किसी प्रकार का व्यवधान न आये। लेकिन प्रधानमन्त्री म. ने इस उचित कार्य के लिये अपनी अनिच्छा व्यक्त की और सन्त देने से इन्कार कर दिया।

आचार्य श्रीजी म. सा. ने श्री हस्तीमलजी म. सा. आदि के समक्ष भी इसी प्रकार का प्रस्ताव रखा, लेकिन कोई भी अपने शिष्य को सेवा में रखना नहीं चाहते थे। सभी को परखा लेकिन किसी में भी इस बात के लिये विवेक जागृत नहीं हुआ। अन्त में आचार्य श्रीजी म. सा. ने अपने दो प्रमुख शिष्यों— कर्मठ सेवाभावी, शांत, दांत मुनिश्री पृथ्वीराजजी म. सा. एवं नवदीक्षित सरलस्वभावी मुनिश्री धेवरचन्दजी म. सा.— को मुनिश्री पूरणमलजी म. सा. की सेवा के लिये दिया।

इन दोनों मुनिवरों ने पूर्ण मनोयोग और तत्परता से वयोवृद्ध

मुनिश्री पूरणमलजी म सा. की वैयावच्च की ओर समाधिमरण को सफल बनाया। इसका प्रभाव जोधपुर श्रीसघ पर तो पड़ा ही, लेकिन समस्त श्रावकसघो को भी सोचने का मौका मिला कि योग्य गुरु के सुयोग्य शिष्यो ने गुरु-परम्परा, श्रमणधर्म के गौरव को द्विगुणित किया है। साथ ही यह भी स्पष्ट हो गया कि श्रमणसघ का सगठन सिर्फ कागजो मे लिखा रहने वाला है। उसमे रहने वाले मुनिवरो में न तो एक दूसरे के प्रति किंचिन्मात्र भी सहयोग की भावना है और न अपने दायरे के आगे बढ़ने के लिये तैयार हैं। केवल ऊपर-ऊपर की चिकनी-चुपड़ी बातें हो रही हैं।

आचार्य श्रीजी म. सा का लक्ष्य था कि जब हमने आत्म-साक्षीपूर्वक निर्णयो को स्वीकार किया है तो तदनुकूल कार्य करने के लिये भी उतना ही साहस दिखाना चाहिये। इसके लिये दूसरे क्या सोचते हैं और क्या करते है, यह हमे विचारने का नही है, किन्तु कार्यान्वित करने की ओर अपना लक्ष्य होना चाहिये। इसीलिये आचार्य श्रीजी ने उसे अपने जीवनकाल मे साकार रूप दिया।

पूरणबाबा के उद्गार

वयोवृद्ध मुनिश्री पूरणमलजी म. सा. जिन्हें श्रद्धा और आत्मीयता से चतुर्विध सघ पूरणबाबा के नाम से सम्मानित करता था, को योग्य व्यवस्था हो जाने से पूर्ण सन्तोष हुआ और आत्महित में तल्लीन रहने लगे। जप-तप मे समय का सदुपयोग होने से मानसिक उत्साह मे एक अनोखापन दृष्टिगत होता था। अपनी साधना में सहायक आचार्य श्रीजी के गुण-गान करते हुए उच्च स्वर मे घोष करते थे कि मेरा अन्त समय सुधर गया। जीवन भर की साधना का सुफल प्राप्त कराने वाले महापुरुष को बारबार वन्दना है। मुझे तो गणेशनारायण ने सुखी और शल्यरहित बना दिया है।

अनुशासन के सजग प्रहरी

सम्मेलन की समाप्ति के पश्चात आचार्य श्रीजी म. सा ग्रामानु-

ग्राम विचरण करते हुए और सम्मेलन की कार्रवाई की चतुर्विध सत्र को जानकारी देते हुए सं० २०१३ के चातुर्मासार्थ गोगोलाव पधारे। गोगोलाव में अधिकतर कांकरिया परिवार की गृहसख्या है। इस परिवार की श्रमणधर्म के प्रति निष्ठा और चारित्रवान क्रियापात्र सन्तो के प्रति श्रद्धाभक्ति अपूर्व है। इसी परिवार की विशेष भक्ति और चातुर्मास के लिये अनेक वर्षो से होने वाली प्रार्थना के फलस्वरूप स० २०१३ का चातुर्मास गोगोलाव होने का अवसर आया था। गाव छोटा-सा है किन्तु आचार्य श्रीजी के विराजने से विशाल नगर का रूप धारण कर लिया था। देश के कोने-कोने से प्रतिदिन आने वाले हजारों दर्शनार्थियों का अपूर्व जमघट लगा रहता था।

सोनासर सम्मेलन के पश्चात आचार्य श्रीजी ने अपने दो सन्तो— प र. मुनिश्री सिरेमलजी म. एव मुनिश्री आईदानजी म. को उपाध्याय मुनिश्री अमरचन्दजी म. सा. के साथ कुचेरा चातुर्मास मे साथ रखा। जिससे सम्मेलन के आशय को सबल बनाने तथा उद्देश्य को सिद्ध करने में सफलता मिले।

मुनिश्री आईदानजी म सम्मेलन की कार्रवाई को अकित करते थे। इन्हें सम्मेलन में हुए विचार-विमर्श की पूर्ण जानकारी थी। चतुर्विध सघ के जानने योग्य कार्रवाई को तो प्रकाशित कर दिया गया था और साधु साध्वी वर्ग से सम्बन्धित निर्णयो को प्रकाशित नही करने का निश्चय किया गया था। परन्तु मुनिश्री आईदानजी म. ने उस विवरण को कुछ मुनियो पर आक्षेप लगाते हुए और शास्त्रीय मर्यादाओ के विपरीत बातो का समावेश करते हुए 'श्रमण' मे लेख प्रकाशित करवाया। मुनिश्री सुरेशमुनिजी ने भी 'महान चुनौती' नामक पुस्तक लिखकर श्रमणसघ पर आक्षेप लगाये।

इस अनियमोचितपूर्ण लेख और पुस्तक से समाज मे कटुता का वातावरण व्याप्त हो गया और कई अधिकारी मुनियों ने आचार्य श्रीजी म. सा. की सेवा में लिखवाया कि सन्तो की इस प्रकार की अन-

धिकार चेष्टा से समाज मे दूषित वातावरण वन रहा है तथा अनुशासन की दृष्टि से भी यह कार्य अयोग्य है ।

आचार्य श्रीजी ने उक्त लेख का अवलोकन किया और श्रमण-सघीय चारो उपाध्याय— १. मुनिश्री आनन्दऋषिजी म. सा., २. मुनिश्री प्यारचन्दजी म. सा., ३. कवि मुनिश्री अमरचन्दजी म. सा., ४. मुनिश्री हस्तीमलजी म. सा.— को सन्देश भिजवाया कि श्री आईदानजी का जो लेख प्रकाशित हुआ है, उसमे कौन-कौनसी बाते अनुचित हैं और उनका सुधार करना व लेखक मुनिवरो को सावधानी दिलाना सम्मेलन मे किये गये निर्णयानुसार उपाध्याय-मण्डल का अधिकार है । अतः इस विषय पर योग्य कार्रवाई करने के बारे मे जानकारी करावें ।

उपाध्याय मुनिश्री अमरचन्दजी म. को विशेष रूप से यह भी लिखाया गया था कि मुनिश्री आईदानजी आपके पास हैं । अतः आप उनसे सभी जानकारी कर योग्य कार्रवाई करने के बारे मे सूचित करे । जिससे दूषित वातावरण शात हो सके ।

इस सन्देश के प्रत्युत्तर मे उपाध्याय श्री अमरचन्दजी म. के अतिरिक्त अन्य तीनों उपाध्याय मुनियों ने लेख के अनुचित अंशों का सकेत किया किन्तु उपाध्याय श्री अमरचन्दजी म. की ओर से सन्तोष-जनक उत्तर नही आया और न अनुचित अश के बारे मे भी सकेत मिला । इस पर पुनः उनको स्पष्ट उत्तर देने के लिये सूचना भिजवाई । लेकिन कोई उत्तर नही मिला ।

इसी चातुर्मास काल के बीच दि. २०, २१ अक्टूबर ५६ को लुधियाना मे श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स की जनरल कमेटी की बैठक अध्यक्ष श्री विनयचन्दभाई जवेरी की अध्यक्षता मे हुई । उस समय भी इसके बारे मे काफी ऊहापोह हुआ । जिसका समाधान करने और स्थिति को स्पष्ट करने के लिये अध्यक्ष महोदय की ओर से निम्नलिखित प्रस्तावात्मक स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया गया—

पं. मुनिश्री आईदानजी म. ने 'श्रमण' मासिक मे तथा प. मुनि श्री

गुरेशचन्दजी म. ने 'महान चुनौती' नामक पुस्तिका मे जो विचार प्रगट किये हैं, उनको पढकर श्रमणसघ और श्रावकसघ को हार्दिक खेद हुआ है। यह जनरल कमेटी भी दुखानुभव कर रही है। पूज्य उपाचार्यजी म. सा. से व उपाध्याय श्री अमरचन्दजी म. सा. से प्रार्थना करती है कि उन्हें यथाशीघ्र प्रायश्चित्त देने की कृपा कर चतुर्विध श्रीसघ को सतुष्ट करें, अन्यथा इसके विरोध की भावना बढेगी ऐसा अनुभव किया जा रहा है। भविष्य मे स्थानकवासी जैन समाज की धार्मिक भावना को ठेस पहुचे ऐसी लेखन-प्रवृत्ति न करने की श्री श्रमणसघ के पूज्य मुनिवर्यो से प्रार्थना है।'

पूज्य आचार्य श्रीजी म सा. मुनिश्री आईदानजी म. की उक्त अन्यथा प्रवृत्ति को उचित नही मानते थे और सम्बन्धित कार्य के लिये कार्रवाई करने का विचार भी कर चुके थे।

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात आचार्य श्रीजी म. सा. आदि सन्तो ने गोगोलाव से विहार किया। रास्ते मे वासनी गांव मे जहां अधिकतर मुसलमानों की वस्ती है, हिन्दुओं की बहुत ही कम, आचार्य श्रीजी म. आदि सन्तो को देखकर मुसलमान भाई हंसी मजाक उडाने लगे। लेकिन जब उस गांव मे बाजार के बीच आचार्य श्रीजी म. सा. का प्रवचन हुआ तो सुनकर वे अवाक रह गये और उन मुसलमान भाइयों के दिलो में जैन मुनियो के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई और सोचा कि महात्मा लोग प्रत्येक मानव के लिए हितकारी हैं। मुसलमान भाइयो ने मिलकर आचार्य श्रीजी के चरणो में प्रार्थना की कि आप हमारी मसजिद मे व्याख्यान दें। इधर अन्य लोगो ने निवेदन किया कि व्याख्यान ऐसे स्थान पर होना चाहिए जहां सब लोग लाभ ले सकें। अतः मसजिद के निकट ही सडक पर व्याख्यान हुआ। व्याख्यान के पश्चात मुसलमान भाइयो के मुंह से ऐसा सुना गया—ये महात्मा हमारे मौलवी सा. व पीर सा. हैं। अधिक दिन विराजना चाहिये। लेकिन यहां निरामिष भोजी व्यक्तियों के घर बहुत कम होने से आहार-पानी का

सयोग बैठना कठिन था तथा आगे भी बढ़ना था अतः अधिक न विराजे और वहा से विहारकर आचार्य श्रीजी म. सा. कडलू ग्राम के निकट पधारे । उधर मुनिश्री आईदानजी म. और प. मुनिश्री सिरेमलजी म ने भी आचार्य श्रीजी के दर्शनार्थ कुचेरा से विहार किया । उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी म. सा ने भी अपनी शिष्यमण्डली सहित नागौर से कडलू की ओर विहार किया । यथासमय सन्तमण्डल का कडलू ग्राम मे पदार्पण हुआ । जब आचार्य श्रीजी म सा. कडडू ग्राम से एक मंजिल दूर विराज रहे थे तब प. मुनिश्री सिरेमलजी म. व मुनिश्री आईदानजी म. कडलू से विहार कर आचार्य श्रीजी की सेवा मे उपस्थित हुए ।

आचार्य श्रीजी म. सा. ने मुनिश्री आईदानजी म. से पूछा कि आपने जो लेख श्रमण मे लिखा है, उसके बारे में बहुत-सी शिकायतें आ रही हैं। ऐसे लेख विसवाद बढ़ाने वाले होते हैं, सो आपने ऐसा लेख क्यो लिखा ? मैंने पहले भी आपको मना कर दिया था कि कोई भी लेख शास्त्रमर्यादा और श्रमणसंघ की मर्यादा के विपरीत नही लिखना। इसको आपने स्वीकार करते हुए कहा था कि मैं ऐसा कोई भी विचार व्यक्त नही करूगा या नही लिखूंगा जिससे श्रमणसघ की मर्यादाओ को ठेस पहुंचे । लेकिन आपने ध्यान नही रखा । अत. इस भूल का प्रायश्चित्त लो और भविष्य मे पुनः भूल को न दुहराने का दृढ सकल्प कर लो।

आचार्य श्रीजी म. सा. की इस सरल, सीधी सादी बात को मानने के लिये मुनिश्री आईदानजी म. तैयार न हुए और अपने पक्ष के समर्थन और बचाव के लिये कहा कि समाज के अन्दर कई एक ऐसी प्रवृत्तिया हो रही हैं, जिनका श्रमणसघीय दृष्टि से अधिकारी मुनिराजो को परिमार्जन करना चाहिये, लेकिन वे ऐसा नही कर रहे हैं । अत आपश्री गुरु-शिष्य के सम्बन्ध से जो भी दड, प्रायश्चित्त, आदेश आदि देंगे, उसे अंगीकार करने को तैयार हूँ किन्तु श्रमणसघ के सर्वोच्च अधिकारी के नाते दिये गये आदेश शिरोधार्य नही होगे ।

आचार्य श्रीजी म सा. ने प्रत्युत्तर मे भाव व्यक्त किये कि मैं

अभी श्रमणसंघ मे हूँ और श्रमणसंघ का उत्तरदायित्व भी मुझ पर है। अतः सरलता के साथ श्रमणसंघीय नियमों का पालन करूंगा। अन्य अधिकारी सन्त क्या, कैसा, कुछ कर रहे हैं और क्या नहीं कर रहे हैं, आदि बातें जब प्रमाण सहित मेरे समक्ष आयेंगी तो उनसे भी यथा-योग्य, यथास्थान शुद्धिकरण कराने की भावना रखता हूँ। अतः उनका उदाहरण देकर अपनी गलती को छिपाने में लाभ नहीं है।

यह तो आपको मालूम ही है कि भीनासर-सम्मेलन में हम-आप सभी ने निर्णय किया है— "नियमभग का सब साधु-साध्वियों को दड लेना होगा। यदि कोई कहेगा कि मैं दण्ड नही लूंगा या वह दण्ड नही लेगा तो उसके साथ कोई सम्बन्ध नही रहेगा।" इस धारा के अनुसार यदि आप प्रायश्चित्त लेकर शुद्धि नही कर लेते हैं तो सबंध कैसे रह सकता है ?

प. मुनिश्री सिरेमलजी म. ने भी मुनिश्री आईदानजी म. को समझाया कि या तो आप अपनी सम्पूर्ण स्थिति पूज्यश्री को समझाओ और अपने भाव स्पष्ट करो, अन्यथा विधानानुसार प्रायश्चित्त लो। लेकिन मुनिश्री आईदानजी म. ने न तो प्रायश्चित्त लेने की भावना व्यक्त की और न पूज्यश्री का समाधान ही किया। आचार्यश्रीजी ने एकान्त मे बैठकर सोच-विचार करने का मौका भी दिया, किन्तु उनके परिणामो मे सरलता नहीं आई। अन्त मे आचार्यश्रीजी म. सा. को मुनिश्री आईदानजी म. से सम्बन्ध-विच्छेद करने का निर्णय लेना पड़ा। मुनिश्री आईदानजी म. एकाकी विहार कर वापस कन्नू पहुंचे। वहां पर उपाध्याय मुनिश्री प्यारचन्दजी म. सा. ने काफी सम-झाया और स्थिति की गम्भीरता का भी दिग्दर्शन कराया, लेकिन उनके सत्परामर्श की अवहेलना कर वहां से भी अकेले चले गये।

निर्णय की सराहना

दूसरे दिन विहार कर आचार्यश्रीजी म. म. ने कन्नू ग्राम में पदार्पण किया तो उपाध्याय मुनिश्री प्यारचन्दजी म. सा. आदि सन्त

अपना सम्मान व्यक्त करने के लिये अगवानी हेतु सामने पधारे और वापस ग्राम मे आये । सन्तो का यह सम्मिलन एक अनोखी छटा बिखेर रहा था । ग्रामनिवासियो मे सन्तो के पधारने से अपूर्व उत्साह था और अपने आपको धन्य मान रहे थे । इन्ही दिनो कान्फरन्स के अध्यक्ष श्री विनयचन्दभाई, श्री कानमलजी नाहटा आदि २०-२५ अग्रणी श्रावक आचार्यश्रीजी के दर्शनार्थ उपस्थित हुए ।

प्रासगिक प्रवचन-श्रवण के पश्चात श्रमणसघ की स्थिति, शिथिलाचार आदि के बारे मे श्रावको ने चर्चा प्रारम्भ की तो पूज्यश्री ने प्रसगोपात्त फरमाया— समाज की स्थिति बडी विचित्र हो रही है। कई अधिकारी सन्त अपने द्वारा ही स्वीकृत श्रमणसंघीय नियमोपनियमो की उपेक्षा कर रहे हैं । जिससे सगठन मे शिथिलता और स्वच्छन्दता को बढावा मिल रहा है । यही कारण है कि कल मैंने मुनि आईदानजी को नियमविरुद्ध प्रवृत्ति के लिये प्रायश्चित्त लेने का संकेत किया था, लेकिन उनके ऐसा न करने पर मैंने सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया है । वे मेरे शिष्य थे, लेकिन मैं आत्मसाक्षी पूर्वक नियमोपनियमो का स्वय भी पालन करने के लिये बद्ध हूँ और दूसरो को भी इसी प्रकार पालन करते देखना चाहता हूँ ।

आचार्य श्रीजी म सा. के इन उद्गारो का अभिनन्दन करते हुए उपाध्याय मुनिश्री प्यारचन्दजी म सा. ने कहा कि आपश्री जैसे महापुरुष ही समाज-सुधार और सघ-सगठन को सुदृढ बनाने में सफल हो सकते हैं । आपने सर्वप्रथम अपने शिष्य के प्रति सुधार के लिये प्रयोग कर एक आदर्श उपस्थित किया है । इससे आपश्री के प्रति हमारी श्रद्धा सुदृढ हुई है । हमारा विश्वास है कि सगठन का उद्देश्य और समाज का भविष्य दिनोदिन सफल होगा ।

उपस्थित अग्रणी सज्जनो ने भी आचार्य श्रीजी के निर्णय की भूरि-भूरि प्रशसा की और उसे उचित माना तथा हृदयोद्गार व्यक्त करते हुए निवेदन किया कि जिनके मन में सुधार की सच्ची भावना

होती है, वे अपने-पराये के भेद से ऊपर उठकर सबसे पहले सुधार का प्रयोग अपने या अपने परिकर से प्रारम्भ करते हैं। आपश्री के निर्णय का समाज पर गम्भीर प्रभाव पड़ेगा। ऐसे स्वच्छन्द व्यक्ति समाज में रहें भी तो कोई लाभ नही और इसके लिये परवाह करने की आवश्यकता अनुभव नही होती है।

इसके अतिरिक्त अन्यान्य समाजस्पर्शी प्रश्नो पर भी गंभीरता के साथ विचारो का आदान प्रदान हुआ। जिसका विवरण यथास्थान दिया जायेगा। मांगलिक-श्रवण करने के पश्चात प्रमुख श्रावक अपने-अपने स्थानों को रवाना हो गये।

उपाध्यायजी का आत्मनिवेदन

कडलू मे उपाध्याय पं. र. मुनिश्री प्यारचन्द जी म. ने आचार्य श्रीजी म सा से मालवा की ओर विहार करने की अनुमति चाही और साथ ही अर्ज की कि मुझे मालवा में अन्यान्य सन्त-सतियां मिलेंगे, उनके लिये आपश्री का क्या आदेश है? आचार्य श्रीजी ने फरमाया कि श्रमणसघ के नियमोपनियमो का पूरी तरह से पालन होना चाहिये। इस बात का ध्यान आप मिलने वाले प्रत्येक सन्त को दिला दें। यदि किसी भी नियमोपनियम के भंग होने की बात सुनी तो अब सहन करने की स्थिति मे नही हैं। क्योंकि पूर्व में तो सम्प्रदाय विभिन्न थे अतः सुनकर चुप रह जाता था, किन्तु अब हम सब एक हो गये हैं, इसलिये किसी के द्वारा किसी भी सन्त तथा सती के विषय मे नियमोपनियम भंग होने की बात सुनी गई तो फिर वही स्थिति होगी जो आईदानजी के साथ बरती गई। इस पर उपाध्याय श्रीजी ने बड़े हर्ष के साथ फरमाया—आपश्री ने जो आदेश फरमाया, वह आपश्री के महत्त्वपूर्ण पद के अनुरूप ही है। इस आदेश को मैं आपश्री के आदेशानुसार प्रसारित करता हुआ विचरण करने का भाव रखता हूँ।

एकदिन कडलू गांव में जब आचार्य श्रीजी म. सा बाहर पधारे गये, उस समय एकान्त के प्रसंग से उपाध्याय श्रीजी म. सा. ने

दिल खोलकर अपनी वात आचार्य श्रीजी के सन्मुख रखी कि श्रमणसंघ वनने के पहले मैं वहुत भ्रम मे था और सोचता था कि आचार्य श्रीजी म. सा अपने शिष्यो का वचाव करते हैं और अन्य को वदनाम करते हैं। इसी प्रकार की और भी कई भ्रान्तिया हमारे मस्तिष्क में घूम रही थी। लेकिन अव मैं देखता हूँ कि यह सब हमारे भ्रम के कारण हुआ। उदयपुर चातुर्मास के वाद आज तक की प्रवृत्ति से बिल्कुल स्पष्ट हो गया है कि आपश्री की वृत्ति अपने-पराये के भेद से ऊपर उठकर शुद्ध साधुवृत्ति को देखने की है। किसी को दवाने की या किसी को वदनाम करने की भावना आपके अन्त.करण में जरा भी नही है। शुद्ध स्फटिक के समान आपश्री के हृदय का हमने निकट से दर्शन किया है।

कडलू से विहार कर आचार्य श्रीजी म सा. आदि सन्त मेडतारोड पधारे और एक धर्मशाला मे विश्राम किया। उसी धर्मशाला मे एक मूर्तिपूजक सप्रदाय के सन्त भी विराज रहे थे। सायकाल प्रतिक्रमण के पश्चात वे आचार्य श्रीजी म. सा. के पास तत्त्व-चर्चा के उद्देश्य से आये। प्रासगिक रूप मे सवत्सरी विषयक चर्चा-वार्ता भी हुई और कई प्रश्न पूछे तथा ४९, ५० वे दिन ही संवत्सरी क्यो करना चाहिए— इस विषय मे भी जानकारी चाही। आचार्य श्रीजी म. सा. ने विशद विवेचना करते हुए आगमिक दृष्टि से उन सब प्रश्नो का समाधान किया और फरमाया कि वर्तमान मे श्रमणसघ ने जो सवत्सरी विषयक प्रस्ताव स्वीकार किया, वह प्रेम और एकता की दृष्टि से है। क्योकि श्रमणसघ निर्ग्रन्थ श्रमणसस्कृति के आधारभूत पचमहाव्रतों की सुरक्षा के साथ सामाजिक एकता को भी महत्त्व देता है और समन्वयात्मक एकसूत्र मे आवद्ध होने मे जैन समाज की भलाई मानता है और इसी दृष्टिकोण को लक्ष्य में रखते हुए उक्त निर्णय किया गया है।

आचार्य श्रीजी के सप्रमाण समाधान और समाज के विशालहितो के प्रति जागरूकता के दर्शन कर उक्त सन्तश्री ने अपनी हार्दिक

प्रसन्नता व्यक्त की और बोले— इसप्रकार के स्पष्ट समाधान को आज मैं प्रथमवार ही सुन रहा हूँ। विभिन्न विचारकों के विचारों को जानने का अवसर भी मिला, लेकिन इतनी स्पष्टता से किसी ने समाधान नही किया है। ऐसे महापुरुष की सेवा को छोडकर मुनि आईदानजी चले गये। इसको उनका दुर्भाग्य ही समझना चाहिये।

इस पर उनसे पूछा कि आप आईदानजी को कैसे जानते हैं? प्रत्युत्तर में संतश्री ने कहा कि कुछ दिन पहले आईदानजी यहा आये थे और इसी धर्मशाला मे ठहरे थे। वार्तालाप के प्रसग मे मालूम हुआ कि वे आपके सभोग मे नही हैं। श्रमणसंघ विषयक बातचीत भी हुई तो बोले— श्रमणसघ में है क्या, सिर्फ ऊपरी दिखावा है। अभी मैं उपाध्याय मुनिश्री अमरचन्दजी म. की सेवा में जयपुर जा रहा हूँ और श्रमणसघ को तहस-नहस कर देंगे, आदि।

आचार्य श्रीजी म. ने उक्त बातो को सुन लिया किन्तु किसी प्रकार की टीका-टिप्पणी न करते हुए फरमाया कि जिसको जैसा अनुकूल प्रतीत हो, वैसा सोचे। ऐसे राग-द्वेष पूर्ण वातावरण से साधु-सतों को दूर रहना ही शोभा देता है।

विघटन का पहला कारण

सयम के प्रति उदासीनता अथवा स्वेच्छाचार साधु-मर्यादा के लिये घुन है। लेकिन जब साधुओ द्वारा ही अपने पद के विपरीत प्रवृत्तिया प्रारम्भ हो जाती हैं तो उद्देश्य की सफलता के लिये आशा करना व्यर्थ है।

यद्यपि सादडी मे वृहत्साधु-सम्मेलन होने के पश्चात् सभी संप्रदायों के साधु-सन्त एक बड़े सगठन में आबद्ध जरूर हो गये थे, लेकिन अधिकाश की वृत्तियां पूर्ववत चल रही थी और उनमें से किननेक साधुवेशधारियो का यह कार्य बड़ी चतुराई से गुप्तरूप में चल रहा था कि पता लगना ही दुसाध्य था। लेकिन यह निश्चित है कि कलंक स्वयमेव प्रगट हो जाता है।

भीनासर-सम्मेलन की समाप्ति के पश्चात राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रो मे साधु-सन्तो के चातुमास हो रहे थे । इस शुभावसर से आशा थी कि श्रमणसघ के निश्चय क्रियान्वित होकर सगठन को बलशाली बनायेगे । समाज की यह आकाक्षा उचित भी थी कि पाली मे शिथिलाचार के कुत्सित काड का भण्डाफोड हुआ ।

सवत २०१३ मे कतिपय साधुवेशधारियो का पाली मे चातुर्मास हुआ । उनमे प्रमुख नाम बडे मुनि रूपचन्दजी का है और इनसे सम्बन्धित पूर्णचन्द आदि तीन मुनि, दो साध्विया, हीरामुनि एव मरुधरकेसरी के पास रहने वाला दूसरा रूपचन्दजी आदि प्रगट रूप मे थे और अप्रगटरूप मे इस दल से सम्बन्वित अन्य भी कई मुनि थे। जिनका सम्बन्ध पजाब तक पहुंच चुका था । इनके पापाचार की लीलाये सीमा लाघ चुकी थी कि अक्टूबर ५६ मे इसका भण्डा फूटा । इनके द्वारा किये गये पत्रव्यवहार तथा साजसमान को देखकर समाज मे रोष की लहर व्याप्त हो गई। समाज का प्रत्येक सदस्य ऐसे घृणित काड को जानकर लज्जित हुआ और इन छद्मवेशियो का साधुवेश छीनकर दण्डित करने की जोरदार माग होने लगी । समाज का रोष दिनोदिन उग्र होता जा रहा था और चाहता था कि ऐसे अनाचारियो से समाज को शीघ्र ही मुक्ति मिले ।

समाज के अग्रणी सज्जनो ने पाली जाकर इस कांड से संबधित सभी पत्रो, पास मे मिले समान आदि की सूची बनाकर तथा सम्बन्धित व्यक्तियो की साक्षी लेकर विवरण तैयार किया । इस विवरण को श्री अ. भा. श्वे स्थानकवासी जैन कान्फरन्स के अध्यक्ष आदि पदाधिकारियों और आचार्य श्रीजी म. सा. की सेवा मे निर्णय के लिये प्रेषित किया तथा कान्फरन्स की ओर से आचार्य श्रीजी म. सा. की सेवा मे इस काड से सम्बन्धित वेशधारी व्यक्तियो का निर्णय करने का निवेदन किया गया ।

आचार्य श्रीजी म सा. ने इस काड के समस्त विवरण को

देखा और गम्भीरता को समझा । इस कलंक से श्रमणसघ को बचाने के लिये आवश्यक था कि दोषी व्यक्तियों को दोष के अनुसार दण्ड दिया जाये । आचार्य श्रीजी म. सा. जब कडलू से ग्रामानुग्राम विहार कर धावला-पी ग्राम की ओर बढ रहे थे तब उससे पहले उपाध्याय मुनिश्री हस्तीमलजी म. आकर मिले और पाली मे घटित काड के बारे मे विचारविनिमय हुआ ।

आचार्य श्रीजी म. सा. ने परिस्थिति की गम्भीरता को स्पष्ट करते हुए उपाध्यायश्री से कहा कि आपके पहले भी समाचार थे कि शिथिलाचार का उन्मूलन होना चाहिये और श्रमणसघ सुव्यवस्थित हो । इस सम्बन्ध मे आपने कुछ सुझाव भी दिये थे । साथ ही यह भाव भी दर्शाये थे कि यदि सुव्यवस्था न बनी तो मैं ऐच्छिक सभोग रखना चाहूँगा । दूसरे पत्र मे यह भी लिखाया था कि श्रमण-सघ की उचित व्यवस्था नही बनती है तो मैं उपाध्याय पद पर रहने को भी तैयार नही हूँ । स्थिति को देखते हुए आपके विचार ठीक है । मैं भी इस प्रकार की प्रवृत्ति और अव्यवस्था को उचित नहीं मानता हूँ और चाहता हूँ कि हम स्थिति को सुधारने के प्रयत्न करें । प्रयत्न करने पर भी यदि व्यवस्था न बन सके तो अन्य मार्ग को सोचना उपयुक्त रहेगा । फिलहाल अपने को स्थिति के सम्भालने का प्रयत्न करना ही चाहिये । इन्ही विचारों को दृष्टि में रखते हुए मैंने आपको पहले सन्देश भिजवाया था ।

आपका यहां पधारना हो गया, यह अच्छा ही रहा । एक बात और सोचने की है कि यहा से विहार कर पी की ओर चल रहे हैं तो वहां मरुधरकेसरी मिश्रीमलजी व उनके साथ पालीकाण्ड से सम्बन्धित एक सूत्रधार श्री रूपचन्दजी भी मिलेंगे । संभव है अगवानी के लिये वे सामने भी आयें तो उनके साथ अपने को कैसा सांभोगिक व्यवहार रखना चाहिये ?

उपाध्यायजी ने प्रत्युत्तर दिया कि रूपचन्दजी ने दूषित कार्य

किया है, अत: उनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध नही रखा जा सकता है और यदि मरुधरकेशरीजी ने भी उनसे संभोग विच्छेद नही किया है तो उनके साथ भी सम्बन्ध नही रहेगा। यह शास्त्रीय मर्यादा है कि दोषी और उससे सम्बन्धित व्यक्तियो से सभोग सम्बन्ध विच्छेद होना चाहिये।

आचार्य श्रीजी म. सा. को उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म. सा. का उक्त सुझाव उचित जचा और कहा कि आप साथ के सभी सन्तो को सम्बन्धित जानकारी करा देवे। सायकाल प्रतिक्रमण समाप्ति के पश्चात उपाध्यायश्री ने अपने निर्णय की जानकारी सन्तों को करा दी।

तत्पश्चात् उपाध्यायश्री आदि सन्तो सहित आचार्य श्रीजी म सा. पी ग्राम मे पधारे। अगवानी के लिये मरुधरकेशरीजी सामने भी आये किन्तु आदेशानुसार सन्तो ने उनके साथ वदनाव्यवहार आदि नही रखा और स्पष्टता की प्रतीक्षा करते हुए स्थानक मे पदार्पण किया। स्थानक के द्वार पर ही उपस्थित दर्शनार्थियो को मागलिक श्रवण करा दिया और व्यवस्थित जानकारी के लिये मरुधरकेशरीजी को बुलाया गया। उनसे श्री रूपचन्दजी के साथ के सम्बन्ध की बात को सुनकर उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म. सा. ने कहा कि आपके सम्बन्ध-विच्छेद न करने की बात सुनी थी लेकिन अब स्वयं आपके द्वारा भी इसकी पुष्टि हो चुकी है, अत: अगर आप रूपचन्दजी से सम्बन्ध-विच्छेद कर लेते हैं और अपनी स्थिति स्पष्ट कर देते हैं तो सम्बन्ध बने रहेंगे अन्यथा आपके साथ भी सम्बन्ध नही रहेगा। लेकिन इसके लिये मरुधरकेशरीजी तैयार नही हुए। अत. उनके साथ सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया गया।

इस निश्चय से मरुधरकेशरीजी को अपनी स्थिति का भान हुआ और चर्चा विचारणा के पश्चात श्री रूपचन्दजी आलोचना सुनाने के लिये तैयार भी हुए। लेकिन उस आलोचना मे सरलता और स्पष्टता का अभाव था। इस स्थिति मे आचार्य श्रीजी म. सा. व उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म. सा. ने निश्चय किया कि अधूरी अस्पष्ट आलोचना

चतुर्विध संघ को लाभदायक नही है और न स्वयं रूपचन्दजी के लिये हितकर है। अतः जबतक शुद्ध हृदय से आलोचना की स्थिति पूर्वक दंड-प्रायश्चित्त नहीं हो जाता है तबतक सम्बन्ध-विच्छेद रखना ही उपयुक्त रहेगा।

लेकिन यह स्थिति कभी नही बनी। श्रावकों की ओर से प्रयत्न भी किये गये, किन्तु मरुधरकेशरी मिश्रीमलजी व रूपचन्दजी ने अधिक-से-अधिक उलझनें ही पैदा की। परिणामतः इन उलझनों से श्रमणसंघ मे विघटन का सूत्रपात हो गया।

संघ-विघटन का दूसरा कारण

ध्वनिवर्धक-यन्त्र के प्रयोग को लेकर भीनासर साधु-सम्मेलन मे ही संघ-विघटन के लक्षण दिखने लगे थे। किन्तु तत्कालीन स्थिति को संभालने की दृष्टि से एक अस्पष्ट और अधूरा प्रस्ताव बहुमत से पारित तो कर दिया गया किन्तु उसकी व्याख्या नही की गई थी। इसी अवसर पर श्री अ. भा. श्वे स्थानकवासी जैन कान्फरन्स के अधिवेशन ने भी ध्वनिवर्धक-यन्त्र के उपयोग करने की दृष्टि से श्रावकों को छूट दे दी थी। लेकिन प्रस्ताव के लिये उपस्थित जनसमूह ने अपना रोष व्यक्त किया था। अतः समाधान के लिये सम्मेलन में आगत कई एक मुनिराजों को स्थिति का स्पष्टीकरण करने के लिये सभामंच पर लाया गया था।

उस समय तो स्थिति शांत-जैसी हो गई। किन्तु ध्वनि-यन्त्र विषयक प्रस्ताव की श्रमणसंघ के द्वारा व्याख्या हुए बिना ही लुधियाना में आचार्यश्री आत्मारामजी म. के विराजते हुए भी उनके ही शिष्यों ने ध्वनिवर्धक-यन्त्र का प्रयोग कर श्रमणसंघ के प्रस्ताव को तोड़ा। यह श्रमणसंघ के विघटन का दूसरा कारण बना। इससे श्रमणसंघ और श्रावकसंघ चतुर्विध संघ में हलचल मच गई और श्रमणसंघ के प्रधानमन्त्री व्याख्यानवाचस्पति श्री मदनलालजी म. सा. के पास इसका स्पष्टीकरण करने के लिये शिकायतें आने लगी।

इस सम्बन्ध में प्रधानमन्त्री श्री व्याख्यानवाचस्पतिजी म. सा. ने आचार्य श्री आत्मारामजी म. सा. से पत्रव्यवहार किया। लेकिन सम्बन्धित पत्रव्यवहार के प्रसग मे निर्मित कटुता के वातावरण से व्याख्यानवाचस्पति जी म. ने प्रधानमन्त्री पद का त्यागपत्र आचार्यश्री आत्मारामजी म. सा. की सेवा में भेज दिया।

इसी वातावरण के बीच दि० २०, २१ अक्टूबर ५६ को लुधियाना मे श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स की साधारण सभा की वैठक हुई। जिसमे अधिकारी मुनिवरो को जानकारी कराये विना ही आचार्यश्री आत्मारामजी म. सा. ने ध्वनिवर्धक-यन्त्र के उपयोग के सम्बन्ध मे निम्नलिखित निर्णय फरमा दिया—

'शास्त्रो के परिशीलन से पता चलता है कि अपवादिक स्थिति मे किसी दंड का विधान नही किया गया है। उदाहरण के लिये व्यवहारसूत्र के प्रथम उद्देश्य, सूत्र ३२ में लिखा है कि साधु संयम-रक्षा के लिये कारणवश वेश-परिवर्तन कर ले तो भी उसको कोई प्रायश्चित्त का विधान नही है।

'इसके अतिरिक्त स्थानागसूत्र के प्रथम स्थान, उद्देश्य दूसरे मे लिखा है— साध्वी नदी आदि मे गिर रही हो, तब साधु उसकी भुजा पकड़कर निकाल ले तो भी उसके लिये प्रायश्चित्त नही। ध्वनियन्त्र का प्रयोग अपवादिक स्थिति मे स्वीकार किया गया है। अतः इसके लिये शास्त्रीय दृष्टि से कोई प्रायश्चित्त नही आता। तथापि सघैक्य को ध्यान मे रखकर इस प्रायश्चित्त की कल्पना की जा रही है। अग्नि का स्पर्श हो जाने पर शास्त्रो में प्रायश्चित्त का विधान आता है। किन्तु ध्वनिवर्धक-यन्त्र का तेजस्कायिक होना अभी विवादास्पद है, तथापि सघैक्य को ध्यान मे रखकर लघु चौमासी प्रायश्चित्त दिया जाता है।

उत्सर्ग और अपवाद

जिन पर सदा चला जाय, जिनका सदा पालन किया

जाय वह उत्सर्ग मार्ग है।

किसी विशेष कारण से जिसका प्रयोग किया जाय, वह अपवाद है।

'ध्वनियन्त्र में जो अपवाद शब्द है उसका अभिप्राय महावीर-जयन्ती महोत्सव, पर्युषणपर्व, संवत्सरीपर्व, दीक्षा-महोत्सव और सार्वजनिक व्याख्यान, इन प्रसंगों से है, जहां कि हजारों की संख्या हो।

'आपवादिक स्थिति की उपेक्षा कर उल्लंघन करना ही स्वच्छन्दता है। कोई भी साधु-साध्वी ध्वनियन्त्र की व्यवस्था करने की प्रेरणा कदापि न करे और न स्वच्छन्दता से ही काम ले। स्वच्छन्दता से जितने दिन लाउडस्पीकर का प्रयोग होगा, उतने दिन का दीक्षाछेद किया जा सकेगा।

'मौखिक या लिखित आलोचना होने पर आचार्यश्री, उपाचार्य श्री मौखिक या लिखित दण्ड दिया करेंगे।'

जब यह निर्णय दि. १-११-५६ के जैनप्रकाश में छपकर समाज के सामने आया तो विरोध ने उग्र रूप धारण कर लिया और कहा गया कि आचार्यश्री आत्मारामजी म. सा. अपनी दि. १-२-५६ की घोषणा में ध्वनिवर्धक-यन्त्र का उपयोग करने वाले साधु-साध्वियों को प्रायश्चित्त देने का विधान करते हैं तो इस निर्णय में अपवाद का प्रायश्चित्त नहीं आता, ऐसी परस्पर विरुद्ध बातें क्यों ?

इसी निर्णय के अन्तिम अंश में जहां दण्ड का कथन किया गया है, आचार्य श्रीजी म. के साथ उपाचार्य श्रीजी म. के नाम का भी उल्लेख किया गया है, इससे समाज में यह भ्रान्ति फैली कि पूज्य आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. भी इस निर्णय से सहमत हैं। जब इस निर्णय की जानकारी आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. को मिली तो उन्होंने फरमाया कि इस निर्णय में न तो मेरा कोई सम्बन्ध ही है, न मेरा मत है, न मुझसे पूछा गया, आदि।

कई अधिकारी मुनिवरों एवं अन्य संत-सतियों की ओर से आचार्य श्रीजी की सेवा मे इस निर्णय के विरोध मे पत्र आने लगे। उनमें निवेदन किया गया कि आचार्यश्री आत्मारामजी म. अपनी पूर्व की घोषणा के अनुसार अधिकारी मुनियो की प्रार्थना के बिना कदापि निर्णय नही दे सकते, फिर भी अधिकारी मुनियो की प्रार्थना के बिना ही निर्णय देकर अपने पूर्व के वचन से स्खलित हुए है।

दूसरी बात, आचार्यश्री का यह निर्णय श्रमणसघ की व्यवस्था के प्रतिकूल भी है और उत्सूत्रप्ररूपणा के साथ आगे चलकर श्रमण-सस्कृति को तहस-नहस करने वाला भी सिद्ध हो सकता है, अतः आचार्यश्री आत्मारामजी म. सा. के उक्त निर्णय को अमान्य घोषित कर दें आदि। तब उत्तर मे आचार्य श्रीजी म. सा. ने लिखवाया कि मैं आचार्यश्री आत्मारामजी म. की सेवा मे पत्रव्यवहार करा रहा हूँ। उत्तर आने पर चतुर्विध सघ को जानकारी दी जायेगी।

तदनुसार आचार्यश्री आत्मारामजी म. सा. को निर्णय के बारे मे जानकारी देने के लिये पत्र लिखा गया। लेकिन टालमटूल उत्तरो की परम्परा चलती रही। इधर चतुर्विध सघ मे दिनोदिन रोष और अधिक बढता जा रहा था। जिससे यह स्थिति दिखने लगी कि श्रमण-सघ के सन्त आचार्यश्री आत्मारामजी म सा. से असहयोग करने के लिये तत्पर हो जायेंगे। अन्त मे दि० २१-१-५७ को पत्र आया—

'........कान्फ्रेस के अधिकारियो ने आचार्य श्रीजी से सहमति लिये बिना ही आचार्यश्री के अभिमत को निर्णय का रूप देकर जैनप्रकाश मे प्रकाशित कर दिया। आचार्यश्री को इसका हार्दिक खेद है आदि।'

इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करने के लिये कान्फरन्स की जनरल कमेटी की विशेष बैठक जयपुर में बुलाई गई और उसमे सम्बन्धित विषय का उल्लेख करते हुए प्रस्ताव पारित किया गया। प्रस्ताव में उक्त विषय पर शीघ्र निर्णय प्रगट करने के लिये श्रमणसघ के

दोनो आचार्यों से प्रार्थना की गई थी ।

इसके बाद भी ध्वनिवर्धक यन्त्र के उपयोग-विषयक निर्णय के लिये अधिकारी मुनिराजों की ओर से आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. के पास अनेक पत्र आये तथा श्रावकों ने भी इस प्रश्न के बारे मे शीघ्र निर्णय के लिये प्रार्थनायें कीं । आचार्य श्रीजी म. सा. भी स्थिति स्पष्ट करने के लिये उत्सुक थे । अत. आचार्य श्री आत्माराम जी म. सा. को पुष्ट प्रमाणो सहित उत्तर दिलाने के लिये कईएक पत्र भेजे गये । लेकिन उनकी ओर से कोई संतोषजनक पत्र नही आया, जिससे ध्वनिवर्धक-यन्त्र सम्बन्धी प्रश्न का हल निकल सके ।

अन्त मे दिनांक १६-१०-५७ को आचार्य श्रीजी म. सा. ने चतुर्विध सघ को सूचित किया । जिसमे लिखा गया था कि अनिर्णीत अवस्था मे किसी भी चीज का प्रयोग होना वैधानिक नही माना जा सकता है । इस बात का ध्यान सगठन प्रेमी चतुर्विध सघ के प्रत्येक सदस्य को रखना आवश्यक है ।

यह सूचनापत्र लुधियाना पूज्य श्री आत्माराम जी म. सा. की जानकारी के लिये भी भेजा गया था । जिसकी पहुंच आ गई थी और यह प्रसग एक प्रकार से सुलझ गया प्रतीत होने लगा था कि आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. को कान्फरन्स कार्यालय का दि० १०-१२-५७ का एक पत्र प्राप्त हुआ । जिसमे लिखा था कि आचार्यश्री आत्मारामजी म. सा. इस सूचना को अवैधानिक मानते हैं । लेकिन उसमे अवैधानिकता के कारणो का उल्लेख नही किया गया था । यद्यपि स्वयं पूज्यश्री आत्मारामजी म. सा. ने आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. को सर्व सत्ता-सम्पन्न अधिकारी मानते हुए इस प्रश्न का निर्णय करने के लिये अधिकारी माना था ।

इस प्रकार यह प्रश्न भी अधिक-से-अधिक उलझता गया और श्रमणसघ के संगठन को निर्बल बनाने में ही अधिक योग दिया, स्वच्छन्दता फैली और अनुशासनभंग की घटनायें आये दिन होने लगी ।

सघ-विघटन का तीसरा कारण

प्रमाणो के विना आगमो मे परिवर्तन करना योग्य नही है। लेकिन प० मुनिश्री फूलचन्दजी म. (पुप्फभिक्खू) ने 'सुत्तागमे' में विना प्रमाणो के कही-कही मूल पाठो मे परिवर्तन कर दिया था। इसके बारे मे वृहत्साधु-सम्मेलन मे चर्चा भी हुई, परन्तु यह विषय शास्त्रो से सम्बन्धित था और कई शास्त्रो का गहन अवलोकन करना जरूरी था। इसलिये समयाभाव से सम्मेलन मे विचार नही हो सका और निर्णय के लिये पूज्यश्री आत्मारामजी म सा को सौप देने का निश्चय किया गया। पारित प्रस्ताव इस प्रकार है—

'प० फूलचन्दजी म. (पुप्फभिक्खु) द्वारा सपादित 'सुत्तागमे' विषय मे निर्णय किया गया कि सूत्रपाठ मे पुष्टावलम्बन एव खास प्रमाण विना परिवर्तन करना इष्ट नही है अतः वे अपने विचार आचार्यश्री की सेवा मे भेज दे। फिर आचार्य श्रीजी जो निर्णय देगे, वह श्रमणसघ को स्वीकार होगा।'

उक्त प्रस्तावानुसार सुत्तागमे विषयक निर्णय का पूर्ण उत्तरदायित्व पूज्यश्री आत्मारामजी म. सा. पर रखा गया था, किन्तु करीब छह महिने व्यतीत हो जाने पर भी पूज्यश्री आत्मारामजी म. सा की ओर से सुत्तागमे विषयक निर्णय समाज के समक्ष नही आया तो समाज मे कुछ हलचल हुई कि अभी तक सुत्तागमे का निर्णय क्यो नही हो रहा है ? श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स की ओर से भी कहा जाने लगा कि सुत्तागमे का निर्णय शीघ्र हो जाना चाहिये। इस सम्बन्ध मे पूज्यश्री आत्मारामजी म. सा की ओर से दिनाक २१-११-५६ को श्री सीतारामजी द्वारा लिखा गया एक पत्र कान्फरन्स के प्रधानमन्त्री श्री आनन्दराजजी सुराना की मार्फत दि० ८-१२-५६ को मेडता मे आचार्य श्री गणेशलालजी म सा. को प्राप्त हुआ। उसमे लिखा था कि—

'सुत्तागमे के निर्णय का उत्तरदायित्व भीनासर सम्मेलन द्वारा

आचार्य श्रीजी म. पर डाला गया है, उसके आधार पर श्री फूलचन्दजी म. ने सुत्तागमे सम्बन्धी अपना अभिमत अभी-अभी आचार्य श्रीजी म. के पास भेजा है। किन्तु कुछ दिनों से आचार्य श्रीजी अस्वस्थ चल रहे हैं। अतः आचार्यश्री फरमाते हैं— मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं चल रहा है अतः सुत्तागमे की प्रामाणिकता, अप्रामाणिकता का निर्णय उपाचार्यश्री करें। उपाचार्यश्री इस सम्बन्ध मे जो करेंगे, वह मुझे स्वीकार होगा।'

इस पत्र के उत्तर मे उसी दिन आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. की ओर से पूज्यश्री आत्मारामजी म. की सेवा मे श्री सीतारामजी को सम्बोधित करते हुए पत्र लिखाया गया तथा जानकारी के लिये उसकी प्रतिलिपि श्री आनन्दराजजी सुराना को दिलाई गई। वह पत्र इस प्रकार है—

'भीनासर-सम्मेलन मे श्री उपाचार्य श्रीजी स्वयं उपस्थित थे ही। लेकिन एतद्विषयक (सुत्तागमे विषयक) उत्तरदायित्व आचार्य श्रीजी म. पर छोड़ा है, अतः आचार्य श्रीजी म. का स्वास्थ्य ठीक होने पर सुत्तागमे विषयक निर्णय आचार्य श्रीजी म. द्वारा ही होना चाहिये। अथवा ऐसे विषय उपाध्यायों के अधिकारान्तर्गत आ जाते हैं। जैसा कि भीनासर-सम्मेलन में उपाध्यायों के अधिकार नम्बर १ मे लिखा है—

'साहित्य-सर्जन एवं संशोधन करना, आगम-साहित्य संबंधी आक्षेपों का निवारण करना आदि।'

लेकिन इस पत्र के पहुंचने के बाद न तो पूज्य श्री आत्मारामजी म. सा. ने सुत्तागमे का कोई निर्णय ही दिया और न इस विषय को उपाध्याय मण्डल को ही सौंपा और न इसके बाद आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. के पास भी कोई सूचना आई।

इस प्रकार इस प्रश्न को भी अनिर्णीत ही रहने दिया गया। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि [illegible], [illegible] विषयक आदि की तरह इसको भी अधिक से अधिक उलझाने का अवसर दिया गया। फलस्वरूप सुत्तागमे मे आगम पाठों का स्वेच्छानुकूल परिवर्तन आदि

चलता रहा। यद्यपि बाद मे श्रमणसंघीय कार्यवाहक समिति ने सुत्तागमे के प्रकाशन को अप्रमाणित घोषित किया है, लेकिन अप्रमाणित पाठो के शुद्ध एव प्रमाणित पाठो की जानकारी आज तक भी किसी को नही हो सकी है।

सुत्तागमे के सम्बन्ध में कान्फरन्स का प्रस्ताव

दि० २०, २१ अक्टूबर '५६ को लुधियाना में श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स की साधारण सभा की बैठक हुई। जिसमें सुत्तागमे के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया गया था—

'सुत्तागमे' सूत्र में (मन्त्री मुनिश्री फूलचन्दजी म. सा. द्वारा सपादित) पाठ-परिवर्तन के कारण पूज्य आचार्यश्री ने अध्यादेश द्वारा प्रकाशन, विक्रय पर प्रतिबन्ध लगाया और भीनासर-साधु-सम्मेलन में पाठपरिवर्तन के कारण पूज्य आचार्यश्री को लिख भेजने का आदेश दिया गया था, लेकिन दु ख है कि अप्रमाणित सुत्तागमे का प्रकाशन व विक्रय बेरोकटोक अभी तक चालू है, जो श्री वर्धमान स्था. जैन श्रमणसघ व श्रावकसघ दोनों के लिये अप्रतिष्ठा का कारण बना हुआ है। अत यह जनरल कमेटी यह निश्चय करती है कि सुत्तागमे के प्रकाशन व विक्रय पर तत्काल प्रतिबन्ध करने व मन्त्री मुनिश्री फूलचन्दजी म. सा द्वारा जो अनुशासन भग हुआ है और हो रहा है, इस सम्बन्ध में भी श्रमणसंघ कठोर कदम उठाकर अनुशासन-प्रणाली की रक्षा करे; ऐसी श्रमणसघ से प्रार्थना है।'

यहा श्रमणसघ के विघटन के कारणो मे से कुछ एक का सकेत किया है। ऐसे ही और भी दूसरे-दूसरे अनेक कारण हैं जो सगठन को निर्बल बनाने मे सहायक बनते रहे।

इन सभी प्रश्नो एव श्रमणसघ के मूल उद्देश्यो के अन्तर्गत स्वीकृत—एक आचार्य के नेश्राय मे शिक्षा-दीक्षा, प्रायश्चित्त, चातुर्मास-व्यवस्था आदि के केन्द्रीयकरण करने के लिये लुधियाना, जयपुर मे हुई कान्फरन्स की साधारण सभा की बैठको मे भी विशेष रूप से प्रस्ताव

पारित किये गये थे। लेकिन श्रमणसंघ के अधिकारी मुनियों में वह उदारता नहीं दिखी जो श्रावकवर्ग की भावना का मूल्यांकन करती। इसके फलस्वरूप संगठन की नींव दिनोंदिन कमजोर होती गई।

अजमेर की ओर विहार और चतुर्विध संघ द्वारा स्वागत

गोगोलाव चातुर्मास समाप्ति के पश्चात पूज्य आचार्य श्रीजी ने आसपास के कड़लू, मेड़ता आदि क्षेत्रों को फरसते हुए अजमेर की ओर विहार किया। रास्ते में पी गांव पहुंचने के पूर्व ही विहार करते हुए उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म. आदि ठा० आचार्य श्रीजी म. सा. से मिल गये और फिर वहां से साथ-साथ तथा आगे पीछे विहार करते हुए पुष्कर के समीप पधारने पर मन्त्री मुनिश्री पुष्करमुनिजी म. आदि संत भी अगवानी के लिये पधार गये थे। लेकिन इसके पूर्व ही यह मालूम हो चुका था कि माईदानजी जिनका कि नियमविरुद्ध प्रवृत्तियों के कारण श्रमणसंघीय धारा के अनुसार सम्बन्धविच्छेद कर दिया गया था, के साथ मन्त्री श्री पुष्करमुनिजी ने संबंध रखा है। अतः मन्त्रीश्री पुष्करमुनिजी के साथ कैसे क्या सम्बन्ध रखना? एतद्विषयक विचारणा आचार्य श्रीजी म. सा. और उपाध्यायश्री हस्तीमलजी म. के बीच पुष्कर के पूर्व ही हो चुकी थी। उसमें यह सोचा गया था कि मन्त्री श्री पुष्करमुनिजी के साथ वंदन-व्यवहार आदि होने के पूर्व उनसे पूछ लिया जाये कि आपने माईदानजी के साथ सम्बन्ध रखा, उसका आप प्रायश्चित्त लेना स्वीकार करते हैं तो आपके साथ सम्बन्ध रह सकता है, अन्यथा नहीं। तदनुसार मन्त्रीश्री पुष्करमुनिजी के पधारते ही उनसे कहा गया कि आपने माईदानजी से जो सम्बन्ध रखा है उसका आपको प्रायश्चित्त लेना होगा। प्रायश्चित्त लिये बिना आपके साथ सम्बन्ध नहीं रह सकता। इस पर मन्त्री श्री पुष्करमुनिजी ने प्रायश्चित्त ले लिया। तब उनके साथ सम्बन्ध रहा और वंदन व्यवहारादि हुआ। इसके बाद पुष्कर में प्रवेश हुआ। पुष्कर और अजमेर के बीच तो दर्शनार्थी जनों के आवागमन का तांता-सा लग गया था।

जैसे ही आपश्री अजमेर के निकट पहुंचे, सन्त-सतीवृन्द और श्रावक-श्राविकाओ के समूह स्वागत के लिये उमड पड़े ।

चतुर्विध सघ के जुलूस के साथ स० २०१३, माघ शुक्ला ४ को आचार्य श्रीजी म. सा. का लाखनकोटडी स्थित एक बड़े मकान मे पदार्पण हुआ । यहां पर करीब १५-१६ दिन विराजना हुआ । प्रतिदिन व्याख्यान पचायती भवन मे होते थे, जिनका स्थानीय और आस-पास के नगरो के भाई-बहिनो ने लाभ उठाया । कानोड़, बालेसर, ब्यावर, अजमेर आदि क्षत्रो की ओर से स० २०१४ के चातुर्मास की स्वीकृति के लिये विनतिया हुईं किन्तु चातुर्मास के लिये काफी समय होने से आपश्री ने किसी भी स्थान का आश्वासन नही दिया ।

दि. २१-३-५७ को अजमेर मे कान्फरन्स की ओर से एक शिष्टमण्डल सेवा मे उपस्थित हुआ । जिसमे समाज के अग्रणी कार्यकर्ता सर्वश्री कुन्दनमलजी फिरोदिया, सेठ मोहनमलजी चोरडिया, आनन्दराजजी सुराना, कानमलजी नाहटा, रतनलालजी चोरडिया और धीरजलालभाई तुरखिया आदि आदि थे । शिष्टमण्डल ने समाज की वर्तमान स्थिति और उससे सम्बन्धित प्रश्नो पर आचार्य श्रीजी से वार्तालाप किया । आचार्य श्रीजी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए फरमाया कि श्रमणसघ की शुद्धता और अखडता के लिये मेरी शुभ भावना है और श्रमण व श्रावक सघ के परस्पर सम्बन्ध व अपनी-अपनी मर्यादानुसार एक-दूसरे के पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता व जागरूकता के बारे में बतलाया ।

इसी सदर्भ मे कान्फरन्स के प्रमुख नेताओ ने आचार्य श्रीजी म. सा. के चरणो मे धार्मिक प्रार्थना करते हुए सकेत किया कि पालो-काड आदि की परिस्थितियो के कारण हम सब को नीचा देखना पड रहा है । यद्यपि भीनासर सम्मेलन मे अधिकारी मुनियो को अलग-अलग अधिकार दिये गये हैं, लेकिन न तो वे अधिकारो का दायित्व समझ रहे हैं और न इन काडो को मिटाकर समाज के अन्दर शुद्धि-

करण का वातावरण तैयार कर रहे हैं। कुछ एक अधिकारी भी कांडों मे अपने शिष्यो के फंसे होने से इन कांड मे सम्बन्धित मालूम हो रहे हैं और दड देने में हिचकिचाते है। हम लोगो में से कुछ व्यक्ति पहले लुधियाना भी गये थे। वहां पर भी हमने आचार्य श्री आत्मारामजी म. के समक्ष यह परिस्थिति रखी तो उन्होने फरमाया कि ये सब मामले उपाचार्य श्री गणेशलालजी म. को निपटाना चाहिये और वे निपटायेंगे ही। क्योंकि वर्तमान विधान के अनुसार भी उनको सब अधिकार प्राप्त हैं, आदि। इन्ही भावो का एक पत्र भी कान्फरन्स आफिस के मार्फत आपश्री के पास पहुंचा दिया गया है। इसी तरह हम सब की एव शुद्धिकरण प्रेमी सन्तो की भी यह हार्दिक अभिलाषा है कि इन मामलो को आपश्री निपटायें। ये मामले दूसरों से निपटने वाले नही हैं। आपश्री सक्षम है। अतः इस विषय में शीघ्रातिशीघ्र कदम उठाकर हम सबका मुख उज्ज्वल करें, ऐसी हमारी साग्रह सानुरोध प्रार्थना है।

इस पर आचार्य श्रीजी म. सा. ने फरमाया कि आप लोगो को इन घटनाओं से दुःख है वैसा ही मुझे भी इस गन्दे वातावरण से खिन्नता है। मैंने अपने जीवन मे ऐसे घृणित काड तो दूर रहे इससे भी हल्की स्थिति को सहन नही किया है। भूतपूर्व सप्रदाय की दृष्टि से एक साधु का किसी बाई को दिया गया पत्र पकड़ा गया। जिसमें कोई अश्लील बात नहीं थी। फिर भी बाई के नाम पत्र होने से मैंने साधुमर्यादा की सुरक्षा के लिये उस साधु को सम्प्रदाय से निष्कासित कर दिया और श्रावको ने उसका वेष भी ले लिया था। मुझे इस तरह के काड कितने कष्टदायी हैं, आप इसका अनुमान लगा सकते हैं।

आपने जो अपनी व शुद्धिकरण प्रेमी सन्तों की भावना रखी और मेरे से ही यह कार्य निपटवाना चाहते है तो मुझे कोई एतराज नही है। लेकिन मैं जो कदम उठाऊं, उसमें सबका दृढ विश्वास हो तथा आप सब लोगो की दृष्टि मे जो व्यक्ति शुद्ध मालूम हो और

शास्त्रीय मर्यादा एवं श्रमणसघीय नियमोपनियम को ध्यान में रखते हुए मेरी दृष्टि मे अशुद्ध मालूम पड़े और मैं उसको जो भी दड दूं, उसको अमली रूप देने दिलाने की आप महानुभावों की तैयारी हो तो यह निर्णय मेरे से कराइये। अन्यथा इस विपय को मैं किसी अन्य अनुभवी मुनि पर भी छोड़ सकता हूँ।

इस पर उन कान्फरन्स के नेताओ ने कहा कि आप जो भी फरमावेगे उसको हम सहर्ष अमली रूप देंगे, दिलायेंगे। इस विषय को आपश्री अन्य किसी पर मत छोडिये। उनमे ऐसे विषयों को गौरवता-पूर्ण तरीके से निपटाने की क्षमता हमको मालूम नही होती है। यदि होती तो कम-से-कम ऐसे दूषित व्यक्तियो का सम्बन्ध-विच्छेद तो वे उसी समय कर देते।

वार्तालाप के पश्चात् आचार्य श्रीजी म. सा. ने इस विषय को पूर्णरूपेण हाथ मे लिया और अन्यान्य अधिकारी मुनिवरो के परामर्श पूर्वक शुद्धिकरण के साथ सगठन को ध्यान मे रखते हुए पूरी छानबीन करके निर्णय दिया और निर्णय की सूचना सम्बन्धित व्यक्तियो के पास पहुचा दी। जिसकी स्वीकृति की सूचना भी प्राप्त हो गई और निर्णय के क्रियान्वयन की प्रतीक्षा करते हुए अजमेर से विजयनगर तरफ विहार किया।

आसपास के छोटे-छोटे गावो को स्पर्श करते हुए विजयनगर पधारे। विजयनगर मे प्रान्तमन्त्री मुनिश्री पन्नालालजी म., उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म, प्रान्तमन्त्री मुनिश्री सेसमलजी म., वयोवृद्ध मुनिश्री रामकुमारजी म. आदि सन्तो का सयोग मिला। दर्शनार्थी बधु तो आते ही रहते थे। त्याग प्रत्याख्यान अच्छी सख्या मे हुए तथा वहा विराजित मुनिवरो से श्रमणसघ की वर्तमान स्थिति एव अन्यान्य विषयो पर विशद रूप से चर्चा वार्ता हुई।

उनमे एक समस्या पाली मे विराजित स्थानापति वयोवृद्ध श्री शार्दूलसिहजी म. की सेवा-सम्बन्धी थी। ये शार्दूलसिहजी म.

भूतपूर्व सम्प्रदाय की दृष्टि से आचार्य श्री जयमलजी म. की सम्प्रदाय के अन्तर् पेटे में थे और श्रमणसंघ बनने के पश्चात् बृहत्साधु सम्मेलन भीनासर में प्रान्तीय मन्त्रियो ने जो अधिकार अपने पास रखे थे उनमे प्रान्त मे विचरने वाले वृद्ध सन्त-सतियो की सेवा का अधिकार भी था। तदनुसार प्रान्त के मन्त्रियों को उनकी सेवा का पूर्ण उत्तरदायित्व समझते हुए व्यवस्था करने की नितान्त आवश्यकता थी। लेकिन प्रान्तमन्त्रियों ने कोई ध्यान नही दिया। वे वृद्ध सन्त कष्ट पा रहे थे। ये समाचार आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. के पास पहुंचे तब वहा विराजित सन्तो से भी आचार्य श्रीजी म. सा ने परामर्श किया और फरमाया कि कुछ सन्त मैं भेजूं और कुछ आप (मन्त्री श्री पन्नालालजी म. व उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म.) भेजें। ताकि पाली मे विराजित शार्दूलसिहजी म. को ब्यावर विराजित ठाणापति सतो के पास अथवा बीकानेर विराजित ठाणापति सन्तो के पास पहुंचा सकें। जिससे वहां के ठाणापति सन्तो के साथ इनकी सेवा भी अच्छी तरह से हो सके। इस पर दोनो अधिकारी मुनिवरो ने फरमाया कि आपश्री की आज्ञा शिरोधार्य है लेकिन यह कार्य तो उस प्रान्त के अधिकारी मुनियो का है। अतः उनको इस विषय मे पहल करनी चाहिये, लेकिन वे प्रान्तीय अधिकारी मुनि इस तरफ ध्यान नही दे रहे है। आपश्री की यह महानता है कि आप उनकी सुव्यवस्था के लिये सोच रहे हैं। हम आपश्री की आज्ञा को न टालते हुए सेवा मे सन्त भेजने के लिये तैयार हैं, बशर्ते कि उस प्रान्त के अधिकारी मुनि भी सेवा मे अपनी ओर से सन्त भेजने को तैयार हो।

इस पर उपर्युक्त वार्तालाप के आशय की सूचना प्रान्त-मन्त्रियों को दिलाई गई लेकिन उनका उत्तर आशाजनक नही था। अतः पाली से वृद्ध सन्तो को उठाकर ब्यावर या बीकानेर पहुंचाने की स्थिति नही बनी। फिर भी आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. ने अपनी उदारता का परिचय देते हुए अपने सन्तों में से तपस्वी श्री [illegible] म. को

एक वर्ष के लिये पाली भेजा और उस प्रान्त के मन्त्रियो को सूचना दिला दी कि इस वर्ष के लिये तो मैंने सन्त भेजा है, आगे के लिए आपको पूरी व्यवस्था कर लेनी चाहिये । लेकिन उस प्रान्त के मन्त्रियो ने व्यवस्था नही की ।

इसी तरह जोधपुर में विराजित वयोवृद्ध बाबाजी श्री पूर्णमलजी म. की सेवा मे भी सन्त भेजना आवश्यक था लेकिन सयुक्त चातुर्मास मे जोधपुर मे विराजित प्रमुख सन्तो मे से किसी ने ध्यान नही दिया तो फिर आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. ने अपने पास रहने वाले सेवाभावी मुनिश्री करणीदानजी म. को और नवदीक्षित मुनिश्री घेवरचन्दजी म. को सेवा में भेजा और दोनो मुनियो ने बाबाजी म. की अन्त तक सेवा की । इस सेवा की जोधपुर संघ आज भी भूरि भूरि प्रशसा कर रहा है और स्वय बाबाजी म. कहा करते थे कि मेरी सेवा मे महान सेवाभावी सन्तों को गणेशनारायण (आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा.) ने भेजकर मेरी जिन्दगी सुधार दी ।

विजयनगर से विहार कर आचार्य श्रीजी म. सा गुलाबपुरा पधारे । यहा पर मन्त्री मुनिश्री कस्तूरचन्दजी म. आदि सन्त विराज रहे थे । स्थानीय सघ की ओर से आचार्य श्रीजी के दर्शनार्थ आने वालो की उत्तम व्यवस्था की गई थी । महावीर-जयन्ती के अवसर पर श्रावक श्राविकाओ द्वारा विविध प्रकार की तपस्यायें व त्याग-प्रत्याख्यान हुए । श्री कस्तूरचन्दजी कोठारी ब्यावर निवासी ने सजोड़े ब्रह्मचयव्रत अगीकार किया एव अनेकों ने चर्बी लगे वस्त्रो के पहनने व दूसरे के यहा मिष्टान्न भोजन जीमने का त्याग किया ।

चैत्र शुक्ला १४ का शाम को जोधपुर मे विराजित स्थविर-पद विभूषित तपस्वी मुनिश्री पूर्णमलजी म. सा. (बाबाजी म सा.) के कालधर्म को प्राप्त होने के समाचार मालूम होने से चैत्र शुक्ला १५ को व्याख्यान बद रखा गया और आचार्य श्रीजी म सा एवं अन्यान्य सन्त मुनिराजो ने बाबाजी म. के जीवन एव उनकी विशेषताओ पर

प्रकाश डालते हुए गुणानुवाद किया और उनके गुणों का अनुकरण करने के लिये चतुर्विध संघ का ध्यान आकर्षित किया । श्रावक-श्राविकाओं में आयंबिल आदि की तपस्यायें हुईं ।

आगामी चातुर्मास की स्वीकृति

आचार्य श्रीजी म. सा. ने कईएक परिस्थितियों को लक्ष्य में रखते हुए चैत्र शुक्ला पूर्णिमा से पहले सं० २०१४ का चातुर्मास घोषित नहीं करने का फरमाया था । अतः जैसे-जैसे उक्त तिथि निकट आ रही थी कि चातुर्मास की विनती के लिये विभिन्न श्री संघों के सैकड़ों भाई-बहिन गुलाबपुरा में उपस्थित हो गये । अजमेर और कानोड़ संघ के श्रावकों में तो अपने यहां ही चातुर्मास कराने की होड़-सी लग गई थी ।

कानोड़ श्रीसंघ ने भावभीनी आकर्षक भाषा में अपने क्षेत्र की स्थिति आदि का दिग्दर्शन कराया तो अजमेर संघ के अध्यक्ष, मंत्री आदि अग्रणी श्रावकों ने अपनी लगन, श्रद्धा-भक्ति का परिचय दिया । दोनों संघों का धर्मप्रेम और उत्साह श्लाघनीय था । कोई भी अपने अधिकार को छोड़ने के लिये टस-से-मस नहीं होना चाहता था और सिर्फ यही चाहता था कि आचार्य श्रीजी म. सा. का सं० २०१४ का चातुर्मास हमारे यहां ही हो ।

ऐसी स्थिति में आचार्य श्रीजी म. सा. ने परामर्श दिया कि आप सभी का धर्मप्रेम सराहनीय है । मैं एक हूँ और चातुर्मास के क्षेत्र अनेक हैं, अतः चातुर्मास तो कहीं एक ही स्थान पर होगा । अतः आप लोग आपस में विचार-विमर्श करके एक निष्कर्ष पर पहुँच जायें तो मेरे सोचने में सुविधा रहेगी । इस पर परस्पर में दोनों संघ आपस में विचार-विमर्श करते हुए एक-दूसरे संघ से चातुर्मास की याचना करने लगे कि इस वर्ष का चातुर्मास हमको दे दो । कानोड़ संघ की धार्मिक भावना प्रबल थी और अजमेर संघ की भी धार्मिक भावना कम न थी । अजमेर के सेठ श्री सोभागमलजी लोढ़ा, श्री [illegible]मलजी बोहरा आदि कानोड़ संघ को समझाने में लग रहे थे । कानोड़ संघ

के सदस्य कहने लगे कि आप लोग तो सम्पन्न हैं, शिक्षित हैं, बड़े शहर में रहने वाले हैं सो आप लोग तो कभी भी चातुर्मास का लाभ प्राप्त कर सकते हैं लेकिन हम गाव के रहने वाले हैं, अतः यह मौका हमे दीजिये । हम आपके चरणो मे झोली बिछाते है और पगड़ियां रखते हैं आदि कहते हुए धडाधड अपनी पगड़िया रख दी। तब अजमेर वाले कहने लगे कि हम बडे शहर मे रहते हुए भी आचार्य श्रीजी का चातुर्मास अब तक नही करा सके हैं, अत. यह मौका तो हमे ही दीजिए और उपस्थित प्रायः सभी अजमेर निवासियो ने अपनी-अपनी पगड़िया और टोपिया कानोड़ वालो के चरणो मे रख दी। लेकिन कोई समझौता नही हो पाया और अन्त मे कहने लगे कि अब तो आचार्य श्रीजी म. सा. को ही कुछ फरमाना होगा । परन्तु अभी आचार्य श्रीजी म. सा. को फरमाने का अवसर नहीं था । शाम को आचार्य श्रीजी म. सा, ध्यान करके पौढ गये तो आचार्य श्रीजी म. के पाट के आसपास अजमेर के कुछ व्यक्ति माला लेकर जाप करने लगे। तब वर्तमान आचार्य श्री नानालालजी म. सा. आदि सन्तो ने सकेत किया कि आचार्य श्रीजी म. सा. के पास आवाज न करें, निद्रा भंग हो जायेगी । निद्रा न आयी तो स्वास्थ्य के लिये अच्छा न होगा । आपका धर्मप्रेम सराहनीय है । लेकिन वे पूर्ववत् जाप करते रहे । इस तरह अजमेर और कानोड सघ का यह दृश्य दर्शनीय, अलौकिक था ।

ऐसी स्थिति मे वैशाख कृष्णा १ को आचार्य श्रीजी म. सा. ने अपने प्रवचन मे फरमाया कि कानोड और अजमेर दोनो सघो की चातुर्मास हेतु विनती जोरदार है । लेकिन मैंने पहले ही इस सम्बन्ध मे सकेत कर दिया था कि चातुर्मास-स्वीकृति को निमित्त बनाकर आप लोग आने-जाने का कष्ट न करे । परन्तु आप लोगो ने इस बात पर ध्यान न देकर आने-जाने की क्रिया चालू रखी । परिस्थितिवश पहले मैंने चैत्र शुक्ला १५ तक आगामी चातुर्मास के स्थान सबधी निश्चय के बारे मे कहा था । लेकिन चैत्र शुक्ला १५ के बाद अब मैं चातु-

मास का निश्चय करने के लिये स्वतंत्र हूँ। वर्तमान में जो परिस्थितियां चल रही हैं, उनको देखते हुए अभी कुछ समय और चातुर्मास का निश्चय नहीं करने की स्थिति मेरे ध्यान में आ रही है। आप दोनों संघो को कहीं पर आने की आवश्यकता नहीं है। चातुर्मास-काल में कहां रहना उपयुक्त प्रतीत होगा, वहां की सूचना दोनो संघों के मंत्रियों को यथासमय किसी-न-किसी स्थान के संघ के मन्त्री द्वारा मिल जायेगी।

इसके पश्चात दोनो संघ अपने-अपने स्थानो को रवाना हो गये और कुछ दिन बाद दोनो संघो के मन्त्रियो को कुछ आगार रख-कर सुखेसमाधे सं २०१४ का चातुर्मास-काल कानोड़ में बिताने की स्वीकृति के समाचार मालूम हुए। ये समाचार सुनते ही कानोड संघ के हर्ष का पार नहीं रहा और सुना गया कि इस खुशी में कानोड़ संघ ने सारे गाव में गुड़ बांटा था।

मेवाड़प्रदेश में विहार और समाजवैमनस्य की शांति

कानोड मे आगामी चातुर्मास होने की खबर से मेवाड़प्रदेश में अभूतपूर्व आनन्द का वातावरण व्याप्त हो गया था और कानोड़ पदार्पण होने के पूर्व आसपास के क्षेत्रों के भाई-बहिन अपने-अपने यहां पधारने की विनतियां कर रहे थे।

आचार्य श्रीजी म. सा. का गुलाबपुरा से मेवाड़ प्रदेश की ओर विहार हुआ। आसपास के क्षेत्रों को फरसते हुए भीलवाड़ा पधारे और अन्यान्य श्रीसंघों की तरह भीलवाड़ा श्री संघ भी इस अभूतपूर्व अवसर का अधिक-से-अधिक लाभ प्राप्त करने के लिये उत्सुक था। लेकिन विभिन्न क्षेत्र की अनुकूलता से ऐसे अवसर की बाट जोह रहे थे अतः अधिक विराजना न हो सका और भीलवाड़ा के निकटस्थ क्षेत्रों को फरसने के पश्चात आचार्य श्रीजी का कपासन नगर मे पदार्पण हुआ और पांच प्रवचन हुए। जिनका स्थानीय जनता के अतिरिक्त बाहर से पधारे हुए श्रोताओं ने लाभ उठाया तथा अनेक प्रकार के त्याग प्रत्याख्यान हुए।

कुछ समय से कपासन के ओसवाल और माहेश्वरी भाइयों

का अपनी-अपनी समाज में पारस्परिक मनमुटाव था। दोनों अनेक धडो मे विभक्त हो गई थी और वे धड़े एक दूसरे को अपमानित करने के लिये प्रयत्न करते रहते थे। पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. व्यक्ति और समूह के लिये किसी भी रूप मे इस प्रकार की धडेवदी को उचित नही मानते थे और अपने प्रवचनो मे सगठन के बारे में संकेत करते रहे। आपश्री के प्रभावोत्पादक एवं हृदयस्पर्शी उपदेशो का ऐसा अपूर्व असर हुआ कि ओसवाल समाज मे दलबन्दी की होड समाप्त हो गई और प्रेम का वातावरण छा गया। माहेश्वरी समाज के भाइयों ने भी आपके उपदेशो का लाभ उठाया और उन्होने भी अपने आपसी सघर्ष को शांत करने के प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये।

शान्ति के उपासक और शाति के सदेशवाहक पूज्य पुरुषों के पदार्पण का प्रभाव पारस्परिक संघर्षों को समाप्त करने का अमोघ उपाय है। उनके समीप जब जन्मजात विरोधी भी अविरोधी हो शांति का अनुभव करते है तो इन क्षणिक मतभेदो के समाधान मे आश्चर्य भी कैसे हो सकता है ?

कपासन से विहार कर आचार्य श्रीजी म. सा. ताराखेड़ी, दाता स्पर्शते हुए कनूकड़ा पधारे। कपासन के आसपास के क्षेत्र मे दो-दो, तीन-तीन मील की दूरी पर छोटे-छोटे सैकड़ो गांव हैं। उन सभी गावो मे बसने वाले श्रावक-श्राविकाओ के संमूह पूज्यश्री के दर्शनार्थ कनूकड़ा आये और व्याख्यानवाणी का लाभ उठाया। पूज्य आचार्य श्रीजी उन सभी क्षेत्रो को फरसने का लक्ष्य रखते थे किन्तु शारीरिक स्थिति ऐसी नही थी कि सभी को स्पर्श कर सके, लेकिन मार्ग मे पडने वाले गांवो को तो अपने पदार्पण से पवित्र कर ही देते थे। अनेको ने तम्बाकू, भाग, गांजा, मांस, मदिरा आदि अभक्ष्य वस्तुओ का त्याग किया और जहां आपसी मनोमालिन्य था, वह भी दूर हुआ।

दांता और कनूकडा मे करीब १०-१२ घर हैं। इन दोनों गांवो के भाइयो मे करीब २५ वर्ष से आपसी वैमनस्य था और बढ़ते-

बढ़ते यह विकट स्थिति बन गई थी कि यदि आपस में समझौता न हुआ तो आसपास के गांवो में भी फूट-कलह की स्थिति बन सकती है। आचार्य श्रीजी का दोनो गांवों मे एक-एक दिन विराजना हुआ और प्रवचन मे दोनो गांवों के निवासी भी एक दूसरे गाव मे उपस्थित हुए और आपश्री के उपदेशो से आपसी वैमनस्य दूर होकर उनमे सगठन हो गया। कनूकड़ा मे विहार कर उमेद् गांव मे पधारे। यहा भी दो व्यक्तियो में एक लम्बे समय से आपस में मनमुटाव था। वह भी दूर होकर आपस में प्रेम का वातावरण बन गया।

उमेड मे चाकुडा होते हुए आकोला पधारे। यहां के श्रावकों में भी जबरदस्त फूट थी। इस कारण समय-समय पर तूतू-मैंमैं होती रहती थी और दिनोदिन झगड़ा उग्र रूप धारण करता जा रहा था। परन्तु गांव के भाग्योदय से आचार्य श्रीजी का पदार्पण हुआ और सदुपदेश मे यह झगडा भी शांत हुआ। वर्षो का मनोमालिन्य धुल गया।

आकोला से विहार कर ताणा, करजेटी, सगेसरा उम्मेदपुरा स्पर्शते हुए भादसोड़ा पधारे। यहां आसपास के सैकडो व्यक्तियो ने दर्शनार्थ उपस्थित होकर व्याख्यानवाणी का लाभ उठाया। यहां से विहार कर मंडलिया होते हुए करोली पधारे। यहां पर राजपूतो की बस्ती है। राजपूतो के अत्याग्रह से एक व्याख्यान हुआ। जिसमे व्याख्यान समाप्ति के पश्चात अनेक व्यक्तियों ने मद्य-मांस आदि अभक्ष्य पदार्थों के सेवन का त्याग किया एवं शिकार न करने की प्रतिज्ञा ली। करोली से विहार कर चिकारड़ा, मोरवण, गुडागेड़ा आदि-आदि क्षेत्रों को स्पर्श करते हुए मंगलवाड़ पधारे।

चातुर्मास-काल निकट होने से कुछ सन्तों का बिलोदा और कुछ का उदयपुर की ओर विहार कराकर आपश्री ने कमेड़ की ओर विहार किया। कमेड़ में भी ओसवाल समाज के सिर्फ ४ घर हैं और उनमें भी आपसी मनमुटाव था। आपश्री के सदुपदेश से उनमें एकता हो गई। कमेड़ से ढूंगला होते हुए भीण्डर पधारे। भीण्डर के समस्त

निवासियों ने स्वागत किया। भीडर में भी दो दल थे और आपस में लड़ाई-झगड़ा चलता रहता था जो आपश्री के एक ही प्रवचन से समाप्त हो गया और पारस्परिक सुमधुर सम्बन्ध पुनः स्थापित हो गये। भीडर से कानौड की ओर विहार हुआ।

भीडर के सभी निवासियों ने प्रवचनों का लाभ उठाया लेकिन वोहरा समाज के जो सबसे बड़े मौलवी थे, वे अत्यन्त प्रभावित हुए और वहा अपनी मस्जिद मे आचार्य श्रीजी को पदार्पण कराने के लिए प्रार्थना की तथा विहार के समय भीडर से आचार्य श्रीजी म. सा. के साथ कानौड तक आये। कानौड़ में भी कुछ दिन व्याख्यान सुने और मौलवीजी का यह इरादा था कि चातुर्मास मे यहा ही रह कर सब व्याख्यान सुनूं लेकिन बबई से उनको बुलाने बाबत तार आ गया था, इसलिए कुछ दिन बाद वे चले गये।

चातुर्मास हेतु कानौड़ मे पदार्पण

पहाडी प्रदेश और इधर के निवासियों को साधु की आहार-विधि की जानकारी न होने से विविध परिषहों को सहन करना पड़ा। लेकिन आचार्य श्रीजी का विशेष लक्ष्य छोटे-छोटे गांवो में विहार करने का रहता था। इससे गावो मे काफी उपकार हुए और वहां के निवासियो ने दुर्व्यसनो का त्याग कर अपना नैतिक आचारण सबल बनाया।

स. २०१४ के चातुर्मास हेतु दी गई स्वीकृति के अनुसार पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. ठा. ६ का आषाढ़ शुक्ला १० दि. ६-७ ५७ को प्रात: सवा आठ बजे कानौड मे पदार्पण हुआ। ग्राम के सभी निवासियो ने भव्य स्वागत के साथ अगवानी करते हुए जुलूस के रूप मे गाव मे प्रवेश कराया। महासती श्री गट्टूकवरजी म. सा. श्री चपाकवरजी म. सा आदि ठा. ७ का भी यही पर चातुर्मास होने से श्रावक-श्राविकाओ मे अपूर्व उत्साह परिलक्षित होता था।

स्वागत-जुलूस गाव के विभिन्न मार्गों से होता हुआ स्थानक आया और सभा के रूप मे परिणत हो गया। करीब १॥ घटे तक

श्रावक-श्राविकाओं की ओर से स्वागत भाषण, गायन आदि होने के अनंतर पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. का प्रवचन हुआ।

पूज्य आचार्य श्रीजी का चातुर्मास काल के चार मास तक यहां ही विराजने का यह प्रथम दिवस था और इस प्रथम दिवस का लाभ प्राप्त करने के लिये आसपास के गांवों से सैकड़ों की संख्या में श्रावक-श्राविकाओं का आगमन हुआ था। स्थानीय श्रावक संघ में आतिथ्य सत्कार के प्रति अपूर्व उत्साह था और समस्त आगत बंधुओं के लिये आवास-भोजन आदि की अच्छी-से-अच्छी व्यवस्था की गई थी। यह एक दिन के लिये ही नहीं थी किन्तु चातुर्मास काल के पूरे समय तक यही क्रम चालू रहा। संघ के छोटे-बड़े, अमीर-गरीब सभी सदस्य अतिथियों की सुव्यवस्था करते, स्वयं रसोई बनाते कुओं से पानी लाते और आवश्यकतानुसार बाहर से आने वालों को ठहरने के स्थान पर पहुंचाते थे। ऐसा करने में वे किसी प्रकार की झिझक या लज्जा अनुभव नहीं करते थे किन्तु अपना सौभाग्य मानते थे कि पूज्यश्री के पदार्पण से हमें अपने स्वधर्मी बंधुओं की सेवा का अवसर मिला है। इस अवसर का लाभ लेने की आपस में होड़ सी चलती थी। जिस काम के लिये एक की जरूरत होती थी उसको करने के लिये चार-चार व्यक्ति तैयार रहते थे।

यह चातुर्मास सहयोग, सहकार और एकवाक्यता का अपूर्व प्रतीक था। एक छोटा-सा कस्बा और यातायात के साधन भी कम, लेकिन मानवीय श्रम के समक्ष ये सब बाधायें नगण्य थीं। हजारों की संख्या में दर्शनार्थियों का आना और तत्काल उनके लिये योग्य आवास आदि की समुचित व्यवस्था हो जाना जादू का खेल-सा लगता था।

जन्मजयन्ती

श्रावण कृष्णा द्वितीया को पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. की सड़सठवीं जन्मजयन्ती तप-त्याग पूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुई। अन्य दिनों की अपेक्षा इस अवसर पर उपस्थिति विशेष थी। सर्वप्रथम

पं. मुनिश्री लालचन्दजी म. सा., श्री ईश्वरचन्दजी म. सा., श्री तोलारामजी म. सा. एवं महासती श्री मनोहरकवरजी म. सा. ने आचार्य श्रीजी म. सा के जीवन की विशेषताओ और संयम-तप-त्याग साधना आदि का सकेत करते हुए गुणानुवाद किया और अपनी-अपनी भावांजलि अर्पित की। प. र. मुनिश्री नानालालजी म. सा. (वर्तमान आचार्यश्री) ने गुणानुवाद पूर्वक अपनी विनम्र भावांजलि अर्पित करते हुए फरमाया कि प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन कुछ समय निकाल कर समभाव चिन्तन की परिपाटी प्रारम्भ करे। जिससे व्यक्ति आत्मदर्शन करते हुए विश्व के प्राणिमात्र के लिये मैत्रीभावना एव समभाव का विकास कर सके। विषमता का कारण व्यक्ति की अपनी-अपनी भावना है। व्यक्ति का स्वार्थ ही दूसरे के अधिकार को हडपने की कोशिश करता है।

इस सकेत पर अनेक व्यक्तियों ने वैसा चिन्तन-मनन और अभ्यास करने की प्रतिज्ञा ली। श्रावक श्राविकाओ मे से भी कुछ भाई-बहिनो ने गुणगान करते हुए कहा कि आपश्री के वैराग्यमय जीवन से प्रेरणा लेकर अपनी आत्मिक उन्नति के लिये प्रयत्नशील होना ही सही मायने मे हमारा भावाजलि का समर्पण माना जायेगा।

अन्त में पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. ने अपने समस्त गुणानुवादो को अतिशयोक्तिपूर्ण बतलाते हुए फरमाया कि सूत्रों मे श्रावक-श्राविकाओं को साधुओ का अम्माणिया बताया है। इस दृष्टि से गुणानुवाद रूपी जो भी उपहार आपने मुझे दिये है, उनकी रक्षा का उत्तरदायित्व भी आप पर है। आप हमारी ज्ञान-दर्शन-चारित्र की साधना मे सहायक बनें और स्वय भी आत्मकल्याण के मार्ग पर अग्रसर होवें।

जयन्ती के उपलक्ष्य मे श्रावक-श्राविकाओं ने उपवास, आयबिल आदि अनेक प्रकार की तपस्यायें कीं और जीवदया एवं लोकोपकारी कार्यो के सहायतार्थ मुक्तहस्त से दान दिया।

चातुर्मास का सक्षिप्त विहगावलोकन

पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. का चातुर्मास होने से कानोड़-

वासियों के उत्साह, उमंग, स्वधर्मी वात्सल्य एवं आतिथ्य-सत्कार की भावना का संकेत यथाप्रसंग किया गया है और उतने ही उत्साह, उमंग से व्याख्यान, तत्त्वचर्चा प्रार्थना आदि के अवसरों पर उपस्थित होते थे। यद्यपि प्रवचन प्रारम्भ होने का समय तो प्रातः ९ बजे का था लेकिन सूर्योदय से ही आबालवृद्ध नगरजन प्रवचन श्रवण के लिये एकत्रित हो जाते थे। साधारणतया प्रवचन सुनने के लिये प्रतिदिन करीब दो-ढाई हजार श्रोताओं की उपस्थिति हो जाती थी, लेकिन पर्युषणपर्व जैसे पुण्य अवसरों पर पांच सात हजार से भी अधिक श्रोताओं की उपस्थिति हो जाना एक साधारण-सी बात थी।

चातुर्मास-काल में पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. एकान्तर तप करते रहे। मुनिश्री मोहनमुनिजी म. सा. ने ४९ दिन की तपस्या की तथा मुनिश्री पारसमुनिजी म. सा. ने २५ दिन की तपस्या का पारणा कर पुनः ९ चौविहार उपवास किये। सन्तों की ज्ञानसाधना का दृश्य तो अलौकिक ही था। प. मुनिश्री लालचन्दजी म. सा. शास्त्रों के अध्ययन में दत्तचित्त रहते थे तो पं. र. मुनिश्री नानालालजी म. सा. (वर्तमान आचार्यश्री) जिज्ञासुओं, विद्वन्मंडल के प्रश्नों, शंकाओं का शास्त्रानुमोदित तार्किक शैली से सप्रमाण समाधान करके जैनधर्म और दर्शन के सिद्धांतों का विशदरूपेण दिग्दर्शन कराते रहते थे। कर्मठ सेवाभावी मुनिश्री इन्द्रचन्दजी म. सा. जब देखो, तब सन्तों की सेवा में व्यस्त रहते थे।

पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. का स्वास्थ्य साधारणतया ठीक ही रहा। घुटनों में दर्द, मधुमेह का रोग और पेशाब की तकलीफ सी बनी रहती थी लेकिन आसन प्राणायाम, उपवास आदि द्वारा उनका शमन करते हुए आचार्य श्रीजी म. सा. साधना में तत्पर रहते थे और मुमुक्षुजनों को शाश्वत सुख-शांति-प्राप्ति का मार्ग निर्देशित करते रहते थे।

इन्दौर में यहाँ के ज्ञानी, ध्यानी, तपस्वी सज्जनों के विचारों

से कानौड नगर तपोवन की उपमा को सार्थक कर रहा था । यहां के कण-कण मे उत्साह था, जीवन था और उससे भी बढ़कर एक प्राणवती चेतना के दर्शन होते थे ।

कुछ उल्लेखनीय प्रसंग

चातुर्मास काल मे धार्मिक प्रभावना के लिये विविधप्रकार के आयोजन होने के साथ-साथ अनेक समाजोपयोगी कार्य भी सम्पन्न हुए थे । उनमे से कुछएक उल्लेखनीय प्रसगो का यहां सकेत कर रहे हैं।

कानौड के आसपास के गावो मे काफी बड़ी सख्या मे खटीको की बस्ती है । जो अधिकतर मूक प्राणियो का बध करके मांस वेचने का धधा करते हैं और मांसभोजी हैं । समय-समय पर वे भी आचार्य श्रीजी म. सा. के दर्शन और व्याख्यान श्रवण के लिये आते रहते थे । उनमे से कुछ एक व्यक्तियो ने आपश्री के अहिंसा-करुणा-दया-मैत्री-भावना से ओतप्रोत हृदयस्पर्शी प्रवचनो से प्रभावित होकर जीवन-पर्यन्त के लिये प्राणिवध का त्याग कर दिया और अपने जीवन को सुसस्कारी बनाने के लिये जैनधर्म अंगीकार करके गुरुमन्त्र ले लिया। इसी प्रकार कई आदिवासियो ने भी मांस-मदिरा आदि दुर्व्यसनों का त्याग कर दिया।

कानौड की वोहरा समाज (मुसलमान) के भाइयो की नि.स्वार्थ सेवायें सदैव स्मरणीय रहेगी । दर्शनार्थ आगत व्यक्तियो के लिये उन्होने अपने घर तक खोल दिये थे और प्रबन्ध-व्यवस्था मे भी अपना पूरा-पूरा सहयोग दिया था ।

एक बोहरा भाई के मकान मे श्री अमृतलालभाई जवेरी ववई की धर्मपत्नी श्रीमती केशरवेन आदि ठहरे हुए थे । एकदिन मकान मालिक बोहराजी ने उनसे कहा कि आप लोगो को मकान का किराया देना होगा । इस बात को सुनकर श्रीमती केशरवेन ने कहा कि आप जो किराया बतायेंगे, देने को तैयार हैं । तब बोहराजी ने कहा कि मुझे किराया रुपयो मे नही चाहिये है, लेकिन यह किराया

पाऊँगा कि आचार्य श्रीजी म. सा. का हमारे मकान में पदार्पण हो। अकस्मात एक दिन ऐसा सुयोग मिला कि आचार्य श्रीजी म. सा. श्रीमती केसरबेन के ठहरने के स्थान पर गोचरी के लिये पधार गये। जिससे उन वोहराजी के हर्ष का पार न रहा।

यह भी सुना गया है कि आचार्य श्रीजी म. सा. का कानोड़ में चातुर्मास होने की खबर सुनकर वैष्णव समाज के पंडितों ने अपनी अलग व्याख्यानमाला इस हेतु चालू कर दी थी कि वैष्णव समाज के व्यक्ति आचार्य श्रीजी म. सा. के व्याख्यानों में नहीं जायें। लेकिन आचार्य श्रीजी म. सा. के प्रवचन प्रारम्भ होने के पश्चात उन पंडितों पर ऐसा अद्भुत प्रभाव पड़ा कि वे स्वयं अपनी व्याख्यानमाला बन्द करके आचार्य श्रीजी म. सा. के प्रवचन सुनने के लिये आने लगे। कानोड़ के मुख्य राजपंडित ने आचार्य श्रीजी म. सा. की स्तुति में कई श्लोक बनाकर चतुर्विध संघ को सुनाये थे।

इन कतिपय उद्धरणों से यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि आचार्य श्रीजी म. सा. का कानोड़ चातुर्मास कितना प्रभावक और गौरवणीय था। जिसकी स्मृतियां आज भी हृदय को हर्ष-विभोर बना देती है।

इसी चातुर्मास में अनेकबार श्रमणसंघीय समस्याओं को सुलझाने के लिये कान्फरन्स के शिष्टमंडल उपस्थित होते रहे थे। उन दिनों अन्यान्य समस्याओं के साथ संवत्सरी का प्रश्न भी काफी महत्त्वपूर्ण बना हुआ था। सादड़ी-सम्मेलन में बहुसंख्यक सम्प्रदायों ने अल्पसंख्यक संप्रदायों के लिये प्रेमभावना प्रदर्शित करने के लिये द्वितीय भाद्रपद में संवत्सरी करना स्वीकार कर लिया था, लेकिन अब इसी संवत्सरी को पुनः द्वितीय श्रावण में करने के लिये अधिकांशतः इन्हीं बहुसंख्यक सम्प्रदायों एवं कान्फरन्स ने आचार्य श्रीजी म. सा. पर दबाव डालने की चेष्टा की कि आपश्री की पूर्व सम्प्रदाय की परम्परा दूसरे श्रावण की है और शास्त्रीय दृष्टि से भी आप इसका समर्थन करते हैं, इस

श्रमणसंघ की पूर्ण सत्ता भी आपके पास है, अतः आपश्री दूसरे श्रावण की सवत्सरी श्रमणसघ के लिये घोषित कर दीजिये ।

इस पर आचार्य श्रीजी म. सा. ने फरमाया कि आप लोगो का कथन मेरी भूतपूर्व परम्परा और शास्त्रीय दृष्टि के अनुकूल होने पर भी जिन अल्पसख्यक संप्रदायो को विश्वास में लेकर प्रेम प्रदर्शित किया गया है और उनके व्यवस्थित रूप से श्रमण सघ मे रहते हुए तथा श्रमणसघ को आगे बढाने के प्रयत्नों की आशा से सवत्सरी के बारे मे सहसा कोई परिवर्तन नही किया जा सकता है ।

इस उत्तर से कान्फरन्स के कुछ प्रमुख नेता और बहुसख्यक श्रमणवर्ग नाराज-सा भी हुआ । लेकिन आचार्य श्रीजी म. सा. उनकी राजी-नाराजी की परवाह न करते हुए नियम की सुरक्षा की स्थिति को लेकर चलते रहे ।

विद्वानो, जन नेताओ, कार्यकर्ताओ और दूसरे-दूसरे प्रमुख सज्जनो का समय-समय पर आचार्य श्रीजी म. सा. के दर्शनार्थ कानोड आगमन होता रहता था । राजस्थान के माननीय मुख्यमन्त्री श्री मोहन-लालजी सुखाड़िया भी आपश्री के दर्शनार्थ कानोड़ पधारे थे और सेवा मे उपस्थित होकर तात्त्विक चर्चा करते रहे ।

चातुर्मास-समाप्ति और विहार

चातुर्मास धार्मिक प्रभावना के सफल आयोजनों के साथ सम्पन्न हुआ । अनेक श्रीसघ चातुर्मास-समाप्ति के अनंतर अपने-अपने क्षेत्रों को स्पर्श करने के लिये विनती कर रहे थे । उदयपुर श्रीसघ द्वारा तो उदयपुर स्पर्शने के लिये चातुर्मास प्रारम्भ होने के समय से ही बारम्बार आग्रहभरी विनती हो रही थी । लेकिन आचार्य श्रीजी म. सा. की ओर से कोई आश्वासनात्मक स्थिति नही बन सकी । चातुर्मास के पश्चात विहार कर गाव के बाहर जवाहर विद्यापीठ में पधारे और वहां से विहार कर आसपास के गांवो मे धर्मदेशना देते हुए बम्बोरा पधारे । इसी समय कान्फरन्स के अध्यक्ष श्री विनयचन्दभाई जवेरी, मन्त्री श्री

आनन्दराज जी सुराना आदि के नेतृत्व में कान्फरन्स का एक शिष्ट-मण्डल श्रमणसघ की समस्याओं के बारे में विचार-विमर्श करने के लिये सेवा मे उपस्थित हुआ था।

बम्बोरा के निकटस्थ गांवों मे विराजने के समय किसी गाव मे दिगम्बर समाज के एक मुनिश्री भी आचार्य श्रीजी म. सा. के पास आये और काफी समय तक तत्त्वचर्चा होती रही। यहा पर भी उदयपुर श्रीसघ के भाई-वहिन उदयपुर पधारने की विनती लेकर सेवा मे उपस्थित हुए और आचार्य श्रीजी म. सा. ने यथावसर सुविधानुसार उदयपुर पधारने की स्वीकृति फरमाई। अनन्तर क्रम-क्रम से ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए आचार्य श्रीजी म. सा. अपने शिष्य सन्तों के साथ उदयपुर पधारे और पहले से ही वहां विराजित प्रान्तमन्त्री मुनिश्री पुष्करमुनिजी म. से मिलना हुआ।

सवत्सरी : कान्फरन्स का प्रस्ताव

इन दिनों श्रमणसंघ की स्थिति और समस्याओं को लेकर चतुर्विध सघ में काफी ऊहापोह चल रहा था। संवत्सरी की एकरूपता के लिये साधुसम्मेलन द्वारा किये गये निर्णय को भी विवादास्पद प्रश्न वना दिया गया था। एतद्विषयक चर्चा करने के लिये जब कान्फरन्स की ओर से एक शिष्टमडल कानोड़ चातुर्मास के समय आचार्य श्रीजी म. सा. की सेवा मे उपस्थित हुआ था, तब वार्तालाप के प्रसग मे आचार्य श्रीजी म. सा. ने श्रमणसघीय सगठन की तथा साथ ही उसकी सुरक्षा की दृष्टि से जो भी वैधानिक स्थिति थी, उसे उपस्थित सदस्यों को समझा दी थी कि गुजरात, सौराष्ट्र आदि समस्त स्थानकवासी समाज के श्रमणसंघीय पद्धति के अनुसार श्रमणसघ में सम्मिलित होने आदि प्रबलतर कारण के बिना अविधिपूर्वक वृहत् साधुसम्मेलन सादड़ी के सर्वानुमत के प्रस्ताव में फेरफार करना श्रमणसघ की प्रतिष्ठा व समाज के लिये हितावह प्रतीत नहीं होता है। इसके सिवाय दि. १६-१०-६५ के पत्र द्वारा भी आचार्य श्रीजी म. सा. ने इन्हीं विचारों की जानकारी

कान्फरन्स कार्यालय को करा दी थी।

लेकिन कान्फरन्स के नेता तो सामाजिक हितो की उपेक्षा करके भी मनचाहा करने मे विश्वास करते थे। अतः इतना सब होने पर भी उन्होंने दि. १६, १७, १८ नवम्बर '५७ को दिल्ली में सम्पन्न श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स की व्यवस्था-समिति तथा श्रमण सपर्क-समिति की बैठक मे सवत्सरी विषयक निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया—

'श्रमणसघीय साधुसम्मेलन भीनासर के प्र. नं. ८ द्वारा नियुक्त सवत्सरी-निर्णय-समिति के सयोजक मंत्री मुनिश्री मिश्रीमलजी म. ने सभी सदस्यो से पत्र-व्यवहार के पश्चात सवत्सरी-निर्णय सवन्धी प्रश्न कान्फरन्स को सौंप दिया है। इस पर से कान्फरन्स आफिस ने पुनः समिति के सदस्यो से पत्र-व्यवहार किया। समिति के १७ सदस्यो मे से १४ सदस्य इस मत के हैं कि चातुर्मास प्रारम्भ होने से ४९ या ५० वें दिन सवत्सरी मानी जाय। शेष ३ सदस्य सादड़ी-सम्मेलन के प्रस्ताव के अनुसार सवत्सरी मानने के पक्ष मे हैं। चूकि सादडी-सम्मेलन के प्रस्ताव के पश्चात प्रस्ताव के पालन के सम्बन्ध मे सन् १९५५ मे जो परिस्थिति उत्पन्न हुई थी, उस दृष्टि से इस प्रश्न पर पुनः विचार करने हेतु भीनासर साधुसम्मेलन मे समिति नियुक्त की गई थी।

'उक्त समिति के सदस्यो का अत्यधिक बहुमत चातुर्मासादिक (आषाढ शु० १५) पक्खी से ४९ या ५०वे दिन सवत्सरी मनाये जाने के पक्ष मे है। अतः कान्फरन्स की व्यवस्था समिति और श्रमण-सपर्क-समिति उपरोक्तानुसार चउमासी पक्खी (आषाढ शु० १५) से ४९ या ५०वें दिन सवत्सरी मनाने का निर्णय देती है तथा समस्त स्था० जैनो से अपील करती है कि सवत्सरी जैसे महापर्व भारत मे एक ही दिन मनावें। ताकि समस्त स्था० जैनो मे सावत्सरिक एकता बनी रहे।'

जैनप्रकाश दि० २२ नवम्बर '५७ मे उक्त प्रस्ताव के प्रकाशित होने पर चतुर्विध सघ मे भ्रम फैलने लगा कि आचार्यश्री गणेश-

लालजी म. सा. व बहुसंख्यक संप्रदायों ने अपनी पूर्व परम्परा के अनुसार अधिक मास होने की स्थिति में आषाढ़ी पक्खी से ४९-५०वें दिन संवत्सरी करने की घोषणा करा कर बृहत्साधुसम्मेलन सादड़ी के प्रस्ताव और अल्पमत को दिये गये विश्वास की उपेक्षा, अवहेलना की है ।

लेकिन आचार्य श्रीजी म सा. का श्रमणसंघ को विघटन करने वाले प्रयत्नों व प्रस्तावों से कुछ भी सम्बन्ध नहीं था और उनका स्पष्ट मत था कि अवैधानिक प्रवृत्तियों के कारण श्रमणसंघ सबल होने की बजाय विशृंखल ही होगा, जो कान्फरन्स के दि० २५-११-५७ के पत्र के उत्तर में व्यक्त भावों से पूर्णरूपेण स्पष्ट हो जाता है—

'कान्फरन्स की तरफ से दि. २५ नवम्बर का पत्र मिला । कान्फरन्स की व्यवस्था-समिति और श्रमण-सम्पर्क-समिति के नाम से ध्वनियंत्र और संवत्सरी विषयक जो प्रस्ताव यहां भेजे, वे जैनप्रकाश के २२-११-५७ के अंक में भी देखे गये । उन्हें पढ़कर बड़ा आश्चर्य-सा हो रहा है कि श्रमणसंघ की ध्वनियंत्र व सांवत्सरी आदि समस्याओं के सम्बन्ध में विधिपूर्वक जानकारी कानोड़ चातुर्मास में लिखित रूप में करा देने पर भी श्रमणसंघीय पद्धति की दृष्टि से अविधिपूर्वक प्रस्ताव जैनप्रकाश में प्रकाशित होना विभेद के अंकुर पैदा करना नहीं है क्या ? और सुव्यवस्था एवं नीतिसंमत है क्या ? इस प्रकार प्रस्तावों के प्रकाशन आदि से समाज एवं बने-बनाये संगठन की क्या अवस्था बन सकती है ? यह आप सरीखे समझदार व्यक्तियों को बहुत ही गम्भीरता से सोचने की आवश्यकता है ।

'श्रमणसंघ की अखंडता के साथ संवत्सरी परिवर्तन के प्रबल-तर कारण (गुजरात, सौराष्ट्र आदि समस्त स्थानकवासी समाज के श्रमणसंघ में सम्मिलित होने आदि) की स्थिति विधिपूर्वक जब तक सुस्पष्ट न हो जाय, तब तक सादड़ी-सम्मेलन के सांवत्सरी विषयक प्रस्ताव के प्रतिकूल पाक्षिपत्र व निषेधपत्र आदि प्रकाशित करना श्रमणसंघ की प्रतिष्ठा को गहरी धक्का पहुँचाने की एवं बने-बनाये

सगठन मे विभेद पडने की पूरी सम्भावना मालूम दे रही है। अतः कान्फरन्स व उसके द्वारा नियुक्त समिति श्रमणसंघ को विघटित करने वाले अवैध तरीके से बचे और वैध तरीके से सगठन को शुद्धरूप से अखडता के साथ आगे बढाने मे अपनी शक्ति लगावे— यही हार्दिक भावना एव शासनदेव से प्रार्थना है।'

कान्फरन्स कार्यालय मे उक्त पत्र के पहुंच जाने के बाद भी कान्फरन्स के नेताओ और श्रमण-सम्पर्क-समिति के सदस्यो ने समाज के सामने सही स्थिति प्रगट नही की एव अपनी प्रवृत्ति को ही सही बताने के प्रयत्न चालू रखे। परिणामतः समाज यह समझने के लिये मजबूर हो गई कि आचार्य श्री गणेशलालजी म सा. सादड़ी-सम्मेलन के सवत्सरी विषयक प्रस्ताव की उपेक्षा करके श्रमणसंघ को विघटित करने के लिये तत्पर हो रहे हैं।

समाज की इस रोषमिश्रित प्रतिक्रिया को देखकर भी आचार्य श्रीजी म. सा. मौन रहे कि कान्फरन्स अपनी ओर से सही स्थिति की जानकारी समाज को देती है, या नही। लेकिन अन्य समस्याओ के लिये अपनाये गये रुख की तरह ही संवत्सरी विषयक प्रस्ताव के बारे मे भी कान्फरन्स ने उदारता का परिचय नही दिया। चतुर्विध सघ की ओर से जब बार-बार स्पष्टीकरण करने के लिये मौखिक और पत्रो के माध्यम से समाचार प्राप्त हुए और कान्फरन्स द्वारा भी सही स्थिति नही बताई गई तब आचार्य श्रीजी म. सा. की ओर से निम्न-लिखित स्पष्टीकरण प्रकाशित किया गया—

'उपाचार्य श्रीजी म. के कानोड चातुर्मास मे श्रमण सम्पर्क-समिति के सदस्यगण— श्री बनेचन्द भाई, श्री मोहनमलजी चोरडिया, श्री कानमलजी नाहटा आदि उपस्थित हुए थे। श्रमण संघीय समस्याओ के विषय मे काफी विस्तार पूर्वक वार्तालाप एव विचार-विमर्श हुआ और श्रमणसंघीय संगठन की तथा साथ ही सुरक्षा की दृष्टि से जो भी वैधानिक स्थिति थी, वह सभी उपस्थित सदस्यो को समझा दी

गई थी। अनन्तर दि. १६-१०-५७ को लिखित रूप में भी विचार दिये गये थे, उनमे से संवत्सरी विषयक विचार निम्नप्रकार थे—

"श्रमणसंघ की अखंडता के साथ गुजरात, सौराष्ट्र आदि समस्त स्थानकवासी समाज श्रमणसंघीय पद्धति अनुसार श्रमणसंघ मे सम्मिलित होने आदि प्रबलतर कारण के बिना अविधि पूर्वक बृहत्साधु सम्मेलन सादड़ी के सर्वानुमत के प्रस्ताव में फिलहाल फेरफार करना श्रमणसंघ की प्रतिष्ठा व समाज के लिये हितावह प्रतीत नहीं होता।

"श्रमणसंघ ने उदारता दिखाकर समस्त समाज की एकता के लिये प्रयत्न का जो संकेत किया, तदनुसार एकता के विषय में जितने प्रयत्न होने चाहिये, उतने हो गये या अवशेष रहे? यदि हो गये हों तो किन-किन की क्या विचारधारायें आईं? वे सारी विचारधारायें यहां भी आने की आवश्यकता है और यदि प्रयत्न पूरे नहीं हुए हों तो भरसक प्रयत्न करने की आवश्यकता है।"

'उपर्युक्त वक्तव्य पर से जनता समझ सकती है कि उपाचार्य श्रीजी महाराज के अपने क्या विचार थे? श्रमणसंघ की विधिवत् अखंडता को ध्यान मे रखते हुए इस सम्बन्ध में उनकी अपनी क्या धारणायें है? उस वक्तव्य के बाद भी स्थिति मे कोई नया परिवर्तन नहीं आया है और न परिवर्तन के योग्य कोई वैधानिक महत्त्वपूर्ण अत्यावश्यक प्रश्न ही उपस्थित हुआ है।

'सादड़ी मे बहुमतपक्ष ने उदारता दिखाकर अपनी पूर्व परम्परा छोड़ी थी तो अब ऐसा कोई प्रबल कारण सामने नहीं है कि उस उदारता की उपेक्षा कर पुनः पुरानी परम्परा पर आया जाये।

'संवत्सरी के विषय में भीनासर बृहत्साधुसम्मेलन ने जिस समिति की नियुक्ति की थी, उसको भी ऐसा अधिकार नहीं दिया गया था कि वह इस प्रश्न को निर्णय के लिये आचार्य को सौंप दे।

अतः भीनासर-सम्मेलन से नियुक्त समिति द्वारा प्रस्तावानुसार व्यवस्था के साथ निर्णय न होने से सादड़ी-सम्मेलन के प्रस्ताव

(भाद्रपद मे सवत्सरी करने) का पालन होना मैं वैधानिक समझता हूँ और उसी के अनुसार श्रमणसघ, श्रावकसघ सवत्सरी करे, यही अभीष्ट है।'

उपर्युक्तस्पष्टीकरण से यह भलीभाति जाना जा सकता है कि कान्फरन्स की समितियो का निर्णय विधानानुसार नही था और सादडी-सम्मेलन का सर्व-सम्मत मूल प्रस्ताव निर्विवाद ज्यो-का-त्यों रहता है तथा उसका पालन करना ही श्रमण-संगठन की दृष्टि से आवश्यक हो जाता है। इसी मे श्रमणसघ की प्रतिष्ठा और शोभा थी। लेकिन उक्त निर्णय मे भी परिवर्तन करने की अनधिकार चेष्टा करके कान्फरन्स ने श्रमणसघ के विघटन मे और तीव्रता ला दी।

शारीरिक अस्वस्थता : पूर्ववत विहार

आचार्य श्रीजी म. सा. का शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा नहीं था। एकान्तर की तपस्या चालू रहने पर भी स्वास्थ्य मे कुछ भी सुधार न होने और उत्तरोत्तर बढती जा रही कमजोरी से चतुर्विध सघ चिन्तित था। अतः उदयपुर श्रीसंघ के प्रमुख-प्रमुख श्रावको और सन्तों ने उदयपुर मे योग्य निदान कराके उपचार कराने की प्रार्थना की। लेकिन आचार्य श्रीजी म. सा. मनोबल के धनी थे और औषधोपचार की बजाय सयम, तप-साधना को स्वास्थ्यसुधार का अमोघ उपचार मानते थे। अतः उत्तर मे फरमाया कि अभी मैं तपस्या करके शारीरिक स्वास्थ्य सुधारना चाहता हूँ और औषधि-उपचार न कराकर पूर्ववत् एकान्तर तप चालू रखा।

उदयपुर से विहार कर जब आचार्य श्रीजी म. सा. ग्रामानुग्राम धर्मजागृति करते हुए चित्तौडगढ के आस-पास पधारे तब स्वास्थ्य मे और अधिक गिरावट आ गई। विहार-क्षेत्रो मे विश्राम का अवसर न मिलने से बुखार भी आने लगा। कमजोरी तो थी ही और बुखार आने से कमजोरी विशेष महसूस होने लगी।

चित्तौडगढ श्रीसघ के सदस्यो को जब यह समाचार ज्ञात हुए तो एक अनुभवी वैद्य को लेकर सेवा मे उपस्थित हुए। लेकिन

आचार्य श्रीजी म. सा. ने दवाई लेना-स्वीकार नही किया और उसी स्थिति मे धीरे-धीरे विहार करते हुए चित्तौड़गढ़ पधार गये । लेकिन स्थिति को देखते हुए यहा भी डाक्टरों को दिखाने के लिये प्रार्थना की और बहुत अधिक जोर देने पर देशी औषधि लेना स्वीकार कर लिया । किन्तु बिना निदान के औषधोपचार से कुछ लाभ नही हुआ ।

आगामी चातुर्मास का समय निकट आ रहा था । चातुर्मास-स्वीकृति के लिये मालवा के श्रीसंघों और विशेषतया जावरा श्रीसघ की ओर से बार-बार विनतियां हो रही थीं । अतः समयानुसार आगारों को रखते हुए आचार्य श्रीजी म. सा. ने स० २०१५ के चातुर्मास में जावरा विराजने की स्वीकृति फरमाई और शारीरिक स्थिति की पर-वाह न करते हुए चित्तौड़गढ से बेगू, सिंगोली की ओर विहार कर दिया ।

बेगूं आदि ग्रामों का स्पर्श करने के बाद जब सिंगोली में पदार्पण हुआ तो कमजोरी इतनी अधिक हो गई कि एक दिन शौचादि से निवृत्त होकर वापस गांव मे पधारने पर बहुत घबराहट बढ गई । शरीर में काफी शिथिलता आ गई । ऐसा प्रतीत होने लगा कि इस स्थिति मे चातुर्मास के निमित्त जावरा पदार्पण भी हो सकेगा या नही । सिंगोली श्रीसघ के सदस्यो ने अपने यहां ही विराजने और निरोग होने के बाद ही विहार करने की बार-बार विनती की । शारीरिक स्थिति और सिंगोली श्रीसंघ के अत्याग्रह को देखते हुए आचार्य श्रीजी म. सा. कुछ दिन सिंगोली विराजे और वही के डाक्टर को दिखाया । स्वास्थ्य स्थिति में साधारण-सा सुधार दिखाई देने पर थोड़ा-थोड़ा विहार चालू किया । घबराहट के कारण बीच-बीच में विश्राम करते हुये कंजार्डा आदि ग्रामो का स्पर्श करते हुए एक जगल मे पहुंचे । वहां एक मन्दिर बना हुआ था और पास में नाला बहता था । मन्दिर का पुजारी पूजा आदि करके सूर्यास्त होने के पहले-पहले गांव लौट जाता था । गांव मन्दिर से करीब ७ मील दूर था और रात्रि को नाले से जगली जानवर पानी पीने आते थे । मन्दिर भी जीर्ण-शीर्ण था और

कीड़े मकोडो, डास, मच्छर की अधिकता से रात्रिविश्राम-योग्य स्थान न दिखने से मन्दिर के बाहर वृक्षो के नीचे पड़ी शिला पर आचार्य श्रीजी म. सा. एव अन्य सन्तो ने विश्राम कर रात्रि व्यतीत की।

प्रात: काल होने पर आचार्य श्रीजी म. सा. आदि सन्त वहा से विहार कर कुकड़ेश्वर पधारे और रामपुरा, सजीत होते हुए आतरी गाव मे पदार्पण हुआ। यहा कुछ भाइयो मे वर्षों से आपसी मनमुटाव चल रहा था। आचार्य श्रीजी के सदुपदेश से दूर होने पर स्थानीय श्रीसघ और आस पास के क्षेत्रो मे हर्ष का वातावरण छा गया।

आतरी से विहार कर जब आचार्य श्रीजी म. सा महागढ, पीपल्यामडी, मदसौर आदि क्षेत्रो को धर्मदेशना से पवित्र बनाते हुए जावरा की ओर गमन कर रहे थे, तब जावरा श्रीसघ के कुछ सदस्य सेवा मे उपस्थित हुए और उन्होने आपश्री से निवेदन किया कि आपश्री का जावरा पदार्पण कब तक हो जायेगा। लेकिन आचार्य श्रीजी म. सा. को मुहूर्त आदि देखकर चातुर्मासार्थ नगरप्रवेश करना कभी भी इष्ट नही रहा था, अत: आपश्री ने फरमाया कि मेरे लिये सभी मुहूर्त अच्छे हैं। विहार करते हुए यथावसर जावरा पहुंचने के भाव हैं।

यथासमय आचार्य श्रीजी म. सा. का चातुर्मास हेतु जावरा मे पदार्पण हुआ। स्थानीय श्रावकसघ और आसपास के क्षेत्रो से आगत भाई-बहिनो ने नगर से ३-४ मील सामने जाकर अगवानी की। चातुर्मास के समय मे आपश्री के प्रवचन सुनने के लिये प्राय: सभी नागरिक उपस्थित होते थे। आपश्री की सरल तथा हृदयस्पर्शी वाणी ने श्रोताओ का हृदय इतना आकर्षित कर लिया कि दिनोदिन प्रवचन सुनने वालो की सख्या बढ़ती गई।

मध्याह्न व सायकाल तात्त्विक चर्चा वार्ता, शका-समाधान के समय राज्य-अधिकारी, विद्वान उपस्थित होते और आचार्य श्रीजी म. सा. की अनुभव भरी विवेचनाओ का लाभ उठाते थे।

जावरा पूर्व मे नवाबी राज्य था। वहा के नवाब विद्वानों का

आदर और साधु-सन्तों का सम्मान करने के लिये उत्सुक रहते थे। समय समय पर वे भी व्याख्यानों का लाभ लेने के लिये आते और आचार्य श्रीजी के प्रति अपनी श्रद्धा-भक्ति व्यक्त करते थे। आपश्री के व्याख्यान समाज, राष्ट्र, धर्म से सम्बन्धित विषयों पर होते थे। परिणाम यह हुआ कि बहुत-सी सामाजिक कुरीतियां समाज मे बंद हुई तथा कई एक सज्जनों ने व्रत-नियम ग्रहण किये।

इस प्रकार यह चातुर्मास आध्यात्मिक विकास की दृष्टि मे महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो रहा था और समाज एव श्रमणसंघ की व्यवस्था की दृष्टि से भी इस चातुर्मास काल मे कई एक महत्त्वपूर्ण कार्य हुए।

श्रमणसंघीय स्थिति और आचार्य श्रीजी का निवेदन

श्रमणसंघ को सबल बनाने एव शुद्ध सांस्कृतिक धरातल पर टिकाये रखने के लिये आचार्य श्रीजी द्वारा किये गये प्रयत्नों की गंभीरता को न समझकर समाज मे एक प्रकार की अनिश्चियात्मक स्थिति का निर्माण किया जा रहा था। श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स के प्रयत्न संगठन के उद्देश्य को सफल बनाने मे सहकारी नही हो सके थे। इसके लिये पहले बम्बई, लुधियाना व जयपुर आदि में कान्फरन्स की साधारण सभा की बैठकें भी हुईं और विभिन्न अधिकारी मुनिवरों के पास श्रावकों के शिष्टमंडल भी गये, लेकिन स्थिति जैसी की तैसी बनी रही। इस जटिलता को देखते हुए कान्फरन्स के तत्कालीन अध्यक्ष श्री विनयचन्दभाई ज्वेरी ने अपना निवेदन प्रकाशित करते हुए अध्यक्ष पद मे त्यागपत्र दे दिया। किन्तु समाज के सभी वर्गों के अनुरोध एवं श्रमणसंघीय समस्याओं के निराकरण मे अपना पूरा-पूरा सहयोग देने के आश्वासनों को ध्यान रखते हुए उन्होंने अपना त्यागपत्र वापस ले लिया।

इसके अनन्तर समस्याओं को सुलझाने के लिये पुनः प्रयत्न शुरू हुए और विभिन्न मुनिराजों की सेवा मे शिष्टमंडल भी भेजे गये। लेकिन खेद है कि शिष्टमंडलों को आश्वासन देने पर भी साधु-

सन्तो की पूर्ववत् प्रवृतियां चलती रही । इस स्थिति को लक्ष्य में रखते हुए आचार्य श्रीजी म. सा. ने १५-६-५८ को एक वक्तव्य दिया । वक्तव्य इस प्रकार है—

'श्रमणसघ की स्थापना से लेकर आज तक सत्य, न्याय, सिद्धान्त एवं श्रमणसघीय समाचारी आदि को लक्ष्य मे रखते हुए ज्ञान, दर्शन, चारित्र की अभिवृद्धि हेतु शुद्धिकरण सहित श्रमणसघ को दृढ वनाने की भावना से जैसा मुझे उपयुक्त जान पड़ा, तदनुसार यथाशक्ति कार्य करता रहा ।

'मगर कुछ समय से कतिपय विषयो को लेकर समाज में कुछ भ्रामक वातावरण परिलक्षित हो रहा है । ऐसे भ्रामक वातावरण को दूर करने के प्रयत्न किये गये और किये जा रहे हैं, पर खेद है कि वस्तुस्थिति को सही रूप मे न लेकर वातावरण को और भ्रामक वनाया जा रहा है । अतः वस्तुस्थिति के दिग्दर्शन पूर्वक अपना निवेदन सघ के सामने रख देना चाहता हूँ—

'१– भीनासर सम्मेलन मे सुत्तागमे विषयक निर्णय आचार्य श्रीजी म. (आत्मारामजी म. सा.) पर छोड़ा गया । उस प्रस्ताव की पक्तियां निम्नप्रकार हैं—

> 'प. मुनिश्री फूलचन्दजी म (पुप्फभिक्खु) द्वारा संपादित "सुत्तागमे" विषय मे निर्णय किया गया कि— सूत्रपाठ में पुष्टावलम्बन एव खास प्रमाण विना परिवर्तन करना इष्ट नहीं है । अतः वे अपने विचार आचार्य श्रीजी की सेवा मे भेज दे । फिर वे (आचार्य श्रीजी म.) जो निर्णय देगे, वह श्रमणसघ को स्वीकार होगा ।'

'पर आचार्य श्रीजी म. की तरफ से निर्णय आज दिन तक समाज के सामने नही आया ।

'२-- प्रधानमन्त्री व्याख्यानवाचस्पति श्री मदनलालजी म. श्रमणसंघ का कार्य सुचारू रूप से कर रहे थे, लेकिन आचार्य श्रीजी

म. व प्रधानमन्त्रीजी म. के बीच में पत्र-व्यवहार आदि के प्रसंग से कुछ ऐसा वातावरण बना, जिस पर प्रधानमन्त्रीजी म. ने प्रधानमन्त्री पद का त्यागपत्र आचार्य श्रीजी म. की सेवा में पेश कर दिया।

'इस मामले को निपटाने के लिये कान्फ्रेंस की ओर से भी प्रयत्न हुए और प्रधानमन्त्रीजी म. ने कान्फ्रेंस को स्पष्ट लिखवा दिया था कि—

'मैं अब तक मौन हूँ तब तक मौन ही रहूँगा, जब तक आचार्य श्रीजी से मुझे सीधा समाधान नहीं होता।'

'यह समस्या भी अभी तक अस्पष्ट ही बनी हुई है।

'३—भीनासर-सम्मेलन मे ध्वनियन्त्र-विषयक जो कुछ हुआ, वह प्रस्ताव के रूप में विद्यमान है। लेकिन अपवाद क्या है? प्रायश्चित्त क्या लेना? और स्वच्छन्दता क्या है? इन तीनों बातो का निर्णय भीनासर-सम्मेलन मे नही किया गया। इस विषयक स्पष्ट घोषणा ता० १-८-५६ को आचार्य श्रीजी म. की तरफ से हो चुकी थी। इसके पश्चात तीनों शब्दो के विषय में आचार्य श्री म. और मेरे (उपाचार्य श्रीजी म. के) संयुक्त निर्णय की बात सामने आई और वह विषय दोनों के ऊपर छोड दिया गया। लेकिन यह विषय निम्न पंक्तियों-अनुसार दोनों मे से एक के ऊपर ही आ गया। इस सिलसिले मे एक पत्र की ये पंक्तियां इस प्रकार हैं—

'लाउडस्पीकर का पूरा निर्णय आचार्यश्री ने उपाचार्यश्री को सौंपा है। उपाचार्यश्री उपाध्यायमंडल और मन्त्रिमण्डल के परामर्श से जो कुछ निर्णय करेंगे आचार्यश्री को स्वीकार होगा।'

'इसका भी ध्यान रखते हुए मैंने व्यवस्था करने की दृष्टि से ध्वनियन्त्र के विषय को हाथ में लिया है और जो प्रयत्न हुए, उसके परिणामस्वरूप अधिकारी मुनियों के अभिप्राय पूर्वक जो स्थिति थी वह 'ध्वनियन्त्र विषयक सूचना' पत्र के रूप में ता० १५ अक्टूबर १९५८ को सभी अधिकारी मुनियो के पास भिजवा दी। इसके बाद इस विषय

मे किसी को कुछ कहने का अवकाश ही नही रह जाता । तथापि आचार्य श्रीजी म. की तरफ से ता० १०-१२-५७ का पत्र देहली कान्फ्रेंम को पहुंचा । जिसमे आचार्य श्रीजी म ने यन्त्रविपयक सूचना-पत्र पर असहमति प्रकट की और अवैधानिक बतलाया। जिसकी नकल कान्फ्रेंम आफिस से यहा आई । उसका उत्तर ता० २५-१२ ५७ को दिलाया गया । इस बीच ता० १६-१२-५७ का आचार्य श्रीजी म. की तरफ से सोधा भी पत्र आया । उसका उत्तर ता० २१-१२ ५७ को लिखाते हुए आचार्य श्रीजी म. को यह अर्ज करवाई कि—

'ध्वनियन्त्र विषयक सूचनापत्र में आचार्य श्रीजी म. को कौनसी पंक्ति अवधानिक मालूम देती है ? लिखवाने की कृपा करावें, ताकि उस विषय मे लिखवाया जा सके ।'

'इसके पश्चात भी उस विषय की तरफ कई वक्त आचार्य श्रीजी म. का ध्यान आकर्षित किया गया, पर आज दिन तक उत्तर नही आया और आचार्य श्रीजी म. ने ध्वनियन्त्र विपयक सूचनापत्र पर जो असहमति प्रकट की तथा अवैधानिक बतलाया, जिसके परिणाम-स्वरूप ध्वनियन्त्र के प्रयोगकर्ताओ मे से कई मुनिवरो ने प्रायश्चित्त नही लिया, जो कि श्रमणसघ की व्यवस्थानुसार प्रायश्चित्त हर हालत मे लेना अनिवार्य था । पर प्रायश्चित्त नही लेने से सतवर्ग के साभो-गिक सम्बन्ध मे बाधा आई, जो प्रयत्न करने पर भी आज दिन तक ठीक नही हो पाई ।

४– पाली-प्रकरण आदि की घटनायें भी समाज के सामने आई, तब पता चला कि कई व्यक्तियो के सयम विघातक पत्र-व्यवहार लम्बे अर्से से चालू हैं । वे पत्र सहसा पाली-काड मे पकडे गये, जिससे जनमानस मे अत्यधिक दूषित वायुमडल हो गया और आवाज आ रही थी कि ऐसे व्यक्ति साधुवेश के योग्य नही रहते आदि काफी विक्षुब्धता का वातावरण चल रहा था । अन्य मतावलबियो मे हसी होने का प्रसग आ रहा था और शिथिलाचार के विषय को हाथ मे लेने के

लिये कान्फ्रेंस के अधिकारियो के भी पत्र आ रहे थे। उनमें एक पत्र में ता. १४-१-५७ को श्री श्वे. स्था. जैन कान्फ्रेंस के भूतपूर्व अध्यक्ष स्वर्गीय श्री विनयचन्दभाई ने लिखा था कि—

'आप आज श्रमणसंघ के उपाचार्य हैं और आचार्य की भी सर्व सत्ता आपके पास है। इस हालत में अगर भ्रष्टाचार न रोकोगे तो श्रावकसंघ तो अपना कार्य करेगा।'

'इधर संगठन मे कुछ विघटन का वातावरण भी परिलक्षित हो रहा था, तब यह मामला मेरे पास पहुंचा। आचार्य श्रीजी म. तथा कतिपय अधिकारी मुनियो ने भी शिथिलाचार के विषय को निपटाने के लिये कहलवाया। इस कथन पर भी ध्यान देकर मैंने इस विषय की छानबीन की और समग्र स्थिति का अध्ययन कर शिथिलाचारियों के विषय में फैसले दिये और जिनके साथ श्रमणोचित व्यवहार विच्छेद किया गया, उनकी सूचना ता. ५-१-५७ के पत्र द्वारा कान्फ्रेंस के मार्फत सभी अधिकारी मुनियों के पास पहुंचवाने के लिये भिजवा दी। इसके उत्तर मे कान्फ्रेंस का भी यहां के निर्देशानुसार उक्त सूचना अधिकारी मुनियो के पास भेजने का पत्र आ गया।

'इस प्रकार शुद्धिकरण की व्यवस्था चल रही थी कि अजमेर मेरवाड़ा तथा उसके आसपास के कुछ क्षेत्रों में रूपचन्दजी आदि विषयक भ्रामक वातावरण कर्णगोचर होने लगा। इस पर विचार हुआ कि समाज इससे सावधान रहे और भ्रामक वातावरण और न फैले, इसके लिये रूपचन्दजी, लछमाजी, नगीनाजी आदि व्यक्तियों के विषय में अजमेर में दिये गये फैसले को (जिस पर आचार्य श्रीजी म. भी ता. १४-१-५७ को हर्ष व्यक्त फरमा चुके थे) मद्देनजर रखते हुए पुनः जो सार्वी सूचना की वह भी अधिकारी मुनिवरों एवं समाज के प्रमुख व्यक्तियों द्वारा समाज के पास पहुंचाने के लिये कान्फ्रेंस के पास भिजवा दी। इसके पूर्व आचार्य श्रीजी म. की सेवा में भी भिजवा दी गई थी।

इसके बाद लुधियाना से आचार्य श्रीजी म. की सेवा में की

गई व्यवस्था की उपेक्षा कर शुद्धिकरण का पालन नही करने मे प्रयत्नशील व्यक्तियों के द्वारा उत्पन्न किये गये वातावरण मे रस लेते हुए प्रतीत हो रहे हैं, जिससे ऐसे व्यक्तियो को प्रोत्साहन मिल रहा है। इस प्रकार एक के बाद एक परिस्थिति उत्पन्न होते रहना शोभास्पद नही है।

'मैंने समाजसेवक के नाते श्रमण संगठन को शुद्धिकरण पूर्वक टिकाये रखने के लिये मेरी बुद्धि अनुसार वस्तु स्थिति को समझकर जो कुछ भी बन पड़ा, किया। परन्तु उसमें कतिपय व्यक्तियो की तरफ से सहयोग की अपेक्षा बाधायें अधिक सामने लाई गईं और अब भी अपेक्षित सहयोग का अभाव भी सामने आ रहा है। अस्तु।

'समाज का कार्य सभी प्रमुख व्यक्तियों के हार्दिक सहयोग पर विशेष अवलंबित रहता है। इसमे कौन किस कार्य मे कितना सहयोग प्रदान कर रहे हैं, यह समाज के सामने है। शिथिलाचार और वह भी अनैतिक जीवन स्वरूप जो साधु-संस्था पर एक कलंक है, उसमे व सैद्धान्तिक विषय मे गोलमाल की स्थिति सहन नही की जा सकती। अत: मैं गोलमाल की स्थिति में उलझे रहना पसंद नही करता।

'आज समाज के कुछ जिम्मेदार व्यक्ति भी हर बात मे गोलमाल करना चाहते हैं और उनकी इच्छानुसार कार्य न होने पर वे संघ तोड़ने की आवाज उठाने लग जाते हैं।

'इतना ही नही आचार्य श्रीजी म. भी निर्णीत मामलो को उलझाने वाले व्यक्तियो की बातो में आकर यहां से की गई व्यवस्था के प्रतिकूल अध्यादेश तक निकाल देते हैं, जिसके परिणामस्वरूप बड़े परिश्रम के बने बनाये संगठन में विभेद हो जाता है।

'ऐसी परिस्थिति मे फिलहाल यह निवेदन करना आवश्यक हो गया है कि जो श्रमणवर्ग शास्त्रीय एवं श्रमणसघीय समाचारी का तथा उसके सरक्षणार्थ यहा से की गई व्यवस्था का पालन करेगा, उसी श्रमणवर्ग के साथ श्रमणसघीय साभोगिक व्यवहार आदि रह सकेगा।'

सर्वप्रथम उक्त निवेदन को मुनिवरो तथा कान्फरन्स के पास भिज-

चाया गया था। परन्तु जब किसी ने भी इस वक्तव्य पर ध्यान न दिया तो चतुर्विध संघ को श्रमणसंघीय समस्याओं के सम्बन्ध में आचार्य श्रीजी म. सा. के प्रयत्नों और सही स्थिति से अवगत कराने के लिये जावरा श्रीसंघ ने वक्तव्य को मुद्रित करवाकर यथास्थान सभी श्रीसंघों को भेज दिया गया।

निवेदन की प्रतिक्रिया

इस निवेदन के प्रकाशित होने से श्रमणसंघ की वर्तमान स्थिति, आचार्य श्रीजी के दृष्टिकोण एवं संघ को निर्बल बनाने वाले कार्यों के प्रति श्रमणसंघीय अधिकारी मुनिवरों के कार्यकलापों का वास्तविक चित्रण समाज के समक्ष आ चुका था। अभी तक समाज अनुमानित आधारों पर ही श्रमणसंघ की स्थिति का मूल्यांकन करती रही थी, लेकिन निवेदन से उसके अनुमान सुदृढ़ हुए। संघ-संगठन के लिये ऊपरी तौर पर उपाय करने वाले समाज के नेताओं को भी अपनी स्थिति का आभास हुआ। उनके द्वारा अब वास्तविकता को छिपाना संभव नहीं रहा था और न वे ऐसा कोई कारण बतला सकते थे, जिससे समाज को अधिक समय तक भुलावे में रखा जा सके। अतः उससे उबरने के लिये उनके सामने सिर्फ एक ही रास्ता रह गया था कि वे अभी तक की स्थिति और उसके लिये किये गये कार्यों की जानकारी समाज के सामने रख दें।

इस बात को ध्यान में रखते हुए आचार्य श्रीजी ने समस्याओं के समाधान के बारे में विचार-विमर्श करने के लिये श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स की साधारण सभा का अधिवेशन जावरा में दि. १६-१०-५८ को किया गया। इस अधिवेशन का विशेष महत्त्व था कि यदि स्थिति की गम्भीरता को न समझकर पूर्ववत् काम चलता रहा तो श्रमणसंघ का नाम शेष रह जायेगा। अधिवेशन के समक्ष कान्फ्रेन्स के नेताओं ने संगठन को निर्बल बनाने वाले उपर्युक्त प्रश्नों के बारे में यथार्थ स्थिति समझने में पूरा मनोयोग लगाया और आचार्य

श्री गणेशलालजी म. सा. से भी चर्चा-वार्ता की।

चर्चा मे भाग लेने वाले भूतपूर्व बम्बई धारासभा के अध्यक्ष श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया, श्री आनन्दराजजी सुराणा, श्री जवाहरलालजी मुणोत आदि कान्फरन्स के प्रमुख अग्रणी थे। उन्होंने आचार्य श्रीजी म. सा. से प्रार्थना की कि श्रमणसघ को सुदृढ, स्थायी बनाने के लिए मार्ग-दर्शन देने की कृपा करें। इस पर आचार्य श्रीजी म. सा. ने फरमाया कि मैंने श्रमणसघ को ज्ञान दर्शन-चारित्र की सुरक्षा के साथ सुदृढ, स्थायी बनाने के लिए यथाशक्ति प्रयास किया और कर रहा हूँ। लेकिन अपेक्षित सहयोग के अभाव मे उस प्रयास में बाधा उपस्थित हो रही है। एतदर्थ समाज के प्रमुख वर्ग को इस बात की सावधानी दिलाने की दृष्टि से भी दि. १५-६-५८ को निवेदन समाज के सामने रख दिया। समाज के आप प्रमुख हैं अतः इसका आप भलीभाति अवलोकन करें और सम्बन्धित पत्र-व्यवहार भी आप देखे। उसमे तटस्थ दृष्टि से आप चिन्तन करके बतावे कि मैंने जो प्रयास किये हैं, उनमे कोई त्रुटि रही हो तो उसका परिमार्जन मैं पहले करने को तैयार हूँ और यदि आपको त्रुटि मालूम न हो और सम्बन्धित श्रमणवर्ग की त्रुटि मालूम होती हो तो उस श्रमणवर्ग को विनय पूर्वक निष्पक्ष दृष्टि से कुछ कहें और त्रुटि का परिमार्जन करायें, जिससे श्रमणसघ की सुरक्षा ज्ञान-दर्शन-चारित्र की भूमिका पर भलीभांति हो सके। यह कार्य सबके हार्दिक सहयोग पर अवलम्बित है। अत आप पहले निवेदन और उससे सम्बन्धित प्रमाण भलीभाति देख लें।

तदनन्तर श्रावक समाज के उन प्रमुख कर्णधारों ने श्रमणसघ में व्याप्त शिथिलाचार सम्बन्धी, ध्वनियन्त्र-विषयक, सुत्तागमे आदि जटिल समस्या विषयक पत्र व्यवहार, आचार्यश्री आत्मारामजी म. सा. से लेकर श्रमणसघ के अधिकारी व प्रमुख मुनिवरो के द्वारा समय-समय पर दिलवाये गये पत्र और पत्रस्थ विषयो को एव शास्त्रीय दृष्टिकोण को, श्रमणसघीय नियमों को ध्यान मे रखकर आचार्यश्री गणेशलालजी

म. सा. के द्वारा की गई व्यवस्था आदि विषयक पत्र अवलोकन किये और अवलोकन करने के पश्चात् वे जिस निष्कर्ष पर पहुंचे उसको आचार्यश्री गणेशलालजी म. सा. के समक्ष प्रस्तुत किया और अर्ज की कि हमने सभी दृष्टि से पत्रव्यवहार का भलीभांति अवलोकन किया और समझ पाये है कि यहां कोई त्रुटि नहीं है। जहा त्रुटि है वहा हम प्रयास करना चाहते है, इसलिए हमको कुछ समय मिलना चाहिए और कुछ पत्रो की प्रतिलिपिया भी हम चाहते हैं।

इस पर आचार्यश्री गणेशलालजी म. सा. ने फरमाया कि आप मुझसे समय ले सकते हैं और ज्ञान-दर्शन-चारित्र की सुरक्षा के साथ सगठन के प्रयास के लिए जिन भी पत्रो की आप प्रतिलिपियां चाहते हों, ले लीजिये। पत्रो की प्रतिलिपि लेने के बाद उन्होंने कहा कि आचार्य श्री आत्मारामजी म सा को तो सन्मान की दृष्टि से पद दिया गया है, उन्होंने बीच ही मे ऐसी बातें क्यो की? एतद्विषयक हम यहा कुछ निर्णय भी करें तो उपयुक्त नही रहेगा। लुधियाना जाकर फिर कुछ करें तो ठीक रहेगा।

आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. भी यही चाहते थे कि श्रमणसस्कृति की सुरक्षा के लिये चतुर्विध सघ को अपनी जिम्मेदारी समझना चाहिये। स्थिति की गम्भीरता को समझते हुए अधिवेशन मे एक प्रस्ताव पारित किया गया। जिसमे उल्लेख था कि मन्त्री मुनिश्री मिश्रीमलजी म के शिष्य के लिये जो फैसला उपाचार्य श्रीजी म. ने फरमाया है, उसके लिये आचार्य श्रीजी म. ने हर्ष प्रकट किया व मन्त्री मुनिश्री मिश्रीमलजी म. व श्री रूपचन्दजी ने भी सहर्ष स्वीकार किया। इसके लिये उससे विपरीत जाने का प्रश्न नहीं रहता। तथापि आचार्य श्री आत्मारामजी म. सा. कागजात देखना चाहते हैं तो वे कागजात कान्फ्रेन्स की कमेटी उनके पास जाकर बतला दे आदि।

इस प्रस्ताव के परिपालनार्थ पूर्व समाज की भावनाओं के समाधानार्थ श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया के नेतृत्व में एक शिष्टमंडल

का गठन हुआ और जिन पत्रों की प्रतिलिपि ली तथा जिस स्थिति को उन्होंने समझा, उसका कमेटी समाप्त होने के बाद लगभग एक महीने तक अध्ययन किया और सम्बन्धित व्यक्तियों से पूछताछ व जाच-पडताल भी की। अनन्तर यह सोचा कि श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया की वृद्धावस्था और स्वास्थ्य को देखते हुए बार-बार उनकी यात्रा होना सभव नही है और उनके बिना शिष्टमडल प्रभावहीन रहेगा। इसलिये भूतकालीन समस्याओ को सुलझाने के साथ-साथ भविष्य के विषय मे भी सुव्यवस्थित स्थिति बनाने के लिए शिष्टमडल सबसे पहले आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. की सेवा में उपस्थित होकर भविष्य के विषय मे मार्गदर्शन ले, ताकि सभी स्थिति एक ही बार के प्रयत्न से स्पष्ट हो जाये।

इस विचार को ध्यान मे रखकर शिष्टमण्डल दि. २७-११-५८ को जावरा आचार्य श्रीजी की सेवा मे उपस्थित हुआ और उसने दो-दिन तक सारे तथ्यो का पूर्णरूपेण गहराई से अध्ययन किया। प्रायः सब समस्याओ का हल और मार्गदर्शन आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. से प्राप्त किया लेकिन एकाध विषय मे कुछ बात अटक-सी गई थी। इस पर शिष्टमडल के सदस्य सोचने लगे कि इस छोटी समस्या का भी समाधान हमको यहा पर सतोषजनक तरीके से प्राप्त हो जाता है तो शिष्टमण्डल उत्साह के साथ आगे बढ़ सकता है और यदि ऐसा नही बनता है तो जरा-सी कमी के कारण हमारी स्थिति अधूरी रह जाती है। इस स्थिति मे फिलहाल शिष्टमण्डल अन्यत्र नही जाकर यहा से ही वापस लौटना चाहता है। ऐसा सोचकर लुधियाना के लिए गये टिकटो को वापस करने के लिए किसी व्यक्ति को स्टेशन भेज दिया। इसी बीच आचाय श्री गणेशलालजी म. सा ने फरमाया कि आप लोग यहीं पर ज्यादा जोर लगाते हो, लेकिन कोई बात नही। यदि मूल महाव्रतो मे और शास्त्रीय मौलिक स्थिति मे किसी भी प्रकार की मोड न आये तो इस स्थिति के साथ मैं अपनी सप्रदाय की परम्परा को भी

सुसंगठन के हक में गौण करने को तैयार हूँ। आचार्य श्रीजी म. सा. के इतना फरमाते ही शिष्टमण्डल के सदस्यों मे उत्साह आ गया और जयनाद करने लगा तथा कहने लगा कि हमे यहा पर पूरी सफलता मिली है, अब हम यहा से लुधियाना जाना चाहते है। फिर हम सबंधित अन्य स्थानो पर जायेंगे और श्रमणसघीय स्थिति को सुदृढ करने भरसक प्रयत्न करेंगे आदि भाव व्यक्त करके शिष्टमण्डल ने मांगलिक पाठ सुनकर दि. २९-११-५८ को लुधियाना के लिये प्रस्थान किया। वहा शिष्टमंडल दि. १-१२-५८ को पहुंचा और उसी दिन अपना वक्तव्य दे दिया कि शिष्टमडल असफल रहा। किन्तु शिष्टमडल की असफलता के बारे मे किसी प्रकार की जानकारी नही दी गई कि अमुक कारण से शिष्टमडल असफल रहा। इसके बारे मे समाज ने स्पष्टीकरण की माग भी की लेकिन नेतागण मौन ही रहे और आज तक भी अपनी असफलता के कारणो को बताने मे मौन धारण किये हुए हैं। इस मौन का परिणाम यह हुआ कि श्रमणसघ की स्थिति सुदृढ होने की अपेक्षा दिनोदिन निर्बल बनती गई और शनैः-शनैः नाममात्र का सघ रह गया।

असफलता के सूत्रधार

शिष्टमडल की लुधियाना मे वार्ता यद्यपि सीमित थी। जिन बातो के बारे मे बातचीत करनी थी, वे सब आचार्य श्री आत्मारामजी म. सा. के पास पहले ही पत्रों द्वारा भेजी जा चुकी थी। शिष्टमडल को तो सिर्फ इतना बतलाना था कि आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. द्वारा की गई कार्यवाई संघ सुदृढता की दृष्टि से योग्य और आवश्यक थी। इसके बारे में कोई गुप्त मंत्रणा करने का भी अवकाश नही था, जिसे समाज के समक्ष प्रगट करने मे विवशता प्रतीत होती हो।

फिर भी वार्ता को असफल बनाने में मुख्य सूत्रधार लुधियाना मे आचार्य श्री आत्मारामजी म. सा. के पास रहने वाले श्री ज्ञानमुनिजी थे। उक्त मुनि ही निमित्त बन आचार्य श्री आत्मारामजी म सा. के

पत्रो को पढने-पढ़ाने का कार्य करते थे। पाली शिथिलाचार काड मे ज्ञानमुनिजी भी सम्बन्धित थे और ध्वनिवर्धक यन्त्र में भी बोल चुके थे। शिष्टमडल आचार्य श्रीजी से उन पत्रों के बारे में वार्तालाप करना चाहता था जिन्हे ज्ञानमुनिजी अपने अनाचार-प्रकाशन की दृष्टि से अच्छा नही मानते थे। अतः उन्होने वार्ता आगे चलने ही नही दी और यह कहकर इन्कार करवा दिया कि असल पत्र साथ क्यो नही लाये ? इस पर श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया ने कहा कि असली पत्रों मे और इनमे कोई अन्तर नहीं है। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि यह उन्ही पत्रो की प्रतिलिपि हैं। लेकिन ज्ञानमुनिजी तो इस बात को आगे बढने ही नही देते थे और ऐसे शब्दो का प्रयोग किया जिससे फिरोदियाजी आदि शिष्टमडल के सदस्यो को मानसिक ग्लानि हुई और शिष्टमडल का अन्यत्र जाना रोक करके सब अपने-अपने स्थान लौट गये।

यदि शिष्टमडल के सज्जन इस अनुचित बात का विरोध कर, व्यक्तिविशेष की उपेक्षा कर दृढता का परिचय देते और तुष्टिकरण की नीति न अपनाई जाती तो यह निश्चित है कि श्रमणसघ की जटिल समस्याओ का समाधान होकर अनुशासन को बल मिलता। लेकिन शिष्ट-मडल की इस असफलता का परिणाम यह हुआ कि ध्वनिवर्धक-यन्त्र प्रयोग तथा पालीकाड के कारण श्रमणवर्ग के परस्पर टूटे हुए सभोगो की दरार और चौडी होती गई।

इस स्थिति के पश्चात्

शिष्टमडल की असफलता चतुर्विध सघ को ज्ञात हो चुकी थी और दिनोदिन श्रमणसघ की स्थिति मे बिगाड़ होता जा रहा था। इसके बारे मे श्रमणसपर्क समिति के सयोजक श्री कानमलजी नाहटा ने रूपचन्दजी के विषय मे एक विस्तृत स्पष्टीकरण श्री अ. भा. श्वे. स्था. जैन कान्फरन्स को प्रकाशनार्थ भेजा। जिसमे पालीकाड से सबधित साधु-साध्वियो के बारे मे अभी तक हुई कार्रवाई एवं श्रमणसंघ में आचार्य, उपाचार्य की वैधानिक स्थिति आदि का सविगत वर्णन किया

गया था। लेकिन खेद है कि स्पष्टीकरण के तथ्यपूर्ण और युक्तियुक्त होने पर भी उसे प्रकाशित नही किया गया। यद्यपि श्री आनन्दऋषिजी म. ने भी इस स्थिति के ज्ञात होने पर अपना मतव्य प्रकट करते हुए बतलाया था कि उपाचार्य श्रीजी का मुनि रूपचन्दजी आदि के बारे में दिया गया निर्णय युक्तियुक्त एव सयमपालन की भूमिका बनाने की दृष्टि से आवश्यक है।

शिष्टमडल को पालीकाड की पूरी जानकारी थी तथा श्रमण-सपर्क-समिति के सयोजक ने भी अन्य तथ्यो को समाज के सामने रखने का प्रयत्न किया एव श्रमणसघ के मूर्धन्य सन्त पालीकांड के लिये आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. के निर्णय से सहमत थे। फिर भी व्यक्तिगत दुराग्रह के समक्ष चतुर्विध संघ के प्रमुख अपना साहस नही बतला सके और अपने कर्तव्य-पालन से च्युत हुए तथा श्रमणसंघ का आदर्श सदा सदा के लिये समाप्त हो गया।

आचार्य श्रीजी की भावना का दिग्दर्शन

आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. ने सं० २००९ के सादड़ी-सम्मेलन के अवसर पर उपस्थित मुनिवरो के निवेदन, अनुरोध और आग्रह को लक्ष्य में लेते हुए श्रमणसंघ का नेतृत्व अगीकार किया था। उनकी इच्छा नही थी कि पद प्राप्त कर अपने प्रभाव का प्रदर्शन करे। लेकिन यह भावना अवश्य थी कि श्रमण भगवान महावीर की श्रमण-परम्परा अपने आदर्श, साधना और मार्ग को शुद्ध और शास्त्रीय मर्यादा-नुरूप बनाये। उन्होने श्रमणसघ के महत्व को भलीभांति समझा था, लेकिन जैसे-तैसे श्रमणसघ को टिकाये रखने के पक्ष मे नही थे। वे चाहते थे कि श्रमणसघ की नीव ठोस आधार पर हो और इसी लक्ष्य को ध्यान मे रखते हुए उन्होंने सदैव शास्त्रसम्मत आज्ञाओं के पालन करने और समस्याओं के बारे में सही दृष्टिकोण अपनाने पर भार दिया था।

शास्त्र-साक्षी के समक्ष उन्होंने न तो अपने के प्रति पक्षपात दिखलाया और न दूसरो को प्रभावित करने की चेष्टा ही की थी।

उन्हे जो सत्य, तथ्य, हित और पथ्य प्रतीत हुआ, उसके अनुसार कार्र-वाई की। यही कारण है कि आज आचार्य श्रीजी द्वारा दी गई व्यवस्थाओ के विरुद्ध किसी को बोलने की गुजाइश नही है। सभी उनके कार्यो को सही मानते है और पूर्ण श्रद्धा भक्ति रखते हैं।

यद्यपि श्रमणसघ के सबल समर्थक आचार्य श्रीजी आज हमारे समक्ष नही हैं। लेकिन उनके आदर्श, उनके विचार, उनके आचार-विचार की परम्परा का प्रकाश विद्यमान है और आशा है कि उनकी भावना को बलवती बनाने के लिये चतुर्विध सघ के प्रयत्न यथार्थ भूमिका पर प्रारम्भ होगे।

सांध्यवेला

स्थिरावास के लिये श्रीसंघों की विनती

आचार्य श्रीजी के जीवन की संध्यावेला के प्रारम्भ होने के लिये समय की कोई लक्ष्मणरेखा नहीं खींची जा सकती है। लेकिन पूर्व में हुई भयंकर मूत्रकृच्छ्र रोग की वेदना से शारीरिक स्थिति दिन-प्रतिदिन निर्बल होती जा रही थी। अब तो शारीरिक स्थिति ऐसी हो चुकी थी कि किसी एक शांत, संयमसाधना में सहायक और उत्तम जलवायु वाले स्थान में स्थिरावास होना उपयुक्त है।

अलवर में हुई शल्य-चिकित्सा के पश्चात आचार्य श्रीजी उत्तरोत्तर अशक्त होते गये, लेकिन अपने संयमित भोजनपान और आत्मबल की प्रबलता के कारण ही दूर-दूर के क्षेत्रों मे विहार करने में समर्थ हो सके थे। रोग के साथ वृद्धावस्था और वृद्धावस्था के कारण रोग का प्रबल वेग विहार-क्रिया में भी रुकावट डालने लगा था।

आपश्री मुनि-जीवन के प्रारम्भिक समय से ही जन-जन के श्रद्धेय और संयम के सजग प्रहरी बन चुके थे। मेवाड़, मारवाड़, मालवा, महाराष्ट्र, पूर्वी उत्तरप्रदेश और दिल्ली प्रान्त को आपने अपनी उत्कृष्ट प्रतिभा से प्रभावित तो किया ही था किन्तु साथ ही गली के रजकणों में आपने अपनी विद्वत्ता, चारित्रशुद्धि और दूरदर्शिता की अमर छाप लगाई थी। जो आज भी उन प्रदेशों के निवासियों द्वारा स्मरणीय है। यदि समूचे धार्मिक इतिहास पर दृष्टिपात किया जाये तो ऐसे महापुरुष उंगलियों पर गिनने योग्य मिलेंगे जो अपने आचार-विचार की शुद्धि एवं विद्वत्ता से जनसाधारण को प्रभावित कर सदा-सदा के लिये उनके श्रद्धेय बने हों।

आचार्य श्रीजी की शारीरिक स्थिति को देखकर अनेक क्षेत्रों के श्रीसंघों की भावना थी कि इस समय आपश्री हमारे क्षेत्र में

स्थिरावास कर हमे सेवा का अवसर दें। विशेषकर रतलाम, बीकानेर, ब्यावर, उदयपुर आदि प्रमुख श्रीसंघ अपने-अपने क्षेत्र मे पदार्पण करने के लिये वारम्बार विनती कर रहे थे।

यद्यपि जावरा चातुर्मास होने के पूर्व से ही रोग-स्थिति दिनों-दिन चिन्तनीय बनती जा रही थी, लेकिन सुदृढ मनोबल के धनी होने से आपश्री चातुर्मास के निमित्त यथासमय जावरा पधार गये थे। लेकिन चातुर्मासकाल मे रोग ने उग्र रूप धारण कर लिया।

यहा पर भी सन्तो और श्रावको ने प्रार्थना की कि आपश्री के शरीर मे अशक्ति आ रही है, अतः यहा पर स्थायीरूप से उपचार करा लिया जाये। सुयोग्य चिकित्सको का सुयोग भी यहां प्राप्त है। लेकिन आचार्य श्रीजी म. सा. ने पुनः यही फरमाया कि मैं प्राकृतिक उपचार करना चाहता हूँ और उसमें यदि सफलता मिली तो ठीक है, अन्यथा बाद में किसी चिकित्सक की राय ले ली जाये। तब संघ ने विनती की कि आपश्री ने प्राकृतिक तौर पर तो बहुत कुछ कर लिया है, लेकिन अब हमारी बात पर भी गौर फरमाया जाये।

सघ के वारम्वार निवेदन करने पर भी आपश्री ने अभी विशेष ध्यान न देकर एकान्तर तप चालू रखा। इस स्थिति मे भी व्याख्यान देना, सत-सतियो को वाचणी देना, जिज्ञासुओ के प्रश्नो का उत्तर देना, आदि क्रम पूर्ववत् चलता रहता था। व्याख्यान-श्रवण आदि प्रसगो पर स्थानीय और आगत सज्जनो की उपस्थिति आशातीत हो जाती थी। एक दिन मध्यप्रदेश के मुख्यमन्त्री डाक्टर कैलाशनाथ काटजू भी व्याख्यान मे उपस्थित हुए और व्याख्यान सुना। अनन्तर मुख्यमन्त्री महोदय ने भी अपना वक्तव्य दिया और अपनी भक्ति प्रदर्शित की। जनता धार्मिक लाभ प्राप्त कर रही थी, लेकिन शारीरिकबल शिथिल होता जा रहा है। यहा तक स्थिति आ गई कि व्याख्यान भी बन्द करना पडा। डाक्टर श्री गोयल एव डाक्टर श्री दिनकर ने आचार्यश्री का निरीक्षण किया और बुखार आने के कारण का पता लगाने की चेष्टा

की, किन्तु ज्ञात नहीं हो रहा था।

यह समाचार डाक्टर श्री चोरडिया यक्ष्मारोग विशेषज्ञ को मालूम हुए। उस समय वे इन्दौर थे और डाक्टर श्री मुकर्जी भी इन्दौर थे। डाक्टर श्री मुकर्जी मध्यप्रदेश के प्रसिद्ध डाक्टरों में से हैं। इन दोनों डाक्टरों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध था। आप दोनों डाक्टर भंडारी के साथ आचार्य श्रीजी की सेवा में उपस्थित हुए और उन्होंने परीक्षण कर आचार्यश्री के बुखार आने के कारण का पता लगाने की चेष्टा की। निश्चयात्मकरूप से पता तो नहीं लग पाया, फिर भी उन्होंने अपनी दृष्टि से कुछ औषधियां स्थानीय डाक्टर गोयल आदि को बतलाईं। जिससे बुखार उतर गया और साथ ही यह भी निर्णय किया कि आचार्यश्री के हृदयरोग है, अतः किसी भी प्रकार का श्रम न किया जाये। आचार्यश्री ने जैसा कहा उससे भी अधिक पथ्य का ख्याल रखा, फलतः कमजोरी में अत्यधिक वृद्धि हो गई। उठना-बैठना भी मुश्किल हो गया। बुखार भी कुछ समय के लिए कम हुआ। किन्तु औषधियों का असर हटते ही पुनः पूर्ववत् बुखार आने लगा।

चातुर्मास-समाप्ति का समय आ गया था। आचार्य श्रीजी म. सा. विहार करने की सोचने लगे। डाक्टरों ने दृढ़ता के साथ मना कर दिया कि इस कमजोरी और बीमारी की स्थिति में आपका विहार होना कतई उपयुक्त नहीं है। रतलाम संघ का आग्रह था कि आचार्य श्रीजी रतलाम पधारकर वहां विराजें। आचार्य श्रीजी भी चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् धीरे-धीरे विहार करने की सोच रहे थे। इसी बीच सुप्रसिद्ध हृदयरोग विशेषज्ञ डाक्टर श्री भंसाली बम्बई जो श्रीमती केसरबहिन जौहरी धर्मपत्नी सेठ अमृतलालजी के सम्बन्धी थे, को आचार्य श्रीजी की स्वास्थ्य-स्थिति ज्ञात हुई तो वे भी जावरा आये और उन्होंने भी आचार्य श्रीजी को देखकर के कहा कि मैं डाक्टर के नाते दावे के साथ कहना चाहूँगा कि आचार्यश्री के हृदय की तकलीफ कतई नहीं है। तीन मास पहले हुई हृदय की तकलीफ थी सो भी न

पता लगा सकता हूँ। आज तो क्या, तीन साल पहले भी आपश्री को हृदय की कोई तकलीफ नही थी। अतः आपको अभी जो पथ्य चल रहा है, उसकी आवश्यकता नही है। आप अपनी स्वाभाविक खुराक लीजिये और कुछ ताकत आने पर चलना फिरना भी प्रारम्भ कीजिये। तदनुसार सारी प्रक्रियायें परिवर्तित हुई और शरीर मे भी अपेक्षाकृत शक्ति का सचार हुआ, लेकिन विहार करें ऐसी स्थिति अब भी न बन पाई। स्थानीय डाक्टरो का कहना रहा कि आचार्यश्री पैदल नही चले। आचार्यश्री का कहना था कि सत गृहस्थो के कधो पर अपने को उठाना नहीं चाहते। तब सन्तो ने कहा कि हम उठाकर ले जा सकते हैं और मजबूत कपडे की पालकी मे बिठाकर रतलाम की ओर विहार किया और रतलाम के पास ही स्टेशन पर आचार्यश्री विराजे। यहां के डाक्टर श्री प्रेमसिहजी जो पहले मध्यप्रदेश मे स्वास्थ्य विभाग के मन्त्री रह चुके थे, ने आचार्य श्रीजी का निरीक्षण किया। इनका भी कहना था कि आचार्य श्रीजी को अधिक बाधित नही करना चाहिए।

रतलाम मे पूज्यश्री धर्मदासजी म. की सप्रदाय के मुनिश्री सागरमलजी भी थे। जिनके विषय मे सयमविरोधी, ब्रह्मचर्य सम्बन्धी बातें प्रमाणिकरूप से आचार्य श्रीजी के कानो मे आ चुकी थी। वे आचार्य श्रीजी की सेवा में दर्शनार्थ उपस्थित हुए और वंदना करने लगे तो आचार्य श्रीजी म सा. ने कहा कि आपके सम्बन्ध मे कुछ सयम-विघातक बातें सुनी गई है, अत. आलोचना पूर्वक जबतक यथायोग्य निर्णीत स्थिति न बन जाये, तब तक आपके साथ वदन-व्यवहार आदि साभोगिक स्थिति नही हो सकती। अत. आपके वदन करने पर इधर के छोटे सन्तो द्वारा वंदना नही करने पर आपका दिल दुखित हो तो आप भी वंदना न करें।

इस पर श्री सागरमुनिजी ने कहा कि जैसा भी आप योग्य समझें, करे। मैं आपश्री के चरणो मे आलोचना कर सकता हूँ। आचार्य श्रीजी ने कहा कि मै नगर मे आ ही रहा हूँ, कुछ स्वस्थ होते

ही आलोचना सुनकर यथारीति इस विषय को निपटाने का प्रयत्न करूंगा। वहां तक परस्पर वंदन-व्यवहार न होने की स्थिति को गृहस्थों के सामने न रखें। इस बात को स्वीकार करके श्री सागरमुनिजी वापस नगर में आ गये किन्तु वहां पहुंचकर अपने संप्रदाय के मुख्य-मुख्य श्रावकों को बुलाकर कहा कि आचार्य श्रीजी म. ने तो धर्मदासजी म. की संप्रदाय से सम्बन्ध तोड़ दिया है और मेरे साथ सम्बन्ध नहीं रखा आदि झूठमूठ कई बातें बनाकर साम्प्रदायिकता के विष को प्रज्वलित किया। जिससे पूज्यश्री धर्मदासजी म. की संप्रदाय के कुछ श्रावक श्री सागरमुनिजी की सब करतूतों को जानते हुए भी इधर-उधर की बातें करने लगे। आचार्य श्रीजी स्टेशन पर विराजते थे और यदि वे चाहते तो आचार्य श्रीजी की सेवा में उपस्थित होकर सब बातों का स्पष्टीकरण कर सकते थे। लेकिन ऐसा न करके उन्होंने भी श्री सागरमुनिजी की तरह साम्प्रदायिक विष फैलाना चालू रखा। यह बात जब कर्ण-परम्परा से आचार्य श्रीजी को ज्ञात हुई तो उन्हें आश्चर्य हुआ कि इस प्रकार का प्रचार होना साधु जीवन के लिए कलंक ही है।

दूसरे दिन आचार्य श्रीजी के रतलाम नगर में पधारने का प्रसंग था। यहां भूतपूर्व संप्रदाय की दृष्टि से पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म., पूज्यश्री धर्मदासजी म. और श्री दिवाकरजी म. के श्रावकों के पृथक्-पृथक् तीन स्थानक थे। जब आचार्य श्रीजी नगर की ओर पधार रहे थे तो भूतपूर्व पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म. की संप्रदाय के श्रावकों ने अर्ज की कि आप इस सम्प्रदाय के श्रावकों के स्थानक में पधारिये। स्थानक भी विशाल है। अतः अन्यत्र न पधार कर इसी स्थानक में पधारिये। तब आचार्य श्रीजी म. सा. ने कहा कि श्रमणसंघ का यह नियम है कि जहां वृद्ध ठाणापति संत विराजते हों वहां विश्रामार्थ जाना चाहिए। भूतपूर्व दिवाकरजी म. की संप्रदाय के श्रावकों के स्थानक में वृद्ध संत विराजते हैं, अतः वहीं पर ठहरना उपयुक्त है। श्रावकों ने कहा कि आप श्रीजी तो निष्पक्ष दृष्टि से चल रहे हैं, पर उन लोगों में

प्राय. करके साम्प्रदायिकता कूट-कूट कर अब भी भरी हुई है। इस लिए वहा जाना हमे नही जचता है। आचार्य श्रीजी ने कहा श्रमणसघ मे रहते श्रमणसघीय नियमो का ईमानदारी से पालन करना हरएक का कर्त्तव्य हो जाता है, वे लोग नही पाले तो वे जानें। मैं तो अपने कर्त्तव्य का पालन करूंगा और आचार्य श्रीजी म. सा. रतलाम मे विराजने के समय श्री दिवाकरजी म. के सन्तों के पास नीमचौक स्थानक में ही विराजे।

यहां के चिकित्सको ने रोग का पता लगाने की चेष्टा भी की, लेकिन कुछ पता नही लग पाया। कभी-कभी पेशाब के साथ खून भी आने लग गया था। जब चिकित्सको को कुछ पता नही लग रहा था तो इन्दौर, उदयपुर, उज्जैन आदि के श्रावक सघो ने अत्यधिक आग्रह किया कि हमारे क्षेत्र मे आपश्री का पदार्पण हो। वहां पर चिकित्सको की स्थिति अच्छी है और रोग का निदान भलीभाति हो सकेगा। यद्यपि रतलाम सघ अन्त.करण से चाहता था कि आचार्य श्रीजी का रतलाम से विहार न हो। परन्तु साथ ही यह भी सोच रहा था कि आचार्यश्री के रोग का सही निदान होना चाहिए। रतलाम, इन्दौर, उज्जैन आदि मध्यप्रदेश के क्षेत्रो मे कुछ नमीयुक्त हवा होने से इस कमजोर अवस्था मे सर्दी, जुखाम आदि जल्दी-जल्दी होने की सभावना रहती थी। अतः चिकित्सको का मंतव्य था कि जलवायु की दृष्टि से उदयपुर क्षेत्र अत्यधिक उपयुक्त रहेगा।

तदनुसार जब रतलाम से विहार का प्रसग आया तब रतलामवासियो के दु ख का पार न रहा। विहारवेला का दृश्य इतना मार्मिक बन गया कि प्रव्रज्या अगीकार करने के अवसर पर पारिवारिक जनो के रुदन विलाप-जन्य करुणाजनक दृश्य को देखकर मन में ग्लानिभाव नही लाने वाले सन्त मुनिराज भी द्रवीभूत हो गये। उनके हृदय भर आये। आबालवृद्ध जनसाधारण की आखो से आसू बहने लगे और कई एक तो चौधार आसू बहाते हुए फूट-फूट कर रो पड़े। फिर भी हृदय

का वेग शांत नहीं हो रहा था ।

सन्तों के सहारे रतलाम स्टेशन से शनैः-शनैः विहार कर आचार्य श्रीजी म. सा. फतेहगंज पधारे और श्री भीमराजजी नाथू-लालजी मेठिया के मकान में विराजे । दूसरे दिन वहां से नामली गांव की ओर विहार हुआ तब रतलाम श्रीसंघ के सैकड़ों भाई-बहिन उपस्थित थे । नामली और उसके आगे के क्षेत्रों में आहार-पानी आदि की परिषहों को सहन करते हुए क्रम-क्रम से विहार कर पुन: जावरा पधार गये ।

जावरा में एकाध दिन विश्राम करने के अनन्तर जब वहां से विहार कर करीब तीन-चार मील आगे आये होंगे कि पेशाब होना बिल्कुल बंद हो गया । शारीरिक कमजोरी इतनी बढ़ गई कि जीवन रहने में भी शंका दिखने लगी । लेकिन चतुर्विध संघ के पुण्योदय से तात्कालिक उपचार द्वारा रोग शांत-सा हो गया । इस विकट स्थिति से देश के समस्त श्रीसंघों और उनके प्रमुख-प्रमुख कार्यकर्ताओं में चिन्ता व्याप्त हो गई । सभी की आकांक्षा थी कि आचार्य श्रीजी म. सा. तत्काल किसी एक स्थान पर विराज जायें और वहां रोगोन्मूलन के लिये उपचार का प्रबन्ध किया जाये ।

श्रावक संघों की भावना योग्य थी । लेकिन आत्म-साधना में ही जीवन की सफलता है—मानने वाले आचार्य श्रीजी म. सा. परहेज आदि से शरीर के बने रहने की स्थिति में किसी एक स्थान पर स्थिरवास करना योग्य नहीं समझते थे । अतः कुछ स्वस्थ होने पर मेवाड़ की ओर विहार चालू रखा ।

आगामी चातुर्मास की स्वीकृति

सं० २०१९ में वर्षावास का समय निकट आ रहा था और मालवा मेवाड़ के अधिकांश श्रीसंघों की भावना थी कि चातुर्मास हमारे यहां हो । लेकिन शारीरिक स्थिति को देखते हुए पहले से ही किसी स्थान-विशेष के बारे में निश्चय करना संभव नहीं था । इस स्थिति में विहार करते हुए आचार्य श्रीजी म. सा. मंदसौर और फिर वहां से

विहार कर मदसौर के उपनगर नयापुरा मे पधारे । मदसौर श्रीसघ की उत्कट भावना थी कि आचार्य श्रीजी म सा. का चातुर्मास यहां नयापुरा मे हो । यहाँ पर प्राकृतिक चिकित्सा का अच्छा सयोग मिल सकता है और मंदसौर सघ की वर्षों की भावना भी सफल होगी । लेकिन आचार्य श्रीजी म. सा. के स्वास्थ्य को देखते हुए कई दृष्टियों से मंदसौर उपयुक्त नही जान पडा । अजमेर सघ के प्रमुख-प्रमुख व्यक्ति भी वहा पर उपस्थित हो गये थे और विनती की कि अब हमारे पर मेहरबानी हो जाना चाहिए । अजमेर में सब तरह के उपचार-साधनो का सयोग है आदि । लेकिन अभी चातुर्मास की स्वीकृति देने का समय नहीं था अत: फरमाया कि मैं आगे बढ रहा हूँ, कहाँ की स्पर्शना बने, कह नही सकता । वहा से सन्तो के सहारे विहार कर नीमच सीटी नीमच छावनी होते हुए बघाना पधारे । छोटीसादडी जावद आदि सभी सघो का अपने-अपने क्षेत्र मे पधारने का अत्यधिक आग्रह था । जावद श्रीसघ के सदस्यो ने अपनी भावना दर्शाते हुए कहा कि आप चाहे एक रात्रि विराजकर ही छोटीसादडी पधार जाये, परन्तु जावद अवश्य पधारे । आपको पधारे बहुत समय हो गया है ।

आचार्य श्रीजी म. सा ने जावद सघ की प्रार्थना को ध्यान मे रखकर बघाना से जावद की ओर विहार किया । पहली मजिल पर जिस गाव मे रहे, उस गांव मे शाम होते समय आचार्य श्रीजी के बीमारी का घोर प्रकोप हो गया । यहाँ तक स्थिति बन गई कि आचार्य श्रीजी म सा ने स्वय सागारी सथारा पचख लिया और फिर सन्तों से कहा कि अब मुझे स्थायी सथारा पचखा दो । लेकिन स्थायी सथारा पचखाने जैसी स्थिति नहीं थी । नीमच से डाक्टर आ गये और उन्होंने जोर देकर कहा कि वापस नीमच की ओर पधार जायें । दूसरे दिन प्रातःकाल जावद की ओर विहार स्थगित रहा और पुनः लौटकर नीमच छावनी पधारे और डाक्टर सा. के मकान मे विराजे । आचार्य श्रीजी म सा. के स्वास्थ्य विषयक ये समाचार सभी श्रीसघो को ज्ञात हुए । रतलाम,

जावरा, मंदसौर के डाक्टर तथा उदयपुर के डाक्टर गुरुवीरसिंहजी, डा. न्याती व डाक्टर माथुर आदि श्रावकों के साथ उपस्थित हुए एवं और भी आसपास के काफी श्रावक आ गये।

मालवा के श्रीसंघों का आग्रह था कि हम मालवा के बाहर नहीं जाने देंगे। नीमच छावनी श्रीसंघ का तो अपने यहाँ ही चातुर्मास होने के लिये विशेष आग्रह था। सभी चिकित्सकों ने गंभीरता से विचार किया और बीमारी के चिह्नों को देखते हुए रोग की ओर कुछ झुकाव हुआ। सभी डाक्टरों का यह मत हुआ कि जिस बीमारी का अनुमान लग रहा है, उसको देखते हुए आचार्य श्रीजी को किसी तरह उदयपुर पहुंच जाना चाहिए। चिकित्सा आदि सभी दृष्टियों से उदयपुर क्षेत्र उपयुक्त है। चातुर्मास के विनत्यर्थ २१ संघ आये हुए थे और चाहते थे कि आगामी चातुर्मास के लिये हमारे यहाँ की स्वीकृति मिल जाये। लेकिन आचार्य श्रीजी म. सा. ने द्रव्य क्षेत्र काल भाव आदि दृष्टियों को ध्यान में रखकर सं. २०१६ के चातुर्मास के लिये उदयपुर की स्वीकृति फरमाई।

नीमच छावनी से सन्तों के सहारे विहार कर छोटीसादड़ी बड़ीसादड़ी, कानोड़, भींडर आदि क्षेत्रों को स्पर्शते हुए आचार्य श्रीजी म. सा. डबोक पधारे। यहाँ पर पुनः डा. गुरुवीरसिंह जी आदि चिकित्सक आ गये और कहा कि आपश्री जल्दी उदयपुर पधार जायें जिससे अच्छी तरह रोग का निदान हो सके।

उदयपुर पदार्पण एवं भागवती दीक्षा

डबोक से विहार कर आचार्य श्रीजी म. सा. आयड़ पधारे और छाबड़ियों के पास श्री गिरधारीसिंहजी के बंगले में विराजे। उस समय आचार्य श्रीजी म. सा. को काफी थकावट व कमजोरी आ गई। दर्शनार्थियों के लिये उदयपुर, आयड़ आदि से आये हुए दर्शनार्थियों को मंगलपाठ भी नहीं सुना पाये। अन्य सन्तों ने मांगलिक सुनाया। दर्शनार्थियों के आवागमन का क्रम निरन्तर चलते रहने से आचार्य श्रीजी

को विश्राम नही मिल रहा था अतः आयड़ गांव मे श्री केशूलालजी ताकडिया के मकान पर एकान्त विश्राम करने योग्य स्थान होने से कोठारीजी के बगले से वहा पधार गये ।

दूसरे रोज वहां से विहार करके श्री किशनसिंहजी सरुपरिया के बगले मे जो वडी होस्पिटल के सामने था, पधारे। वहां पर डाक्टरो ने आचार्य श्रीजी के रोग के निदान करने के प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये । डाक्टरो को पूरा निदान करने मे समय लग रहा था और आपस मे मत्रणा करके ववई के प्रसिद्ध डाक्टरो से भी परामर्श ले रहे थे । इधर चातुर्मास का समय निकट आ जाने से, वहां से विहार कर उदयपुर शहर मे ओसवाल पचायती नोहरे मे पधार गये ।

उदयपुर मे इससे भी पूर्व आचार्य श्रीजी म. सा. के कई चातुर्मास हो चुके थे, लेकिन यह चातुर्मास एक गंभीर वातावरण मे हो रहा था । उदयपुर सघ अपनी जिम्मेदारी के प्रति पूर्ण सजग था और उसने अपने सब प्रयत्न चातुर्मास को सफल बनाने में लगा दिये।

चातुर्मास काल मे समयानुसार धर्म-ध्यान त्याग-तपस्याये अच्छी हुई । दर्शनार्थियो का भी आशातीत आगमन हुआ । लेकिन आचार्य श्रीजी का स्वास्थ्य दिनोदिन निर्बल होता जा रहा था। शरीर इतना जर्जर हो चुका था कि अच्छे-से-अच्छा उपचार भी अब कार्य-कारी सिद्ध नही हो रहा था ।

इसी चातुर्मास समय मे वैराग्यभावना से अनुप्राणित कतिपय भाई बहिन दीक्षा अगीकार करने के लिये उत्सुक थे । लेकिन पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. की स्वास्थ्य-स्थिति के कारण दीक्षा-तिथि निश्चित नही की जा सकी थी । चातुर्मास के अन्तिम दिनो मे कुछ स्वास्थ्य सुधार पर था । अत. कार्तिक कृष्णा ८, रविवार, दि. २५-१०-५९ को वैरागी श्री वावूलालजी तथा वैरागिन वहिन श्री अनोखीबाई, वहिनश्री धीरजकुमारी की दीक्षायें होने का निश्चय हो गया ।

यथासमय आचार्य श्रीजी म. सा. के नेतृत्व मे यह दीक्षायें

बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुईं । उदयपुर श्रीसंघ के इतिहास में एक साथ तीन दीक्षाएं होने का यह अपूर्व अवसर था । उदयपुर संघ ने इस समारोह को बहुत ही उत्साह और भव्यता के साथ आयोजित किया था । इस अवसर पर स्थानीय व बाहर से आगत हजारों भाई-बहिन उपस्थित थे ।

चिकित्सकों का परामर्श

चातुर्मास काल में दीक्षा के बाद चिकित्सक अपने परीक्षण से कुछ परिणाम पर पहुंचे । उन्होंने बताया कि आचार्य श्रीजी म. सा. के शरीर में जो कमजोरी व्याप्त है और विभिन्न रोगों के चिह्न दिखते हैं, उनकी जड़ गहरी है और वह शल्य-चिकित्सा द्वारा ही निकाली जा सकती है । अतः हमारी राय है कि शल्य-चिकित्सा यथाशीघ्र करवा लेनी चाहिए । नहीं तो रोग के फैलने का अंदेशा है । यदि शीघ्र ही रोग की जड़ निकल जाती है तो फिर उसके फैलने का प्रसंग नहीं आता है ।

आचार्य श्रीजी म. सा. ने फरमाया कि बिना शल्य चिकित्सा के प्राकृतिक नियमों द्वारा अथवा बेला, तेला आदि तपस्या द्वारा यदि रोग का शमन हो सकता हो तो पहले मैं प्राकृतिक चिकित्सा आदि से रोग-शमन करने का प्रयत्न करना चाहता हूँ । डाक्टरों ने कहा कि प्राकृतिक चिकित्सा के लिये हमारा कोई एतराज नहीं है, लेकिन रोग की जो स्थिति निश्चित हुई है, उसका शमन सिवाय शल्य-चिकित्सा के अन्य कोई नहीं है । यह हमारा दृढ़ विचार है । जितना समय विलंब करेंगे उतना ही रोग-प्रकोप बढ़ने की संभावना है और अधिक बढ़ जाने के बाद फिर शल्यचिकित्सा भी नहीं हो सकेगी एवं आपके शरीर में शान्ति भी नहीं रह सकेगी । अतः आपको इस विषय में जरा भी विलंब नहीं करना चाहिए । तब आचार्य श्रीजी म. सा. ने फरमाया कि रोग अधिक फैल गया है और उसका अन्तिम परिणाम मृत्यु है, तो भी भयभीत होने की जरूरत नहीं । मृत्यु का सहर्ष स्वागत

करने के लिए ही हमने साधु जीवन लिया है। एक दिन इस शरीर को छोडना ही होगा तो क्यो मैं आपरेशन के झंझट मे पडूं ? शरीर रहना होगा तो रहेगा और जाना होगा तो समाधिमरण के साथ जायेगा। मैं तो अभी से तैयारी कर सकता हूँ।

इस पर डाक्टरो ने कहा कि आपका साधु-जीवन लेने का खास उद्देश्य क्या है ? आचार्य श्रीजी ने सयमी जीवन की महत्ता का दिग्दर्शन कराते हुए फरमाया कि ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना पूर्वक शत्रु-मित्र पर समभाव और आत्मा के चरम विकास को सन्मुख रखते हुए समाधिमरण द्वारा इस भौतिक शरीर को छोडना है।

डाक्टरो ने पुन. प्रश्न किया कि क्या आयुष्य के पूर्व ही शरीर को इस प्रकार छोडना उपयुक्त रह सकता है ? आचार्य-श्रीजी म सा. ने फरमाया कि आयुष्य रहते हुए समाधिभाव पूर्वक ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना करते रहना चाहिए। लेकिन जब यह मालूम हो जाये कि शरीर से ज्ञान-दर्शन चारित्र की आराधना नही हो सकती और अनुमान व चिकित्सको आदि से यह मालूम हो जाये कि अब आयुष्य अधिक नही है तो फिर उस स्थिति मे सलेखना सथारा आदि करके पडित-मरण पूर्वक शरीर को छोड देना चाहिये। अत आप अपने चिकित्सा-शास्त्र की दृष्टि से बताइये कि इस शरीर का टिकाव कितने समय का है ? यदि इसकी स्थिति ज्यादा न हो तो मैं अभी से आपरेशन आदि की प्रक्रिया मे न पड कर सलेखना आदि करके अपने सयमी-जीवन के उद्देश्य को सफल बनाने का प्रयास करूं। डाक्टरो ने कहा कि आचार्य-श्री ! हम लोगो ने शरीर-विज्ञान सम्बन्धी जो कुछ अध्ययन किया है, उसके अनुसार यदि रोग की चिकित्सा हो जाती है तो इस शरीर से आप अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि कर सकते हैं और अन्य कोई उपद्रव न हो तो वर्षों तक इस शरीर का कुछ भी बिगडने वाला नही है। यदि आपने शल्य-चिकित्सा नही करवाई तो शरीर मे किसी न किसी रोग के चिह्न परिलक्षित होते रहेगे और दिनोदिन

शरीर भी कमजोर होता जायेगा तथा रोग का अत्यधिक प्रकोप होने पर न तो आप ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि कर सकेंगे और न समाधिभाव रह सकेगा और न इस शरीर से जल्दी ही छूटने का प्रसंग आयेगा। ऐसी परिस्थिति मे आप अपने सयमी-जीवन के उद्देश्य को पूरा नही कर पायेंगे और शरीर छूटने के अन्तिम समय मे न तो समाधिभाव रह सकेगा और न आप आत्मा और परमात्मा का ही चिन्तन कर पायेंगे। ऐसी दशा मे आपका उद्देश्य सिद्ध नही होगा। लेकिन आप शल्यचिकित्सा करवा लेंगे तो आनन्द पूर्वक अपने उद्देश्य को सिद्ध करेंगे और कदाचित् शल्यचिकित्सा मे आपके नियमानुसार कुछ दोष लगे तो उसकी शुद्धि कर लेना।

इस पर आचार्य श्रीजी म सा ने फरमाया कि आपने शल्य-चिकित्सा विषयक जो स्थिति समझाई वह मैंने सुन ली है, लेकिन अभी तो चातुर्मास का समय है। दूसरी बात यह कि अन्य निर्दोष चिकित्सा से यह कार्य सभव हो तो मैं पहले उसको भी अजमा लेना चाहता हूँ। मेरी अन्तरात्मा अभी दोषयुक्त चिकित्सा पसंद नही कर रही है। इस पर डाक्टरो ने कहा—आप महात्मा हैं, आप निर्दोष स्थिति पसंद करते हैं, लेकिन जो स्थिति हमें ज्ञात हुई, वह आप से अर्ज की है।

अनन्तर आचार्य श्रीजी ने रोग-निवारण करने के लिए होमयोपैथिक उपचार चालू किया। लेकिन किडनी के अन्दर पैदा हुई गाठ पर उसका कोई असर नही हुआ। जब इस गांठ मे निकला खून पेशाब की थैली मे आकर पेशाब के रास्ते को रोक लेता था तब आचार्य श्रीजी को बहुत वेदना होती थी। एक रोज ऐसी भयकर वेदना हो गई थी कि यदि एलोपैथिक डाक्टर नही सभालते तो परि-णाम स्पष्ट था।

चतुर्विध संघ की विनती : आपरेशन का निश्चय

जब ये समाचार चतुर्विध सघ को ज्ञात हुए तो इस का पार नही रहा और साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका, और कुछ चिकित्सक

आदि सबने साधु-जीवन और शास्त्र की जानकारी के माध्यम से आचार्य श्रीजी म. सा. पर जोर डाला कि आप इस शरीर को अपना ही न समझें, यह संघ का है और चतुर्विध संघ की धरोहर को आप इस तरह से रख रहे है, जिससे हम सबको अत्यधिक वेदना होती है। इस पर हम सबका अधिकार है। आप अपनी आत्मा से तटस्थ हो जाइये। हम इस शरीर को ठीक करना चाहते है और अनुभवी चिकित्सकों की राय हमको भी ठीक लग रही है। हम आपरेशन कराना चाहते हैं। आपरेशन सम्बन्धी क्रिया से निवृत्त होने पर जो भी दोष की स्थिति हो, शास्त्रीय दृष्टि से प्रायश्चित्त लेना आपका अधिकार है। लेकिन ऐसी स्थिति मे भी चिकित्सा नही कराना आपके अधिकार की बात नहीं है। शास्त्र मे शल्यचिकित्सा, औषध, भैषज आदि का विधान है। उत्सर्ग और अपवाद की स्थिति भी प्रतिपादित की गई है। भगवान महावीर ने भी केवलज्ञान होने के बाद खून की दस्ते लगने पर शिष्य की प्रार्थना पर औषध-सेवन किया था। आप तटस्थ रहिये। किन्तु चतुर्विध संघ की भावना को ठेस मत पहुंचाइये आदि। तब चतुर्विध संघ द्वारा सामूहिक रूप मे अर्ज की गई इस विनती पर आचार्य श्रीजी म. सा. को ध्यान देना पडा।

अनन्तर उदयपुर श्रीसंघ के मन्त्री महोदय ने चिकित्सकों से परामर्श करके आपरेशन होने की तिथि २४-११-५६ घोषित कर दी।

आपरेशन होने की तिथि की जानकारी मिलते ही देश के कोने-कोने से हजारो भाई-बहिनो का उदयपुर आना चालू हो गया। दि. २२-११-५६ तक तो उदयपुर मे करीब ५-६ हजार भाई-बहिनो की उपस्थिति हो चुकी थी।

आपरेशन दि. २४-११-५६ को होने वाला था, लेकिन उससे पूर्व तैयारी के लिये आचार्य श्रीजी म. सा. का दि २३-११-५६ को अस्पताल के अन्तर्गत एक स्वतन्त्र स्थान मे पदार्पण हुआ। आपरेशन करने वाले डाक्टरो मे प्रमुख डाक्टर बी एन शर्मा डायरेक्टर मेडीकल

एव पब्लिक हैल्थ विभाग राजस्थान सरकार ने आचार्य श्रीजी के शरीर की आवश्यक परीक्षा की ।

चतुर्विध संघ को सदेश

अस्पताल मे प्रवेश करने के पूर्व आचार्य श्रीजी म. सा. ने चतुर्विध सघ से क्षमत-क्षमापना करके उपदेश के दो शब्द फरमाये । जिनमे सर्व प्रथम अनत सिद्धो को नमस्कार करके वीतराग भगवन्त अरिहन्तो को नमस्कार किया और आज दिन तक कोई अविनय आसा-तना हुई हो तो क्षमा करने तथा भव-भव मे अरिहन्त, सिद्धो का शरण होने की भावना दर्शाई गई थी ।

पश्चात चतुर्विध संघ को सम्बोधित कर आचार्य श्रीजी म. सा ने अपने आज तक के जीवन पर थोडे से शब्दों मे प्रकाश डाला कि पूज्य आचार्य श्री श्रीलालजी म. सा. ने ससारी अवस्था से उभार कर मुझ पर महान उपकार किया और पूज्य आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा. की असीम कृपा से साधना के मार्ग पर अग्रसर होने का योग मिला । इन महापुरुषो के अनन्त उपकार के लिये कृतज्ञ हूँ ।

पश्चात शास्त्रीय पाठ मे समस्त जीवयोनि से क्षमायाचना करते हुए फरमाया कि सयमी जीवन के रक्षार्थ मेरा आज अपवाद-मार्ग मे गमन करने का प्रसग आ रहा है । अतः मेरी इच्छा है कि जब तक शल्य-चिकित्सा सम्बन्धी दोषो का प्रायश्चित न कर लूं, तब तक मुझे वदन न करे ।

इन शब्दो को सुनकर उपस्थित जनसमूह गद्गद् हो गया । हृदय का आवेग आंखो से बहने लगा और जय-जय, धन्य-धन्य के घोष से आकाशमण्डल गूंज उठा ।

आचार्य श्रीजी द्वारा व्यक्त किये गये उद्गारों के पश्चात प. र मुनिश्री नानालालजी म. सा. (वर्तमान आचार्यश्री) ने सक्षेप में उत्सर्ग और अपवाद मार्ग की व्याख्या करते हुए फरमाया कि सयम रक्षार्थ पूज्यश्री का अपवाद मार्ग मे गमन करने का प्रसग उपस्थित

आदि सबने साधु-जीवन और शास्त्र की जानकारी के माध्यम से आचार्य श्रीजी म. सा. पर जोर डाला कि आप इस शरीर को अपना ही न समझें, यह संघ का है और चतुर्विध संघ की धरोहर को आप इस तरह से रख रहे हैं, जिससे हम सबको अत्यधिक वेदना होती है। इस पर हम सबका अधिकार है। आप अपनी आत्मा से तटस्थ हो जाइये। हम इस शरीर को ठीक करना चाहते हैं और अनुभवी चिकित्सकों की राय हमको भी ठीक लग रही है। हम आपरेशन कराना चाहते हैं। आपरेशन सम्बन्धी क्रिया से निवृत्त होने पर जो भी दोष की स्थिति हो, शास्त्रीय दृष्टि से प्रायश्चित्त लेना आपका अधिकार है। लेकिन ऐसी स्थिति में भी चिकित्सा नहीं कराना आपके अधिकार की बात नहीं है। शास्त्र में शल्यचिकित्सा, औषध, भैषज आदि का विधान है। उत्सर्ग और अपवाद की स्थिति भी प्रतिपादित की गई है। भगवान महावीर ने भी केवलज्ञान होने के बाद खून की दस्तें लगने पर शिष्य की प्रार्थना पर औषध-सेवन किया था। आप तटस्थ रहिये। किन्तु चतुर्विध संघ की भावना को ठेस मत पहुंचाइये आदि। तब चतुर्विध संघ द्वारा सामूहिक रूप में अर्ज की गई इस विनती पर आचार्य श्रीजी म. सा. को ध्यान देना पड़ा।

अनन्तर उदयपुर श्रीसंघ के मन्त्री महोदय ने चिकित्सकों से परामर्श करके आपरेशन होने की तिथि २४-११-५९ घोषित कर दी।

आपरेशन होने की तिथि की जानकारी मिलते ही देश के कोने-कोने से हजारों भाई-बहिनों का उदयपुर आना चालू हो गया। दि. २२-११-५९ तक तो उदयपुर में करीब ५-६ हजार भाई-बहिनों की उपस्थिति हो चुकी थी।

आपरेशन दि. २४-११-५९ को होने वाला था, लेकिन उसकी पूर्व तैयारी के लिये आचार्य श्रीजी म. सा. का दि. २३-११-५९ को अस्पताल के अन्तर्गत एक स्वतन्त्र स्थान में पदार्पण हुआ। आपरेशन करने वाले डाक्टरों में प्रमुख डाक्टर बी. एन. शर्मा डायरेक्टर मेडीकल

भी प्रकार की त्रुटि हुई हो, एव अनन्त तीर्थंकरो के शासन की प्रकारान्तर से भी जरा भी अविनय, असातना, अपराध आज दिन तक मेरी आत्मा द्वारा हुआ हो, उसके लिये मैं बारम्बार मनसा, वाचा, कर्मणा क्षमा मांगता हूँ। आपका भव-भव मे शरण हो।

'तदनन्तर चतुर्विध सघ से कहना चाहता हूँ कि मेरे जन्म का यह ७०वा वर्ष चल रहा है। दीक्षा लिये भी ५४वा वर्ष चल रहा है। दीक्षा लेने के बाद मेरा चतुर्विध सघ मे विशेष सपर्क रहा है।

'जब श्रीसघ ने व परमप्रतापी आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. ने स्व. पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म. की सम्प्रदाय के शासन का भार मेरे कन्धो पर रख दिया था तब प्रतापी तेजस्वी महापुरुषो के आसन पर बठते हुए उन महापुरुषो की अपेक्षा अपनी कमजोर स्थिति का अनुभव हुआ था। फिर भी आचार्य श्री जवाहरलालजी म. की आज्ञा को स्वीकार करना और श्रीसघ के आग्रह पर ध्यान देना अपना कर्तव्य समझकर मैंने भार का ग्रहण किया।

'इसके पश्चात सादडी मे बृहत्साधु सम्मेलन न भी मेरी सेवा लेनी चाही। मेरी इच्छा नही होने पर भी श्रमणवर्ग के आग्रह को मैं टाल नही सका।

'मैंने शासनोन्नति के लिये सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चारित्र की रक्षा के साथ जो भी उचित जान पड़ा वह आज दिन तक कर्तव्य-दृष्टि को सामने रखकर किया, जिस पर मुझे आज भी सात्विक गौरवानुभूति है। यथोपयोग कर्तव्यदृष्टि पूर्वक आत्मसाक्षी से सघ-हितार्थ किये गये कार्यों मे भी यदि किसी को चोट पहुँची हो तो उस सम्बन्ध मे मेरा इतना ही कहना है कि मेरी भावना किसी के हृदय को चोट पहुँचाने की नही रही है, बल्कि वीतराग देव की पवित्र साधु-संस्कृति की शुद्धता सदा अक्षुण्ण रहे, इसी शुद्ध दृष्टि से व्यवस्था आदि कार्य किये है।

'श्रमणसंघीय या शास्त्रीय समाचारी तथा उसके संरक्षणार्थ शिथिलाचार व स्वनियन्त्र आदि विषयक व्यवस्थाये यहा मे दी गई और निवेदन प्रसारित किया गया। उन व्यवस्थाओ और निवेदन को मेरा अन्तरात्मा आज भी सघहितार्थ उचित मानता है अतः पुनः चतुर्विध सघ को सावधानी दिलाता हूँ कि दी गई व्यवस्था और निवेदन को अमली रूप देता दिलाता हुआ रत्नत्रय की अभिवृद्धि के साथ आत्मोन्नति व शासनोन्नति में किंचदपि असावधानी एव प्रमाद न करे और निम्न अभिप्रायो को सदा ध्यान में रखे–

१. शुद्ध सिद्धान्त व शुद्ध जीवन के आधार पर ही विश्वशांति सभवित है। इस आधार के विना व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एव विश्व की शाति सभवित नही।

२. गुण और कर्म के अनुसार वर्ग विभाग विकास और शाति के वातावरण मे सहायक सिद्ध हो सकता है।

३. भगवान महावीर की निर्ग्रंथ श्रमणसस्कृति का उसके लक्ष्यानुरूप शुद्ध रखने के लिये सदा अप्रमत्त रहने की आवश्यकता है।

४. वीतराग प्ररूपित सिद्धान्तो का जहा हनन होता हो, परिवर्तन किया जाता हो, समय के नाम से पचमहाव्रतधारी मुनिजीवन के लक्ष्य के प्रतिकूल प्रवृत्ति की जाती हो, वहा किंचदपि सहयोग न दिया जाये।

५ शुद्ध चारित्रनिष्ठ मुनिवरो के प्रति शुद्ध श्रद्धा भक्ति रहे। शिथिलाचार, मुनि जीवन तो दूर, मानव जीवन के लिये भी कलक स्वरूप है। अतः कभी किसी भी प्रकार से शिथिलाचार को न छुपाना, न वचाव करना, न प्रश्रय देना और न पोषण ही करना।

६ शुद्ध आत्मीय समता के चरमविकास का लक्ष्यबिन्दु अन्तःकरण मे सदा वना रहे एव तदनुरूप सम्यक्ज्ञान और शुद्ध श्रद्धा के साथ समता साधन को यथाशक्ति जीवन मे उतारना यानी

कार्यान्वित करना ।

७. श्रमणवर्ग अपने लक्ष्यानुरूप स्वय की भूमिका पर सजगतापूर्वक महाव्रतो का भलीभाति पालन करे और श्रावक के लिये श्रावकोचित मार्ग का निर्भयता से प्रतिपादन करता रहे ।

८ श्रावकवर्ग भी अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना मे उत्तरोत्तर वृद्धि करता हुआ बाह्याडम्बरो से अपने आपको दूर रखने मे तथा प्रत्येक कार्य सादगी से सम्पन्न करने मे अपना व समाज का हित समझे । साथ ही अपनी भूमिका व श्रमणवर्ग की भूमिका का पूरा-पूरा ज्ञान रखे । जिससे कि वह श्रावक और श्रमण का अन्तर अच्छी तरह समझ सके और श्रमण को श्रमणोचित कर्तव्य पलवाने मे तथा स्वय अपने श्रावकोचित कर्तव्य पालन करने मे भलीभाति सफल हो सके ।

९. निर्ग्रन्थ श्रमणसस्कृति की महत्ता सख्या की विपुलता मे नही किन्तु चारित्र की उत्कृष्ट दिव्यता और त्याग की महानता मे है । उच्च चारित्रनिष्ठ त्यागी श्रमण, चाहे अल्प मात्रा मे भी क्यो न हो, उन्ही से निर्ग्रन्थ श्रमणसस्कृति का सरक्षण हो सकता है । अतः स्वगृहीत प्रतिज्ञाओ को भलीभाति सुरक्षित रखता हुआ निर्ग्रन्थ श्रमणवर्ग स्वकल्याण के साथ-साथ वीतराग प्रभु की वाणी का प्रसार जनकल्याणार्थ भी करता रहे ।

'जहा सच्चे श्रमण नही पहुच पाते है और श्रावकवर्ग की स्थिति भी वैसी न हो तो वहा पर वीतराग प्रभु के प्रवचन की प्रभावना के लिये एक मध्यम श्रेणी के साधकवर्ग की आवश्यकता है, ताकि वह (साधकवर्ग) इन्द्रियजनित विषय की आसक्ति से ऊपर उठकर पूर्णरूपेण ब्रह्मचर्य के साथ-साथ व्रतादि मर्यादाओ का पालन करता हुआ वीतराग प्रभु की शासनसेवा मे अपनी शक्ति का सदुपयोग कर सके ।

'मै जिसको हृदय से सत्य मानता हू, उसका आदेश, उप-

देश आदि के रूप में व्यवहार करता रहा हूँ। कई व्यक्तियो से मेरा सैद्धान्तिक मतभेद भी रहा है। सत्य तथा न्याय का अन्वेषण करने आदि की दृष्टि से उनके साथ विचार-विमर्श, चर्चा आदि का प्रसग भी आया है। उस समय भी जहा तक उपयोग रहा है, वहां तक मेरा व्यक्तियो के साथ केवल आचार-विचार सम्बन्धी भेद रहा है पर आत्मिक दृष्टि से मैंने उनको अपना मित्र समझा है और अब भी समझता हूँ।

'फिर भी मैं तो आत्मा की विशेष शुद्धयर्थ चतुर्विध सघ को तथा ८४ लक्षयोनि जीवराशि को—

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमन्तु मे।
मित्ति मे सव्वभूयेसु, वैरं मज्झ न केणई॥

इस शास्त्रीय पाठ से क्षमत-क्षमापना करता हुआ—

सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोद क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभाव विपरीतवृत्तौ सदा ममात्मा विदधातु देव॥

'इसके साथ मेरी आत्मा को जोड़ने के लिये वीतराग प्रभु से प्रार्थना करता हूँ।

'मैंने ससार त्याग करके अनन्त आनन्दघन स्वरूप तथा स्वपरप्रकाश स्वरूप आत्मा के चरमविकास की अखड ज्योति की परम साधना के लिये जो भागवती दीक्षा अगीकार की, उस भागवती दीक्षा के मुख्य अग सम्यक् ज्ञान दर्शन-चारित्र रूप सयम है। सयम-आराधना मे यह शरीर सहायक रूप है। एतदर्थ इसको स्वस्थ रखना भी आवश्यक है।

'जावरा चातुर्मास में मेरे शरीर मे असाता वेदनीय का उदय हुआ और उस असाता ने आज तक कई रूप दिखाये। व्याधि के उग्र आक्रमण को भी मैं अपनी पूरी शक्ति से शान्त रहकर सहन करने का आज दिन तक प्रयत्न करता रहा हूँ। औषधोपचार भी किया गया मगर औषधि का कोई स्थायी परिणाम

नहीं हुआ, बल्कि अब तो इस असाता का आक्रमण पहले से अधिक उग्रतापूर्वक होने लगा है। जिससे कभी-कभी संयमाराधना में बाधा हो जाती है।

'यद्यपि डाक्टर लोग कई महिने पूर्व ही इस निर्णय पर पहुंच चुके थे कि मेरे शरीर में वर्तमान रोग निवारण का एकमात्र स्थायी उपाय शल्य-चिकित्सा है, परन्तु मेरी अन्तरात्मा शल्य-चिकित्सा के प्रति न पहले राजी थी और न आज है। इसलिये अन्य अन्य औषधोपचार से ही काम लिया गया।

'मैंने डाक्टर साहब से यह भी कहा कि यदि इस व्याधि के आक्रमण से होने वाली असमाधि तपस्या द्वारा रुक सकती हो, चाहे उसमे थोड़ा कष्ट भी सहन करना पड़े तो भी मैं दृढतापूर्वक एकान्तर व बेला-बेला की तपस्या करते हुए एक स्थान पर रहकर अपना शेष जीवन समाधिपूर्वक भगवत भजन मे व्यतीत करना श्रेय समझता हूँ। मगर डाक्टरों का कहना है कि यह व्याधि रही तो असमाधि होने की विशेष संभावना है। जिससे आपकी शांति-साधना मे बाधा ही उपस्थित होगी।

'डाक्टर लोग अब तो दृढतापूर्वक सम्मति ही नही देते हैं बल्कि आग्रहपूर्वक विनती भी करते हैं कि यदि इस रोग का यथाशीघ्र निवारण नही हुआ तो यह रोग अपना उग्ररूप धारण करेगा और समय बीत जाने पर फिर शल्य-चिकित्सा भी उपयोगी नही रहेगी।

'इधर उदयपुर आदि श्रावक संघों ने गंभीरता से विचार करने के बाद एक मत होकर तथा समाज के अन्य प्रमुख श्रावक-गणों ने आग्रहपूर्वक विनती की है कि 'डाक्टरों के अभिमत को स्वीकार किया जावे। यह शरीर केवल आपका ही नहीं, संघ का भी है। स्वस्थ शरीर से ही आपकी साधना और जनहित दोनों सम्भव है।' साथ ही मेरे समीपस्थ साधु एवं साध्वियों ने भी

श्रावक समुदाय के अभिप्राय को दोहराते हुए साध्वोचित भाषा में रोग निवृत्त होने की भावभरी विनती की है।

'श्रमणवर्ग एवं श्रावक समुदाय तथा विशिष्ट चिकित्सको के अभिप्राय पर चिन्तन-मनन करने के पश्चात सयमी जीवन के रक्षार्थ मेरा अपवाद मार्ग मे गमन करने का प्रसंग आ रहा है। अब तक औषधि आदि के प्रयोग से जो भी प्रायश्चित्त लगा है उसकी तो मैंने आलोचना कर ली है और भावी शल्य-चिकित्सा मे जो भी दोष लगगे उनका भी प्रायश्चित्त लेने के लिये मेरी आत्मा सदा तत्पर है। फिर भी मेरी यह इच्छा है कि जब तक शल्य चिकित्सा सम्बन्धी लगे दोषो का प्रायश्चित्त न कर लूं तब तक मुझे वदन न करे।

'वीतराग प्रभु के सिद्धान्तानुसार पांडित्यमरण पूर्वक आत्मसमाधि के सत्सकल्प अन्त करण मे पूर्णरूपेण परिणत हो यही भावना निरन्तर बनी हुई है और भविष्य मे भी इसी तरह सदा बनी रहे, यही अन्तभावना है।'

चतुर्विध सघ के समक्ष अपनी अन्तर्भावना व्यक्त करने के अनन्तर पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. करीब १० बजे सन्तो के सहारे डोली मे बैठकर अस्पताल के स्वतन्त्र कमरे मे पधार गये।

आपरेशन-दिवस की झाकी

दि. २४-११-५६ को आपरेशन होने के पूर्व डाक्टरो ने एक बार पुन शरीर परीक्षण कर रोगाक्रान्त अग के बारे मे पूरी तरह से अपना समाधान कर लिया था।

आपरेशन तो करीब ११ बजे से प्रारम्भ होने वाला था, लेकिन प्रात काल ही अस्पताल के प्रांगण मे हजारो श्रद्धालु बधु एकत्रित हो चुके थे और वे एक बार पुन गुरुदेव के दर्शन करने के इच्छुक थे। डाक्टरो ने उनकी भावना का आदर कर पूज्यश्री को पहले मजिल की चादनी पर ले जाने की मुनिवरो को अनुमति दे दी। जनता ने

आचार्य श्रीजी म. सा. के दर्शन कर जय-जयकार किया और मांगलिक श्रवण कराकर पुनः आचार्य श्रीजी म. सा. को विश्राम के लिये वापस कक्ष मे ले जाया गया ।

अब सिर्फ डा. श्री वी एन शर्मा के आगमन की उत्सुकता से प्रतीक्षा हो रही थी । अपने कौशल की सफलता के प्रति दृढ़ आत्म-विश्वास एव उल्लास के साथ करीब १०॥ बजे डा. सा ने अस्पताल मे प्रवेश किया । उनके प्रवेश करते ही 'डा. शर्मा जिन्दावाद' के घोष से उपस्थिति ने स्वागत किया और डा. सा. ने स्मित हास्य पूर्वक स्वागत के लिये आभार माना ।

डा. वी. एन शर्मा को आपरेशन की गंभीरता, गुरुतर दायित्व और अपने शल्यकौशल की शत प्रतिशत सफलता के लिये आत्म-विश्वास था और इसीलिये इस कार्य को संपन्न करने का भार लिया था । जयपुर में राजस्थान के मुख्यमन्त्री श्री मोहनलाल जी सुखाडिया से उदयपुर श्रीसंघ के प्रतिनिधियों के समक्ष हुए वार्तालाप के अवसर पर भी इस बात को आपने स्पष्ट कर दिया था । वार्तालाप उल्लास-पूर्ण वातावरण में पूर्ण हुआ था और उसका उपसंहार करते हुए श्री सुखाडियाजी ने कहा था कि आप एक महान विभूति का आपरेशन करने जा रहे हैं । आप अपने कौशल में प्रवीण है, फिर भी सावधानी रखें । आपरेशन की सफलता से आपको अपरिमित आदर-सम्मान, यश प्राप्त होगा । आपको सफलता के लिये मेरी हार्दिक शुभकामना है ।

आपरेशन-कक्ष मे प्रारम्भिक तैयारियां करने में योग्य व्यक्ति एव निरीक्षक लगे हुए थे । इधर आचार्य श्रीजी म. सा. भी चतुर्विध संघ की व्यवस्था सम्बन्धी आदेश आदि देकर एवं शास्त्रीय पद्धति के अनुसार ऐसे समय में की जाने वाली विधि करके सागारी संथारा ग्रहण कर आपरेशन कक्ष में पधार गये । आपरेशन-कक्ष के बाहर एक दो सन्तों और कतिपय प्रमुख श्रावकों के सिवाय अन्य सब अपने-अपने योग्य स्थान पर लौट आये ।

करीव ११ वजे आपरेशन प्रारम्भ हुआ। डाक्टर न्याति क्लोरोफार्म सुघाने के साथ-साथ नाड़ी, हृदय की गति आदि देखने मे तत्पर थे। अन्य सहयोगी डाक्टर आवश्यकतानुसार शल्य उपकरण देने का ध्यान रख रहे थे। डा. बी. एन. शर्मा रोगग्रथि को विलग करने मे दत्तचित्त थे। निस्तब्धता के वातावरण मे सिर्फ नेत्र-सकेतो से अवसरानुकूल प्रवृत्ति द्वारा आपरेशन चल रहा था। क्षण-क्षण मे आपरेशन की स्थिति की सूचना बाहर उपस्थित जनसमूह को दी जा रही थी।

करीब दो घटे मे आपरेशन सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। डाक्टरो को अपने श्रम के प्रति पूर्ण सन्तोष था। यथावश्यक मरहम-पट्टी आदि करने के पश्चात करीब ३ वजे डा. बी एन. शर्मा ने प्रांगण मे उपस्थित जनसमूह के समक्ष आकर आपरेशन के बारे मे सभी जानकारी दी कि बायें गुर्दे मे गाठ थी, अतः उसे पूरा-का पूरा निकाल दिया गया है और परीक्षण के लिये आगरा, जयपुर, बीकानेर, बबई आदि के अस्पतालो को गांठ के टुकड़े भेजे जायेंगे। आपरेशन सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ है और मेरा विश्वास है कि गुरुदेव शीघ्र स्वास्थ्य-लाभ प्राप्त करेंगे।

आपरेशन की सफलता और स्थिति को जानकर जनता को सतोष हुआ और आचार्य श्रीजी म. सा के जयघोष के साथ विसर्जित हुई। इस आपरेशन मे डा. श्री बी एन. शर्मा के अतिरिक्त सर्वश्री डा ऋषि, डा. माथुर, डा गुप्ता, डा. शूरवीरसिह, डा. मुरलीमनोहर, डा न्याति, डा. नाहर आदि के अलावा उनके अन्य सहयोगियो का भी पूरा सहयोग रहा।

आपरेशन के समय शांति जाप आदि होने के अतिरिक्त अनेक व्यक्तियो द्वारा मुक्तहस्त से दान किया गया। जिससे पशुओं को घास, दाना, गरीबो को भोजन आदि दिया गया।

यद्यपि आपरेशन गुरुतर था किन्तु चिकित्सको के आत्म-विश्वास एव प्रवीणता से सफल हुआ और सायकाल तक आचार्य श्रीजी

म. सा. की स्वास्थ्य-स्थिति में काफी सुधार दिखलाई देने लगा था।

चिकित्सकों का सम्मान

इस गुरुतर कार्य की सफलता के लिये डा. शर्मा एवं उदयपुर जनरल अस्पताल के अन्य डाक्टरो व उनके सहयोगियो के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने एव धन्यवाद अर्पण करने के लिये उदयपुर श्रीसघ की ओर से दि. २५-११-५९ को एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया। जिसमे समाज के अग्रणी प्रमुख प्रमुख श्रावकों ने डा शर्मा का आभार मानते हुए धन्यवाद दिया। अनन्तर आपरेशन की सफलता की स्मृति मे उदयपुर की मुख्य अस्पताल मे वार्ड निर्माण हेतु समाज की ओर से ११११११'०० की थैली भेंट की गई।

डा. शर्मा ने भेंट को स्वीकार करते हुए कहा कि मैंने अपने कर्तव्य का पालन किया है। मैं तो इसे अपना परम सौभाग्य मानता हूँ कि आप लोगों ने एक उच्च चारित्रवान महात्मा की सेवा का अवसर मुझे दिया। महाराज केवल आपके ही नही हैं, वे मेरे व सबके हैं। अन्य डाक्टरो ने भी इसी प्रकार के उद्गार व्यक्त किये।

श्री जवाहरलालजी मुणोत ने डाक्टर साहब को धन्यवाद देते हुए कहा कि हम राजस्थान के मुख्यमन्त्री श्री सुखाड़िया सा का आभार मानते हैं, जिन्होने महाराज सा के आपरेशन के लिये डा शर्मा सा. जैसे सुयोग्य सिद्धहस्त कुशल चिकित्सक की सेवायें उपलब्ध कराने मे सहर्ष स्वीकृति दी। डा. शर्मा सा. तो विशेष रूप से धन्यवाद के पात्र है, उन्होने ऐसे महापुरुष को सयम पालने मे योग दिया, जिनका चारित्र आदर्श है और समाज जिनका क्रान्तिकारी नेतृत्व चाहती है।

स्वागतसभा उल्लास एवं उत्साहपूर्ण वातावरण मे हुई। 'न हि कृतमुपकारं साधवः विस्मरन्ति' का आशय ही सभा की सफ-लता गर्भित थी। डाक्टरो को अपने प्रति सन्तोष था कि हम एक महापुरुष की सेवा करने का सुयोग प्राप्त कर अपने सौभाग्य को कसौटी पर परखने में सफल हुए है एव चतुर्विध संघ भी निश्चिन्त हो गया

कि जनता के श्रद्धेय स्वस्थ होकर सन्मार्ग की ओर प्रेरित करने के लिये आदेश, उपदेश और प्रेरणा देकर हमारे मार्गदर्शक बनेंगे। यह उपलब्धि सदैव स्मरणीय रहेगी।

सगठन के लिये प्रयत्न

समाज के सौभाग्य से आपरेशन के बाद आचार्य श्रीजी म. सा. के स्वास्थ्य मे दिनोदिन सुधार होता गया। अतः श्रमणसघ की सुदृढता के लिये पुनः प्रयत्न प्रारम्भ किये जाने के बारे मे विचारचर्चा शुरू हुई कि गत्यवरोध के कारणो का उन्मूलन होकर श्रमणसघ सबल बने। लुधियाना से शिष्टमण्डल के असफल होकर लौट आने के बाद यह धारणा बन चुकी थी कि श्रमणसघ निष्क्रिय और नाममात्र का रह गया है। उसके नियमोपनियम पालन करने के प्रति श्रमणवर्ग मे कोई उत्साह नही है। साधुओ द्वारा चतुर्थव्रत के खडन होने की घटनाओ से तो समस्त श्रमणसगठन लडखड़ा गया था।

आचार्य श्रीजी म. सा. के दर्शनार्थ उन दिनो मे जो भी विचारक सेवा मे आते और श्रमणसघीय चर्चा चलती तो आचार्य श्रीजी म. सा. स्वय या आपश्री के आदेश से प. र. मुनिश्री नानलालजी म सा सारे तथ्यो को उनके समक्ष रखते थे और वे सपूर्ण स्थिति को समझकर आचार्य श्रीजी म सा द्वारा दिये गये व्यवस्था सम्बन्धी निर्णयो के प्रति अपना सतोष व्यक्त करके उन्हे सगठन के लिये आवश्यक मानते थे। लेकिन श्रमणसघ बनने के बाद भी मेरे-तेरे की भावना साधुओ और उनके अनुयायी वर्ग मे विद्यमान थी। जिससे योग्य बात को भी पक्षपात और व्यामोह से उचित मानने की तैयारी नही थी। श्रमणसघ नामक सगठन तो छिन्न-भिन्न था ही लेकिन उसका दायित्व लेने के लिये कोई तैयार नही था। इन्ही दिनो श्रमणसघ के गत्यवरोध के निराकरण हेतु उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म सा ने अपनी सप्तसूत्री योजना श्री अ भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स कार्यालय को भेजी।

कान्फरन्स के नेताओ की स्थिति समाज मे बहुत ही आक्षेप-

योग्य बन गई थी । अतः उन्होंने इस सप्तसूत्री योजना के आधार पर श्रमणसंगठन को सबल बनाने के लिये प्रयत्न करना प्रारम्भ किया । दि. २३-२४ जनवरी ६० को कान्फरन्स की साधारण सभा की विशेष बैठक का आयोजन किया गया । उस अवसर पर उपाध्याय श्री की योजना एवं उससे सम्बन्धित उपाध्याय एवं मंत्री मुनियों के अभिप्राय, आचार्य उपाचार्यश्री से एवं अन्यान्य श्रावक-प्रमुखों से हुए पत्र व्यवहार की जानकारी उपस्थित सदस्यों को दी गई । इसके अनन्तर श्री चिमनलाल चकुभाई शाह ने अपने विचार व्यक्त करते हुए बतलाया कि समाज में सम्बन्धित प्रश्न के बारे में दो विचारधाराएं हैं । एक का अभिप्राय है कि आज तक कान्फरन्स ने श्रमणवर्ग के प्रश्नों में अपनी शक्ति लगाई है, इसी कारण कान्फरन्स सामाजिक कार्यों में प्रगति नहीं कर सकी । अतः कान्फरन्स को श्रमणवर्ग के प्रश्न में पड़ना नहीं चाहिये, सिर्फ सामाजिक प्रवृत्तियां ही करनी चाहिये । दूसरा मत यह है कि श्रमणवर्ग में जो-जो प्रश्न उपस्थित हों उनको तय करने में कान्फरन्स को रस लेकर यथाशक्य सब प्रकार से प्रयत्न करना चाहिये । कान्फरन्स यह कार्य नहीं करेगी तो करेगा कौन ? कान्फरन्स ने आज तक श्रमणवर्ग के प्रश्न में रस लिया है और रस लेते रहना चाहिये ।

उक्त मंतव्यों के बारे में अपना मत व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा कि श्रमणवर्ग के कितनेक प्रश्न ऐसे होते हैं जो उनके अन्तरंग जीवन को स्पर्शते हैं । जैसे कि श्रमणवर्ग की समाचारी व अन्तरंग आचारादि विषय उनके अन्तरंग जीवन को स्पर्शते हैं और इन प्रश्नों का निर्णय श्रमणवर्ग स्वयं करे, यह इच्छनीय है, परन्तु श्रमणवर्ग के कितनेक प्रश्न ऐसे होते हैं जिनका प्रत्याघात श्रावकवर्ग पर भी पड़ता है । ऐसे प्रश्नों में श्रावकवर्ग को भी रस लेना चाहिये और सर्वोत्तर निर्णय लेने के लिये सतत प्रयत्न करना चाहिये ।

जैनशासन में चतुर्विध संघ की रचना है और चारों ही तीर्थ परस्पर संकलित हैं अतः एक भी वर्ग की उपेक्षा नहीं की जा सकती है ।

इसके सिवाय शास्त्रों में तो श्रावको को अम्मापियरो माना गया है। अतः श्रमणवर्ग के प्रश्नो मे श्रावको को रस लेना चाहिये और श्रावको की प्रतिनिधि सस्था कान्फरन्स को सक्रिय कारंवाई करना चाहिये।

वर्तमान मे श्रमणवर्ग मे जो परिस्थिति उत्पन्न हुई है और सगठन टूटने जैसा वातावरण दिख रहा है, उसकी जड मे श्रमणसंघ मे प्रवर्तमान ऊचनीच के भेदभाव की भावना मुख्य है। 'हमारे आचार ऊचे, दूसरे हमसे चारित्रपालन मे नीचे' ऐसी मान्यता अभी तक कतिपय श्रमणो मे चलती है और उसके फलस्वरूप सगठन के दृढ होने की अपेक्षा विघटन जैसी परिस्थिति उत्पन्न हो रही है। श्रमणसघ मे अभी जो विवादास्पद प्रश्न पैदा हुए हैं और अनिर्णीत हैं, इनके मूल मे उक्त प्रकार का मानस ही कार्य कर रहा है।

इस द्व्यर्थक वक्तव्य का आशय स्पष्ट था कि श्रमणसघ के समक्ष समाधान के लिये उपस्थित ज्वलत प्रश्नो और उनके बारे मे आचार्य श्री गणेशलालजी म सा. द्वारा दी गई व्यवस्था से समाज का ध्यान हटाकर उनको मुनिवरो के अपने को ऊचा और दूसरे को नीचा मानने के रूप मे प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई। जिससे शिष्टमडल की असफलता के प्रति व्याप्त रोष का रुख आचार्यश्री या मुनिवरो की ओर वदल जाये और समाज पुन. सगठन हेतु नये सिरे से प्रयत्न करने के लिये कान्फरन्स से आग्रह करे और आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा द्वारा अभी तक किये गये प्रयत्नो की ओर ध्यान ही न दिया जाये। इसी को ध्यान मे रखते हुए उक्त अवसर पर प्रस्ताव भी पारित किया गया। जिसका सारांश यह है— इस कमेटी को यह जानकर गहरा दुःख और खेद होता है कि अधिकारी मुनिराजो के मतभेद के कारण श्रमणसघ की स्थिति निर्बल हो रही है। जिससे समस्त स्थानकवासी जैन समाज को बहुत हानि हो रही है। यह जनरल कमेटी श्रमणसंघ के मुनिवरो से आग्रह पूर्वक विनती करती है कि वे अपने मतभेद मिटाकर श्रमणसंघ की व्यवस्था सगठित और कार्यशील

बनायें। इस पुण्यकार्य में जो मुनिराज और श्रावकगण सहयोग देते हैं उनका यह कमेटी स्वागत करती है।

आज की जनरल कमेटी श्रमणसंघ के, समस्त स्था० जैनों के हित में समाज की एकता चाहती है। इस कार्य के लिये निम्न सज्जनों की एक प्रभावक समिति नियुक्त करती है। यह समिति पुनः भगीरथ पुरुषार्थ करके स्थानकवासी जैन समाज की प्रगति के लिये श्रमणसंघ में ऐक्य दृढ करने का प्रयत्न करे। इस समिति के प्रयत्न के बाद, समिति की रिपोर्ट के बाद पुनः यह समग्र प्रश्न आगामी जनरल कमेटी के समक्ष विचारार्थ पेश करे।

१. श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया, अहमदनगर
२. चिमनलालभाई चकुभाई शाह, बंबई
३. श्री मोहनमलजी चोरडिया, मद्रास
४. श्री अचलसिंहजी (कान्फरन्स प्रमुख), आगरा
५. श्री गिरधरभाई दफ्तरी, बंबई
६. श्री छगनमलजी मूथा, बेंगलोर
७. केशरबेन जौहरी, पालनपुर

इस प्रस्ताव से स्पष्ट हो जाता है कि श्रमणसंघ में आगत निर्बलता का मुख्य कारण मुनिवरों का आपसी मतभेद है और उसे दूर करने का प्रयत्न करने के लिये समिति कार्रवाई करे। जबकि बात ऐसी नहीं थी। श्रमणसंघ की अपनी व्यवस्था थी और उसके अनुसार ही श्रमणसंघ के उलझे प्रश्नों के निराकरण एवं शिथिलाचार के मार्गों से समाज में व्याप्त असंतोष को दूर करने के लिये दी गई व्यवस्थाओं के पालन करवाने, दोषी व्यक्तियों का निर्मूलन कर शुद्ध वातावरण बनाने की आवश्यकता थी। इस प्रस्ताव से यह उद्देश्य सफल नहीं होने वाला था और दोषी व्यक्तियों को संतुष्ट करने का विशेष लक्ष्य रखा गया था।

ऐसे प्रस्ताव तो सभी कार्यकारी हो सकते थे जब निर्णय की

दोषी घोषित किया गया हो अथवा आगमिक मर्यादाओं के प्रतिकूल किसी प्रकार का निर्णय दिया गया हो। यह दोनो बाते तो थी ही नही, अत ऐसे प्रस्ताव समस्या को उलझाने वाले एव मूल बात को दूसरे रूप मे प्रस्तुत करने वाले सिद्ध होते हैं। जबकि होना यह चाहिये था कि सगठन की शुद्धता के लिये दिये गये आदेशो व व्यवस्थाओ का पालन करवाने के लिये प्रयत्न कर समाज का वातावरण दोषी व्यक्तियो को उच्छृखल खेलने न देता। लेकिन इससे विपरीत प्रक्रिया ही अपनाई गई।

अगर इसी बात को और स्पष्ट के रूप में कहा जाये तो वस्तुस्थिति यह है कि कुछ साधुओ ने साधुवेष मे रहकर ब्रह्मचर्य भंग जैसी हरकते की और उनके गुट्ट का भण्डाफोड़ हुआ, जिससे समाज को नीचा दिखाने का प्रसग आ रहा था। उस समय कान्फरन्स के वरिष्ठ नेताओ ने आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. के चरणो मे प्रार्थना की कि आपश्री इन सबका फैसला देकर समाज के गौरव को सबल बनाईये। तब आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. ने उन दोषी साधुओ के विषय मे अधिकारी मुनिवरो के परामर्श पूर्वक निर्णय दिये, जिनको सभी ने स्वीकार किया। लेकिन जब अमली रूप देने का प्रसग आया तब उन काण्डो से सम्बन्धित कुछ औरो के भी होने से राजनैतिक ढंग से कुत्सित गुटबदिया बनाकर अमली रूप देने मे गोलमाल करने लगे।

इसके अतिरिक्त ध्वनियत्र आदि की जटिल समस्याओं के विषय मे भी आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. ने अधिकारी मुनिवरों के परामर्श से सुलझाने वाली स्थिति का स्पष्टीकरण कर दिया और उसको स्वीकार कर लिया। लेकिन कुछ निहित स्वार्थी तत्त्वो ने उसमें भी गडबडी पैदा कर दी और पुन. समाज को अन्धकार में रखने के लिए अनेक तरह के प्रयत्न किये गये। उनका परिमार्जन करने के लिए कान्फरन्स के नेताओ को पत्र दिखाये। इस पर उन्होंने स्पष्टरूप से आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. के चरणो मे स्वीकार किया था कि

यहां पर कोई त्रुटि नही है । आपश्री ने जो व्यवस्थायें दी हैं, वे समाज के लिए हितावह हैं और इस प्रकार के प्रयास से ही समाज का शिथिलाचार दूर होगा । संगठन मजबूत बन सकेगा । लेकिन जिन व्यक्तियो ने आपश्री की व्यवस्था में गड़बडी की है, उन व्यक्तियों को हम समझाने का प्रयास करना चाहते हैं आदि कहकर समझाने का प्रयास करने के लिए शिष्टमडल भी बनाया गया, लेकिन शिष्टमडल में दृढ़तापूर्वक कार्य करने की क्षमता अति कमजोर बन गई और हतोत्साह होकर शिष्टमण्डल लौट आया । इसलिये कान्फरन्स के प्रति समाज का उपेक्षा भाव दिनोदिन बढता गया एवं सत्य को स्वीकार करके भी उसे दृढतापूर्वक समाज के समक्ष रखने की शक्ति कान्फरन्स के नेताओ में न रही ।

तब कान्फरन्स के कुछ नेता लोगो ने किसी तरह से अपनी प्रतिष्ठा बनाने के लिए सत्य स्थिति को तोड़-मरोड़कर ऊंच-नीच आदि के व्यर्थ वाक्यो का प्रयोग किया । जिससे सैद्धान्तिकस्थिति और वस्तुस्थिति से जनता का ध्यान हट जाये और येन-केन-प्रकारेण कान्फरन्स व उसके वरिष्ठ नेताओ की प्रतिष्ठा बनी रहे । लेकिन यह स्थिति समाज भलीभाति समझती थी । इसलिए कान्फरन्स की कमेटी के प्रसग पर भूमिका के रूप मे श्री चिमनलाल चकुभाई शाह आदि के वक्तव्य एवं पारित प्रस्ताव आदि का समाज पर कोई असर नही हुआ, बल्कि यह कहने लगी कि अपनी गलती को छिपाने के लिए यह सब कुछ किया जा रहा है । यही कारण है कि उसके पश्चात् कान्फरन्स की प्रतिष्ठा अत्यधिक गिरती गई । कान्फरन्स के नेता अपने अन्तर मे तो प्रायः इसका अनुभव करने लगे थे लेकिन उसको प्रगट करने में सकोच करते रहे । फिर भी समय समय पर कुछ शब्द निकल ही जाते थे । जैसे कि कान्फरन्स की जनवरी १७ में हुई जनरल कमेटी के अवसर पर कान्फरन्स के उपाध्यक्ष श्री सौभाग्यमलजी जैन ने अपने वक्तव्य में कहा था कि—

'स्थानकवासी जैन समाज मे एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह है कि अ. भा श्वे. स्था. जैन कान्फ्रेंस की समाज में उतनी मान्यता आज नही है कि जितनी स्वर्गीय उपाचार्य श्री गणेशलालजी म. के श्रमणसघ से पृथक् होने के पूर्व थी।'

कान्फरन्स की जनरल कमेटी ने अपना प्रस्ताव पारित कर लिया था। अब उसके अनुसार कुछ न-कुछ कार्रवाई करने के लिये दि. १६-२-६० को कान्फरन्स की कार्यकारिणी समिति की बैठक में शिष्टमडल को प्रयत्न करने की सूचना देने का निश्चय किया गया। कान्फरन्स के अध्यक्ष ने देश के विभिन्न क्षेत्रो का प्रवास कर समाज की भावनाओ को समझने का प्रयास किया। लेकिन शिष्टमडल ने अभी तक अपने प्रयत्न प्रारम्भ नही किये थे। इस प्रकार यह अव्यवस्था की कूटग्रथि जैसी की तैसी बनी हुई थी और उसकी ओर देखने का किसी को समय नही था। यह सच है जब सत्य बात भी कूटनीति के चगुल मे फस जाती है तो उसको लबे समय तक टालते रहने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नही रह जाता है।

प्रायश्चित्त सम्बन्धी घोषणा

आपरेशन के पश्चात पूज्य आचार्य श्रीजी का स्वास्थ्य पूर्वापेक्षा उत्तरोत्तर सुधार पर था और साध्वोचित क्रियाओ का भी यथापूर्व अप्रमत्तभाव से अनुसरण करने लगे थे तथा यथाशीघ्र आपवादिक स्थिति मे लगे दोषो का प्रायश्चित्त कर लेना चाहते थे।

इस विषय मे शास्त्रीय दृष्टि से प्रायश्चित्त लेने मे आचार्य श्रीजी म. सा स्वय स्वतन्त्र थे। लेकिन उनकी यह महानता थी कि अपने से दीक्षा मे और पद मे छोटे उपाध्याय श्री आनन्दऋषि जी म. व बहुश्रुत प रत्न मुनिश्री समथमलजी म. को आलोचना भेजकर प्रायश्चित्त लेने के बारे मे राय मागी। उन्होने प्रायश्चित्त लेने मे आप समर्थ होते हुए भी आप छोटे मुनिवरो से जो राय माग रहे हैं यह आपकी महानता है आदि लिखाते हुए चार मास के तप अर्थात् गुरु

चौमासी की सूचना करवाई। इस गुरु चौमासी में तप और छेद दोनों आते हैं लेकिन उनका इशारा तप की तरफ था। लेकिन आचार्य श्रीजी म. सा. ने चार मास का छेद प्रायश्चित्त लिया, जो तप की अपेक्षा अधिक भारी होता है। तदनुसार ता. ९-४-६० स. २०१७ महावीर जयन्ती के दिन सघ के समक्ष आपवादिक स्थिति मे लगे दोषों का शुद्धिकरण करने के लिए दोनो मुनिवरों की राय बताते हुए छेद प्रायश्चित्त ग्रहण किया और साथ ही सेवा मे रहने वाले सतो को भी यथायोग्य प्रायश्चित्त दिया।

प्रायश्चित्त लेने सबधी घोषणा करने के पूर्व सर्व प्रथम आचार्य श्रीजी म. सा. ने सयमी जीवन के सम्बन्ध मे विशद विवेचन किया। पश्चात प्रायश्चित्त के सम्बन्ध मे भाव व्यक्त किये—

'मेरे असाता वेदनीयकर्म के उदय से मेरी जो कुछ भी स्थिति बनी, वह समाज के सामने है। जिस परिस्थिति के अन्दर मुझे आपरेशन के लिये बाध्य होकर आपवादिक स्थिति मे गमन करना पड़ा, उस प्रसग पर आपरेशन के एक दिन पूर्व मे अपना वक्तव्य आप जनता के समक्ष दे चुका हूँ।

'चतुर्विध सघ की शुभ कामनाये मेरे साथ थी और साता वेदनीय का उदय हुआ, जिससे मेरा स्वास्थ्य आज पूर्वापेक्षा ठीक है और मैं आज आप लोगो के समक्ष इस अवस्था मे बैठा हूँ।

'आपरेशन के निमित्त विवशता मे कुछ क्रियाये लगी। फलतः सयमी मर्यादाओ मे दूषण लगा। आपरेशन के बाद डाक्टरों के अभि-प्रायानुसार डीप एक्सरे भी लेना पड़ा। उन सबका शुद्धिकरण मैं जनता के सामने करना चाहता हूँ।

'आज महावीर स्वामी का जन्म दिन है। जनता भी उपस्थित भी अच्छी है। अतः मैं यह स्पष्ट करना हूँ कि आपवादिक [illegible] मे आपरेशन सम्बन्धी जो भी दूषण लगा उनकी मैं शुद्धि करता हूँ।

'इसके लिये मैंने प. रत्न उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी म. से व बहुश्रुत प. रत्न समर्थमलजी म. से अभिप्राय मगवाये। दोनो मुनि-

व.ो ने गुरु चौमासी के लिये अपना अभिप्राय दिया। गुरु चौमासी का मतलव उत्कृष्ट १२० उपवास अथवा चार मास का छेद होता है।

'मैं समस्त चतुर्विध संघ के सामने अपनी शुद्धि के लिये चार मास का दीक्षाछेद रूप प्रायश्चित्त लेता हूँ। तदनुसार जो सभोगी सत मेरे से मेरी निश्चित दीक्षा तिथि से एक दिन से लेकर चार महिने छोटे हैं, वे मेरे से वडे गिने जायेगे। पहले वे मुझे वदन करते थे, पर अव मैं उनको वदन करूगा। क्योकि अव मैं उनसे छोटा होगया हूँ।

'मेरी इस रुग्ण-अवस्था मे मेरे लिये सतो को पथ्य आदि के लिये जो भी लाना पडा उसमे कभी उनको निर्दोप नही मिला तो परिस्थितिवश आधाकर्मी आदि दोषयुक्त भी लाना पड़ा, उसके लिये मैं उनको १२० उपवास का दण्ड देता हूँ।

'इसके अतिरिक्त जिन्होने मेरे साथ ऐसी परिस्थिति मे केवल सभोग रखा उनको मैं चार-चार उपवास का दड देता हूँ।'

कूटनीतिक प्रयास : विघटन की वढती दरार

श्रमणसघ की स्थिति को सुधारने के प्रयत्न अवश्य चालू किये गये लेकिन वास्तविकता को परे रखने से श्रमणसघ की स्थिति को और अधिक उलझाने के प्रयत्न किये जा रहे थे।

श्रमणसघ की अव्यवस्था के मुख्य तीन प्रश्न थे— ध्वनियत्र विषयक निर्णय सुत्तागमे मे होने वाले सूत्रो के पाठान्तरो को रोकने वावत, पाली शिथिलाचार काड के निर्णय को कार्यान्वित करना। लेकिन यह तीनो प्रश्न तो अव गौण वना दिये गये और आचार्य उपाचार्य के मतभेदो को मुख्यता दी जा रही थी। मूल प्रश्न से ध्यान वटाने के लिये पहले से ही प्रयत्न चालू हो गये थे। जिनका सकेत दि. २१-जनवरी ६० को ववई मे हुई कान्फरन्स की विशेष साधारण सभा मे पारित प्रस्ताव और उनके सम्वन्ध मे प्रस्तुत किये गये विचारो से मिलता है।

इसके अनन्तर दिल्ली मे २३-२४ अप्रैल ६० को कान्फरन्स की ओर से आयोजित वृहत् जैन कार्यकर्ता सम्मेलन व गोलमेज परिषद

में व्यक्त विचारों से भी इसकी पुष्टि होती है। गोलमेज परिषद मे पारित प्रस्ताव का मुख्य अंश इस प्रकार है—

'…श्रमणसघ के प्रमुख अधिकारियों में और विशेषकर पूज्य आचार्य श्रीजी एवं पूज्य उपाचार्य श्रीजी के बीच कितनी ही बातों में मतभेद हो गया और गलतफहमी बढती गई।

'श्रमणसघ की व्यवस्था को बनाये रखना तो मुनिराजो और श्रमणसघ के अधिकारियों का दायित्व है। इस परिषद को हार्दिक खेद और दुःख होता है कि प्रमाण मे साधारण-सी दिखने वाली बातों में यह मतभेद तीव्र हुए हैं और परिस्थिति विषम हुई है। यह परिषद दृढता से मानती है कि इन मतभेदो का निराकरण कर श्रमणसघ के कार्यों मे आगत शिथिलता और अवरोध को दूर करने का उत्तरदायित्व मुख्यतया पूज्य आचार्य श्रीजी और पूज्य उपाचार्य श्रीजी पर ही है। श्रमणसघ के प्रमुख मुनिवरो, उपाध्याय मुनिवरों और मत्री मुनिराजों को शीघ्र ही इस कार्य मे सहायता देना चाहिये।……

'ध्वनिवर्धकयन्त्र-प्रयोग के प्रस्ताव सबधी मतभेदो को दूर करने के लिये तत्काल आवश्यक स्पष्टीकरण करके उत्पन्न विषमता को दूर करना चाहिये।

'यह स्पष्ट है कि शिथिलाचार को कोई भी उत्तरदायित्व पूर्ण मुनि अथवा श्रावक प्रोत्साहित नही करना चाहता किन्तु पच महाव्रतों का पालन और सामान्य नियमो का पालन इन दोनो की वास्तविकता के प्रमाण को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।

'इन सबको लक्ष्य में रख पूज्य आचार्य श्रीजी और पूज्य उपाचार्य श्रीजी से अपने मतभेदो को दूर करने के लिये यह परिषद आग्रहपूर्वक अभ्यर्थना करती है और साथ ही इस कार्य मे सहयोग देने को प्रमुख मुनिराजों से विनती करती है।… '

इसी प्रस्ताव मे यह भी उल्लेख था कि यदि सभी तरह मतभेदों का निराकरण न हो तो आवश्यकता पडने पर प्रमुख मुनिराज और

श्रावको की मध्यस्थता द्वारा अन्तिम निर्णय ले । इसका आशय यह था कि आचार्य श्री गणेशलालजी म सा के वैधानिक आदेशो और वैद्य उपायो की अवहेलना कर प्रकारान्तर से उनकी अवगणना करके सिद्धान्त और चारित्रहीन थोथे सगठन को टिकाये रखने के लिए एवं समाज मे अपनी प्रतिष्ठा कायम रखने का प्रयास हो ।

इस प्रकार के वक्तव्य देना और प्रस्ताव पारित करना सिर्फ अपनी गलती को महसूस न करके दूसरो पर उत्तरदायित्व डालने आदि से जनता को गुमराह करने का प्रयास कुटिल राजनैतिक तरीको से पैतरा बदलना कहा जा सकता है । इस दृष्टिकोण का परिणाम ही यह हुआ कि शनैः-शनैः श्रमणसघ का अनुशासन भग होता गया और साधु-सन्तो को यथेच्छा प्रवृत्ति करने का अवसर मिलता रहा । जिससे श्रमणसघ की विस्फोटक परिस्थिति दिनोदिन गभीर बनती गई ।

श्रावक और साधुवर्ग यह अच्छी तरह से मानता है कि श्रावक को श्रावकधर्म और साधु को साधुधर्म का पालन करना चाहिये । लेकिन अन्धश्रद्धा और धार्मिक भावुकता की ओट मे बढने वाले स्वच्छन्दाचार के कारण श्रमण-जीवन की स्थिति निर्बल होना पूज्य और पूजक दोनो के लिये भयावह है । आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. इस भयावह स्थिति के परिणामो से चतुर्विध सघ को परिचित कराकर निर्ग्रंथ श्रमण-परम्परा की सुरक्षा के साथ श्रमणसघ को मजबूत बनाने मे प्रयत्नशील थे । जबकि समाज के कतिपय कार्यकर्ता इस ओर लक्ष्य न कर नाममात्र के श्रमणसघ का रट लगाते थे । उनका मतव्य था कि जैसे-तैसे श्रमणसघ का नाम बना रहे । इसी विचारधारा को केन्द्रबिन्दु मानने का यह परिणाम हुआ कि वे आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. की विचारधारा के मूल तक नहीं पहुच पाये और उसका कुछ इस प्रकार का रूप बनाया गया कि मानो श्रमणसघ को खडित करने मे आचार्य श्रीजी के आदेश कारणरूप हैं ।

लेकिन जो साध्वाचार की मर्यादाओ से परिचित हैं तथा जिन्हे श्रमणधर्म का ज्ञान है वे आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा के निर्णयो

को आवश्यक, संवैधानिक एवं उपादेय मानते थे। लेकिन ऐसे मर्मज्ञ संख्या में अल्प थे। बहुमत की दृष्टि में अल्पमत हेय, उपेक्षणीय रहता है और यही बात इनके लिये भी हुई। उनकी सत्य एवं तथ्यपूर्ण बात को सुनने का किसी को अवकाश नहीं था और अवकाश भी हो तो अपने पूर्वाग्रह से निर्मित विचारों को बदलने का साहस नहीं था।

शिष्टमंडल का परिभ्रमण

आचार्य श्रीजी म. सा. का आपरेशन के पश्चात स्वास्थ्य उत्तरोत्तर सुधरता जा रहा था। थोड़ा-बहुत घूमना भी प्रारम्भ हो चुका था। सं. २०१७ के चातुर्मास के लिये विभिन्न क्षेत्रों के श्रावक-संघों के प्रतिनिधिमंडल विनती के लिये उपस्थित होते थे। लेकिन अभी शारीरिक स्थिति इतनी अच्छी नहीं थी कि शेष काल के लिये भी उन क्षेत्रों की ओर विहार हो सके और उदयपुर श्रीसंघ की बार बार साग्रह विनती होती रहती थी कि आपश्री उदयपुर विराजकर ही आत्म-साधना करते हुए हमें ज्ञान-ध्यान-तप-साधना का उपदेश देकर कृतार्थ करें। इन दोनों स्थितियों को देखते हुए द्रव्य क्षेत्र-काल-भावानुसार समय समय पर उदयपुर के उपनगरों में विहार कर पुनः नगर के मध्य स्थित पंचायती नोहरे में पदार्पण करते थे।

सं. २०१७ के चातुर्मास में उदयपुर विराजना हुआ।

श्रमणसंघीय स्थिति जटिल बनी हुई थी। दि. २३, २४ अप्रैल ६० को कान्फरन्स की ओर से आयोजित गोलमेज परिषद के शान्ति प्रस्तावानुसार संवत्सरी तक श्रमणसंघ के गत्यवरोध का निराकरण संभव नहीं हो सका था।

संवत्सरी तक गत्यवरोध का निराकरण न होने पर उक्त प्रस्ताव में कान्फरन्स की जनरल कमेटी का अधिवेशन करके आवश्यक कार्यवाही करने तथा आवश्यकता पड़ने पर प्रमुख मुनिराजों एवं श्रावकों की मध्यस्थता द्वारा निर्णय लेने का अधिकार जनरल कमेटी को देने का समर्थन किया गया था।

अत. इस सकेतानुसार यह आवश्यक हो गया था कि कॉन्फ्रेन्स की जनरल कमेटी शीघ्र बुलाई जाये और प्रमुख मुनिराजो व श्रावको की मध्यस्थता द्वारा अन्तिम निर्णय लिया जाये। इन कार्यों की पूर्ति हेतु दि २४, २५ सितम्बर ६० को बबई मे कान्फरन्स की जनरल कमेटी की बैठक करने एव प्रमुख मुनिराजो की सेवा में श्रावकों का शिष्टमडल भेजने का निश्चय किया गया।

शिष्टमडल प्रधानमन्त्री श्री मदनलालजी म. सा. एवं उपाध्याय श्री अमरचन्दजी म. से मिला और आचार्य श्री आत्मारामजी म. की सेवा मे भी उपस्थित होना था, लेकिन वहा क्यो नहीं गया, आज तक ज्ञात नही हो सका। दिनाक १६-६-६० को दिल्ली मे होने वाली कान्फरन्स की कार्यकारिणी समिति की बैठक मे शिष्टमडल ने अपना विवरण प्रस्तुत किया।

अवैधानिक घोषणा

समिति की बैठक के बाद शिष्टमडल पूज्य आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. की सेवा मे भी उपस्थित होने वाला था कि इसी बीच अन्दर-ही अन्दर जोड़-तोड करने वाले तत्त्वो ने दि. १५-६-६० को आचार्य श्री आत्मारामजी म. सा. से श्रमणसघ के गत्यवरोध के निराकरण के नाम पर आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. के अधिकार लेने सम्बन्धी निम्नलिखित अवैधानिक घोषणा प्रकाशित करवाई—

'श्रमणसघ की व्यवस्था करने हेतु सन् १९५२ में जो अधिकार मैंने श्री उपाचार्य श्रीजी म सा. को दिये थे, वे अधिकार सघ-एकता और सघशाति की दृष्टि से सघ को अखडित रखने के लिये वापस लेता हूँ और जब तक साधुसमेलन न हो तब तक श्रमणसघ के उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी म., उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म., उपाध्याय कवि श्री अमरचन्दजी म., प्रातमत्री श्री पन्नालालजी म. तथा प्रान्तमत्री श्री शुकलचदजी म इन पाच मुनिराजो की कायवाहक समिति को सौंपता हूँ जो प्रायश्चित्त आदि

श्रमणसंघ सम्बन्धी सभी कार्य सम्पन्न करेगी। इस समिति का कार्य संचालन उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी म. करेंगे। मुझे आशा है कि श्रमणसंघ के मन्त्रीमंडल तथा समस्त मुनि महाराज एवं महासतीजी म. कार्यवाहक समिति को श्रमणसंघीय प्रत्येक कार्य में सक्रिय सहयोग देंगे।

लुधियाना रामरतनलाल

१५-६-६० प्रेसीडेन्ट एस. एस. जैन ब्रादरी लुधियाना

शिष्टमंडल के उदयपुर प्रस्थान करने तक भी उक्त अवैधानिक घोषणा की जानकारी चतुर्विध संघ को नहीं हो सकी थी। शिष्टमंडल दि. १६-६-६० को दिल्ली से प्रस्थान कर अजमेर, ब्यावर, गुलाबपुरा, विजयनगर होते हुए उदयपुर पूज्य आचार्य श्रीजी की सेवा में उपस्थित हुआ। शिष्टमंडल में सर्वश्री सेठ अचलसिंह जी आगरा, सेठ मोहनमलजी चोरडिया मद्रास, सरदारमलजी कांकरिया कलकत्ता, खीमचंदभाई वोरा बंबई, धीरजलालभाई तुरखिया, चिमनलाल चकूभाई बंबई, सेठ छगनमलजी मूथा बेंगलोर, जवाहरलालजी मुणोत अमरावती और श्री नाथूलालजी सेठिया रतलाम आदि सज्जन सम्मिलित थे। शिष्टमंडल की श्रमणसंघ के प्रश्नों के प्रत्येक पहलू पर चर्चा हुई। शिष्टमंडल के समक्ष श्रमणसंघ की समस्यायें और उनके सम्बन्ध में आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. की विचारधारा स्पष्ट थी। आपश्री शास्त्रीय मर्यादाओं और साध्वाचार के विपरीत अथवा द्रव्य-क्षेत्र-कालभाव की सुविधा के नाम पर ऐसा कोई भी समाधान नहीं चाहते थे, जिससे श्रमण संस्था में शिथिलाचार, स्वैराचार को प्रश्रय मिले। उनकी एक ही भावना थी कि साधु साधु हो, साधुता के प्रति निष्ठा हो और चतुर्विध संघ में अकर्मण्यता को प्रसार का मौका न मिले।

शिष्टमंडल के समक्ष इन्हीं सब बातों को स्पष्ट कर दिया गया था। शिष्टमंडल आचार्यश्री के विचारों से सहमत था। शिष्टमंडल के सदस्यों ने व्यापक में भी चर्चा-वार्ता की और निश्चय किया गया कि

आगामी दि. २४, २५ सितम्बर ६० को बबई मे होने वाली कान्फरन्स की जनरल कमेटी की बैठक मे पूज्यश्री गणेशलालजी म सा. के विचारों के अनुकूल कार्रवाई करने का निर्णय किया जाये ।

श्रमणसघीय गत्यवरोध के निराकरण के लिये आचार्यश्री आत्मारामजी म. द्वारा की गई अवैधानिक घोषणा के सम्बन्ध मे उदयपुर श्रीसघ के सदस्यो ने जब शिष्टमडल के प्रमुख सदस्य श्री चिमनलाल चकूभाई शाह से जानकारी चाही तो उनकी भाव-भगिमा से प्रतीत हुआ कि कम-से-कम घोषणा के सम्बन्ध मे उनको कुछ भी जानकारी नही है और न ऐसा करने में हाथ है । शिष्टमडल के रुख से ऐसा दिखा कि बबई पहुंचते ही उक्त घोषणा को वापस लिवाने का प्रयत्न करेगा । उदयपुर से शिष्टमडल रतलाम होते हुए बंबई रवाना हो गया ।

जनरल कमेटी का अवैधानिक प्रस्ताव

दि २४, २५ सितम्बर ६० को कान्फरन्स की जनरल कमेटी मे श्रमणसघ के गत्यवरोध के बारे मे चर्चा हुई । किसी ने कहा कि इसके बारे मे अपने माने हुए दायरे की दृष्टि से विचार न कर समस्त समाज व श्रमणसघ को दृष्टि मे रखकर विचार करे तो किसी ने कहा कि पुराना भूल जायें और फिर नई कार्रवाई प्रारम्भ की जाये तो यह प्रश्न बडी सरलता से सुलझ सकता है । इन विचारो का साधारण आशय यह हुआ कि अभी तक श्रमणसघ के सगठन को निर्बल बनाने वाले प्रश्नो पर किसी प्रकार का विचार न किया जाये और सगठन की आड मे चलने वाले पापाचार पर पर्दा डाल दिया जाये । सगठन के नाम पर हुई अवैधानिक घोषणा भी बरकरार रहे और आचार्यश्री गणेशलालजी म. सा. से प्रार्थना की जाये कि वे पूर्ववत श्रमणसघ का सचालन करते रहे । लेकिन उक्त विचारो के सम्बन्ध मे यह विचारणीय है कि क्या अवैधानिक कार्रवाई के साथ वैधानिक परम्परा का सुमेल बन सकता है ? क्या अवैधानिकता से उत्पन्न उच्छृखल स्थिति में

वैधानिक नियमों का पालन होता रहेगा ?

इस चर्चा से एक और तथ्य सामने आया कि शिष्टमंडल का लुधियाना न जाना एक नाटक ही था तथा अवैधानिक घोषणा करवाने में कान्फरन्स के अग्रणी सज्जनों का हाथ अवश्य था। अन्यथा जो श्री चिमनलाल चकुभाई शाह उदयपुर में कह गये थे कि घोषणा को वापस लिवाने के लिये प्रयत्न करेंगे, वे ही जनरल कमेटी के समक्ष भ्रमात्मक प्रस्ताव न रखते, जिसमें अवैधानिक घोषणा के साथ सवैधानिक न्यायनीति युक्त आदेशों को भी वापस लेने का उल्लेख किया गया था। तत्सम्बन्धी अंश इस प्रकार है—

'वातावरण की शुद्धि और भविष्य के कार्य की सरलता के लिये पूज्य आचार्य श्री व पूज्य उपाचार्य श्री की तरफ से भीनासर सम्मेलन के बाद जो परस्पर निवेदन प्रगट हुए हैं, जिनमें पूज्य आचार्य श्री की तरफ से ता. १५ सितम्बर ६० के रोज हुई घोषणा का तथा पूज्य उपाचार्य श्री की तरफ से उनका २२-९-६० को दिये गये उत्तर का समावेश होता है - ये सब तुरन्त ही वापस लेने का यह जनरल कमेटी पूज्य आचार्य श्री व पूज्य उपाचार्य श्रीजी को आग्रह पूर्वक विनती करती है।'

इस अंश से स्पष्ट हो जाता है कि जनरल कमेटी ने श्रमण-संघ के गत्यवरोध के निराकरण में वास्तविकता को छिपाकर परिस्थिति को बिगाड़ने में और अधिक योग दिया। इसी कारण सदस्यों द्वारा प्रस्ताव का विरोध हुआ और सिर्फ बहुमत के बल पर पारित करवाकर श्रमणसंघ की खाई और चौड़ी कर दी।

घोषणा की अवैधानिकता के सम्बन्ध में

श्रमणसंघ के गत्यवरोध के निराकरण के नाम पर दि. १५-९-६० को आचार्य श्री आत्मारामजी म. द्वारा प्रसारित घोषणा क्या श्रमणसंघ के विधान के अनुकूल थी या नहीं, और क्या आचार्य श्री आत्मारामजी म. ऐसी घोषणा करने के अधिकारी भी थे या नहीं ? एतद्-

विषयक कुछ तथ्यो पर प्रकाश डालते हैं ।

सादडी मे श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमणसघ की स्थापना विभिन्न सप्रदायो के एकीकरण, पारस्परिक प्रेम और ऐक्यवृद्धि करने एव सयममार्ग मे उत्पन्न विकृतियो को दूर करने के उद्देश्य से हुई थी । उस अवसर पर श्रमणवर्ग मे वृद्ध और जैनागमो के ज्ञाता होने से पूज्य श्री आत्मारामजी म. के प्रति श्रद्धा और सम्मान प्रदर्शन हेतु श्रमणसघ ने उनको सिर्फ सम्मान के लिये आचार्य नियुक्त किया था । साथ ही उनकी शारीरिक अक्षमता को दृष्टि में रखते हुए पूज्य श्री गणेशलालजी म को आचार्य के समस्त अधिकारो के साथ उपाचार्य नियुक्त किया और श्रमणसघ के सचालन का उत्तारदायित्व उन्हे सौंपा था । अत· आचार्य श्री आत्मारामजी म. की उक्त घोषणा श्रमणसघ मे प्रारम्भ से विद्यमान आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. की वधानिक स्थिति को प्रभावित करने मे निष्फल एव निष्क्रिय थी ।

इसी बात की पुष्टि श्रमणसघ के विधान की धाराओ और कार्रवाई तथा उसमे भाग लेने वाले सतो के विचारो व श्रावको की ओर से उपस्थित श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया के मतव्य से भी होती है ।

श्रमणसघ के विधान की धारा १, २ इस प्रकार हैं—

१—इस श्रमणसघ के एक आचार्य रहेगे, जिनकी नेश्राय मे में सघ के सब साधु-साध्वी रहेगे ।

२—आचाय श्री अतिवृद्ध हो अथवा कार्य करने मे अक्ष हो तो मत्रीमडल उपाचार्य नियुक्त करेगे और उपाचार्य जी आचार्य जी के सब अधिकार सम्हालेगे ।

पूज्य आत्मारामजी म. को सम्मान की दृष्टि से आचार्य नियुक्त अवश्य किया गया था किन्तु उनके अक्षम होने से सघ-सचालन के लिये सभी अधिकारो के साथ उसी समय उपाचार्य पद (वस्तुतः जिसमे शाब्दिक भेद है किन्तु आचार्य पद के पूर्ण अधिकार थे) पर पूज्य श्री गणेशलालजी म. सा. को प्रतिष्ठित कर प्रस्ताव स. २१ के

अनुसार आचार्य पद की चद्दर सं. २००६, वैशाख शुक्ला १३ बुध-वार को दिन के ११ बजे सादडी में पूज्य श्री गणेशलाल जी म. सा. को ओढाई गई थी तथा उपस्थित मुनियों ने आपश्री के चरणों में प्रतिज्ञापत्र भेंट किये थे। इससे सिद्ध हो जाता है कि आचार्य श्री आत्मारामजी म. को श्रमणसंघ के सचालन की व्यवस्था अथवा उसके सम्बन्ध में हस्तक्षेप करने के अधिकार नही थे। अतः आचार्य श्री आत्मारामजी म. की इस अवैधानिक घोषणा का न तो कोई मूल्य था और न उसके करने के वे अधिकारी ही सिद्ध होते हैं।

विधान की धाराओ और उनकी पालना के उल्लेख के पश्चात कुछ और तथ्य उपस्थित किये जा रहे है। जिनसे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि आचार्य श्री आत्मारामजी म. सम्मान की दृष्टि से ही आचार्य थे और सघ-सचालन की सत्ता उनमे निहित नही थी।

साधुसम्मेलन के पश्चात पजाब से आचार्य, उपाचार्य के पद व अधिकारो के सम्बन्ध मे कुतर्क उठाये गये तब कान्फरन्स के तत्का-लीन अध्यक्ष श्री चपालालजी बांठिया ने श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया जो श्रावको की ओर से साधुसम्मेलन की कारंवाई मे भाग लेते थे, को पत्र लिखकर इस सम्बन्ध मे पूछा। प्रत्युत्तर में श्री फिरोदिया जी ने अहमदनगर से दि. १६-६-५२ को पत्र द्वारा स्पष्टीकरण किया। पत्र का सम्बद्ध अंश इस प्रकार है—

'मुख्य प्रश्न यह है कि जब यह संघ बना तब बनाने वालों का हेतु क्या था ? प्रस्ताव नं. १८ के अनुसार आचार्य और उपाचार्य इन दोनों की नियुक्ति मुनिराजों ने की है। ...... पंजाबसंघ के मंत्री श्री कृष्णकान्तजी ने जो अर्थ निकाला है कि उपाचार्य का पद यों ही है ......इससे मैं सहमत नहीं हो सकता। आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज अभी मौजूदा जो मुनिराज हैं उनमें वृद्ध, अनुभवी और ज्ञानी हैं। इसी सबब से उनको आचार्य के पद वास्ते पसन्दगी हुई। परन्तु यह पसन्दगी करने के वक्त पर ही सभी मुनिराजों ने यह मंजूर

कि उनकी शारीरिक और मानसिक स्थिति को देखते हुए उनसे यह काम का बोझ उठाया नही जा सकेगा। उसके लिये साथ साथ उपाचार्य की नियुक्ति की। यह करने का कारण ही बधारण कलम २ मे दिया हुआ है। यह उनका मतव्य न होता तो साथ-साथ ही उपाचार्यश्री की नियुक्ति करने की जरूरत न थी। आचार्य श्री फिलहाल (वर्तमान समय) मे अपना काम सम्हालने योग्य होते तो उपाचार्य की नियुक्ति तावडतोड़ करने की जरूरत न थी।......... परन्तु यहा तो वर्तमान परिस्थिति मे तावडतोड़ ही आचार्य की नियुक्ति के साथ उपाचार्य नियुक्त हुए, इससे आचार्यश्री को सम्मान का स्थान दिया गया। परन्तु कार्य करने का सब अधिकार उपाचार्य श्री को ही है, यह बात पृष्ठ ५६, कलम २ मे स्पष्ट है। पृष्ठ ६० पर जो बात लिखी गई है वह वर्तमान समय मे लागू न होते हुए भविष्य मे कोई आचार्य वृद्धावस्था के कारण अथवा अन्य कारणो के सबब आचार्य का पूरा काम सम्हालने मे समर्थ स्वत को न समझें तो वह उपाचार्य की नियुक्ति मत्रीमडल की सलाह से कराकर कुछ अधिकार और कार्यक्षेत्र उनको दे सकते हैं।'

इस वस्तुस्थिति के स्पष्टीकरण से वर्तमान और भविष्य की दोनो दृष्टिया स्पष्ट हो जाती हैं एव वतमान मे आचार्यश्री द्वारा अधिकार देने-लेने का प्रश्न ही नही उठता। इसी सम्बन्ध मे मत्री मुनिश्री पुष्करमुनिजी के विचार भी प्रस्तुत कर रहे हैं। जो उन्होने कान्फरन्स को दिये गये उत्तर मे व्यक्त किये थे--

'बधारण की द्वितीय धारा से यह स्पष्ट हो जाता है कि उपाचार्य श्री की नियुक्ति आचार्य श्री की अति वृद्धावस्था व कार्य करने की अक्षमता से हुई है। यदि आचार्य श्री कार्य करने मे सक्षम होते तो प्रथम धारा के अनुसार उपाचार्य श्री की नियुक्ति नही हो सकती थी। इस दृष्टि से कार्यवाहक तरीके उपाचार्य श्री ही माने जा सकते हैं, जैसे राजस्थान के महाराजप्रमुख व राजप्रमुख। उपाचार्य के

कर्तव्य और अधिकार की धारा साररहित है ।'

इस स्पष्टीकरण से भी यही सिद्ध होता है कि आचार्य श्री का पद सम्मान की दृष्टि से है और उपाचार्यश्री ही श्रमणसंघ के संचालन के लिये अधिकार-सम्पन्न हैं । अतः आचार्यश्री की अवैधानिक घोषणा का कोई मूल्य नहीं रह जाता है और न वैसा करने का उन्हें कोई अधिकार ही था ।

अब स्वयं पूज्य आचार्य श्री आत्मारामजी म. के विचार भी उपस्थित करते हैं । जिनसे स्पष्ट हो जायेगा कि वे स्वयं अपने को श्रमणसंघ के संचालन में योग देने वाला नहीं मानते थे । वे श्रमणसंघ के निर्माण हो जाने के निकटवर्ती काल में यह मानते थे कि श्रमणसंघ के संचालन के पूर्ण अधिकार विधान की दृष्टि से उपाचार्यश्री को ही हैं । एक बार कान्फरन्स का प्रतिनिधिमंडल जब लुधियाना गया था तब आचार्य श्री ने प्रतिनिधिमंडल को फरमाया था कि उपाचार्यश्री को सब अधिकार प्राप्त हैं अतः प्राप्त फरियादों पर यथार्थ प्रकार से यथाशीघ्र निर्णय करना चाहिये और करेंगे । उसी समय दूसरे प्रश्न के उत्तर में आचार्य श्री ने फरमाया था कि उपाचार्य श्री को इस पर अधिक विचारने का है, क्योंकि श्रमणसंघ का सक्रिय संचालन आप ही के ऊपर है ।

उक्त उद्धरण यह स्पष्ट संकेत कर रहे हैं कि श्रावकवर्ग साधु-वृन्द और स्वयं पूज्य आत्मारामजी म. मानते हैं कि श्रमणसंघ संचालन के पूरे अधिकार विधानानुसार पूज्य आचार्य श्री गणेशलालजी म सा. को प्राप्त हैं । अतः आचार्य श्री आत्मारामजी म. द्वारा अधिकार लेने-देने सम्बन्धी ता० १५-६-६० की घोषणा साररहित है, अवैधानिक है और श्रमणसंघ की व्यवस्था को गहित करने वाली है ।

अब श्रमणसंघीय विधान की सम्बन्धित धाराओं के बारे में भी चर्चा कर देना चाहते हैं । श्रमणसंघीय विधान की धारा २ में स्पष्ट उल्लेख है कि आचार्य श्री अतिवृद्ध हों अथवा कार्य करने में

अक्षम हो तो मत्रिमडल उपाचार्य नियुक्त करेगा और उपाचार्य श्री आचार्य श्री के सब अधिकार सम्भालेंगे।' इस धारा मे तो' 'और सब' अधिकार' वाले शब्द बहुत महत्त्व के हैं। आचार्य श्री कार्य करने में अक्षम हो तो ही उपाचार्य की नियुक्ति का विधान किया गया है। सादडी साधुसम्मेलन ने आचार्य श्री की नियुक्ति के साथ-साथ ही उपाचार्य श्री की नियुक्ति की है। इसका स्पष्ट अर्थ ही यह है कि सम्मेलन मे एकत्रित सभी प्रतिनिधि मुनिराजों ने आचार्य श्री को कार्य करने मे अक्षम मान लिया था और इसीलिये सर्वानुमति से पूज्य श्री गणेशलालजी म. सा. को उपाचार्य पद पर विभूषित किया। यदि प्रतिनिधि मुनिवरो का ऐसा मतव्य न होता तो उसी समय ही उपाचार्य श्री की नियुक्ति की जरूरत न थी। इसलिये पूज्यश्री गणेशलालजी म. सा जब उपाचार्य पद पर विभूषित किये गये तो विधानानुसार श्रमण-सघ के सचालन के आचार्य पद के सब अधिकार उपाचार्य श्री को स्वतः ही प्राप्त हो गये। यह बात इतनी निर्विवाद है कि और स्पष्टी-करण की आवश्यकता नहीं रहती है।

एक बात का और सकेत कर देना चाहते हैं कि श्रमणसघ के आचार्य, उपाचार्य को आजीवन के लिये साधुसम्मेलन मे प्रतिष्ठित किया गया था और श्रमणसघ के कार्यसचालन का समस्त अधिकार पूज्यश्री गणेशलालजी म सा. को सौंपा गया था। इसलिये आचार्य श्रीश्री म. द्वारा अधिकार देने-लेने सम्बन्धी घोषणा का कोई अर्थ नहीं रहता है। अधिकार किसको है यह पूर्व मे उल्लिखित उद्धरणो से सुस्पष्ट है।

अवैधानिक घोषणा के सम्बन्ध मे उदयपुर श्रीसंघ का उत्तर

जब आचार्य श्री आत्मारामजी म. का पत्र और अवैधानिक घोषणा श्री वर्धमान स्था. जैन श्रावक सघ उदयपुर को प्राप्त हुई तो उसे पूज्य आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा की सेवा मे उपस्थित कर अपने भाव फरमाने की प्रार्थना की। इस पर आचार्य श्रीजी म.

सा. ने जो भाव फरमाये, उनका समावेश करते हुए दि. २२-६-६० को उदयपुर संघ के मंत्री द्वारा लुधियाना संघ के मंत्री को निम्नलिखित उत्तर दिया गया—

उदयपुर
दि २२-६-६०

सेवा में

श्रीमान् ईश्वरदास जी
मंत्री श्री स्थानकवासी श्रावक संघ
लुधियाना।

सादर जयजिनेन्द्र। आपका पत्र दि १७ सितम्बर १९६० का रजिस्ट्री द्वारा प्राप्त हुआ। उसके साथ आचार्य श्रीजी म सा. की घोषणा की नकल भी मिली। मैंने पत्र तथा उस घोषणा की प्रतिलिपि परम श्रद्धेय श्रमणसंघशिरोमणि पूज्य उपाचार्य श्रीजी म. सा. की सेवा में उपस्थित कर जिज्ञासा प्रकट की कि क्या आचार्य श्रीजी म. को अधिकार देने-लेने सम्बन्धी यह घोषणा सादड़ी सम्मेलन में उपस्थित प्रतिनिधि मुनिवरों द्वारा श्रमणसंघ संचालन की व्यवस्था सम्बन्धी सर्वानुमति से जो निर्णय हुआ, उसके अनुसार है या क्यों कर? तो मेरी प्रार्थना पर उत्तर में निम्न आशय के भाव फरमाये, वह आपके सूचनार्थ लिख रहा हूँ—

'सादड़ी में एकत्रित समस्त प्रतिनिधि मुनिवरों ने मिलकर श्रमणसंघ संचालन की व्यवस्था हेतु सर्वानुमति से जो चुनाव किया, वह कार्यवाही आप देख सकते हैं। मैं अपने मुँह से कुछ कहूँ इसके मुकाबले तो प्रतिनिधि मुनिवरों ने क्या कहा है, उसे ही आप देख लें। जिससे सारी स्थिति आपको स्पष्ट हो जायेगी।

'सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र की रक्षा के साथ शासनोन्नति हो, इस दृष्टि से मैं सादड़ी-सम्मेलन में गया था। अधिकार सम्बन्धी मेरी कोई भावना नहीं थी और न मैं इस दृष्टिकोण से ही गया था।

परन्तु सादड़ी वृहत्साधु-सम्मेलन में एकत्रित प्रतिनिधि मुनिवरो ने श्रमणसघ सचालन के लिये मेरी सेवा लेनी चाही तो मेरी इच्छा नही होते हुए भी, मैं श्रमणवर्ग के आग्रह को नही टाल सका। जब श्रमणवर्ग ने मिलकर सर्वानुमति से श्रमणसघ सचालन का भार मुझे सौंपा तो मेरा कर्तव्य हो गया कि मैं भगवान महावीर की पवित्र श्रमण-सस्कृति की शुद्धता को अक्षुण्ण रखने के लिये सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र के सरक्षणार्थ आत्मसाक्षी से संघहितार्थ कार्य करू। तदनुसार इसी शुद्धदृष्टि से व्यवस्था आदि कार्य किये हैं और श्रमणसघीय व शास्त्रीय समाचारी तथा उसके सरक्षणार्थ शिथिलाचार व ध्वनियन्त्र आदि विपयक व्यवस्थाये दी और निवेदन प्रसारित किया। उन व्यवस्थाओं और निवेदन को मेरी अन्तरात्मा आज भी सघहितार्थ उचित मानता है। मैंने निवेदन मे स्पष्ट कहा है कि जो श्रमणवर्ग शास्त्रीय एव श्रमणसघीय समाचारी का तथा उनके सरक्षणार्थ यहा से की गई व्यवस्था का पालन करेगा उसी श्रमणवर्ग के साथ श्रमणसघीय साम्भोगिक व्यवहार आदि रह सकेगा। मै उस पर आज भी दृढ हूँ।'

उपाचार्य श्रीजी म. सा. द्वारा उपरोक्त भाव फरमाने पर मैंने उनसे पुनः प्राथना की कि क्या श्रमणसघीय विधान और नियमानुसार आचार्य श्रीजी द्वारा उपाध्यायो और कुछ मन्त्री मुनिवरो को समान अधिकार के एक स्तर पर लाकर उनकी कार्यवाहक समिति बनाकर श्रमणसघ सम्बन्धी कार्य सौंपना क्या वैधानिक है ? तो उत्तर मे भाव फरमाये कि 'श्रमणसघीय नियम और विधान मे ऐसी कोई व्यवस्था नही है। इसलिये ऐसे कार्य को वैधानिक नही ठहराया जा सकता।'

इसके बाद मैंने सादडी-सम्मेलन की आचार्य पद पर नियुक्ति-सम्बन्धी कार्यवाही देखी। शायद आपके ध्यान मे वह कायवाही नही हो, अतः आपकी जानकारी हेतु उस कार्यवाही का

सम्बन्धित अंश यहां उद्घृत कर रहा हूँ।

सादड़ी सम्मेलन में प रत्न उपाध्याय कवि श्री अमरचन्दजी म. सा. ने उपस्थित सभी प्रतिनिधि मुनियों की तरफ से पूज्यश्री गणेशलालजी म. के उपाचार्य पद ग्रहण करने के समय पर निम्न वक्तव्य फरमाया—

मैं दो वर्षों से पूज्यश्री के परिचय में आया हूँ। आगरा और देहली में मुझे चरणसेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ है। मैंने सुन रखा था कि पूज्यश्री चट्टान की तरह कठोर हैं व अनुशासन में पूरे कड़क कदम उठाते हैं। परन्तु प्रत्यक्ष दर्शन करने और सेवा में रहने का प्रसंग आने पर मुझे अनुभव हुआ कि अनुशासन के नाते जितने कठोर हैं उससे ज्यादा नर्म एवं उदार भी हैं।

हमने आचार्य पूज्यश्री आत्मारामजी म. को नियत किया है, परन्तु शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा न होने के कारण वे एक स्थान में ही केन्द्रित हैं। उनकी साहित्यसेवा से संघ ऋणी है। इसी हेतु से उनके प्रति श्रद्धा एवं सद्भावना प्रगट की गई है, परन्तु हमारे विराट संघ को अनुशासित करने के लिये योग्य आचार्य की आवश्यकता है। जो साधु साध्वी और श्रावकसंघ में श्रद्धा और प्रेम की लहर पैदा कर सके। पूज्यश्री गणेशलालजी म. ही इस पद के योग्य हैं। हम देखते आ रहे हैं कि छोटे-मोटे साधुओं के आचार्य चुने जाते हैं, उसमें भी एकाध दलित अड़े रहते हैं। परन्तु अखिल भारतवर्ष के लिये आपको सर्वानुमति से नियुक्त कर रहे हैं। मुनिमण्डल आपके शासन की आवश्यकता महसूस करता है। अतः मैं निवेदन करूंगा आप हमारी तुच्छ विनती को जरूर स्वीकार करेंगे।

आपके पीछे पूरा संघ तैयार है। आप जो भी आज्ञा प्रदान करेंगे, हम उसे पूर्ण रूप देंगे। बहुत दिनों का बिछुड़ा हुआ संघ मिलता है तो कठिनाई जरूर आ सकती है। परन्तु आपश्री

आप उदार एव अनुभवशील हैं। ऊची-नीची भावनाओ को परखने वाले भी हैं और आपके नीचे आपके कार्यभार को सभालने के लिये मन्त्रीमण्डल रहेगा। वह व्यवस्थित रूप से सारा कार्य सभालेगा। अतः मैं आचार्यश्री से प्रार्थना करता हूँ कि वे उपाचार्य पद को स्वीकार कर लें।

पूज्यश्री के उपाचार्य पद ग्रहण करने के बाद सभी प्रतिनिधि मुनियो की ओर से मरुधरकेशरी मुनि मिश्रीमलजी म. ने धन्यवाद निम्न शब्दो मे दिया—

अत्यन्त खुशी का समय है कि आज अखिल भारतवर्षीय स्था. जैन समाज के लिये सर्वसम्मति से आचार्य का चुनाव हो गया है। सादड़ी के लिये हम लोग रवाना हुए और यहा तक पहुचे। तब तक लोग यही कहते थे कि महाराज दिन पूरे क्यो करते हो। और हमारे पर नई गिरह क्यो खडी करते हो। किन्तु शासनदेव की कृपा से कहिये या विकास और सगठन का समय पक चुका इस कारण कहिये, आज हम सर्वसम्मत होकर सहर्ष आचार्य की नियुक्ति कर सके हैं। विशेष प्रसन्नता की बात है कि जैन-जगत के चमकते सितारे पूज्यश्री गणेशलालजी म. ने इस पद को स्वीकार करके हमे कृतज्ञ किया है। एतदर्थ मुनिमण्डल की ओर से उन्हे कोटिश. धन्यवाद अर्पण करता हूँ।

यह है वह कार्यवाही। इसको पढ़ने के बाद आपको स्पष्ट हो जायेगा कि पूज्यश्री आत्मारामजी म. सा. की आचार्य-पद पर नियुक्ति उनकी साहित्यसेवा के कारण श्रद्धा एव सद्भावना हेतु सम्मान की दृष्टि से हुई है।

श्रमणसघ के कार्य-सचालन का समस्त अधिकार तो उपाचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. के सक्षम कधो पर ही रखा गया। इसलिये आचार्य श्री आत्मारामजी म. सा. द्वारा अधिकार देने-लेने सम्बन्धी घोषणा का कोई अर्थ ही नही रहता है। क्योकि

जब आचार्य श्रीजी म. सा. के पास श्रमणसंघ-संचालन के कोई अधिकार हैं ही नही तो अधिकार देने और लेने का प्रश्न ही कहां उपस्थित होता है ?

आपको विदित रहे क पूज्य उपाचार्य श्रीजी म सा. के सन्मुख जब कभी अधिकारो सम्बन्धी कोई चर्चा वार्ता आती है तो वे इस विषय में प्राय. तटस्थ रहते हैं। क्योकि वे तो कर्तव्य पालन की दृष्टि को मुख्यता देते हैं। मगर मुझे लगता है कि उपाचार्य श्रीजी म. सा. की तटस्थता का गलत अर्थ लगाया और सभवत: इसी का यह परिणाम है कि आचार्य श्री जैसे ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध महात्मा भी अधिकार की दृष्टि से सोचने और फरमाने लगे हैं।

उपरोक्त विवरण से यह सुस्पष्ट है कि श्रमणसघ के सचालन का कार्यभार सादडी सम्मेलन ने पूज्य उपाचार्य श्री गणेश-लालजी म. सा. के सक्षम कन्धो पर ही रखा है।

इस विवरण द्वारा सही स्थिति जानने से उन बन्धुओ को भी सोचने विचारने का अवसर मिलेगा जो सम्भवत: अभी तक भ्रम मे हो और यह नही जान पाये हो कि समाज की इस समय जो स्थिति बनी है और बनाई जा रही है, इसका दायित्व किस पर है ?

शेष आनन्द है।

आपका

तख्तसिंह पानगड़िया

मन्त्री श्री वर्धमान स्था. जैन श्रावकसंघ, उदयपुर

उपर्युक्त उत्तर एव पूर्व मे उल्लिखित विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रमणसघ में आचार्य श्री और उपाचार्य श्री का क्या स्थान है और पाठक स्वय निर्णय कर सकगे कि पूज्य आचार्यश्री गणेश-लालजी म. सा. को श्रमणसघ संचालन के पूरे अधिकार विधान से प्राप्त थे। अतः आचार्यश्री आत्मारामजी म. द्वारा अधिकार लेने सम्बन्धी दि. १५-६-६० की घोषणा सार रहित है।

अब एक ही प्रश्न शेष रह जाता है कि जब आचार्यश्री आत्मारामजी म. को श्रमणसघ की व्यवस्था-संचालन का कोई अधिकार नही था तो यह अवैधानिक घोषणा कैसे की ? इसका एक ही कारण हो सकता है कि विरोधीपक्ष या उसके समर्थको की ओर से आचार्यश्री को उक्त घोषणा निकालने के लिये विवश किया गया है और शारीरिक एव मानसिक दृष्टि से अशक्त पूज्यश्री आत्मारामजी म. ने उनके प्रभाव मे आकर और विधान की जानकारी के अभाव मे एव अपने पूर्वलिखित वचनो का भी ध्यान न रखकर वैसी अवैधानिक घोषणा प्रकाशित कर दी ।

कान्फरन्स की जनरल कमेटी के प्रस्ताव पर दृष्टिपात

श्रमणसघीय गत्यवरोध के निराकरण के नाम पर दि. १५ ९-६० को पूज्यश्री आत्मारामजी म. द्वारा की गई घोषणा के अवैधानिक होने के कारणों का सकेत करने के अनन्तर श्री अ भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरन्स की दि. २४, २५ सितम्बर ६० को बम्बई मे होने वाली जनरल कमेटी के प्रस्ताव न० ८ पर भी दृष्टिपात कर लें ।

प्रस्ताव के मुख्य मुख्य अंश इस प्रकार है—

१— ध्वनिवर्धक यन्त्र के उपयोग के सम्बन्ध मे अपवाद, प्रायश्चित्त और स्वच्छन्दता का स्पष्टीकरण कर दिया जाये ।

२— मुनि रूपचन्दजी के बारे मे दिये गये निर्णय को अमल मे लाया जाये ।

३— इसका अन्तिम निर्णय उपाध्यायमडल कान्फरन्स के अध्यक्ष से परामर्श करके दो माह के अन्दर दे देवे । उक्त निर्णय सर्वमान्य रहेगा ।

४— श्रमणसघ के विधान मे आवश्यक परिवर्तन करने एव आचार्य, उपाचार्य के अधिकारो के स्पष्टीकरण करने एव कितनेक दूसरे सुधार करने की आवश्यकता है । अतः इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये पूज्य आचार्यश्री,

उपाचार्यश्री अथवा उनके प्रतिनिधि मुनियों और मन्त्री-मण्डल तथा अन्य मुनिराजों के सम्मेलन का आयोजन किया जाये।

५— जब तक यह सम्मेलन न हो तब तक के लिये श्रमणसंघ की व्यवस्था उपाध्यायमण्डल द्वारा किये जाने की घोषणा पूज्य आचार्यश्री और पूज्य उपाचार्यश्री की ओर से हो जाये।

६— पूज्य आचार्यश्री की दि. १५-९-६० की घोषणा व पूज्य उपाचार्यश्री द्वारा दि. २२-९-६० को दिया गया उत्तर वापस ले लिया जाये।

प्रस्ताव की भाषा से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रस्ताव श्रमण-संघ को सबल बनाने के प्रयत्नों और समस्याओं के समाधान में सहायक है। लेकिन गम्भीरता से विचार करें तो ज्ञात होगा कि पूज्यश्री आत्मारामजी म. द्वारा दि. १५-९-६० को की गई श्रमणसंघीय कार्यवाहक समिति के गठन की अवैधानिक घोषणा भी वैध है और तदनुकूल प्रक्रिया अपनायी जाये। यदि इस अवैधानिक घोषणा को वापस भी लेना पड़े तो आचार्यश्री गणेशलालजी म. सा. द्वारा दि. २२-९-६० को की गई घोषणा भी वापस ली जाये।

इस प्रस्ताव का परिणाम यह हुआ कि श्रमणसंघ की दिनों-दिन निर्बल होती जा रही व्यवस्था और अधिक तीव्रता से निर्बल होने लगी। संघ में अनुशासन का नाम न रहा और मुनिमंडल को अपनी सुविधानुसार कार्य करने की छूट मिल गई।

किन्हीं-किन्हीं महानुभावों ने आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. को प्रस्ताव का स्पष्टीकरण करने के नाम पर पत्रोत्तर आदि करने में अपने विवेक की इतिश्री कर दी। लेकिन सादड़ी सम्मेलन से लेकर इस प्रस्ताव के पारित होने तक की गतिविधियों को देखें तो ज्ञात होगा कि आचार्यश्री जी म. सा. को न तो पद का अधिकार ही पहले चाहा थी और न

इस समय भी। वे तो श्रमण भगवान महावीर के मार्ग का निर्दोष पालन करने और उनके मार्ग पर चलने वाले दूसरो को भी निर्दोष पालन कराने में सहायक बनने मे ही अपना अधिकार मानते थे। इसी को लक्ष्य मे रखकर ही श्रमणसघ की व्यवस्था मे आगमानुमोदित व्यवस्था देने मे तत्पर रहे। यदि ऐसा करना ही अधिकारलिप्सा या पदलोलुपता मानी जाये तो कहना पडेगा कि यह उनके अज्ञान की पराकाष्ठा है।

समाज की प्रतिक्रिया

पूज्यश्री आत्मारामजी म की अवैधानिक घोषणा से निर्ग्रन्थ-श्रमणसस्कृति मे निष्ठा रखने वाली समाज मे वैसे ही क्षोभ का वातावरण व्याप्त था और कान्फरन्स की जनरल कमेटी के इस प्रस्ताव से स्पष्ट हो गया कि समाज के साथ अन्याय हुआ है। वह नही समझ सकी कि एक ओर तो प्रकारान्तर से पूज्यश्री आत्मारामजी म. की घोषणा को मान्यता दी जा रही है और उसके साथ ही दूसरी ओर दोनों घोषणाओ को वापस लिये जाने का अनुरोध किया जा रहा है। श्रमणसघ से सम्बन्धित घटनाओ के लिये आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. की घोषणाओ को उचित मानते हुए भी घोषणा कर्ता को व्यवस्थानुसार कार्रवाई कराने से विरत किया जा रहा है और उसके पालन करवाने का भार उपाध्याय मडल के मुनिराजो को सौंपने का सकेत किया जाता है। स्थिति की वास्तविकता को समझने वाले समाज के प्रबुद्धवर्ग को खेद ही हुआ और यह खेद प्रस्ताव पारित करते समय भी व्यक्त कर दिया गया था और बाद मे तो विभिन्न श्रावक सघो द्वारा व्यक्त प्रतिक्रिया मे कान्फरन्स से अपना प्रस्ता वापस लेने की माग की गई थी। लेकिन न तो प्रस्तावको ने और न कान्फरन्स ने विरोध को समझकर शाति के उपाय किये और न प्रस्ताव पर पुनर्विचार करना योग्य समझा।

कान्फरन्स का प्रस्ताव : आचार्य श्रीजी का अभिमत

कान्फरन्स के पूर्वोक्त प्रस्ताव से चतुर्विध संघ मे रोष व्याप्त था और इस सम्बन्ध में आचार्य श्रीजी के विचारो को जानने के लिये उत्सुक था। आचार्य श्रीजी ऐसे प्रस्तावों पर मौन रहना ही उचित मानते थे। किन्तु समाज को वास्तविक स्थिति से परिचित कराने एवं प्रस्ताव के सम्बन्ध मे आचार्य श्रीजी के विचारो को जानने के लिये उदयपुर श्रावकसंघ के बार-बार विनती करने पर आचार्य श्रीजी म. सा. ने जो अपने भाव फरमाये थे, उन्हे जानकारी के लिये दि. ५-११-६० के पत्र द्वारा कान्फरन्स कार्यालय को भिजवा दिया। पत्र यह है—

उदयपुर
ता. ५-११-६०

श्रीमान्मान्यवर खीमचन्दभाई वोरा
मन्त्री—श्री श्वे. स्था. जैन कान्फरन्स बम्बई

सादर जयजिनेन्द्र

अखिल भारतवर्षीय श्वे. स्था. जैन कान्फरन्स की ता. २४, २५ सितम्बर १९६० को बम्बई में हुई जनरल कमेटी ने निवेदन आदि वापिस लेने की उपाचार्य श्रीजी म सा ने भी प्रार्थना आदि की।

इस पर उपाचार्य श्रीजी म. ने निम्न आशय के भाव व्यक्त किये हैं कि— कान्फरन्स की बम्बई जनरल कमेटी द्वारा पारित श्रमणसंघ सम्बन्धी प्रस्ताव की अनौचित्यता पर मैं अभी विशेष न कहता हुआ सिर्फ इतना ही कहना पर्याप्त समझता हूँ कि श्रमणसंघ सम्बन्धी बम्बई जनरल कमेटी का यह प्रस्ताव स्वनियन्त्रण व शिथिलाचार आदि विषयक दी गई आज्ञाओं को भंग करने के लिये ही पास किया गया है, ऐसा आभास होता है। यदि ऐसा नहीं है तो मेरे निवेदन आदि को वापस लेने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता, क्योंकि स्वनियन्त्रण व शिथिलाचार आदि विषयक जानकारी के लिये कान्फरन्स का शिष्टमण्डल कई बार मेरे पास

उपस्थित होकर सारी स्थिति को अच्छी तरह समझ चुका है और समय-समय पर संतोष व्यक्त किया है। उदाहरणार्थ—

कान्फरन्स के शिष्टमण्डल ने कपासन मे ४-३-५८ को ध्वनियन्त्र विषयक सूचना पत्र के सम्बन्ध में निम्न विचार लिखित-रूप मे प्रकट किये थे—

'ध्वनियन्त्र विषयक जो सूचनापत्र ता. १६ १०-५७ को श्रमण-सम्पर्क-समिति के सदस्यो के परामर्श पूर्वक उपाचार्य श्रीजी म. की ओर से सम्बन्धित सभी अधिकारी मुनियों के पास भेजा गया, वह समय-अनुकूल है और शिष्टमण्डल यह भी अनुभव करता है कि भीनासर-सम्मेलन के बाद जिन संत-सतियो द्वारा ध्वनियन्त्र का प्रयोग हुआ हो वे अपनी स्थिति स्पष्ट लिखकर ब्यौरेवार उपाचार्य श्रीजी म. के चरणो मे भेजकर आलोयणा करें ऐसी हमारी नम्र प्रार्थना है। निवेदक—अचलसिंह (अध्यक्ष), मोहनमल चोरडिया, कानमल नाहटा।'

जावरा जनरल कमेटी ने शिथिलाचार विषयक दी गई व्यवस्था को उचित ठहराते हुए सर्वानुमति से जो प्रस्ताव पास किया, वह निम्नप्रकार है—

'मन्त्री मुनिश्री मिश्रीमलजी म. के शिष्य के लिये जो फैसला उपाचार्य श्रीजी म. ने फरमाया है, उसके लिये आचार्य श्रीजी ने हर्ष प्रकट किया व मन्त्री मुनिश्री मिश्रीमलजी व श्री रूपचन्दजी ने भी सहर्ष स्वीकार किया। इसके लिये पीछे जाने का प्रश्न ही नही रहता है। तथापि आचार्यश्री जो कागजात देखना चाहते हैं वे कागजात कान्फरन्स की कमेटी जिसके नाम श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया जो सूचित करेंगे, वो मान्य होगा— वो कमेटी आचार्यश्री के पास जाकर उन्हे बता दें व आचार्यश्री से विनती करें कि वे का० का योग्य मार्गदर्शन करें।

सर्वसम्मति से स्वीकृत

प्रस्तावक—जवाहरलाल मुणोत

अनुमोदक—खीमचद बोरा

(नोट— रूपचन्दजी सम्बन्धी कागजात शिष्टमण्डल को दे दिये गये ।)

इतना हो जाने पर भी बम्बई जनरल कमेटी ने निवेदन आदि को वापस लेने का जो प्रस्ताव पास किया है, वह आश्चर्य-जनक है । कान्फरन्स का तो यह कर्तव्य था कि जहा से अव्यवस्था का सूत्रपात हुआ, उसको ठीक कराने मे सहायक होती ।

मैं अपने निवेदन आदि को आज भी सघहित व सुव्य-वस्था के लिये उचित मानता हूँ । अतः उसको वापस लेने का प्रश्न उपस्थित नही होता है ।

रहा प्रश्न जब तक आगामी साधुसम्मेलन न हो तब तक श्रमणसघ की सब कार्यवाही उपाध्याय मडल करे ऐसी घोषणा करने का ! सो इस विषय मे मेरा कहना है कि यह विषय श्रमणसघ का होने से कान्फरन्स की विनती आधार रहित है ।

—लालचन्द मुणोत

ताकड़िया भवन, उदयपुर

इस पत्र से स्पष्ट है कि कान्फरन्स ने पूर्व मे आचार्य श्री गणेश-लालजी म सा द्वारा दी गई व्यवस्थाओं को मान्य किया और उनके अनुसार ही कार्यवाई होना वैध माना था । लेकिन ऐसे प्रस्तावो द्वारा उसकी अवहेलना करके श्रमणसघ की स्थिति को त्रिशंकु-सा बना दिया ।

श्रमणसंघ का त्याग

प्रस्ताव के पारित होने से समाज मे रोष तो था ही और कान्फरन्स के अधिकारियों ने समाज की भावनाओ को न समझकर प्रस्ताव उचित है, ऐसा करने से ही श्रमणसंघ की स्थिति का समाधान हो सकता है आदि के विचार से प्रस्ताव के समर्थन हेतु पत्र-पत्रिकाओ मे लेखमाला चालू करके आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. पर आक्षेप

लगाना आरम्भ कर दिया ।

आचार्य श्रीजी म. सा. इस स्थिति के बारे मे गम्भीरतापूर्वक सोचते रहे कि समाज-व्यवस्था के लिये अन्य अधिकारी मुनिवरो द्वारा मान्य निर्णयो को ही क्रियान्वित कराने एव समाज के धार्मिक वातावरण को शुद्ध रखने के लिये मेरी व्यवस्थाये हैं। उन्हे प्रमाणित मानते हुए भी उनका पालन न करके लाछित करने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाये तो उस स्थिति मे मेरा श्रमणसघ मे रहना सार्थक नही है । इस स्थिति से दूर रहना ही श्रेयस्कर है। अत· दि ३०-११-६० को अचानक ही व्याख्यान मे श्रमणसघ द्वारा प्रदत्त उपाचार्य पद का त्याग करके श्रमणसघ से पृथक् होने की घोषणा कर दी । घोषणा इस प्रकार है—

'सिद्धान्त व चारित्र के सरक्षणपूर्वक साधुसमाज का सगठन सुदृढ़ होकर सघ की उन्नति हो, इस उद्देश्य को लेकर मैं सादड़ी (मारवाड) साधुसम्मेलन मे निर्मित श्री वर्धमान स्था. जैन श्रमणसघ मे सम्मिलित हुआ था । जहा सब प्रतिनिधि मुनिवरो ने मिलकर मुझको आग्रह से उपाचार्य पद दिया तथा श्रमणसघ के सचालन का कार्यभार सौंपा । मैंने अपनी आत्मसाक्षी एव निष्पक्ष रूप से अपना कर्तव्य बजाया ।

'उद्देश्य के अनुसार श्रमणसघ का सुसगठन बना रहे, जिससे शासनोन्नति हो और जनता की श्रद्धा मे वृद्धि होकर आत्मकल्याण का मार्गदर्शन मिले यह मेरी आतरिक भावना रही और अब भी है । मगर उचित बात को भी अशाति और मताग्रह का रूप देकर भ्रम फैलाया जा रहा है और ऐसा प्रदर्शित किया जा रहा है कि मानो मैं सघ-उन्नति मे गत्यवरोध का कारण हूँ । इस पर मैंने स्वय भी सोचा तो मुझे ऐसा नही लगता, बल्कि मुझे तो ऐसा अनुभव हो रहा है कि जिस उद्देश्य को लेकर मैं सम्मेलन मे सम्मिलित हुआ था, उस उद्देश्य की पूर्ति नही हो रही है और प्राय यह देखा जा रहा है कि व्यर्थ का वादविवाद का रूप दिया

जाकर अब तो जैनप्रकाश जैसे पत्र के माध्यम से भी भ्रामक प्रचार किया जाने लगा है। मैं ऐसे व्यर्थ के वादविवाद मे न पड़ता हुआ वर्तमान परिस्थितियो में सादडी समेलन में निर्मित श्रमणसघ द्वारा प्रदत्त उपाचार्य पद का त्याग करके अपने को श्रमणसघ से अलग घोषित करता हूँ।

'रहा प्रश्न श्रमणवर्ग के साथ साभोगिक सम्बन्ध आदि व्यवस्था का सो मुझे जिनके साथ जैसा योग्य जान पडेगा वैसा सम्बन्ध आदि रखने के भाव हैं।

'सादडी सम्मेलन से लेकर अब तक के कार्यकाल मे कर्तव्यदृष्टि से कार्य करने से किसी को दु.ख पहुंचाने की भावना न होने पर भी जिन किन्हीं सन्त-सती व श्रावक-श्राविकाओ का मन दु.ख पाया हो तो उसके लिये सबको खमाता हूँ।'

घोषणा की प्रतिक्रिया

आचार्य श्रीजी की उपर्युक्त घोषणा से समस्त समाज को दुःखानुभव हुआ। राजनैतिक चाल चलकर आचार्य श्रीजी म सा. को अपने अनुकूल बना लेने मे विश्वास रखने वाले और अधिकार लेने का तीर फेंकने वाले भी आश्चर्यचकित रह गये। उन्हे पता नहीं था कि आचार्य श्रीजी म. सा चारित्रसाधना के सरक्षणार्थ बड़े से-बडा लौकिक सम्मान ठुकरा सकते है। सगठन बनाये रखने के लिये सिद्धान्तो पर कुठाराघात सहन नही किया जा सकता है।

उक्त घोषणा पर पुनः विचार करने के लिये आचार्य श्रीजी म. सा. की सेवा मे श्रमणवर्ग, श्रावकवर्ग, पत्रकारो आदि ने विनतिया की। उनमे से कुछ एक का यहा सकेत कर रहे है—

प्रान्तमन्त्री श्री पन्नालालजी म. उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म., मन्त्री श्री पुष्करमुनिजी म. ने सयुक्त रूप मे आचार्य श्रीजी से अपनी घोषणा वापस लेने की प्रार्थना करते हुए कहा था कि उपाचार्य श्री ने उपाचार्य पद का त्याग करके अपने को श्रमणसघ से अलग

घोषित किया, जिसे हम सघ-हितकर नही मानते हैं। हमारी यह हार्दिक भावना है कि वे पुन. सघहित व जिनशासनोन्नति को लक्ष्य मे रखकर इस पर गम्भीरता से विचार करे और उलझी हुई समस्याओं को परस्पर विचार-विमश द्वारा या किसी माध्यम से हल करके सघ के श्रय के भागी बने।

श्रमणसघ के आचार्य श्री आत्मारामजी म., उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी म., मन्त्री मुनिश्री फूलचन्दजी म. (पुप्फभिक्खू) आदि मुनिवरो की ओर से भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये गये कि पूज्यश्री श्रमणसघ से सम्बन्ध-विच्छेद के विचारो को वापस ले लें। अनेक श्रावको और श्रावकसंघो की ओर से भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये गये कि पूज्यश्री चतुर्विध सघ को अपने वरदहस्त से वचित न करें।

श्री अ. भा श्वे. स्था जैन कान्फरन्स के मुखपत्र जैन प्रकाश के सम्पादकीय स्तभ मे चतुर्विध सघ के समस्त विचारो का सामूहिक रूप से प्रकाशन करते हुए क्या श्रमणसघ खडित होगा?' शीर्षक मे आचार्य श्रीजी म. सा. से निवेदन किया कि '…… उपाचार्य श्रीजी म की घोषणा के बारे मे हम विनम्र प्रार्थना कर देना चाहते हैं कि आचार्यश्री और उपाचार्यश्री समाज के सूर्य, चन्द्र के समान हैं। उनके अपने-अपने दायित्व हैं। श्रमणवर्ग और समाज ने जिस निष्ठा से उन्हें अपना सिरमौर बनाया था तो समाज अब इस मणि से वञ्चित हो जाये क्या? हमे स्वप्न मे भी विश्वास नही होता कि जो उपाचार्य श्रीजी महाराज संघ के निर्माण में अगुआ थे, उससे अलग होने की भी घोपणा कर देंगे। कही त्रुटि हुई है अवश्य, जिससे समाज के प्रत्येक सदस्य को जिज्ञासा है, प्रश्न है कि 'क्या श्रमणसघ खडित होगा?'

'हम अन्त मे समाज हितैषियो, कार्यकर्ताओ, श्रावकसंघो के पदाधिकारियो, पत्रकारों और श्रावक-श्राविकाओ से अपील करते हैं कि वे श्रमणसघ और इसके गत्यवरोधो को अपने सम्मान का प्रश्न न बना

कर उसके संरक्षण, संपोषण का उत्तरदायित्व श्रमणसंघीय मुनिराजों पर ही छोड़ दें और इस प्रकार का वातावरण बनायें कि जल्दी-से-जल्दी किसी केन्द्रीय स्थान पर आगामी साधुसंमेलन होकर गत्यवरोध का निराकरण हो जाये।'

इस प्रकार आचार्य श्रीजी म. सा. के सम्बन्ध-विच्छेद को लेकर समाज में एक ही विचारधारा बह रही थी कि वे सम्बन्ध विच्छेद न करें और शीघ्र ही किसी-न-किसी प्रकार संगठन की सुदृढ़ता के लिये प्रयत्न हों, जिससे आचार्य श्रीजी म. सा. की भावना के अनुसार संगठन की आधारशिला सुदृढ बने।

समाज का बहुमत और पत्रकार तो संगठन को सुदृढ़ देखने के लिये उत्सुक थे। लेकिन कान्फरन्स के पदाधिकारी इससे विपरीत विचार रखते थे। वे कान्फरन्स की बम्बई जनरल कमेटी के प्रस्ताव न. ८ को ही उचित मानकर कारवाई करने के लिये तत्पर थे। वे आचार्य श्रीजी म. सा. के विचारों की अवहेलना करने में श्रेय समझते थे। इस सम्बन्ध में २० नवम्बर १९६० को कान्फरन्स की कार्यकारिणी समिति ने यह प्रस्ताव पारित किया—

'उदयपुर में दि. १, २ नवम्बर ६० के रोज पचायती नोहरे में पूज्य उपाचार्य श्रीजी के दर्शनार्थ आये हुए श्रावक-श्राविकाओं की सभा का आयोजन किया गया, उसमें पारित प्रस्ताव कान्फरन्स आफिस को भी भेजे गये हैं। इन प्रस्तावों को पढ़कर कान्फरन्स की मैनेजिंग कमेटी को खेद और आश्चर्य हुआ है। बम्बई की जनरल कमेटी में ता. २४, २५ सित. ६० के रोज प्रस्ताव न. ८ पारित हुआ है। उसे समझने का प्रयत्न इस सभा में हुआ हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। समस्त स्थानकवासी जैन समाज की प्रतिनिधि संस्था— कान्फरन्स की जनरल कमेटी के प्रस्ताव का इस प्रकार का विरोध हो, उसमें समाजहित की दृष्टि की अपेक्षा साम्प्रदायिक-ममत्व का प्राधान्य दिखाई देता है।

'श्रमणसंघ और स्थानकवासी समाज की एकता और संगठन

को कायम और सुदृढ करने के जनरल कमेटी के प्रयत्न को निष्फल बनाने के ऐसे प्रचार के प्रति कान्फरन्स की मैनेजिंग कमेटी समाज को गम्भीर चेतावनी देना अपना कर्तव्य समझती है।'

इस प्रस्ताव का आशय यह हुआ कि या तो आचार्य श्रीजी अपनी घोषणा वापस लें और कान्फरन्स की जनरल कमेटी मे पारित प्रस्ताव मान्य करे या श्रमणसघ के सम्बन्ध में आचार्य श्री आत्मारामजी म. की अवैधानिक घोषणा के अनुसार कार्रवाई करने के लिये कान्फरन्स स्वतन्त्र है तथा समाज को भी उसके विरोध मे ननु नच करने का अधिकार नही है।

इस प्रकार के प्रस्ताव से स्पष्ट हो गया था कि कान्फरन्स ने समाज की भावनाओ की उपेक्षा कर और शुद्धि के धरातल पर श्रमण सगठन को बनाये रखने के प्रति उदासीनता दिखाकर विघटित करने का सूत्रपात कर दिया। आचार्य श्री आत्माराम जी म. की घोषणा से तो श्रमणसघ का आधार ही कमजोर हुआ था, किन्तु कान्फरन्स की जनरल कमेटी के प्रस्ताव तथा कार्यकारिणी समिति के इस प्रस्ताव से तो उसका ढांचा ही नेस्तनाबूद हो गया।

आचार्य श्रीजी म. सा. की दि. ३०-११ ६० की घोषणा पर पुनर्विचारणा करने के लिये आई प्रार्थनाओ मे प्रेमभाव प्रदर्शित करते हुए वापस लेने पर तो भार दिया गया था किन्तु सगठन हेतु आवश्यक सकल्पपूर्ति के बारे मे एक भी सकेत नही था। अत उनके सम्बन्ध मे अपना स्पष्टीकरण करते हुए आचार्य श्रीजी म. सा ने फरमाया—

'मेरी तारीख ३०-११-६० की घोषणा के पश्चात मेरे पास आचार्य श्री, उपाध्यय मडल, मत्रीमडल व अन्य मुनिवरो की तरफ से एव श्रावक समाज की तरफ से पत्र आदि आये है। जिनमे से कुछ जैनप्रकाश आदि समाचार पत्रो में भी प्रकाशित हुए हैं। उन सब में यह भाव दर्शाया गया है कि मैं अपनी उक्त घोषणा पर पुनर्विचारणा करके उसको वापस लेकर अपने पद

(उपाचार्य) पर रहता हुआ संघ का पूर्ववत् संचालन करते हुए समाज को मार्गदर्शन करूं आदि। अतः इस विषय में कुछ भाव व्यक्त करना आवश्यक समझता हूँ।

सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र की रक्षा के साथ शासनोन्नति हो, इस दृष्टि से मैं सादडीसम्मेलन में गया था। हमारा श्रमणसंगठन किस ढंग का हो, इसकी मेरी अपनी कल्पनायें थीं। इस सम्बन्ध में मैं समय-समय पर प्रकट रूप से भी अपने विचार व्यक्त करता रहा हूँ। वह यह है कि हमारा श्रमणसंघ तब ही सुव्यवस्थित रह सकेगा जब उसका नेतृत्व एक के आधीन रहकर शिष्य परम्परा एक की रहे, श्रद्धा, प्ररूपणा, स्पर्शना एक हो, चातुर्मास, विहार एक ही की आज्ञानुसार हो और प्रायश्चित्त–व्यवस्था भी एक के ही आधीन रहे तथा उत्पन्न विकृतियां दूर हों आदि।

सादडीसम्मेलन के समय जब संघ-व्यवस्था की रूपरेखा पर विचारणा चली थी तब मैंने अपनी उक्त विचारणा संत-समुदाय के सन्मुख व्यक्त की थी। जहां तक मुझे स्मरण है मुनिवरों ने मेरे उन विचारों को पसन्द करते हुए ये भाव दर्शाये कि अभी तक हम सब बहुत दिनों से बिछुडे हुए मिल रहे हैं, अतः यह सब धीरे-धीरे बन सकेगा।

श्रमणसंगठन की मेरी कल्पना के पीछे स्वर्गीय परम-प्रतापी आचार्य श्री १००८ श्री जवाहरलालजी म. सा. की भावना और मेरी व्यक्तिगत विचारणा रही थी। इसलिये सादडी में श्रमणसंघ की जो कुछ व्यवस्था बनी उससे मुझे पूर्ण संतोष नहीं था। फिर भी उपस्थित मुनिवरों का सोत्साह आश्वासन होने से मुझे आशा थी कि शनैः शनैः हम हमारे लक्ष्य तक पहुंच जायेंगे। इस विचार से मैं संगठन में सम्मिलित हुआ।

जब श्रमणसंघ के नेतृत्व का प्रश्न आया तो मैंने अपनी असमर्थता प्रकट की, क्योंकि पद और अधिकार जन्य [illegible] मेरी

कतई भावना न थी। मैं तो अपना शेष जीवन अधिक-से-अधिक आत्मसाधना मे लगाना चाहता था, परन्तु जब प्रतिनिधि मुनिवरों ने अत्याग्रह किया और मेरी सेवा लेनी चाही तो मेरी इच्छा न होते हुए भी मैं उनके आग्रह को टाल न सका और श्रमणसंघ-सचालन की सेवा स्वीकार की।

इसके बाद मेरा कर्तव्य हो गया कि मैं भगवान महावीर की पवित्र श्रमणसस्कृति की शुद्धता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये आत्मसाक्षीपूर्वक सघहितार्थ कार्य करू। तदनुसार मैंने संघ-सचालन का कार्य किया और आवश्यकतानुसार अधिकारी मुनियों से परामर्श लेकर शिथिलाचार व ध्वनियन्त्र आदि विषयक व्यवस्थायें दी एव दृढाचार विषयक सूचना भी की।

परन्तु भवितव्यता कहें या और कुछ ? सद्भावना पूर्वक किये गये कार्यों को अशान्ति आदि का कारण बताकर उन व्यवस्थाओ के विपरीत आदेश आदि निकाले गये, फलतः उन व्यवस्थाओं का परिपालन नही हुआ और सघ मे अव्यवस्था का सूत्रपात हुआ।

इन व्यवस्थाओ के विपरीत आदेश आदि निकालने पर मैंने सोचा था कि अधिकारी मुनिवर, जिन्होने इन व्यवस्थाओं में अपना अनुकूल मत दिया था, अवश्य अपने मत का प्रतिपादन करेंगे, परन्तु मुझे इस बात का आश्चर्य ही रहा है कि प्रायः वे मौन रहकर दर्शक बने रहे।

कान्फ्रेंस के कतिपय प्रमुख व्यक्तियो ने भी श्रमणसंघीय व्यवस्थाओ को हाथ मे लिया, परन्तु अव्यवस्था का सूत्रपात जहां से हुआ, वहा से समस्या को नही उठाकर ऐसा कदम उठाया कि जिससे समस्याये सुलझने के बजाय उलझ गई।

बाद मे तो जैनप्रकाश आदि समाचारपत्रो मे खुल्लम-खुल्ला टिप्पणी होने लगी और मेरे प्रति मताग्रही आदि कई विशेषणो से समाज मे भ्रामक प्रचार किया गया।

जब इस प्रकार का वातावरण बनाया गया तो स्वच्छन्दाचार एवं शिथिलाचार को प्रोत्साहन मिलना स्वाभाविक ही था। फलस्वरूप साधुमर्यादाओं के प्रतिकूल कई अन्य प्रवृत्तियां भी विश्वस्त सूत्रों से सुनने को मिलीं और तो क्या चौथे व्रत के सम्बन्ध में साधुवेश को कलंकित करने वाली भी कुछ घटनायें घटित हुईं, जो श्रमणसंस्कृति की पवित्रता के लिये घातक हैं।

अपने शिष्यों की छोटी गलती पर भी अनुशासन की कार्यवाही की गई तो बड़ी गलतियें कैसे बरदास्त की जा सकती हैं ?

जिन-जिन अनुचित प्रवृत्तियों के वृतान्त मेरे सामने आये, उनका मैंने यथोपयोग निराकरण करने का प्रयत्न किया और अन्त तक यही भावना रही कि किसी भी प्रकार सिद्धान्त और चारित्र सुरक्षित रहते हुए अनुशासन का समुचित ढंग से पालन हो ताकि संगठन सुदृढ बन सके। परन्तु अपेक्षित सहयोग के अभाव में मेरी आशायें धूमिल ही रहीं, अतः अन्य भी जो व्यवस्थायें देनी आवश्यक थीं, वे नहीं दी जा सकीं।

अनुभव तो ऐसा भी हुआ कि राजनैतिक ढंग के दाव-पेंच जैसी बातें भी होने लगीं जो धार्मिक मामलों में कदापि वाञ्छनीय नहीं हैं।

जिन कल्पनाओं को लेकर मैं सादड़ी गया, जिस उज्ज्वल आशा से संघ में प्रवेश किया तथा उसको सुदृढ़ एवं स्थायी बनाने के लिये क्या क्या प्रयत्न किये, फिर भी उसकी क्या दशा रही ? इसका अनुभव सुसंगठन का हिमायती सहृदय व्यक्ति ही कर सकता है।

मैं अब दृढ मत का बन गया हूँ कि जिन कल्पनाओं को लक्ष्य में रखकर मैं श्रमणसंघ में सम्मिलित हुआ था उनको साकार रूप दिये बिना श्रमण-संगठन सुचारु रूप से व्यवस्थित रहना संभव नहीं।

मैं सुसंगठन का किसी से भी कम हिमायती नहीं हूँ।

मैं हृदय से चाहता हूँ कि मुझे मेरे जीवन मे ऐसा शुभ दिन देखने को मिले कि साधुसमाज का जो कि स्थानकवासी समाज की आधार शिला है, सुसगठन द्वारा चारित्र उज्ज्वल-से-उज्ज्वलतर बने और सम्यग्ज्ञान-दर्शन चारित्र की वृद्धि होकर समाज का कल्याण हो। न कि सगठन के सहारे साधु-सस्था नीचे गिरे।

जिन श्रमण एव श्रावको ने पुनर्विचारणा हेतु मेरे प्रति जो-जो भाव व्यक्त किये, वह उनका मेरे प्रति प्रेमभाव है।

परन्तु जिन परिस्थितियो को मद्देनजर रखकर मुझे तारीख ३०-११ १९६० की घोषणा करनी पडी, उनका एव अन्य उत्पन्न अनुचित प्रवृत्तियो का तथा भविष्य के सुधार का सतोष-जनक समाधान मुझे न हो जाये तब तक पुनर्विचारणा के विषय मे श्रमणवर्ग एव श्रावकवर्ग को विशेष क्या उत्तर दूं ?

आचार्य श्रीजी म. सा. ने अपने विचारो मे उदात्तभावो को व्यक्त करते हुए स्पष्ट कर दिया था कि श्रमण सगठन के मूलाधार को सुदृढ बनाने के लिये सामूहिक प्रयत्न करके निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त किया जाये और स्खलन की प्रवृत्तियों का निराकरण होकर भविष्य मे वैसी प्रवृत्तियो की पुनरावृत्ति न होने देने के लिये श्रमणवर्ग एव श्रावक-वर्ग को सचेत रहना जरूरी है। व्यवस्थाओ का उपयोग व्यवस्था के लिये हो और उनमे राजनैतिक दाव-पेचो का उपयोग न किया जाकर शुद्धि की भावना से शुद्धि के मार्ग पर बढ़े। मेरा विरोध सगठन की ओट में स्वच्छन्दाचार से है, न कि सगठन से। इसीलिये उद्देश्य मे सफलता के लिये सगठन को सबल देखना अपने जीवन की महान आकाक्षा मानता हूँ।

लेकिन आचार्य श्रीजी की भावना को सदाशयता से न समझकर और उसके अन्तर् मे छिपे हुए रहस्य की अवहेलना कर श्रमणसघ तोड़ने के आरोपो की बौछारो के साथ-साथ सत्य तथ्यों पर आवरण डालने के प्रयत्न चलने लगे। जबकि स्पष्ट यह था कि आरोप

लगाने वाले स्वयं श्रमण-सगठन को छिन्न-भिन्न करने के लिये उसके निर्माण के साथ ही प्रयत्नशील हो गये थे। उदाहरण के रूप मे जैसे श्रमणवर्ग के प्रतिनिधियो द्वारा निर्मित विधान मे मनचाहे विचारो को सयुक्त किया। विधान की मूल धाराओ मे परिवर्तन किया। प्रधान-मन्त्री के त्यागपत्र के कारणो की खोजबीन मे उदासीनता दिखाई। प्रतिनिधि मंडल यथास्थान न भेजने की प्रवृत्ति दिखाई और सदैव सत्य तथ्यो से चतुर्विध सघ को अपरिचित रखा। लेकिन आचार्य श्रीजी ने श्रमणसघ को छोडने के बाद भी यही भावना प्रदर्शित की थी कि हमारा श्रमणसघ तभी सुव्यवस्थित रह सकता है जबकि उसका नेतृत्व एक के आधीन रहे, श्रद्धा, प्ररूपणा, स्पर्शना, विहार आदि एक ही की आज्ञानुसार हो। लेकिन ऐसी स्थिति के निर्माण का साहस किसी ने नही दिखाया, सो नही दिखाया। यही विडबना समाज के साथ आज भी चल रही है।

चतुर्विध संघ की विनती

यद्यपि शल्यचिकित्सा से ऐसा प्रतीत होने लगा था कि आचार्य श्रीजी के स्वास्थ्य मे सुधार होगा। लेकिन सुधार सतोषजनक नही हुआ। हा इतना अवश्य माना जा सकता है कि कुछ दिनो के लिये रोग की भीषणता मे कमी आ गई, किन्तु निर्मूल नही हो सका। स्वास्थ्य पहले से ही कमजोर था और शल्यचिकित्सा के बाद भी शारी-रिकबल में कोई परिवर्तन नही आया। दिनोंदिन स्वास्थ्य में निर्बलता आती जा रही थी।

आचार्य श्रीजी म. सा. श्रमणसंस्कृति की सुरक्षा को अपनी साधना का ध्येय मानते थे। लेकिन इनकी उपेक्षा करके सगठन को मुख्यता दिये जाने के अवसर होने लगे तो इससे चारित्रप्रेमी चतुर्विध संघ में एक प्रकार की चिन्ता व्याप्त हो गई थी। उसको आध्यात्मिक धरातल का भविष्य अन्धकारमय दिखने लगा था।

इन्ही दिनो आचार्य श्रीजी के स्वास्थ्य में सहसा काफी

निर्बलता बढने लगी । समाचारों के मिलते ही हजारो की सख्या मे श्रावक-श्राविकायें अपने आराध्य के दर्शनार्थ उदयपुर मे एकत्रित हो गये ।

शरीर नाशवान है । इसका क्या भरोसा कि कब नष्ट हो जाये । आचार्य श्रीजी के स्वास्थ्य की गम्भीरता से उनके मन म अनेक प्रकार के सकल्प-विकल्प उठने लगे । समाज के अग्रणी विचारवान उपस्थित सज्जनो ने विचार किया कि वर्तमान स्थिति मे अपने भावी आधार के वारे मे सोच लेना बुद्धिमानी होगा । समस्या गभीर थी और इस पर चर्चावार्ता होती रही । अन्त मे निर्णय किया गया कि हम सब मिलकर आचार्य श्रीजी के चरणो मे विनती करें कि आपश्री की कल्पना के अनुसार जब तक सुसगठन होकर सर्वाधिकार पूर्ण उत्तरदायित्व एक आचार्य के आधीन न हो जाये, तब तक हम अपना भावी आधार किसको मानें ?

अनन्तर आचार्य श्रीजी म. सा के आज्ञानुवर्ती निर्ग्रन्थ श्रमणवर्ग ने आपश्री के चरणो मे अपना यह प्रतिज्ञापत्र प्रस्तुत किया—

'निर्ग्रन्थ श्रमणसस्कृति आत्मकल्याण व आत्मशान्ति का एक मात्र अमोघ उपाय है अत. इसकी शुद्धता बनी रहना नितान्त आवश्यक है । वर्तमान मे कुछ श्रमणवर्ग मे विकृतियां प्रवेश कर गई हैं, उनको दूर करने के लिए पूज्यश्री १००८ श्री गणेशलालजी म सा ने जो शान्त क्रान्ति का कदम उठाया, वह उचित एव आदर्श है ।

सिद्धान्त व चारित्र की सुरक्षापूर्वक सगठन को सुदृढ एव चिरस्थायी बनाने की प्रबल इच्छा रखने वाला श्रमणवर्ग यह निर्णय करता है कि सयमी जीवन मे प्रवेश पाई हुई विकृतियो को दूर करने के लिए एव सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि के हेतु हम शात क्रान्ति के जन्मदाता पूज्यश्री १००८ श्री गणेशलालजी म. के नेश्राय मे तथा नेतृत्व में आपश्री की निम्न बातें जीवन मे उतारने की प्रतिज्ञा करते हैं—

(१) चातुर्मास, प्रायश्चित्त, विहार व सेवा आदि व्यवस्था की सर्व-

सत्ता आपश्री के चरणो में रहेगी ।

(२) शिष्य व शिष्यायें आपश्री के नेश्राय में होगे ।

(३) चातुर्मास के लिए व शेषकाल के लिए साधु-साध्वी ने जहां विहार किया या जहा विराजे वहां से वस्त्र पात्रादि जो भी वस्तु साल भर मे लेगे उसकी नोंध रखेंगे । साथ ही सघ-व्यवस्था कैसी है, विशेष उपकार व उपसर्ग कहा कहा पर हुए उसकी भी नोंध रखेंगे और वह सब आलोचना की नोंध डायरी आपश्री की सेवा मे अर्पण कर देंगे ।

(४) चातुर्मास पूर्ण होने के बाद आपश्री (आचार्यश्री) जिस समय जहा जिन साधु-साध्वियो को याद फरमावेगे, वहा वे साधु, साध्वी उपस्थित होगे ।

(५) साधु साध्वी के कल्पानुसार समान समाचारी जो आपश्री ने तय की है और करेंगे वह सब साधु साध्वी को सहर्ष मान्य होगी । तथा सकारण व भूल से जो भी त्रुटि हो जाय उसका आपश्री जो भी उपालम्भ व प्रायश्चित्त देंगे, उसको सहर्ष स्वीकार करेंगे ।

(६) श्रमणवर्ग की धारणा, विचारणा मे फर्क हो सकता है, लेकिन गच्छाधिपति आचार्यश्री अर्थात् आपश्री की धारणा, विचारणा विरुद्ध कोई साधु-साध्वी साधुसघ में या श्रावकसघ मे स्थापना नही करेंगे ।

(७) जो भी वैरागी या वैरागिन हो उसको तैयार करके स्नेह, श्रद्धा के केन्द्र आचार्यश्री के पास परीक्षा होकर जब तक आपश्री द्वारा आज्ञा प्राप्त न हो जाय, तब तक कोई साधु, साध्वी उनको दीक्षा न देंगे और मारवाड़ी आदि में तथा बाद में भी जो जो सिद्धान्त, चारित्र और सुसंगठन विषयक आदेश आदि दिये हैं और देंगे, उन्हें हम सदा सभी सर्व साकार रूप देने को हर समय तैयार हैं

और रहेगे। इति शुभम्।

उदयपुर आज्ञानुवर्ती

सं. २०१८, वैशाख शुक्ला ३ हम हैं आपके चरण-चचरीक

साधु-साध्वीवृन्द

प्रार्थना उचित और सामयिक थी। आचार्य श्रीजी भी विचारमग्न हो गये। आपश्री संगठन को शुद्ध, सबल और अनुशासन-बद्ध देखना चाहते थे तथा श्रावकसघ की आकाक्षा थी कि भविष्य की व्यवस्था के लिये रूपरेखा अभी से निर्धारित नही की गई तो अव्यवस्था फैल सकती है। अतः किसी-न-किसी प्रकार की निर्णयात्मक स्थिति का निश्चय हो जाना जरूरी था।

आचार्य श्रीजी म. सा. ने उपाचार्य पद का त्याग-पत्र देने के पश्चात् चतुर्विध सघ की ओर से त्याग-पत्र वापस लेने की प्रार्थनाओं के उत्तर में यह अपेक्षा व्यक्त की थी कि जिन कारणो को लेकर त्याग-पत्र दिया गया है, यदि उनका समाधान हो जाता है तो आगे के उत्तरदायित्व का भार हल्का बन जायेगा और सुसंगठन प्रेमी चतुर्विध सघ की होने वाली भावी व्यवस्था की प्रार्थना का भी समाधान हो सकेगा। लेकिन त्यागपत्र को वापस लेने की प्रार्थना करने वाले महानुभावो ने प्रार्थना के अनुरूप कार्य करने को एव आचार्य श्रीजी म. सा. के सतोषजनक समाधान की स्थिति का निर्माण काफी समय बाद भी नही किया और दिनोदिन उससे भी अधिक निर्ग्रन्थ श्रमणसस्कृति का ह्रास अनुभव होने लगा, तब मुख्य चारित्रवान् श्रमणो से परामर्श करना प्रारम्भ किया और उनको इस बात की भलीभाति जानकारी करवाई कि भगवान महावीर द्वारा निर्दिष्ट श्रमण संस्कृति का अमुक अमुक तरीके से ह्रास हो रहा है। अतः इस समय श्रद्धालु श्रमणवर्ग को कटिबद्ध होकर निर्ग्रन्थ श्रमणसस्कृति के रक्षार्थ एक श्रद्धा, एक प्ररूपणा, एक समाचारी बनाकर सादड़ी सम्मेलन मे स्वीकृत मूल उद्देश्य को साकार रूप देते हुए सुसंगठन का आदर्श उपस्थित करने की आवश्यकता है।

अतः इस विषय में चारित्रवान सभी प्रमुख सन्तों को एकत्रित होकर भावी शासन की रूपरेखा स्पष्ट कर किसी भी चारित्रनिष्ठ श्रद्धालु प्रभावशाली सत को उत्तरदायित्व सौंपकर समाज के भविष्य को उज्ज्वल बनाना चाहिए।

परामर्श स्पष्टवक्ता व्याख्यानवाचस्पति प. रत्न श्री मदनलालजी म सा, उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी म. सा. व उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म. सा. आदि से किया गया लेकिन इन मुनिवरो की तरफ से सोत्साह सतोषजनक भावी सगठन की रूपरेखा का उत्तर न मिला तथा बहुश्रुत प रत्न श्री समर्थमलजी म. सा. से भी परामर्श किया गया। उसमे दोनों तरफ की समाचारियो का मिलान कर श्रद्धा, प्ररूपणा, स्पर्शना की एकरूपता बनाने के लिए प्रत्यक्ष के परामर्श की भी आवश्यकता थी।

इन्ही दिनो बहुश्रुत प रत्न श्री समर्थमलजी म. खीचन से विहार करते हुए भोपालपुरा (उदयपुर) मे आचार्य श्रीजी म. सा. की सेवा मे पधार गये। तब सभी बातो के विषय मे खुलकर विचार-विमर्श हुआ और मौलिक रूप से एक श्रद्धा, प्ररूपणा, स्पर्शना की प्रायः समाचारी बन गई और आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. के नेतृत्व में चलने के स्वीकृतपत्र पर बहुश्रुत प. रत्न श्री समर्थमलजी म. ने अपने हस्ताक्षर कर दिये। स्वीकृति पत्र इस प्रकार है —

वन्दे वीरम्-णमोणाणस्स

ता ७-१-१९६१

आत्मकल्याण व आत्मशान्ति का एकमात्र अमोघ उपाय निर्ग्रन्थ श्रमणसंस्कृति है। अतः इसकी शुद्धता बनी रहना नितान्त आवश्यक है। वर्तमान में कुछ श्रमणवर्ग में विकृतियां प्रवेश कर गई हैं। उनको दूर करने के लिए पूज्यश्री गणेशलालजी म. सा. ने [illegible] शान्ति का कदम उठाया, यह उचित एवं आदर्श है।

सिद्धान्त व चारित्र की सुरक्षा पूर्वक सगटन को सुदृढ एव चिरस्थायी बनाने की प्रबल इच्छा रखने वाला श्रमणवर्ग यह निर्णय करता है कि संयमी जीवन मे प्रवेश पाई हुई विकृतियो को दूर करने के लिए एव सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि के हेतु हम शान्त क्रान्ति के जन्मदाता पूज्यश्री १००८ श्री गणेशलालजी म. का नेतृत्व स्वीकार करते हैं।

ऊपर मुजब काम का हम हृदय से निश्चय करते हैं।

द० मुनि समर्थमल। स. २०१७ माघ कृ० ५।

अब रहा प्रश्न इसको अमली रूप देने का। बहुश्रुत पं रत्न श्री समर्थमलजी म. ने इसके लिए मैं पहले सतियो को भी पूछ लेता हूँ, आदि आशय के भाव फरमाकर वहा से विहार कर दिया और यह प्रतीक्षा की जा रही थी कि समाचार मिलने पर आगे का कार्यक्रम सोचा जा सकेगा। लेकिन काफी समय के बीत जाने पर भी जब समाचार नही मिले तो श्री कानमलजी नाहटा आदि कुछ प्रमुख श्रावकों ने जानकारी की तो बहुश्रुत प. रत्न श्री समर्थमलजी म से उनको विदित हुआ कि सतिया नही मान रही हैं। इस पर श्री कानमलजी नाहटा ने अर्ज की कि आप सन्त और जितनी सतिया इसमे सहयोग दे उतना कार्य तो कर लीजिये। लेकिन इतनी साहस की स्थिति नहीं मालूम हुई और यह समाचार जब आचार्य श्री गणेशलालजी म सा. के पास पहुंचे तो आचार्यश्रीजी म. ने सोचा कि इतना प्रयत्न करने पर भी सत निर्ग्रन्थ संस्कृति की रक्षा के लिए साहस नही कर पा रहे हैं, यह कैसी स्थिति है ? कोई साहस करे या न करे, मुझे अपने इस जीवन के अन्दर शुद्ध भावना के साथ निर्ग्रन्थ-सस्कृति की रक्षा का प्रयत्न करते रहना चाहिए। क्योकि इस पचमकाल मे जो सर्वस्व के त्यागी कहलाते हैं, वे भी इस स्थिति से पीछे हट रहे हैं और अपने सामने ही निर्ग्रन्थ श्रमणसंस्कृति को ऊपर उठाने का साहस नही कर पा रहे हैं तो वीतराग शासन की उज्ज्वलता रह सकेगी ? यह एक

विचारणीय विषय है ।

साधु जीवन के अन्दर मान, अपमान, सत्कार, सम्मान आदि भावना को गौण करके शासनसेवा में जुट जाना शासनहितैषी प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है । इस कर्तव्य पद पर जितने भी आरूढ हो सकें, वे ही इस कार्य को आगे बढ़ायें । मैंने जिन महानुभावों की आशा रखी, उन महानुभावों को अच्छी तरह से अवगत करा दिया गया, अतः मैं अपने प्रयत्नों की दृष्टि से स्पष्ट हूँ । अब मुझे सुसंगठन प्रेमी चतुर्विध संघ की प्रार्थना पर भी ध्यान देना आवश्यक हो गया है । इस प्रकार काफी विचार-मनन के पश्चात चतुर्विध संघ की व्यवस्था का सर्वाधिकार एवं पूर्ण उत्तरदायित्व प. र. मुनिश्री नानालालजी म. सा. को सौंपने के लिये दि. १८-४-६१ को घोषणा कर निम्नलिखित आदेश फरमाया—

'चतुर्विध संघ की भावभीनी भक्ति को देखकर मेरे मन में भी अनेक कल्पनायें उठ रही हैं । उन सभी कल्पनाओं को इस समय सविस्तार व्यक्त करूँ, इतना अभी समय नहीं है और मेरा स्वास्थ्य भी उसके अनुकूल नहीं है ।

'मेरे प्रति जो श्रद्धा प्रकट की जा रही है, उसको मैं वीर प्रभु के शासनस्थ शुद्ध चारित्र व सिद्धान्त को समर्पित कर वीतरागभाव को अर्पण करता हूँ ।

मैं एक निश्चित उद्देश्य व कल्पना को लेकर सादड़ी साधु सम्मेलन में सम्मिलित हुआ और उसकी पूर्ति के लिये सतत प्रयत्नशील रहा, किन्तु मेरी आशा पूरी नहीं हुई । साथ ही ऐसी कई परिस्थितियों का निर्माण भी हुआ कि जिसके कारण ता. ३० ११-६० को मुझे नवनिर्मित श्रमणसंघ से पृथक् होने की घोषणा करनी पड़ी । उस घोषणा पर पुनः विचारणा करने के लिये श्रमणवर्ग व श्रावकवर्ग की तरफ से मेरे पास निवेदन आदि आये । मगर उनमें सुसंगठन सम्बन्धी मेरी कल्पनाओं एवं उपयुक्त कारणों के निराकरण की पूर्ति होती दिखाई नहीं दी, अतः साथ

हुए निवेदनो आदि का सामूहिक रूप से ता. १४-२-६१ को एक उत्तर दिया। उसको भी पर्याप्त समय हो गया, किन्तु कोई सतोष जनक समाधान मेरे सामने नही आया।

'मैं सुसगठन का किसी से कम हिमायती नही हूँ। मैं अव भी यह चाहता हूँ कि मेरा सतोषजनक समाधान होकर मेरी कल्पना और उद्देश्य के अनुसार जैसा कि मैं पूर्व में व्यक्त कर चुका हूँ, एक के नेतृत्व मे श्रमणसगठन साकाररूप होकर सुदृढ बने अथवा मेरा सतोषजनक समाधान पूर्वक समस्त मुनिमंडल या यथासम्भव जितने भी मुनिवृन्द शास्त्रसम्मत एक समाचारी में आवद्ध होकर अपने मे से किसी एक शास्त्रज्ञ, श्रद्धावान एव चारित्र-निष्ठ मुनिवर को आचार्य मानें और शिक्षा, दीक्षा, चातुर्मास, विहार व शिष्य परम्परा आदि सब उसी आचार्य के आधीन रहे।

'ऐसी स्थिति बनती हो तो मैं सदैव तैयार हूँ और अन्य सन्त सतियो से भी मैं यही अपेक्षा करता हूँ कि जब भी ऐसी स्थिति का निर्माण हो उसमे अपना विलीनीकरण करने को तैयार रहे। मुझे ऐसा विश्वास है कि जब ऐसी परिस्थिति पैदा होगी तब सुसगठन प्रेमी सन्त-सतीवर्ग उसमे मिलने को तत्पर रहेगे और श्रावक समुदाय भी उसमे अपना पूर्ण समर्थन देगा।

'मेरा स्वास्थ्य कुछ काल से जितना चाहिये उतना अनु कूल नही चल रहा है और सुसगठन प्रेमी चतुर्विध सघ मेरे से भावी व्यवस्था के लिये प्रार्थना कर रहा है कि आपश्री की कल्पना आदि के अनुसार जब तक सुसगठन होकर सर्वाधिकार पूर्ण उत्तर-दायित्व एक आचार्य के आधीन नही हो जाये तब तक हमारा भावी आधार क्या हो आदि ? इस तरफ भी ध्यान देकर व्यवस्था करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।

'यदि मेरी कल्पना व भावना आदि के अनुसार सुसगठन की सुव्यवस्था मेरे जीवन में न बन सके तो मेरे पश्चात चतुर्विध

संघ की व्यवस्था का सर्वाधिकार तथा पूर्ण उत्तरदायित्व भविष्य के लिये प. मुनि श्री नानालालजी को सौंपता हूँ। उनको यह भी निर्देशन करता हूँ कि वे यथासभव मेरी कल्पना आदि के अनुसार सुसगठन बनाने में सदैव प्रयत्नशील रहे और चतुर्विध सघ उनकी आज्ञाओं को शिरोधार्य करता हुआ ज्ञान, दर्शन, चारित्र की अभिवृद्धि करता रहे।'

आचार्य श्रीजी म. सा. के उत्तराधिकारी के रूप में प. रत्न मुनिश्री नानालालजी म. सा का चयन इतना उपयुक्त था कि घोषणा से सर्वत्र आनन्द छा गया। घोषणा में जहा उत्तराधिकारी का नामांकन किया था वही श्रमणसंघ के सुसगठन की शुभ भावना और स्पष्ट मार्गदर्शन देकर समाज का आह्वान भी था। उक्त घोषणा मे अस्त-व्यस्त श्रमणसंघ को संभालने का काफी अवकाश था। लेकिन खेद है कि सगठन को सबल बनाने और समाजोत्थान के इस कार्य मे अधिकारों की चकाचौंध मे किसी ने लक्ष्य नहीं दिया और न आह्वान को सफल बनाने की ओर कोई प्रयास किया गया।

इन्ही दिनों उपाध्याय मुनिश्री हस्तीमलजी म. सा. आचार्य श्रीजी के दर्शन करने और सुखसाता पूछने उदयपुर पधारे। इसी प्रसग मे श्रमणसघ की स्थिति पर विचार हुआ और उपाध्यायश्री ने आचार्य श्रीजी से निवेदन किया कि वर्तमान सामाजिक वातावरण कैसे शुद्ध हो सकता है? इस पर आचार्य श्रीजी ने निम्नलिखित भाव फरमाये थे—

आपश्री (उपाध्याय श्रीजी) ने सांभोगिक, विसांभोगिक विषय को लेकर शिथिलाचार और स्वनिबन्ध आदि के विषय में जो बातें लिखित रूप मे भिजवाई थी और आपश्री के परामर्श से भी जो हुआ उस पर आपश्री दृढता के साथ कायम रहने की कृपा करें।

'अभी मरुधरकेसरी, रूपचन्दजी, सागरजी, मधुकरजी एवं लक्ष्मणजी आदि के विषय को न छुआ जावे अर्थात् इनके साथ कोई सम्बन्ध न रखा जावे। इनके साथ साक्षात व परम्परा से जिन्होंने

सम्बन्ध रखा, उनका शुद्धिकरण हो और आपश्री जी की लिखित बातो और परामर्श के प्रतिकूल जितनी श्रमणवर्ग की प्रवृत्तिया हुई है, उनको भी व्यवस्थानुसार प्रायश्चित्त दिया जाये । यदि वे प्रायश्चित्त न लें तो उनके साथ आपश्री का साभोगिक सम्बन्ध नही रहना चाहिये ।

'सगठन को सुदृढ़, मजबूत एव स्थायी रखने के लिये श्रमणसघ ने जो उद्देश्य स्वीकार कर रखा है, जैसा कि श्रमणवर्ग के प्रमुख मुनिवरो ने अपने निवेदन मे प्रकट किया है—पूज्य उपाचार्य श्रीजी जिस प्रकार के सगठन की अपेक्षा रखते हैं, वैसा सगठन बनाने का श्रमणसघ का अन्तिम लक्ष्य निश्चित हुआ ही है—इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये आपश्री दृढ सकल्प के साथ प्रयत्नशील हो ।

'यदि उपर्युक्त तीनो बातो का अमलीरूप देने मे आप श्रीजी भी तैयार हैं, ऐसा मालूम हो जाये तो आप श्रीजी के बीच के सम्बन्ध में कोई रुकावट नही रह जाती है ।

'इसी प्रकार अन्य भी जो श्रमणवर्ग उपर्युक्त तीनो बातो मे आबद्ध हो जाते हैं तो उनके साथ भी अपनी संभोग की स्थिति स्पष्ट हो जाती है ।

'इसके बाद जिन-जिन का संभोग परस्पर खुला हो जाता है—उन सांभोगिक स्थिति मे रहने वाले मुख्य मुख्य मुनिवरो के परामर्श पूर्वक श्रमण जीवन के लक्ष्य के अनुरूप सिद्धान्त एव शुद्ध चारित्र की रक्षा के लिये शास्त्रसम्मत एक समाचारी बनाई जाये ।

'निश्चित की गई उस समाचारी के अनुकूल चलने वाले महानुभावो का समान उद्देश्य हो, श्रद्धा, प्ररूपणा, स्पर्शना एक हो एव शास्त्रीय पद्धति को सामने रखते हुए सुव्यवस्था की दृष्टि से दृढ अनुशासन की स्थिति का निर्माण हो एवं श्रमणवर्ग के उद्देश्य की पूर्णरूपेण पूर्ति हो यानि इन सब बातो का अमली रूप हो जाये तो संगठन का मार्ग सुलभ होकर श्रमणसस्कृति की रक्षा हो सकती है और फिर ऐसे श्रमणसघ मे सिद्धान्त और चारित्र प्रेमी श्रमणों का रहना भी सुलभ हो सकता है ।'

आचार्य श्रीजी ने उक्त विचारों में श्रमणसंघ की व्यवस्था, स्थायित्व के प्रश्न और संगठन के लक्ष्य का स्पष्ट चित्रण कर दिया था। और इसी के लिये आपश्री ने प्रयत्न किये थे और भविष्य में भी इसी भावना को साकाररूप में देखना चाहते थे।

लेकिन यह पारस्परिक वार्तालाप था और उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म. किसी का प्रतिनिधित्व लेकर नहीं पधारे थे। अतः आचार्य श्रीजी से श्रमणसंघ में वापस पधारने की बारम्बार प्रार्थना दुहराने के अतिरिक्त आचार्य श्रीजी के श्रमणसंघ से पृथक् होने के कारणों के समाधान का कोई समुचित मार्ग नहीं बता सके थे। अतः कोई निश्चित परिणाम नहीं निकल सका। सिर्फ पारस्परिक विचार-विनिमय के अतिरिक्त आगे कार्रवाई होने की आशा नहीं की जा सकी।

कान्फरन्स के शिष्टमंडल का आगमन

उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म. ने पारस्परिक विचार-विनिमय कर और सुखसाता पूछकर चातुर्मास हेतु सैलाना की ओर विहार कर दिया। श्रमणसंघ की स्थिति में सुधार के कोई चिह्न नहीं दिख रहे थे और न पूर्ण मनोयोग से कोई इस ओर प्रयत्न कर रहा था। सामयिक पत्रों और मौखिक रूप से होने वाले प्रचार की अपेक्षा उनका बर्ताव भी विध्यात्मक रूप में नहीं हो रहा था। इससे समाज में आशंका व्याप्त थी कि क्या श्रमणसंघ खंडित होगा?

कान्फरन्स भी मूकदर्शक की तरह यह सब देख रही थी। अपने प्रति बढ़ते हुए समाज के रोष को शांति या रोष को दूसरी दिशा में मोड़ने के लिये दि. २३-८-६२ को कान्फरन्स की ओर से सेठ श्री अचलसिंहजी की अध्यक्षता में एक शिष्टमंडल आचार्य श्रीजी म. सा. की सेवा में उपस्थित हुआ।

शिष्टमंडल ने आचार्य श्रीजी म. सा. की सेवा में अर्ज की कि आपश्री अपना त्यागपत्र वापस लेकर श्रमणसंघ का संचालन करें। हम चाहते भी यही, सबने यही इच्छा प्रगट की है। इस प्रकार सब

के अनुशासन की समाज को आवश्यकता है। अतः आपश्री हमारी प्रार्थना की स्वीकृति फरमाये ताकि सगठन मजबूत हो। अब रूपचन्दजी का विषय तो समाप्त हो चुका है। अन्य प्रश्नो का समाधान शेष है।

इस पर आचार्य श्रीजी ने अपने भाव फरमाये कि रूपचन्दजी के लिये जैनप्रकाश मे तो क्या प्रकट हुआ और प्रवृत्ति कुछ और ही हुई। यह जो कुछ भी हुआ है, वह न तो विधिपूर्वक है और न सतोष-जनक ही। किन्तु एक प्रकार से उपहास का विषय बनता जा रहा है।

श्रमणसघ का संगठन कैसा होना चाहिये, आदि के बारे में मैंने अपनी योजना समाज के सामने पहले ही रख दी है। फिर भी आप मेरे दो शब्द और लेना चाहते हैं तो सारांश यह है कि श्रमणसघ मे रहते हुए मार्गदर्शन के रूप मे दी गई व्यवस्थाओं आदि के अनुसार श्रमणवर्ग पालन करे और प्रतिकूल प्रवृत्तिया करने वालो का शुद्धिकरण होकर अन्य उत्पन्न अनुचित प्रवृत्तियो का सुधार हो तथा श्रमणसंघ ने निर्धारित लक्ष्य के अनुसार एक आचार्य की आज्ञा में शिक्षा-दीक्षा, प्रायश्चित्त, चातुर्मास, विहार आदि होने को जिसकी मुख्य-मुख्य मुनियों ने पुनः पुष्टि की है, अमली रूप देने के लिये श्रमणवर्ग दृढ सकल्पी हो। ऐसी संतोषजनक स्थिति स्पष्ट रूप से मेरे सामने आये तो उस पर सोचने के लिये मैं सदैव तैयार हूँ। मैं सुसगठन को हृदय से चाहता हूँ।

आचार्य श्रीजी के भाव स्पष्ट थे। लेकिन उपर्युक्त बातों का शिष्टमडल के पास कोई समाधान नही था और इतना साहस भी नही था जो योग्य कार्य के लिये कुछ कार्रवाई कर सके। अतः किसी प्रकार का निश्चय किये बिना शिष्टमडल दि २४-८-६२ को वापस लौट गया।

युवाचार्य पद की घोषणा

कान्फरन्स का शिष्टमडल आया गया हो गया था। लेकिन इसके बाद भी आचार्य श्रीजी प्रतीक्षा करते रहे कि श्रमणसंघीय स्थिति के सुधार के लिये प्रयत्न हो। लेकिन ऐसा कुछ भी प्रतीत नही हुआ।

श्रमणसंघ की अव्यवस्था के कारण स्पष्ट थे और चतुर्विध संघ का प्रत्येक सदस्य उनके समाधान की अपेक्षा रखता था। लेकिन समस्याओं के समाधान का जो रूप सामने आया और रूपचन्दजी की नई दीक्षा का निर्णय जैनप्रकाश में प्रकाशित करा के भी उसका जिस रीति से पालन किया या कराया और नई दीक्षा न देकर केवल ४ वर्ष १० माह के दीक्षाछेद का जो प्रायश्चित दिया गया, वह भी शास्त्र-सम्मत आधार पर नहीं था। समाज ने यह सब स्थिति देखी तो सुसंगठन प्रेमी चतुर्विध संघ निराश हो गया और आचार्य श्रीजी के चरणों में समाज-संगठन को दृढ़ बनाने हेतु एक निश्चित व्यवस्था देने के लिये पुनः आग्रह भरी विनती करने लगा।

आचार्य श्रीजी म. सा. ने बारबार होने वाली इन विनतियों पर विचार किया कि निर्णय तो ऐसा हो जिससे किसी प्रकार की उलझन पैदा न हो और चतुर्विध संघ को भी संतोष हो जाये। इसलिये वीर-शासनप्रेमी चतुर्विध संघ को इस समय उस परम्परा में स्थान देना उपयुक्त होगा जिससे कि परंपरागत महापुरुषों के नाम से त्याग वैराग्य की भावना जागृत रहे। यही सोचकर आचार्य श्रीजी म. सा. ने महातपोधनी, त्यागी महापुरुष पूज्यश्री हुक्मीचंदजी म. सा. की परम्परा रखना हितकर समझा।

परम्परा में रखना हितकर समझते हुए भी बार-बार यह भलामण दी कि मेरी कल्पना के अनुसार श्रमणसंघीय व्यवस्था होती हो तो उसमें शामिल होने के लिये सदा तत्पर रहना तथा वैसी स्थिति का निर्माण करने के लिये सचेष्ट रहना।

इस भलामण और त्याग-वैराग्य की परम्परा पुनर्जीवित रखने व उसकी व्यवस्था हेतु पं. मुनिश्री नानालालजी म. सा. को युवाचार्य घोषित किया।

इस सम्बन्ध में चतुर्विध संघ की विनती और आचार्य श्रीजी म. सा. की घोषणा इस प्रकार है—

पूज्य आचार्य प्रवर,

पुनीत चरणो मे हमारा शत-शत वदन !

सवत् २०१८ के ग्रीष्मकाल मे आपश्री के शरीर में असातावेदनीय कर्मोदय हुआ था, तब सारा समाज एकदम चिन्ता-ग्रस्त हो गया था। उस स्थिति से हमारे मन मे नाना प्रकार के सकल्प-विकल्प उत्पन्न हुए थे। तब हमने अनुभव किया था कि हमारी समाज रूपी नौका डोलायमान हो रही है। उस समय जब एक ओर अन्तर् मे आपके स्वास्थ्यलाभ की शुभ कामनायें कार्य-रत थी तो दूसरी ओर हमे समाज के भविष्य की भी चिन्ता हो रही थी। हम जीवो को आत्मकल्याण के लिये आपका मार्गदर्शन सुलभ था, इसलिये हमारे हृदय में भावनायें उठ रही थी कि उसी प्रकार मार्गदर्शन हमको आगे भी मिलता रहे तो कितना अच्छा हो। उन्ही अन्तर् भावनाओ से प्रेरित होकर उस समय आपकी पवित्र सेवा मे प्रार्थना की थी कि भगवन् ! आपके पश्चात् भी हमको वैसा ही मार्गदर्शन मिलता रहे। इसलिये चतुर्विध संघ किसका आज्ञानुवर्ती रहे ? इसकी घोषणा करने की महती कृपा करें।

'आपने हमारी उस प्रार्थना पर विचार कर प मुनिश्री नानालालजी म. सा. को आपके पश्चात् चतुर्विध सघ की व्यवस्था का सर्वाधिकार तथा पूर्ण उत्तरदायित्व भविष्य के लिये सौंपा था। उस घोषणा से हमारी चिन्तायें बहुत दूर हो गई थी। इधर आपका स्वास्थ्य भी सुधरने लगा तो हमारे आनन्द का ठिकाना नही रहा।

आपकी उक्त घोषणा से भविष्य के लिये जहां हम आश्वस्त हुए, वहा हमारा ध्यान पं मुनिश्री नानालालजी मे और अधिक केन्द्रित होता गया और हमारी भावनाये उनकी गतिविधि की परख मे भी चलने लगी।

'महामने, इस गतिविधि से हमने अनुभव किया कि आप न केवल शुद्ध सयमाराधक, उच्च निष्ठावान, ज्ञानगंभीर

महापुरुष हैं बल्कि आप मे परखने की भी एक अद्भुत क्षमता है। आप द्वारा आपके उत्तराधिकारी के रूप मे प. मुनिश्री नानालालजी म. सा. का योग्य चयन आपकी परख का स्पष्ट उदाहरण है।

'प. मुनिश्री नानालालजी म. सा. की सयमाराधना के प्रति उत्कट अभिरुचि और बड़ों के प्रति आदरभाव के विनीत गुण एव शास्त्रीय ज्ञानगुण से हमको संतोष है। हम उनके प्रति भी अपनी भक्तिपूर्वक श्रद्धा व्यक्त करते हैं।

'अभी असाता वेदनीय कर्मोदय ने आपके स्वास्थ्य को पुनः झकझोर दिया है। इससे हमारे मन पर पुनः भार है। यद्यपि प मुनिश्री नानालालजी म. को आपके योग्य उत्तराधिकारी के रूप में पाकर हम गर्व अनुभव करते हैं, तथापि समाज की दिन-प्रतिदिन बिगड़ती हुई स्थिति एवं सयममार्ग मे आई हुई विकृतियों को देखकर हमारी आपश्री से आतरिक प्रार्थना है कि समाज संग-ठन को सुदृढ बनाने के लिये प. मुनिश्री नानालालजी म. को युवा-चार्य घोषित कर आपके वरदहस्त द्वारा ही चादर प्रदान की जाये। आपश्री के लक्ष्यानुरूप संगठन का यह बीज आपश्री के आशीर्वाद से पुष्पित, पल्लवित होकर समाज मे आत्म-साधना की अभिरुचि को और बढाता हुआ कल्याणदायक सिद्ध होगा।

'हमें विश्वास है कि आपश्री हमारी इस प्रार्थना पर अवश्य ध्यान देने की कृपा करेंगे।

'अन्त मे हम आपश्री के अनुयायी श्रावक-श्राविका आपको विश्वास दिलाते हैं कि हम प. मुनिश्री नानालालजी म. की प्रत्येक आज्ञा को शिरोधार्य कर अपना कर्तव्य पालन करेंगे।

हम है आपके श्रावक वृन्द

(उदयपुर राजस्थान)

मिती आश्विन कृष्णा ६ स. २०१९ दि. २२-९-६२

विनती के प्रत्युत्तर में आचार्य श्रीजी ने यह भाव फरमाये....

'लगभग डेढ वर्ष पूर्व जब अचानक मेरे शरीर पर रोग ने आक्रमण किया और मेरा स्वास्थ्य निर्बल होता जा रहा था तब शासन-हितैषी, सुसंगठनप्रेमी चतुर्विध सघ में चिन्ता व्याप्त हो गई थी । उस समय मुझसे प्रार्थना की गई थी कि--

'आपश्री की कल्पना आदि के अनुसार जब तक सुसग-ठन होकर सर्वाधिकारपूर्ण उत्तरदायित्व एक आचार्य के आधीन नही हो जाये, तब तक हमारा भावी आधार क्या हो ?

'समाज की स्थिति को देखते हुए चतुर्विध संघ के मन मे ऐसे विचार आना स्वाभाविक ही था । उनकी उपर्युक्त भावना की प्रार्थना आने पर समाज की स्थिति और अन्यान्य बातो पर गम्भीरता से मनन करके कुछ व्यवस्था करना मैंने अपना कर्तव्य समझा । उस समय मैंने यही सोचा कि चतुर्विध सघ की चिन्ता निर्मूल नही है । अतः मैंने दि. १८ अप्रैल १९६१ को सुसगठन सम्बन्धी अपनी निम्न भावना व्यक्त करते हुए कहा था कि---

'मैं सुसंगठन का किसी से कम हिमायती नही हूँ । मैं अब भी यही चाहता हूँ कि मेरा सतोषजनक समाधान होकर मेरी कल्पना और उद्देश्य के अनुसार जैसा कि मैं पूर्व मे व्यक्त कर चुका हूँ एक के नेतृत्व मे श्रमण संगठन साकार रूप होकर सुदृढ बने अथवा मेरा सतोषजनक समाधान पूर्वक समस्त मुनिमडल या यथासंभव जितने भी मुनिवृन्द शास्त्रसम्मत एक समाचारी में आबद्ध होकर अपने मे से किसी एक शास्त्रज्ञ श्रद्धावान एव चारित्र-निष्ठ मुनिवर को आचार्य मानें और शिक्षा, दीक्षा, चातुर्मास, विहार व शिष्य-परंपरा आदि सब उन्ही आचार्य के आधीन रहे । ऐसी स्थिति बनती हो तो मैं सदैव तैयार हूँ और अन्य सन्त-सतियो से भी यही अपेक्षा करता हूँ कि जब भी ऐसी स्थिति का निर्माण हो, उसमे अपना विलीनीकरण करने को तैयार रहें .... । इन भावो को व्यक्त करते हुए चतुर्विध संघ की प्रार्थना को लक्ष्य करके

आदेश दिया था कि—

'यदि मेरी कल्पना व भावना आदि के अनुसार सुसंगठन की सुव्यवस्था मेरे जीवन में न बन सके तो मेरे पश्चात चतुर्विध संघ की व्यवस्था का सर्वाधिकार तथा पूर्ण उत्तरदायित्व भविष्य के लिये पंडित मुनिश्री नानालालजी को सौंपता हूँ कि वे यथासंभव मेरी कल्पना आदि के अनुसार सुसंगठन बनाने में प्रयत्नशील रहे और चतुर्विध संघ उनकी आज्ञाओं को शिरोधार्य करता हुआ ज्ञान दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि करता रहे।

'उक्त भावना एवं निर्देशन मे सन्निहित भावो से मुज्ञ वर्ग को ज्ञात होना चाहिये कि चतुर्विध संघ की प्रार्थना पर ध्यान देकर जहां मैंने एक व्यवस्था दी, वहां शास्त्र-सम्मत एक समाचारी में आबद्ध होकर सर्वाधिकार सम्पन्न एक के नेतृत्व मे श्रमणसंगठन बनता हो तो उसमे विलीन होने के लिये भी मार्ग खुला रखा है। आज भी मेरे वही विचार हैं।

'अभी गत ज्येष्ठ मास में उपाध्याय पं. रत्न श्री हस्तीमलजी म. उदयपुर पधारे तब श्रमणसंघ सम्बन्धी उनसे वार्तालाप हुआ था। बाद मे पर्युषण पर्व से पूर्व अ. भा. श्वे. जैन कान्फ्रेन्स का एक शिष्टमंडल भी आया था। उनसे भी श्रमणसंघ सम्बन्धी चर्चा-वार्ता हुई थी। सभी ने सुसंगठन की मेरी उक्त भावना एवं विचारों को भगवान महावीर की निर्ग्रन्थ श्रमणसंस्कृति के रक्षार्थ सहायक माना। परन्तु इतना समय व्यतीत हो जाने के बाद और चर्चा-विचारणा के उपरान्त भी तदनुसार पालन करने-कराने का कहीं से कोई चिन्ह दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है।

'सं॰ २००९ मे सादड़ी सम्मेलन मे स्थानकवासी जैन धर्मानुयायी विभिन्न संप्रदायों के मुनिवरों ने मिलकर भिन्न-भिन्न परम्परा और समाचारी मे एकता लाकर एकीकरण, पारस्परिक प्रेममय ऐक्यबुद्धि एवं संयममार्ग में उत्पन्न विकृतियों को निर्मूल

करने की दृष्टि से एक आचार्य के नेतृत्व मे एक और अविभाज्य श्रमणसघ की स्थापना की थी। वहां एकत्रित सब प्रतिनिधि मुनिवरो ने मिलकर सर्वसम्मति से उपाचार्य पद पर मुझे आसीन कर श्रमणसघ-सचालन का पूर्ण उत्तरदायित्व मुझे सौंपा। तब मेरी इच्छा नही होते हुए भी मैंने प्रतिनिधि मुनिवरो को मान देकर श्रमणसस्कृति की पवित्रता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये उस गुरुतर उत्तरदायित्व को सघसेवार्थ स्वीकर किया और जो भी समस्या मेरे सामने आई अथवा मुझे सौंपी गई, उन पर न्याय-नीति पूर्वक विचार करके आत्मसाक्षी से निर्णय दिये। यद्यपि विधि-विधान के अनुसार ऐसी समस्याओ का निर्णय लेने का मुझे पूर्ण अधिकार था परन्तु मेरी दृष्टि मे सघसेवा की मुख्य रही अतः जहां भी मुझे आवश्यकता अनुभव हुई, मैंने अधिकारी मुनिवरो आदि से परामर्श लेकर निर्णय दिये। इतना सब होते हुए भी ऐसे निर्णयो की न केवल मौन अवज्ञा ही की गई बल्कि विपरीत अध्यादेशो आदि द्वारा उनकी स्पष्ट अवहेलना भी की गई और कराई गई। आश्चर्य तो इस बात का रहा कि मेरे द्वारा किये गये श्रमणसघीय ऐसे निर्णयों पर जब भी किसी ने मुझसे चर्चा की तो जहा तक मुझे स्मरण है किसी ने भी उन निर्णयो मे मुख्य-रूप से अमुक त्रुटियां या कमी रही ऐसा नही कहा। फिर भी उनकी पालना नही हुई। इस प्रकार न्याय-नीति और अनुशासन की अवहेलना होते हुए भी मैंने धैर्यपूर्वक और प्रतीक्षा की, परन्तु जब मुझे लगा कि अब मेरे जैसे व्यक्ति का श्रमणसंघ मे रहना व्यर्थ है तब मुझे विवश होकर उस नवनिर्मित श्रमणसंघ से सकारण पृथक् होना पड़ा, परन्तु मार्ग खुला रखा।

'बाद मे श्रमणसंघीय अधिकारी मुनिवरो एव श्रावकसघों द्वारा मेरे त्यागपत्र सम्बन्धी विचार पर पुनर्विचार के पत्र, प्रार्थना आदि आये। उनमे मैंने मेरे प्रति उनके प्रेम की झलक तो देखी

मगर जिन कारणो को लेकर मैं श्रमणसंघ से पृथक् हुआ, उनके निराकरण का कोई संतोषजनक समाधान, आश्वासन नही दिखा। इसलिये मैंने समन्वयवाद उनकी प्रेमभावना की सराहना करते हुए जब तक मेरा संतोषजनक समाधान नही हो जाये, तब तक क्या कहूँ ऐसा उत्तर दिला दिया।

'यद्यपि इन सब बातो को काफी समय हो गया तथापि मुझे आशा थी कि सादडीसम्मेलन मे स्वीकार किये हुए उद्देश्य की पूर्ति हेतु मेरी योजना को कार्यान्वित करने का कही से सक्रिय कदम उठेगा, परन्तु अभी पिछले दिनो जब विकेन्द्रीकरण की योजना मेरे सामने आई और रूपचन्दजी के विषय को शास्त्रीय मर्यादाओं को भी अलग रखकर जिस ढग से निपटा हुआ मान लिया गया तो अब मुझे ऐसा लग रहा है कि मेरी भावनानुकूल एक आचार्य के नेतृत्व मे पूर्व स्वीकृत उद्देश्य की पूर्ति की सब मुनिवरो द्वारा मिलकर कम-से-कम निकट भविष्य मे सम्भावना नही है।

'इन दिनो मेरा स्वास्थ्य पुनः गडबड़ा गया है और शरीर मे अधिक निर्बलता अनुभव हो रही है। इधर समाज की अस्थिर स्थिति और नैराश्य से सुसगठन प्रेमी महानुभाव भी विचलित हैं और चाहते हैं कि संघ-संचालन का कुछ ठोस निर्णय ले लिया जाये। मैं भी अब इसकी आवश्यकता अनुभव कर रहा हूँ। इसलिये पं. मुनिश्री नानालालजी को शुभेच्छु और संघ की सम्मति से परमप्रतापी, तपोधन, यशस्वी, महान संत पूज्यश्री १००८ श्री हुक्मीचन्दजी म. सा. की पाट-परम्परा पर युवाचार्य घोषित करता हूँ। मेरे जीवनकाल मे ये इस पद से विभूषित रहेंगे और मेरे बाद मे आचार्यपद के अष्टम पाट की शोभा बढ़ायेंगे। यही मेरी भावना है।

'यदाकदा मेरे कान पर एक बात आती रहती है कि उपाचार्य पद से त्यागपत्र देकर श्रमणसंघ से पृथक् हो जाने के

वाद मेरे अगरूप श्रमणवर्ग सहित मेरी स्थिति क्या रहती है ? अव अवसर आ गया है कि इस विन्दु पर भी प्रकाश डाल दू, जिससे स्थिति स्पष्ट हो जाये ।

'सादडी मे निर्मित श्रमणसघ में प्रवेश इस शर्त के साथ था कि यह सघ-ऐक्य योजना अखंड रहे तव तक के लिये मैं वाध्य हूँ।

'श्रमणसघ सचालन की अवधि मे शिथिलाचार उन्मूलन की दिशा मे तथा ध्वनिवर्धक यंत्र के उपयोग नही करने के सम्वन्ध मे मैंने विधिवत व्यवस्थायें दी थी। परन्तु उन व्यवस्थाओ के विपरीत आचार्य श्री द्वारा अध्यादेश आदि निकाले गये, जिससे तत्काल तो दिल्ली में विराजित पंजावी मुनिवरों मे और वाद में अन्यत्र भी साभोगिक-सम्वन्ध-विच्छेद हो गये। इस प्रकार विभेद पड़कर सघ-ऐक्य-योजना अखडित नही रही। मेरी उपर्युक्त शर्त अनुसार मैं उस नवनिर्मित श्रमणसघ से पृथक होने मे उसी समय से स्वतन्त्र था, परन्तु इधर समाज में मेरी उक्त व्यवस्थाओ को पालन कराने के प्रयत्न चल रहे थे, इसलिये जावरा से निवेदन देकर मेरी साभोगिक स्थिति को मर्यादित करते हुए मैंने सावधानी दिला दी थी और त्यागपत्र नही देकर प्रतीक्षा करता रहा। इसके वाद लम्वे काल तक प्रतीक्षा करने के उपरान्त भी जब टूटे हुए साभोगिक सम्वन्ध मे सुधार नही हुआ और दूसरी-दूसरी वातो द्वारा व्यवस्था और विगड़ने लगी तो मुझे विवश होकर उपाचार्य पद से त्यागपत्र देकर श्रमणसघ से पृथक होना पड़ा।

'इस प्रकार श्रमणसघ से पृथक् हो जाने के वाद मैं मेरे अंग रूप श्रमणवर्ग सहित अपने आप ही यथापूर्व स्थिति मे आ गया। इसमे और विशेष कुछ कहने का नही रहता।

'प मुनिश्री नानालालजी को युवाचार्य पदवी प्रदान के वाद भी जहा तक श्रमणवर्ग के साथ सांभोगिक सम्बन्ध आदि व्यवस्था का प्रश्न है उसके लिये मैं पूर्व मे व्यक्त कर चुका हूँ,

तदनुसार जिनके साथ जैसा योग्य जान पड़ेगा वैसा सम्बन्ध आदि रखा जा सकेगा ।

'मेरे मे श्रद्धा रखने वाले संत-सतीवर्ग एव श्रावक-श्राविकायें प. मुनिश्री नानालालजी की आज्ञाओं को शिरोधार्य करता हुआ इनको पूर्णरूपेण सहयोग देवें और ज्ञान-दर्शन-चारित्र की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि करता रहे ।

'मैं यहा पुनः निर्देश करता हूँ कि मेरी भावना और कल्पना आदि के अनुसार जब भी ऐसी (सुसगठन की) स्थिति का निर्माण हो उसमे अपना विलीनीकरण करने को तैयार रहे और सुसंगठन बनाने मे सदा प्रयत्नशील रहें ।

सघ-संचालन के वृहत् कार्य में संत-सतिया एव श्रावक-श्राविकाओ ने मुझे सहयोग दिया उसके लिये मैं उनका पूर्ण आभार मानता हूँ ।

'श्रमणसघ के कार्यकाल मे तथा बाद मे मेरे द्वारा किसी का दिल दुखा हो तो मैं एक बार पुनः अन्तःकरण से क्षमा-याचना करता हूँ। इति शुभम् ।'

उदयपुर, आसोज कृष्णा ६, सं. २०१६, दि. २२ सितम्बर १६६२

चतुर्विध संघ में हर्ष

आचार्य श्रीजी की घोषणा से चतुर्विध संघ में हर्ष व्याप्त हो गया । हर्ष होना स्वाभाविक ही था कि आचार्य श्रीजी ने अपना उत्तरदायित्व एक ऐसे प्रतिभासम्पन्न चारित्रशील मुनिराजश्री को सौंपा था जो उनकी भावनाओं को मूर्तरूप देने में प्राणपण से चेष्टा करने की भावना रखते हैं तथा विवेकशील, विनयी, संयमप्रेमी, विद्वान विचारक हैं ।

दूसरा कारण यह था कि सन्त-परम्परा को अक्षुण्ण रखने के लिये आचार्य श्रीजी ने इस सम्प्रदाय व्यवस्था में भी एक व्यवस्था देकर भविष्य के लिये स्पष्ट आदेश दे दिया था । संत-जन सैद्धान्तिक सुसंग-

ठन के लिये सदैव तत्पर रहे हैं और इसके लिये मान-सम्मान की अपेक्षा साधना को सर्वोपरि माना है।

आचार्य श्रीजी के हार्दिक उद्गार

आचार्य श्रीजी का स्वास्थ्य कमजोर होता जा रहा था। इन दिनो मे तो विशेषरूप से स्वास्थ्य मे उतार-चढाव आ रहे थे और ऐसा कुछ नही कह सकते थे कि शरीर की भविष्य मे क्या स्थिति बने।

चतुर्विध संघ के व्यवस्था-सम्बन्धी विचार व्यक्त कर देने के पश्चात् आचार्य श्रीजी म. सा. ने इसी समय आत्मनिवेदन सम्बन्धी विचारो को भी व्यक्त कर देने का उचित अवसर मानकर यह हार्दिक उद्गार व्यक्त किये—

मेरा शरीर इन वर्षों मे कुछ कमजोर-सा चल रहा है और इन दिनो मे तो कमजोरी अधिक अनुभव हो रही है। यह शरीर भौतिकपिंड है। इसको एक रोज छोड़ना ही है। सम्भव है कभी यह अचानक अपनी प्रक्रिया को बदल दे तो ऐसी दशा में जब तक मेरी ज्ञान-शक्ति अच्छी तरह काम कर रही है, हिताहित को पहिचानने का प्रज्ञा-प्रकाश भलीभाति विद्यमान है, तब तक सभी से क्षमायाचना कर लेना हितकर है। यह सोच मैं अपनी आलोचना करके सभी प्राणियो से और खासकर चतुर्विध संघ से शुद्ध हृदयपूर्वक क्षमायाचना करता हूँ।

इस समय मेरा ७३वां वर्ष चल रहा है। दीक्षा लिये भी ५६ वर्ष होने जा रहे हैं। इस कार्यकाल में मैंने यथाम्थान रहते हुए जिसको हृदय से सत्य मानता रहा हूँ, उसका आदेश उपदेश के रूप में व्यवहार करता रहा हूँ। कई व्यक्तियों से मेरा सैद्धान्तिक मतभेद भी रहा है। सत्य और न्याय का अन्वेषण करने आदि की दृष्टि से उनके साथ विचार-विमर्श व चर्चा आदि का प्रसंग भी आया है। उस समय भी जहां तक उपयोग रहा है, वहाँ तक मेरा उन व्यक्तियो के साथ केवल आचार-विचार सम्बन्धी

भेद रहा है, पर आत्मिक दृष्टि से मैंने उनको अपने मित्र ही समझे हैं और अब भी समझता हूँ। फिर भी आत्मा की विशेष शुद्धि के लिये उन सभी व्यक्तियों से क्षमा मांगता हूँ।

मेरा साधुवर्ग के साथ गुरु और शिष्य के रूप मे, शासक और शास्य के रूप मे, सेव्य और सेवक के रूप में तथा दूसरे कई प्रकार से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और इसी तरह सादडी मे निर्मित श्रमणसघ के साथ भी सम्बन्ध रहा है। मैंने शासनोन्नति एव निर्ग्रन्थ श्रमणसस्कृति की रक्षा के लिये, उत्पन्न विकृतियो को दूर करने के लिये एव सुसगठन के लिये व्यवस्थायें आदि दी। दी गई व्यवस्थाओ आदि का जिन्होने पालन नहीं किया, उनके साथ अनुशासनात्मक कार्यवाही भी करनी पडी और अपने विचार सघ के सामने रखे। उनसे किसी के चित्त को किसी प्रकार का कष्ट पहुँचा हो तो—

खामेमि सव्वे जीवा सव्वे जीवा खमन्तु मे।
मित्ती मे सव्व भूएसु वेरं मज्झ न केणई ॥

इस शास्त्रीय पाठ से क्षमत-क्षमापना करता हुआ—

सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदम्,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातु देव ॥

इसके साथ मेरी आत्मा को जोड़ता हूँ।

युवाचार्यश्री के हृदयोद्गार

पं. र. मुनिश्री नानालालजी म. सा. को चतुर्विध सघ की व्यवस्था का उत्तरदायित्व सौंपने से चतुर्विध संघ की प्रसन्नता का पारावार नहीं था किन्तु युवाचार्यश्री के लिये यह आत्मनिरीक्षण का अवसर था। अतः आपश्री ने निम्नलिखित आशय के भाव व्यक्त किये—

आज जो कुछ हुआ उसमें मेरा किंचित् प्रयत्न नहीं है,

अपितु कुण्ठित ही है। मुझे इस समय कुछ बोलने का भी उत्साह नही है। अभी जो कुछ हुआ उसकी मैं तो आवश्यकता अनुभव नही करता। फिर भी महापुरुषो के हृदय मे महान आशय रहा हुआ होता है। उस आशय को हम समझने का प्रयत्न करे। यह हमारे लिये वरदान स्वरूप हो सकता है। इस भावना से दो शब्द बोल रहा हूँ।

गत वर्ष अक्षय तृतीया के दिन मेरा नाम निर्देश किया गया। उस समय मैंने चतुर्विध सघ के समक्ष प्रार्थना की थी कि मेरा नाम इस चित्र से हटा लिया जाकर किसी महामुनि को इस गुरुत्तर उत्तरदायित्व को दिया जाये। चतुर्विध सघ मेरी ओर से पूज्यश्री के चरणो मे भी प्रार्थना कर मुझे मुक्त करावे। परन्तु उस समय मुझे प्रभाव डालकर मौन किया गया। गुरुदेव के सन्मुख विनय युक्त प्रार्थना ही तो कर सकता था। उसे स्वीकार करना, नही करना उनके हाथ था।

अभी पूज्य आचार्यश्री का स्वास्थ्य जब पुनः निर्बल बना तो लोगो मे हलचल मच गई। लोग नाना प्रकार की बाते करने लगे। मेरे कान पर भी शब्द आये तो विनयपूर्वक मैंने आचार्यश्री के चरणो मे प्रार्थना की कि आपश्री जो कुछ भी सोचें, किसी अन्य योग्य मुनिवर के लिये सोचें। परन्तु आचार्यश्री ने फरमाया कि बिना पूछे तुम्हारे बोलने की आवश्यकता नही। जब तुमसे पूछा जाय तब उत्तर देना आदि। इतना फरमाते समय जब मैंने अनुभव किया कि आचार्यश्री को इससे कुछ कष्ट हो रहा है तो मैं मौन हो गया। परन्तु प्रमुख श्रावको से कहा कि आप लोग ही विनम्रपूर्वक आचार्यश्री के चरणो में प्रार्थना कर इससे मेरे नाम को हटवा दें। लेकिन समय की बात कहूँ या अन्य कुछ, ये महानुभाव भी मेरे सहायक नही बने, बल्कि जो कुछ अभी हुआ, इसी के लिये मुझे कहते रहे। अधिकाश प्रमुख श्रावक तो एक कदम

और आगे बढ़कर किसी-न-किसी रूप मे मुझको भी कहते रहे कि आचार्यश्री की आज्ञा का आपको पालन करना होगा। आप मनाई कैसे कर रहे हैं। श्री जुगराजजी सेठिया, श्री सुन्दरलालजी तातेड, श्री हीरालालजी नादेचा आदि ने अपने-अपने ढग से एकान्त मे बहुत कुछ कहा। वे तो यहा तक कह बैठे कि क्या आचार्यश्री के चित्त को शाति देना नही चाहते आदि। इस प्रकार मुझे चुप कर दिया। अन्य भी कई सज्जनो ने इसी प्रकार कुछ-न कुछ कहा। मगर मेरे विचारों के समर्थन मे कोई नही बोला। अब मैं इस प्रसग के उपस्थित होने पर नतमस्तक हो सुन रहा हूँ। मेरी अन्तरात्मा का मुख्य लक्ष्य और ही है। मैं तो विद्यार्थी जीवन मे रहते हुए अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना के साथ जिस उद्देश्य से निकला हूँ, उस उद्देश्य की पूर्ति करना चाहता हूँ। इस-लिये मुझे उसी तरह की स्थिति मे रखा जाये तो बहुत आनंदित हूँ। एक बात और, चतुर्विध संघ ने आचार्यश्री के चरणो मे पहले भी प्रार्थना की थी और आज उन्ही श्रीचरणो मे पुनः प्रार्थना कर रहा है। लेकिन चतुर्विध सघ को यह तो विदित ही होगा कि ऐसा करके उसने अपने ऊपर एक महान उत्तरदायित्व ले लिया है। इसलिये इस गुरुतर उत्तरदायित्व का परिवहन चतुर्विध सघ के प्रत्येक सदस्य को करना ही होगा। मुझे जो भार सौपा जा रहा है, उसमे चतुर्विध संघ की भी जवाबदारी है। इसलिये एक दृष्टि से मैं चिन्ता जैसी बात अनुभव नही करता हूँ, क्योंकि मैं तो बालक विद्यार्थी हूँ। माता की गोद मे बालक जैसे सभी चिन्ताओं से मुक्त रहता है, उसी प्रकार मैं माता की गोद के समान चतुर्विध सघ और आचार्यश्री के बीच रहता हूँ। चतुर्विध सघ मुझे ज्ञान-दर्शन-चारित्र की उन्नति के लिये सहायक हो और आचार्यश्री का वरदहस्त मेरे सिर पर हमेशा बना रहे, जिससे मेरा व चतुर्विध सघ का जीवन मगलमय प्रसग मे बीते। यही शुभभावना है।

समय अधिक हो गया है और आचार्यश्री को अस्वस्थता के कारण कष्ट हो रहा है, अतः अब अधिक बोलना नही चाहता ।

युवाचार्यश्री के उपर्युक्त प्रवचन के उपरान्त सभा विसर्जित हुई।

चादर-प्रदान समारोह का निश्चय

पूज्य आचार्य श्रीजी म सा. की सघ-व्यवस्था विषयक घोषणा से चतुर्विध सघ को संतोष हुआ । अब उसकी आकाक्षा थी कि युवाचार्य चादर-प्रदान की तिथि निश्चित करके चादर-प्रदान समारोह मनाया जाये । सघ ने विचार-विमर्श करके स. २०१९, मिती आसोज शुक्ला २, रविवार दि. ३० सितम्बर १९६२ का दिवस समारोह के लिये निर्धारित किया ।

समारोह आठ दिन बाद था और इतने अल्प समय में विभिन्न श्रीसघो को सूचना देने एव समारोह में आने वाले श्रावक-श्राविकाओ के आवास आदि की व्यवस्था करने का महत्त्वपूर्ण कार्य था । लेकिन उदयपुर श्रीसघ समारोह को सफल बनाने के लिये सोत्साह सलग्न हो गया । तार, टेलीफोन, पत्र आदि के माध्यम से देश के समस्त श्रीसघो को समारोह मे उपस्थित होने के आमंत्रणपत्र भेज दिये तथा अनेक स्थानो पर अपने प्रतिनिधियो को भी भेजकर आमत्रण दिया तथा आवास आदि की व्यवस्था भी बहुत ही सुव्यवस्थित कर ली ।

समय थोडा था किन्तु सूचना मिलते ही बाहर से हजारो भाई-बहिन समारोह मे सम्मिलित होने के लिये उदयपुर में एकत्रित होने लगे । मार्गों, चौराहों, गली, गलियारो मे जहां भी देखो वही विभिन्न नगरवासियो के समूह दिखलाई देते थे ।

समारोह दिवस का दृश्य

आसौज शुक्ला २ के प्रात: भुवनभास्कर अंशुमाली की स्वर्णिम किरणो के झाकने के साथ ही आबालवृद्ध नर-नारी टोलियों मे पूज्य आचार्य श्रीजी के वासस्थान—पचायती नोहरे की ओर बढ चले । प्रात:कालीन मगल गीतो से दिशायें मुखरित हो रही थी ।

प्राकृतिक सुषमा मे एक नवोन्मेष दृष्टिगोचर हो रहा था। शीतल, मंद पवन के झोके शरदकालीन सुखद वातावरण की अनुभूति कर रहे थे। हरे-भरे खेतो से सुसज्जित प्रकृति नटी इस समारोह के स्वागत मे नव धान्यो की अंजलि अर्पित कर रही थी। बड़े-बड़े सरोवर अपने सरोरुहों के विकास से समारोह के स्वागत और अभिनन्दन में सलग्न थे। विहगवृंद दूर गगन में कलरव करते हुए समारोह की शोभा-प्रसार में प्रयत्नशील थे। मानो प्रकृति का कण-कण समारोह के समर्थन मे अपना सहयोग अर्पित कर रहा हो।

सूरजपोल के विस्तृत प्रांगण मे समारोह के आयोजन का प्रवन्ध किया गया था। राजभवन की विशाल सीढ़िया मच थीं। समारोह होने में समय था किन्तु उसके पूर्व ही हजारों व्यक्ति वहां एकत्रित हो चुके थे। प्रवन्ध-व्यवस्था इतनी चतुराई से की गई थी कि दूर बैठा प्रत्येक दर्शक मच पर होने वाली विधि को देख सकता था। आमने-सामने की राजमहल की अट्टालिकायें महिलाओ और बच्चों से खचाखच भरी हुई थी।

आचार्य श्रीजी म. सा. का स्वास्थ्य ऐसा नहीं था जो पैदल विहार कर समारोहस्थल पर पधार सकें। अतः पचायती नोहरे से संतमंडली एवं अन्य श्रावक-श्राविकाओ के समूह से परिवेष्ठित झोली में विराजकर सन्तो के ही सहारे करीब आठ बजे समारोह स्थान पर पधारे। उपस्थित जनसमूह ने श्रद्धावनत हो स्वागत किया। इस समय उपस्थिति करीब २५-३० हजार मानवमेदनी की होगी। ऐसा प्रतीत होता था मानो समस्त उदयपुर नगर आज इसी एक ही स्थान पर आकर केन्द्रित हो गया है।

सीढ़ियो पर स्थित पाटो पर एक ओर सन्त समुदाय और सीढ़ियो पर दूसरी ओर साध्वीवृन्द विराजमान था। मध्य मे पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. एक ऊंचे पाटे पर विराज रहे थे। पाटे के सामने ही मेवाड़ाधिपति महाराणा श्री भगवतसिंहजी बहादुर पधारे

राजकीय पोशाक मे आसीन थे। कुछ पास ही राजकीय अधिकारी, नगर के सभ्रात प्रतिष्ठित नागरिक बैठे थे और उनके पीछे जनसाधारण का अपार समूह उपस्थित था। यह दृश्य ऐसा प्रतीत होता था कि तीर्थंकर भगवान की धर्मदेशना का लाभ प्राप्त करने के लिये समवशरण का ही रूपक हो।

स्वति वचन और नन्दीसूत्र के स्वाध्याय के उपरान्त तपस्वी मुनिश्री केशूलालजी म. सा. आदि सभी सन्तो ने कुंकुम केशर चिह्नित चादर पूज्य आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. को ओढ़ाई और आपश्री ने वही चादर युवाचार्य श्री प. र. मुनिश्री नानालालजी म. सा. को ओढाकर चतुर्विध सघ की व्यवस्था का दायित्व सौंप दिया। अन्य मुनिराजो ने चादर ओढाने मे हाथ लगाकर अपना सहयोग दिया एवं उपस्थित जनसमुदाय ने जयघोष के साथ इसका अनुमोदन किया।

चादर प्रदान करने के उपरांत पूज्य आचार्य श्रीजी म सा. ने प्रवचन फरमाया। जिसका साराश इस प्रकार है—

'श्रमण जीवन के लिये जिन-आज्ञा ही मुख्यत· विधि-विधान है। उसकी सुरक्षा के लिये जो भी प्रवृत्ति की जाये वह सब वैधानिक है। इसी लक्ष्य को ध्यान मे रखकर मैंने समाज के अन्दर कार्य किया है और कर रहा हूँ। आज युवाचार्य चादर प्रदान का प्रसग है।

'यह शुभ्रवरण सफेद चादर जो मैंने युवाचार्य श्री नानालालजी को ओढाई है, वह सुधर्मास्वामी, जम्बूस्वामी जैसे महापुरुषो की परम्परा के अनुसार है।

'श्वेतवर्ण पवित्रता का द्योतक है। शुक्लध्यान की याद दिलाता है। जीवन मे निष्कलक रहने की सूचना करता है। यह चादर अनेक तारो से बनी हुई है। एक तार मे अनेक स्थूल तंतु हैं। एक-एक ततु मे असख्य स्कन्ध हैं और एक-एक स्कन्ध में अनन्त अनन्त परमाणु भरे हैं। जिस प्रकार ये सारे अनन्त परमाणु

एक चादर के रूप में गठित हुए हैं। इसी प्रकार संसार में व्याप्त सूक्ष्म और बादर सभी जीव आत्मायें आत्मत्व की दृष्टि से एक हैं, लेकिन विकास की विभिन्नता एवं तत्त्व की दृष्टि से पूर्ण स्वतंत्र पृथक् अस्तित्व रखती हैं। इतना होने पर भी एक दूसरे का परस्पर अनेक तरह का सम्बन्ध है। उस सम्बन्ध को ठीक तरह से समझ कर यथायोग्य सम्बन्ध का परस्पर पालन करना आवश्यक है। उसमें से मुख्यतया विश्वमैत्री की एवं विश्व-कल्याण की भावना प्रत्येक मानव के दिल में होनी ही चाहिये। यह भावना स्वार्थ आदि विकारों से रहित, निर्मल, स्वच्छ चादर के समान पवित्र हो। ऐसी पवित्र भावना में आबद्ध होने वाले प्राणी को अपना चरमोत्कर्ष साधने में समाज का एक रूपक बनाना भी आवश्यक होता है। धार्मिक दृष्टि से उसका रूपक चतुर्विध संघ है। संघ है तो उसका संचालन भी होना आवश्यक है। अतः उसके अनुरूप संचालन के लिये आचार्य का पद बड़ा ही महत्वपूर्ण है एवं उसका उत्तरदायित्व भी बड़ा गुरुतर है। यह जिसके कंधों पर रहा होता है, उसका कर्तव्य हो जाता है कि चतुर्विध संघ की प्रार्थना को ध्यान में रखकर उस उत्तरदायित्व को किसी योग्य साधक पर रखे। तदनुसार मैं अपना सर्वाधिकार पूर्ण उत्तरदायित्व प. मुनिश्री नानालालजी को सौंपता हूँ। ये मेरे युवाचार्य हैं। चतुर्विध श्रीसंघ का कर्तव्य है कि वह इनके वचनों को 'सद्दहामि, पत्तियामि, रोचयामि' के रूप में स्वीकार करे। युवाचार्यजी का भी कर्तव्य है कि वे धर्ममार्ग में सदा जागृत रहते हुए आस्था और विवेकपूर्वक चतुर्विध संघ को धर्ममार्ग में प्रवृत्त करते रहें।'

इसके अनन्तर पूज्य आचार्य श्रीजी के भावों की विशद व्याख्या करते हुए प. र. मुनिश्री ररयेन्द्रमुनिजी म. सा. ने अपने समर्थनात्मक प्रवचन में फरमाया—

'आज इस विशाल चतुर्विध संघ के सामने पूज्य आचार्य-

देव ने अपनी चादर यानी अपना उत्तराधिकार और इस संघ की भार जो अपने कंधों पर था, वह अपने से उतारकर पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म. के आठवें पाट पर युवाचार्य श्री नानालालजी म. के कंधों पर रखा है। मुझे आशा है कि जिस योग्यता से प्रेरित होकर आचार्यश्री ने इनको अपना उत्तराधिकारी घोषित किया है, उसी योग्यता से युवाचार्य श्री नानालालजी म. यह भार वहन कर यह पद ग्रहण करेंगे।

'आचार्य का जो पद है वह बड़ा बोझल है। चतुर्विध संघ का भार आज से पं. मुनिश्री नानालालजी पर आ रहा है। पं. मुनिश्री नानालालजी म. बहुत होशियार एवं ज्ञान-दर्शन-चारित्र-संपन्न व साहसी हैं और कुशलतापूर्वक चारित्र-तप से ठोस रूप से चल रहे हैं। आप इस भार को ग्रहण करेंगे। साथ-ही-साथ यह बात कह देना चाहता हूँ कि यह अकेले का नहीं है। सबके सहयोग की आवश्यकता है। अतः चतुर्विध संघ युवाचार्य पं. मुनिश्री नानालालजी म. को सहयोग देने को तैयार रहे और इनका सहयोग भी लेने को तत्पर रहे। यद्यपि आप साहसी हैं फिर भी बिना सहयोग के काम नहीं चल सकता। हमारा आपके साथ सदा सहयोग रहेगा।

'शास्त्र में जम्बूवृक्ष का नाम आता है। पर वह जम्बूवृक्ष अन्य वृक्षों के साथ विशेष शोभायमान होता है। वैसे ही युवाचार्य श्री संत-सतियों एवं श्रावक-श्राविकावर्ग से शोभायमान हों। यह मेरी हार्दिक इच्छा और कामना है कि इनके द्वारा सदैव शासन की उन्नति हो।

'विशेष प्रसन्नता की यह बात है कि आचार्यश्री ने अस्वस्थ होते हुए भी आज अपने बीच विराजकर युवाचार्य पद की चादर प्रदान की है। उदयपुर महाराणा सा. भी इस समारोह में उपस्थित हैं इससे आज के इस समारोह में चार चांद लग गये हैं।

'अन्त में मेरा यही कहना है कि युवाचार्य श्रीजी परस्पर सहयोग से चतुर्विध संघ के भार को अच्छी तरह से वहन करते हुए शासन की शोभा बढायेंगे ऐसी आशा है।'

युवाचार्य श्रीजी का प्रवचन

पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. ने चादर प्रदान कर अपना उत्तरदायित्व युवाचार्य श्री प. र. मुनिश्री नानालालजी म. सा. को सौंप दिया था। उपस्थित श्रमणवर्ग ने हाथ लगाकर अपना समर्थन व्यक्त किया था एव प. र. मुनिश्री सत्येन्द्रमुनिजी म. सा ने साधु-साध्वी-वृन्द के प्रतिनिधि के रूप मे प्रवचन फरमाकर अनुमोदन भी चतुर्विध संघ के समक्ष प्रस्तुत कर दिया था।

इस समर्पण, समर्थन एव अनुमोदन के प्रति अपने भावो को व्यक्त करते हुए युवाचार्य श्रीजी ने अपने जो विचार व्यक्त किये, इस प्रकार हैं—

मैं इस महती सभा मे अपने विचार रखने के लिये खड़ा हुआ हूँ। मेरी इच्छा इस भार को ग्रहण करने की नही थी, क्योंकि यह पद बहुत महत्त्वपूर्ण एव जिम्मेदारी का है। मेरे विचार मे इस पद पर किसी योग्य महामुनि को नियुक्त करने की आवश्यकता थी, पर स्थिति की गंभीरता ने इस प्रश्न को भी गभीर बना दिया और मुझको ही इसके लिये चुना गया।

सादडी मे निर्मित श्रमणसघ ने एक आचार्य की अधीनता में ही शिक्षा, दीक्षा, प्रायश्चित्त, चातुर्मास आदि होने का तथा साधु-सस्था मे उत्पन्न विकृतियो को दूर करने का जो लक्ष्य स्थापित किया था, उसकी प्रमुख मुनिवरों द्वारा बाद मे पुष्टि तो हुई किन्तु तदनुसार वह अमल में नही आया और अनुभव हुआ कि उस लक्ष्य की प्रतिकूल दिशा में ही प्रवृत्ति होने लगी। पूज्य श्रीजी ने समय-समय पर समाज को एतद्विषयक सावधानी दिलाई पर उस पर कोई ध्यान नही दिया गया। जिसके परिणामस्वरूप

निर्ग्रन्थ श्रमणसंस्कृति के उपर भी एक वहुत बड़ा खतरा उपस्थित हो गया। पूज्य आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. इसको सहन नही कर सके और निर्ग्रन्थ श्रमणसस्कृति की रक्षा के लिये पूज्य आचार्य श्री के ये प्रयत्न समाज के सामने आ रहे हैं, अन्य भावना से नही।

पूज्य आचार्यश्री ने अव भी उपर्युक्त लक्ष्य (उद्देश्य) की पूर्ति के लिये सब द्वार खुले रखे हैं। अतः निर्ग्रन्थ श्रमण-सस्कृति की रक्षार्थ पूज्य आचार्यश्री का सतोषजनक समाधान होकर सादडी सम्मेलन मे निश्चित किये गये उद्देश्य की पूर्ति सही माने मे जिस समय भी होगी, उसी समय यह सुसगठन प्रेमी चतुर्विध सघ पीछे रहने वाला नही है, ऐसा मेरा विश्वास है।

मैं अपने आपको विद्यार्थी के रूप मे समझता हूँ और अपने अन्दर इस पद की योग्यता अनुभव नही कर रहा हूँ। मैंने तो विद्यार्थी जीवन के अन्दर रहते हुए श्रावकपद से ऊपर उठकर गुरुदेव के चरणो मे मुनिपद ग्रहण किया। यह मुनिपद भी अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण चीज है। यह भार भी कोई कम नही है। यदि यह भी ठीक ढग से वहन हो जाये तो मैं समझू कि मेरा जीवन ठीक ढग से आगे वढ़ रहा है। मैं तो इसी भावना को लेकर चल रहा था, लेकिन आचार्यश्री की भावना और चतुर्विध सघ की यह इच्छा हुई कि इस महान उत्तरदायित्व का यह भार इस विद्यार्थी पर डाला जाये। इसमे आचार्यश्री जैसे महापुरुष का क्या आशय रहा है इसको हमे समझना है। मैं इसमे हस्तक्षेप तो नही करता क्योकि यह चादर जो मुझे प्रदान की गई है, वह भारतीय सस्कृति मे अपूर्व द्योतक मानी गई है। जहा ससार मे अन्य पदवियां दी जाकर उनका पदक आदि द्वारा महत्त्व आका जाता है, वहां यह चादर एक निराला ही महत्त्व रखती है।

चादर की परम्परा निर्ग्रन्थ श्रमणसस्कृति को द्योतक

करने के लिये नवीन नही है, वलिक यह तो विशिष्ट ज्ञानियो व पूर्वाचार्यो द्वारा चतुर्विध सघ के सामने चिरकाल मे चली आ रही है। यद्यपि व्यक्ति अलग-अलग रूप में रहकर विकास कर सकता है, लेकिन जहा सामूहिक रूप वनकर समाज वनता है वहां व्यक्ति अलग न रहकर सामाजिक रूप मे प्रवेश करता है तव उसका प्रतीक कोई-न-कोई चिह्न अवश्य होता है। यह जो चादर दी गई है, यह धार्मिक दृष्टि का ही एक चिह्न है।

'चादर के विषय में पूज्य आचार्य श्रीजी ने मुझे फरमाया कि यह चादर सुधर्मास्वामी आदि आचार्यों से चली आ रही है। जितने भी आचार्य तथा महापुरुष हुए हैं उन्होने पाट परम्परा पर चादर धारण की है। यह चादर श्वेत एवं उज्ज्वल है। निष्कलक, पवित्र तथा धब्बों से रहित है। इसके समान अपने जीवन मे स्वच्छता, निर्मलता, पवित्रता एव उज्ज्वलता आदि रखने का जो सदेश चादर के रूप मे पूज्य आचार्यश्री द्वारा मुझे प्राप्त हुआ है, उसको मैं आप तक पहुंचा रहा हूँ।

आज का यह चतुर्विध सघ जिस रूप मे यहां एकत्रित हुआ है उसमे मुझे बडी प्रसन्नता है। इस प्रकार की जो भी घट-नायें घटित होती है और उनमे जो धार्मिक-संस्कार गतिमान है उन सस्कारो को जीवन में उतारकर उन्नत बनाने की दृष्टि से हम सबको प्रत्येक भारतीय के प्रति आत्मीय सम्बन्ध कायम करना है।

ससार मे जितने भी प्राणी है, सब एक है। आत्मीय दृष्टि से हममे कोई भेद नही है। हम सब विश्वकल्याण की कामना लेकर चलें। इसका प्रतीक कोई-न-कोई चाहिए ही। ससार मे अनेक तरह के रग है जो अलग अलग रूप मे आते है। राष्ट्रीय झडे मे तीन रंग है। ये तीनो रग तीन भावनाओं को व्यक्त करते आये है। लेकिन इस चादर का रंग केवल सफेद है जो शान्ति रूप और शान्ति का प्रतीक है। यह बताता है कि हम भारत –

अन्दर रहने वाले प्रत्येक भाई-भाई में शान्ति, प्रेम एवं सात्विक गुणो का सचार हो, हमारा जीवन ठीक ढग से चले और चतुर्विध सघ अपना कर्तव्य लेकर निरतर आगे बढ़े ।

पूज्य आचार्यश्री के साथ-साथ मुनिवृन्द भी इस चादर को हाथ लगाकर मुझको देने की प्रक्रिया में सम्मिलित हुए हैं । दूसरे मुनियो व साध्वियो की शुभकामनाये प्राप्त हुई हैं । पजाबी मुनिवर प. र. श्री सत्येन्द्रमुनिजी, प. श्री लखपतरायजी व प. मुनिश्री पद्मशयनजी म सुदूर पजाबभूमि से यहा पधारे । तपस्वी वेशू-लालजी म. जो वेले-बेले की तपस्या करते हैं, मुनिश्री सुन्दरलालजी म, तपस्वो श्री ईश्वरचन्दजी म, मुनिश्री इन्द्रचन्दजी म. व लघु मुनिश्री वावूलालजी म. आदि एव साध्वीवृन्द आदि सब इस भावना को व्यक्त कर रहे हैं कि वे मुझे सहयोग देते हुए निर्ग्रन्थ श्रमण-सस्कृति को आगे बढ़ायेगे ।

आज हम सब पूज्य आचार्यश्री के चरणो मे वैठे हैं । पूज्य आचार्य श्रीजी की सेवा का लाभ कई भाइयो ने लिया है और ले रहे हैं । यहा उपस्थित डा. शूरवीरसिंहजी, डा. न्यातीजी, एवं प्राकृतिक चिकित्सक डा हिम्मतसिंहजी और अनुपस्थित डा. शर्मा सा, डा. माथुर सा, डा. पी. एम ओ, डा, ऋषि एवं डा. गुप्ता सा. आदि महानुभाव तथा वैद्य वावूभाई ने अनन्य भाव से आचार्यश्री की सेवा की है । उनकी यह हितैषी भावना कभी भुलाई नही जा सकती ।

महाराणा सा. भी आज यहां उपस्थित हुए हैं । आपको देखकर मुझे आपके पूर्वज महाराणा प्रताप की स्मृति हो आई है, जिन्होने धर्म के खातिर अनेक दुखो को सहते हुए अकेले रहना मजूर किया, घास की रोटिया खाई परन्तु धर्म से विमुख नही हुए । इसी महाराणा प्रताप की पुण्यभूमि उययपुर मे पूज्य आचार्य श्री गणेशलालजी म. जैसे महापुरुष का जन्म हुआ है । यह महा-

पुरुष शारीरिक दृष्टि से यद्यपि कमजोर हैं परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से इनमें इतनी शक्ति है कि वह तरुणो मे भी नही है ।

निष्पक्ष भावना से जो यह चादर ओढाई गई है, इसमें ऊचा-नीचा धागा नही है । सब धागे सगठित हैं, समान हैं, पतले अथवा मोटे नही हैं । ठीक इसी तरह इस चादर को ओढ़ाने में सम्मिलित होने वाले चतुर्विध संघ को भी मन, वचन, काया मे एकरूपता लाना है । श्रद्धा, प्ररूपणा, स्पर्शना का भी एकरूप होना नितांत आवश्यक है । मैं कहता हूँ कि प्रत्येक भाई चाहे वह जैनी हो या अन्य धर्मावलम्वी हो, किसी भी सप्रदाय का नाम धराता हो, प्रत्येक की आत्मा ईश्वर के रूप मे समान है । मैं तो संप्रदाय को ऊपर का कलेवर मात्र ही समझता हूँ ।

आज हम पर बडा भारी उत्तरदायित्व आया है । मैं चाहता हूँ कि आप और हम सब विद्यार्थी के रूप में होकर मानव-जीवन को उन्नत बनाकर इसी गुरुतर उत्तरदायित्व को निभायें । बीच मे जो भी बाधायें आयें उनको सम्यक् रीति से पाटने का एव विश्व मे अशांति के बादल मडरा रहे हैं उनको अपने-अपने स्थान पर रहकर दूर करने का प्रयत्न करें ।

मैं आपसे कहूँगा कि इस चादर का उत्तरदायित्व चतुर्विध संघ पर पूर्णरूपेण आ गया है । चतुर्विध सघ ने अपने ऊपर बड़ी भारी जिम्मेदारी ली है । मैं एक विद्यार्थी हूँ । आपका कर्तव्य है कि आप मेरे सहयोगी बनें । मेरे में कोई त्रुटि दिखाई दे तो आप लोगों का कर्तव्य है कि आप मेरे सहायक बनकर त्रुटि को निकालकर मेरे जीवन को उन्नत बनायें । मैं एक साधारण-सा व्यक्ति हूँ । आचार्यदेव के चरणों में आने से पूर्व मेरा जीवन लक्ष्यविहीन था । इन महापुरुष ने मुझ ग्रामीण छोटे से व्यक्ति को अपने चरणों में स्थान देकर मेरे पर जो उपकार किया है उससे मैं जन्म-जन्मान्तर में भी उऋण नहीं हो सकूँगा । आज से

महापुरुष शरीर से अस्वस्थ हैं, आप सब यही चाहते हैं कि आचार्य-श्री स्वास्थ्य लाभ कर दीर्घायु बने।

मेरे अन्तर् मे क्या-क्या भावनायें काम कर रही हैं, उनको शब्दो द्वारा व्यक्त करना मेरे लिये कठिन हो रहा है। इनके श्रीचरणो मे रहते हुए आज जो मैं सयम पालने मे अपने आपको थोड़ा तैयार कर पाया हूँ, यह सब इन्ही के आशीर्वाद एव कृपादृष्टि का प्रताप है। परन्तु अभी मुझे आचार्यश्री से बहुत कुछ और प्राप्त करना है। इसलिये मेरे अन्तर्मन मे रह-रहकर यही भावना उठती है कि प्रभो ! पूज्यश्री का वरदहस्त मेरे मस्तक पर दीर्घकाल तक बना रहे, ताकि इनकी साधना के अनुभव द्वारा मैं अपनी साधना मे यत्किंचित कुछ बढोतरी करके अपने आपको धन्य मान सकूं। आप लोगो की भावना का समूह विराट एव महान् है। यह भावना मुझे भी उन्नत बनाने मे सहायक होगी ऐसा मेरा विश्वास है।

आचार्यश्री ने जो भार मुझ पर डाला है वह चतुर्विध सघ के सहयोग से ही प्रगतिशील हो सकता है। मानवजीवन की उच्चता प्राप्त करने मे और इस पद के भार को वहन करने में शक्ति प्राप्त हो तथा शान्तिपूर्वक निर्बाधगति से प्रगति होती रहे यही आचार्यश्री से शुभाशीर्वाद चाहता हूँ।

मैं इस पद को अपने आपके लिये महत्त्व नही दे रहा हूँ। मैं तो यह समझता हूँ कि पूज्य आचार्यश्री ने इस प्रकार चतु-र्विध सघ की सेवा मे मुझे रखा है। अतः मैं चतुर्विध सघ का छोटा-सा सेवक हूँ। चतुर्विध सघ मेरे लिये माता-पिता के तुल्य है। चतुर्विध सघ के बीच मुझे रखा है तो बीच मे रहने वाले की सुरक्षा की जिम्मेदारी चतुर्विध सघ पर आ जाती है। यहां पर उपस्थित साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका तथा अन्य महानुभावों से भी मैं शुभकामना चाहूँगा कि मेरे से इस विश्व के अन्दर जनकल्याण,

विश्वमैत्री एवं विश्वशांति तथा निर्ग्रन्थ श्रमणसंस्कृति का सरक्षण हो सके, ऐसा शुभ संकल्प आप लोगो का हो।

उदयपुर संघ ने पूज्य आचार्यश्री की सेवा आदि करने का जो अपूर्व कार्य कर दिखाया है, उस कार्य को सारा चतुर्विध सघ कभी भूल नही सकता, यह सदा के लिये चिरस्मरणीय रहेगा। उदयपुर सघ का आभार इस रूप में साधुमार्गी समाज पर रहेगा।

भगवान महावीर क्षत्रिय थे। वे राजसिंहासन का परित्याग करके जनपद के बीच आये। जनता के दु:खो की अनुभूति की। दु:खनिवारण के उपायो को उन्होने घोर साधना करके ढूंढ निकाला। कष्ट और बाधाओ को सहन कर निर्मल ज्योति जगाई। उसी भगवान महावीर की यह शासन परम्परा चल रही है। इसमे क्षत्रिय वीरो को विशेष भाग लेने की महती आवश्यकता है।

यहा उपस्थित महाराणा साहब भी क्षत्रिय हैं। अत: आपके ऊपर भी उत्तरदायित्व है। महाराणा सा को भी मैं तो कहूँगा कि आप वास्तविक क्षत्रियधर्म को अपनाकर भगवान महावीर की तरह राज छोडकर धर्म का उपदेश दें तो जनकल्याण की भावना के साथ साथ भगवान महावीर के शासन की अच्छी सेवा हो सकती है।

आप सेठिया लोग एव अन्य साधारण प्रजाजन यहा एकत्रित हुए है, वे अपनी सपत्ति से चिपककर न रहें। अपनी सेठाई की बात को अलग रखकर संपत्ति पर से मोह दूर करके शासन की सेवा करें अथवा त्याग की भावना से कुछ उदारता करके जनशान्ति के लिये कुछ करके दिखावें। आप भी क्षत्रिय हैं। वीर हैं। आज बनिये हो गये तो क्या हुआ? आप में भी वह क्षत्रिय तेज है। आप अपने निज रूप को पहचानें और जनमानस की भावनाओ को लक्ष्य में रखकर अपने कर्तव्य पर विशेष ध्यान देवें।

इस आदर का अभिप्राय शुभ भावना का प्रतीक भी है।

शुभ भावनायें उज्ज्वल होती हैं और यह चादर भी उज्ज्वल एवं खादी की होकर सादी है। सादगी ही आजादगी का प्रतीक है। पूज्य गुरुदेव फरमाया करते हैं कि— 'सादगी ही आजादगी है और फैशन ही फासी है।' अतः भारत के अन्दर इस सादगी की तरफ भी विशिष्ट ध्यान देने की आवश्यकता है।

मैं इस चादर पर पूरे विचार नहीं रख पाया हूँ। फिर कभी प्रसंगोपात्त समय मिलने पर इस पर कुछ विशेष प्रकाश डालने का भाव रखता हूँ। इस चादर की तरह जीवन को उज्ज्वल, सादा, पवित्र, निर्मल एव मनसा, वाचा, कर्मणा एकरूपता में रखकर सहयोगी बनेंगे तो यह सघ चिरकाल तक उन्नत दशा पर पहुंचेगा। इसी भावना को रखते हुए मैं अपना वक्तव्य पूरा करता हूँ।

समारोह मे पूज्य आचार्यश्री, समस्त उपस्थित साधु-साध्वी-वृन्द की ओर से पं. र. मुनिश्री सत्येन्द्रमुनिजी म. सा. एवं युवाचार्य श्री नानालालजी म. सा. के प्रवचनो के पश्चात् बीकानेर श्रीसंघ की ओर से श्री जेठमलजी सेठिया तथा अन्य समस्त श्रीसघो की ओर से श्री कानमलजी नाहटा ने युवाचार्य-चादर-प्रदान का समर्थन किया।

उपस्थित चतुर्विध सघ की ओर से समर्थन हो जाने के अनन्तर चादर प्रदान के लिये अपना समर्थन देने एवं समारोह की सफलता के लिये अनेक संत मुनिराजो एवं श्रावकसघो के प्राप्त सदेशो को उदयपुर श्रीसघ के मन्त्री श्री तख्तसिहजी पानगडिया ने पढ़कर सुनाये।

समारोह करीब १। घटे मे सम्पन्न हुआ। उक्त अवसर पर करीब नौ बजे तक मेघम डल मे सूर्य भी छिपा रहा। सिर्फ उस समय एक क्षण के लिये पूर्ण प्रभामडल के साथ प्रगट हुआ जब पूज्य आचार्य श्रीजी ने युवाचार्य श्रीजी को चादर ओढाई। इस प्रकार इस चादर प्रदान का समर्थन जनमेदनी द्वारा तो किया ही गया था किन्तु चादर ओढाते समय प्रगट सूर्य-प्रकाश से प्रकृति का भी पूर्ण समर्थन प्राप्त हुआ कि ये संत मुनिराज अपने ज्ञान सूर्य के प्रकाश से समस्त विश्व को प्रकाशित करेंगे।

अन्तिम चरण

जो लेखनी महापुरुष पूज्य आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. के उदय, विकास का चित्रण करने में जितनी उत्साही थी, उतनी ही उनके जीवन का अन्तिम चरण चित्रित करने मे अनेक भावनाओ से ग्रस्त होकर कुण्ठित हो गई है और घनीभूत वेदना से इस अवसर की सक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत कर विश्राम के लिये आतुर है ।

इस सक्षिप्त रूपरेखा को प्रस्तुत करने के अवसर पर भी उनकी महानता के आदर्शों का चित्रण करेगी । क्योकि—छूकर जिनके चरण अमर हो गया मरण है । वे जन-जन की श्रद्धा के आस्पद हैं । आज भी उनकी साधना सर्वभूतहितेरत: की कामना वाले प्रत्येक विवेकशील को श्रद्धावनत कर देती है । उनका जाज्वल्यमान जीवन आकाशदीप की तरह सद्विवेक की प्रेरणा देकर सदैव जीवन के उच्चादर्शों को प्राप्त करने के लिये प्रेरित कर रहा है ।

वे श्रमण थे । उनका श्रम, शम, सम आध्यात्मिक शक्ति के विकास के लिये था । उनका श्रामण्य जीवनशुद्धि के लिये, आत्म-साधना के लिये सर्वोच्च पुरुषार्थ था और 'गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्' की उक्ति को सामने रखते हुए अपने पौरुष को व्यक्त करने का संकेत करता था ।

अत: ऐसे महापुरुष के अन्तिमचरण को चित्रित करने के लिये किंचित प्रयास कर रही है ।

निर्भयता का अन्तिम डग

पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. संघ-व्यवस्था के दायित्व से उप-रत हो चुके थे । अब गुरु शिष्य, शास्ता-शासक सेव्य-सेवक, पूज्य-पूजक आदि उपाधियों से परे होकर स्वयं में ही केन्द्रित हो चुके थे । अब आत्मा ही ध्याता, ध्येय, ध्यान बन चुकी थी ।

चतुर्विध संघ आचार्य श्रीजी से बराबर निवेदन करता रहा कि गुरुदेव आप सथारे के लिये शीघ्रता न करे, अवसर आने पर आपकी सेवा मे स्वय अर्ज कर देगे । लेकिन वह दिन भी आया जब आचार्य श्रीजी म. सा. ने मृत्यु-महोत्सव मनाने की घोषणा कर दी ।

संथारा की सक्षिप्त झांकी

पूज्य आचार्य श्रीजी के रोगाक्रान्त शरीर के विलय होने की संभावना-सी चल रही थी । संथारा अगीकार करने के छह सात दिन पूर्व अन्नाहार का त्याग कर ही दिया था, सिर्फ प्रवाही पदार्थ लेते थे । लेकिन उन पदार्थों के प्रति भी विरक्ति-सी थी ।

अपनी शारीरिक स्थिति के बारे मे आचार्य श्रीजी डाक्टर शूरवीरसिहजी से पूछते रहते थे कि डाक्टर सा मुझे स्थिति से परिचित रखना, स्थिति बतलाने में संकोच मत करना । डा सा. प्रत्युत्तर मे निवेदन करते थे कि जो भी स्थिति होगी, बिना हिचक के बतला दूगा । इसमे मोह को आड़े नही आने दूंगा । आचार्य श्रीजी म. सा. सदैव आत्मध्यान में लीन रहते थे । औषधि आदि से भी विरक्ति हो चुकी थी किन्तु चतुर्विध सघ के संतोष के लिये कभी-कभी थोड़ी बहुत औषधि ले लेते थे ।

सथारा सीजने के तीन दिन पहले की बात है । डा. रामावतारजी ने आचार्य श्रीजी की सेवा मे उपस्थित होकर औषधि लेने की अर्ज की । आचार्य श्रीजी म. ने फरमाया— अब मुझे परमात्मनाम स्मरण की दवा लेनी है । यही मेरे इस ससार-रोग के उन्मूलन की कारगर औषधि है । तब डा रामवतारजी ने युवाचार्य श्रीजी को एकान्त में ले जाकर कहा कि इन महापुरुष के बारे में अपना सोचने की सीमा समाप्त है । इनका ध्यान प्रभु मे लग चुका है । शरीर की तरफ तो इनका लक्ष्य रहा ही नहीं है । डा. शूरवीरसिहजी आदि अन्य चिकित्सकों की भी यही धारणा बन चुकी थी ।

इन्ही दिनों की बात है । एक दिन युवाचार्य श्रीजी [illegible]

अवसर क्यारे आवशे' आदि सुना रहे थे। आचार्य श्रीजी ध्यानमग्न हो यह सब सुन रहे थे कि सुनाते-सुनाते एक कड़ी दुबारा बोल गये। तत्काल इस भूल को सुधारते हुए फरमाया कि यह कडी तो बोल चुके हो, आगे सुनाओ। इस ध्यानमग्न मुद्रा मे जब भी कोई दर्शनार्थी आपश्री के मुखमण्डल को निहारता तो मुख के चारो ओर एक अलौकिक प्रभा-मडल के दर्शन होते थे। उस समय किसी को यह कहने का साहस नही होता था कि यह रोगाक्रान्त शरीर है। सभी ओज, तेज और सौम्य के दर्शन कर अपूर्व सतोष का अनुभव करते थे।

दि ६ १-६३ के सायकाल का समय था। सायकालीन प्रतिक्रमण आदि करके आचार्य श्रीजी म. दूसरे दिन के प्रातःकाल तक का सागारी सथारा करके पौढ गये। रात्रि मे युवाचार्य श्रीजी एव अन्य सन्त आपके निकट ही थे और जब भी उन्होने आपको देखा तो सतत आत्मध्यान मे लवलीन पाया। रोगजन्य वेदना की अंशमात्र भी अनुभूति लक्षित नही हुई।

दि ६-१-६३ को पौष शुक्ला पूर्णिमा का दिन था। ऊपर नील गगन मे चन्द्र अपनी अमीवर्षा से अमृत उडेलते हुए प्रकृति के कण-कण को प्रकाशित कर रहा था और इधर आचार्यदेव ज्ञानामृत से आत्मा को आप्लावित कर उसके अनन्त गुणो को विकसित कर रहे थे। दोनो अपने अपने ढग से कल्याण के कार्य मे क्रियाशील थे।

दि १०-१-६३ माघ कृष्णा १ का सूर्य उदित हुआ। सूर्य की स्वर्ण किरणें प्रकृति मे नया उल्लास भरते हुए आगे बढ़ रही थी। आचार्यदेव भी प्रात कालीन प्रतिक्रमण आदि करने के उपरान्त पद्मासन से विराज गये। दर्शनार्थियों का आवागमन समाप्त होने के उपरान्त दैनदिनी कार्यक्रम से निवृत्त हुए। अनन्तर थोड़ा-सा जल पीकर पुनः आत्मध्यान मे ध्यानस्थ हो गये।

ध्यान-समाप्ति के उपरान्त योगिराज ने आंखे खोली। उनमे एक अलौकिक तेज झलक रहा था। युवाचार्य श्रीजी को निकट बुला-

कर फरमाया कि अब मुझे अपना कार्य करना उपयुक्त जान पड़ता है। अत. इस विषय में मैं तो सावधान हूँ ही, स्वयं भी सावधानी रखना। डाक्टर सा. आ जाये तो उनसे भी कुछ बात करनी है।

इतने में डाक्टर शूरवीरसिंहजी भी आ गये। पहले की तरह उन्होंने शारीरिक परीक्षा की और कमरे से बाहर चले आये। अनः पुनः संकेत कर डा सा. को बुलाया और उनसे पूछा कि अब मैं संथारा लेना चाहता हूँ, इसमे आप क्या कहते हैं ? आप अपनी भौतिक दृष्टि से जो जानते हो, कहिये।

शारीरिक स्थिति बहुत ही चिन्तनीय हो चुकी थी। रोग अपनी सीमा को पार कर चुका था। रक्तचाप और नाड़ी की गति मे काफी अन्तर आ गया था। अनः उन्होंने प्रत्युत्तर मे निवेदन किया कि हमारे उपचार का सिद्धान्त और विज्ञान आप जैसे महापुरुषों के लिये नही है। फिर भी सावधान रहने की आवश्यकता है।

आचार्य श्रीजी ने डाक्टर सा. के संकेत को समझ लिया और युवाचार्य श्रीजी की ओर संकेत करते हुए फरमाया कि मैं तो अपने मे सावधान हूँ ही और तुम भी ध्यान रखना। अनन्तर संथारा अंगीकार करने के लिये 'इच्छाकारेण आदि की पाटियां, छह जीवनी, दश-वैकालिक सूत्र का चतुर्थ अध्ययन आदि सुनाने और सुनाते समय किसी दूसरी ओर ध्यान न जाने देने का संकेत किया।

इच्छाकारेण आदि की पाटी सुनने के बाद आचार्य श्रीजी म. ने पुनः फरमाया कि तीन दिन पूर्व मैंने स्थविर पं. मुनिश्री सूरज-मलजी म. सा. के पास सब आलोचना कर ली है और अभी पुनः आलोचना कर छह जीवनी सुन ली है। अब मुझे डाक्टर, वैद्य या अन्य कोई गृहस्थ स्पर्श न करे। मैं अपने जीवन को आगे बढ़ाना चाहता हूँ और प्रातः १-२० बजे निर्विकार संथारा ग्रहण कर ध्यानस्थ हो गये। एकान्त स्थान था। सिर्फ युवाचार्यश्री व स्थविरपदविभूषित स्वामीजी पं. मुनिश्री सूरजमलजी म. सा. देखरेख के लिये वहाँ उपस्थित

थे । कुछ समय बाद नेत्र खोले तो उनमे अलौकिक तेज चमक रहा था, मुखमडल पर शाति का साम्राज्य अठखेलिया कर रहा था । श्वासोच्छ्वास गति कुछ तीव्र अवश्य हो गई थी, लेकिन चेतना मे किसी प्रकार का व्यवधान नही था ।

माघ कृष्णा १, दि १०-१-६३ का दिन इसी प्रकार आत्म-रमण करते हुए आगम पाठो को सुनते हुए पूर्ण शाति से व्यतीत हुआ । दर्शनार्थियो का आवागमन भी सीमित कर दिया गया था और ऐसी व्यवस्था कर दी गई कि दर्शन करने वालो के द्वारा किसी प्रकार की आवाज आदि न हो ।

माघ कृष्णा २, दि. ११-१ ६३ ज्योतिपुज के विलय का दिन था । दि १० १-६३ को सागारी सथारा लेते समय आचार्य श्रीजी जिस आसन से विराजे थे, उसी प्रकार से ध्यानस्थ होकर युवाचार्य श्रीजी से प्रात· कुछ नित्यनियम के पाठ सुन रहे थे कि उस समय वे एक कड़ी कहना चूक गये तो उसको पुन सुधारने का सकेत किया तथा प्रतिक्रमण के समय स्थविर प. र. मुनिश्री सूरजमलजी म सा. ने मागलिक कुछ धीरे सुनाई । लेकिन आचार्य श्रीजी को सुनाई न पड़ने पर फरमाया कि कुछ उच्चस्वर से मांगलिक सुनाओ। अतः युवाचार्य श्रीजी ने पुनः मागलिक सुनाई ।

समय के साथ शारीरिक परमाणुओ मे निर्बलता आती जा रही थी । स्थिति को समझकर आचार्य श्रीजी म सा ने दोपहर को दो बजे चौविहार सथारा का प्रत्याख्यान कर लिया । करीब २ बजे महासती श्री सोहनकवरजी म आचार्य श्रीजी से खमत-खामणा करने पधारे । श्री कानमुनिजी ने कहा कि महासती श्री आपसे खमत-खामणा करते हैं तो आचार्य श्रीजी ने आख खोली और गरदन हिलाकर खमत-खामणा का जवाब दिया ।

करीब ३ बजे का समय था । शरीर मे और भी निर्बलता के लक्षण दिखने लगे । शारीरिक स्थिति देखने के लिए युवाचार्य श्रीजी

ने नाडी देखना चाही तो आपने मना कर दिया और ३-२० होते-होते तो पूर्ण चेतनावस्था में मस्तिष्क और नेत्र आदि की तरफ से निराकार आत्मा ने भौतिक देह का परित्याग कर दिया। इस समय मुखमंडल पर एक दैवी ओज झलक रहा था और स्मित हास्य से परिपूर्ण था।

उस समय निकटस्थ युवाचार्य श्रीजी आदि अन्य सन्तो ने जो अद्भुत दृश्य देखा, वह अनुभूतिगम्य है। उसका शाब्दिक वर्णन करने की सामर्थ्य किसी में भी नही है।

साधना की सफलता के साथ पूज्य आचार्य श्रीजी की जागरुक आत्मा ने ३-२० बजे इस भौतिक देह का त्याग कर दिया। हाँ रोगाक्रान्त देह यथावत् पद्मासन अवस्था मे ध्यानस्थ इन चक्षुओं के दृष्टिगत हो रही थी।

अंतिम यात्रा

पूज्य आचार्य श्रीजी के संथारा अंगीकार करने की सूचना यथासंभव सभी श्रीसंघो को मिल चुकी थी। अतः विभिन्न श्रीसंघ के सदस्यों, गणमान्य सज्जनो आदि का उदयपुर आने का तांता लग गया। सभी मे एक ही उत्सुकता थी कि अपने आराध्य के चरणो में नतमस्तक हो दर्शन कर लें। दि. १० के सायंकाल और दि. ११ के प्रातःकाल होते होते तो हजारो भाई बहिन उदयपुर मे आ चुके थे।

आचार्य श्रीजी की शारीरिक स्थिति को देखते हुए कब क्या हो जाये, निश्चयात्मक रूप से कहना शक्य नही था। अतः पंचायती नोहरे के प्रांगण में हजारो नरनारी शांति से खड़े हुए थे। इतने मे आचार्य श्रीजी के विराजने के कमरे मे हलचल नजर आई। साधु मुनिराजो का कमरे में पहुंचना और नव प्रतिष्ठित आचार्यश्री को चादर ओढाना, वंदना करना देखा और दूसरे ही क्षण हजारों नेत्रों ने मूक श्रद्धांजलि के रूप में अश्रुवर्षा प्रारम्भ कर दी। मन का भार आंखों की धार बन निकला। थोड़ी ही देर मे वातावरण में विषाद बिखेर दिया था।

पूज्य आचार्य श्रीजी के संथारा सीझने का समाचार उदयपुर

नगर के इस छोर से उस छोर तक प्रसरित हो गया। जनता जनार्दन ने अपने ही क्षेत्र मे उभरे, यहा ही विकसित हुए और यहां ही विलय को प्राप्त हुए मानव से महामानव बनने वाले आचार्य श्रीजी के प्रति समान व्यक्त करने के लिये अपना कारोबार बद कर दिया। विभिन्न गली कूचो और चौराहो से आबालवृद्ध जन यथाशीघ्र पचायती नोहरे पहुंचने के लिये निकल पड़े। मुरझाये मुख और श्लथ-गति से बढता हुआ जनसमूह अपना समान व्यक्त करने के लिये उत्सुक था। सध्याकाल होते होते तो सहस्रो का जमघट श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिये एकत्रित हो चुका था।

चतुर्विध सघ के गगनागण मे सयम, तप, त्याग की किरणो से प्रकाशमान पूज्य आचार्यदेव के अवसान से सहस्ररश्मि सूर्य भी अपनी किरणे समेटते हुए अस्ताचल की ओर बढ चला। इस विषादवेला मे अपनी भावना को व्यक्त करने के लिये यथाशीघ्र अपने आपको समेट लेना ही उसे उचित प्रतीत हुआ। उधर दिवाकर ने भी अपनी लघु रेखा के द्वारा श्रद्धेय के प्रति अपना श्रद्धापात्र प्रस्तुत कर दिया।

उदयपुर श्रीसघ के तारो तथा आकाशवाणी के प्रसारण से आचार्य श्रीजी के देहविलय का समाचार समस्त देश मे फैल गया। देश के विभिन्न स्थानो के श्रीसघो ने सामूहिक रूप मे एकत्रित होकर श्रद्धाजलि अर्पित की और अनेक व्यक्ति समाचार सुनते ही अन्तिम यात्रा मे सम्मिलित होने के लिये उदयपुर की ओर चल पडे।

अन्तिम यात्रा दि १२-१-६३ को प्रात: ११ बजे प्रारम्भ होने वाली थी और प्रात. होते-होते तो हजारो जन उदयपुर मे आ चुके थे। उदयपुर नगर के व्यापार व्यवसाय केन्द्र तो कल दोपहर से ही बद थे और भौतिकदेह विसर्जन के अनन्तर श्रद्धाजलि अर्पित हो जाने तक बद रखने का निश्चय हो चुका था।

दि १२ १-६३ माघ कृष्णा ३ के प्रात: ११ बजे पवित्र अग्नि मे देहविसर्जन के लिये यात्रा जुलूस पचायती नोहरे से प्रारम्भ हुआ।

नगर के राजमार्गों के दोनो ओर पक्तिबद्ध जनसमूह खड़ा था । मकानो की छतें और खिड़किया बच्चों और महिलाओ से अटी पड़ी थी और करीब ५० हजार का जनसमूह आचार्यश्री के पार्थिव देह को चांदी के विमान रखे हुए जुलूस के रूप में, आचार्यश्री के जयघोष, गुणगान करते हुए मथरगति से साथ-साथ चल रहा था । करीव २॥ मील लम्बा यह जुलूस नगर के विभिन्न राजमार्गों से होता हुआ अग्नि-सस्कार के लिये निश्चित स्थान गगोद्भव मे २ वजे के करीव पहुंचा । राज्याधिकारियो की व्यवस्था और अनुशासित जनसमूह के फलस्वरूप किसी प्रकार की अव्यवस्था नहीं हो सकी थी ।

चदन, काष्ठ, नरियल तथा अन्य सुगन्धित द्रव्यों से निर्मित रथी पर आचार्य श्रीजी के पार्थिव शरीर को अधिष्ठित कर ठीक ३ वजे अग्नि प्रज्ज्वलित की गई और देखते-देखते पार्थिव शरीर अपने मूल तत्त्वो में समाहित हो गया और अन्तिम श्रद्धांजलि के रूप में नतमस्तक हो जनता उदास मुख लिये हुए अपने-अपने स्थान पर आने के लिये लौट पड़ी ।

श्रद्धांजलि समर्पण

पूज्य आचार्य श्रीजी म. सा. का पार्थिव देह भी आखों से ओझल हो गया था । जिस उद्देश्य के लिये जीवन का श्रीगणेश किया, उसमे सफलता प्राप्त कर महाप्रयाण की ओर चल पड़े थे । अब तो उनके गुणो की सौरभ व्याप्त थी । उनकी अनुभूति पूर्ववत विद्यमान थी । उन गुणों का गान करने, पुनरावृत्ति करने के लिये दि १३-१-६३ को प्रातः देश के कोने कोने से आगत श्रावक श्राविका समुदाय ने नव प्रतिष्ठित आचार्य श्री नानालालजी म. सा. की सेवा में प्रार्थना की कि आपश्री सतमंडल सहित पचायती नोहरे मे पधार कर स्व. आचार्य श्री जी के बारे में अपने हार्दिक उद्गार प्रगट करने की कृपा करें ।

सामूहिक प्रार्थना पर लक्ष्य देकर नवप्रतिष्ठित आचार्यश्री संत सतीवर्ग सहित पधारे और अपनी-अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करते हुए क्रमशः मुनिश्री सत्येन्द्रमुनिजी म सा. आदि सतों एवं महासतीजी

म. सा तथा नव-आचार्य श्रीजी म. सा. ने जो भाव व्यक्त किये, वे इस प्रकार हैं—

प र मुनिश्री सत्येन्द्र मुनिजी म.

आज मैं आप लोगो के सामने क्या कहूँ ? करीब ८-६ माह पूर्व जिस समय हम उदयपुर आये उस समय कुछ और ही भावना लेकर आये थे, पर इस समय कुछ और ही भावना चल रही है। हमें भरोसा था कि सब शुभजनक ही होगा, लेकिन आज हम जो कुछ बोल रहे हैं, एक दु खपूर्ण स्थिति मे बोल रहे हैं।

हमारे ऊपर आचार्य श्रीजी का हाथ था, वह उठ गया है। इससे चिन्ता होना स्वाभाविक है। लेकिन चिन्तित होने की आवश्यकता नही है, क्योकि आचार्य श्रीजी म. ने भावी शासन व्यवस्था के लिये सुन्दर व्यवस्था कर दी है। जिस समय आचार्य श्रीजी म. सा. ने भावी शासन-व्यवस्था की थी, मैं श्रीजी के चरणों मे उपस्थित था। मैंने उस समय कहा था कि शासन का भार बोझल होता है। उसको वहन करने की हम किसी मे क्षमता नही होती। आचार्य श्री नानालालजी म जिन पर शासन का भार रखा है, वे सक्षम हैं तथा चारित्र-सम्पन्न, शात दान्त, गभीर हैं। उनको सभी सत-सतियों एव श्रावक श्राविकाओ की तरफ से पूरा सहयोग मिलता रहे, ताकि वे शासन को अधिक-से-अधिक दिपा सके।

भगवान महावीर की श्रमणसस्कृति सदियो से चली आ रही है। उसे अक्षुण्ण एव पवित्र बनाये रखने के लिये आचार्यश्री साधना-पूर्वक सचाई पर चलते रहे हैं। उनके मार्ग में अनेक बाधाये आई पर वे शान्ति से सहन करते हुए मानापमान की परवाह न कर उत्तरो-त्तर आगे बढते रहे। उसी पथ पर हमे भी आगे बढना है। हमारे सामने कितनी भी चट्टाने व पहाड आवें, उनका डटकर सामना करना है। हमे विरोधियो से नही घबराना है। आचार्य श्रीजी ने इसके लिये जो मार्ग रखा है, उस पर दृढता के साथ आगे बढ़ते हुए रास्ता तय करना है।

मैं पंजाब संप्रदाय का था, परन्तु मुझे स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशलालजी म. की गुणगरिमा ने आकर्षित कर लिया। मैं, मेरा व मेरे साथियो का सौभाग्य समझता हूँ कि हमें छह महिने तक आचार्य श्रीजी का पूर्ण सहयोग मिला, पर दुर्भाग्य है कि इन आखिरी कुछ दिनो मे हम अलग रह गये।

आचार्य श्रीजी ने शात क्रान्तिकारी कदम उठाकर भगवान महावीर की श्रमणसस्कृति को आगे वढाने के लिये जो आदेश, उपदेश आदि दिये हैं, उन पर हमे चलना है। संकटों एवं बाधाओ का सामना करना है। कोई प्रचार करे, भले बुरे शब्द कहे तो हमें उसके उत्तर-प्रत्युत्तर मे नही पड़ना है। अगर हम उत्तार प्रत्युत्तर के झगड़े मे पड़ गये तो हमारा मार्ग रुक जायेगा। हा, असलियत को तो समाज के सामने रखना ही होगा।

मैं सन्त-सतियो को भी कहूँगा कि स्वर्गीय आचार्य श्रीजी म. के आदेशो का पालन करने मे वर्तमान आचार्य श्री नानालालजी को पूर्ण सहयोग देवें और उनके हाथो को मजबूत बनावें। स्वर्गीय आचार्य श्री के गुणो का वर्णन करना मेरी शक्ति के बाहर है। जो शास्त्र मैंने नही पढा, जिसकी मेरे मे कमी थी, उसको आचार्यश्री ने रुग्णावस्था मे भी मुझको पढाया। मेरे पर आचार्य श्रीजी का यह महान उपकार है, इसे मैं भूल नही सकता। उन महान आत्मा के प्रति मस्तक श्रद्धा से सदा नत रहा है और है। उनकी मधुर स्मृति आज भी ताजा है। उनके प्रति श्रद्धा के यही पुष्प मैं चढाता हूँ। हम गुड़लो में थे। हमको खबर मिली कि आचार्य श्रीजी की तबियत बहुत अस्वस्थ है। खबर मिलते ही हमने उदयपुर की तरफ विहार कर दिया पर दुर्भाग्य कि हम आचार्यश्री के स्वर्गवास होने के बाद पहुंचे।

हम वर्तमान आचार्य श्री नानालालजी म. को पूर्ण विश्वास दिलाते हैं कि हमारे से जरा भी सहयोग लेना चाहे, हम देने के लिये तैयार हैं।

भगवान महावीर से हम प्रार्थना करते हैं कि इन वर्तमान

आचार्यश्री को इतनी शक्ति प्राप्त हो कि ये उत्तरोत्तर शासनोन्नति में आगे बढते ही चले जायें ।

पं र मुनिश्री जनकमुनिजी म (गोंडल संप्रदाय)

निर्मल, निर्ग्रन्थ श्रमणसस्कृति के सुरक्षक आचार्य श्रीजी की निर्मल सुयशधारा दिग्दिगन्त तक फैली हुई है । हमे अनेक बार गुण-गाथाओ के श्रवण का सौभाग्य प्राप्त हुआ । फलस्वरूप दर्शन की आकाक्षा ने हमे यहां तक आने की प्रेरणा दी । अमलनेर से ४२५ मील भूमि कुल ३८ दिनो मे काटकर श्रीचरणो मे उपस्थित हुए । थककर चूर-चूर हो चुके थे, पैर उठाना भी भारी हो रहा था । किन्तु आचार्य श्रीजी के अनुग्रह ने हमारी थकान को मुस्कान बना दिया । हमने सुनी बातो का साक्षात अनुभव किया ।

अहा ! क्या प्रेमपूर्ण वात्सल्य भाव एव कड़क आचार निष्ठा, सहनशीलता की तो भव्य मूर्ति ही जान पडे । २००० बिच्छू डक मारे, जैसी घोर वेदना मे उफ तक का शब्द नही । तेजोमय मूर्ति के दर्शन कर हम धन्य हुए ।

आज उनका पार्थिव शरीर हमारे बीच नही, किन्तु ज्ञानमय शरीर, चर्यामिय भाव, निर्ग्रन्थ सस्कृति का भव्य आदर्श हमारे सन्मुख है। हमे इस निर्ग्रन्थ श्रमणसस्कृति से पूर्ण प्रेम है । जब तक यह चोला है, मैं हृदय से इसे जीवन में उतारता हुआ प्रसार करना चाहता हूँ एव मैं यहा आये हुए प्रत्येक बधु यानि चतुर्विध सघ से निवेदन करूगा कि वे सच्चे हृदय से पालन करे । कोई भी व्यक्ति बिना निर्णय किये उठे नही ।

नियमो के पालने का सुन्दरतम तरीका यह है कि आचार्य श्री की प्रत्येक आज्ञाओ को शिरोधार्य करे । निर्ग्रन्थ सस्कृति तभी सुर-क्षित रह सकती है । स्वर्गीय आचार्य श्रीजी ने तो विरोधो की परवाह न कर निर्ग्रन्थ सस्कृति को कायम रखने मे बहुत बडा योग दिया है । आज उसी का उत्तरदायित्व इन नव्य भव्य आचार्यश्री नानालालजी म.

पर है। उनको पूर्ण प्रेमपूर्वक सहयोग देना प्रत्येक का कर्तव्य है। हम भी आपकी प्रत्येक आज्ञाओ को शिरोधार्य करते हुए अपने जीवन मे यथार्थ रूप से उतारेंगे और आपके बताये हुए मार्ग का प्रचार प्रसार करेंगे, यही हमारी आचार्यश्री के प्रति श्रद्धा की पुष्पांजलि है।

स्थविरपदविभूषित प मुनिश्री सूरजमलजी म सा

आप लोग बाहर से, बहुत दूर दूर से यहां एकत्रित हुए हैं। इसलिये नही कि यहां कोई नाटक, सिनेमा है। किन्तु इसलिये कि यहा पर जीवन है। अतः जीवन का उत्कर्ष करने के लिये ही आप यहां पर आये हैं। आचार्य श्रीजी की साधना के प्रति आपकी श्रद्धा-भक्ति है।

आचार्य श्री गणेशलाल जी म. सा ने उदयपुर नगर में जन्म लेकर मेवाड भूमि के शिखर को ऊचा उठाया है। जैसे समारपक्ष में राणा प्रताप ने मेवाड का गौरव बढाया, वैसे ही आचार्यश्री ने आध्यात्मिक क्षेत्र में मेवाड का ही नही बल्कि सारे देश का गौरव बढाया है। आचार्यश्री ने अपने जीवनकाल मे भगवान महावीर के शासन में रहकर शासन को और चमकाया और पूर्ण आत्मदशा मे रहकर अपना कल्याण किया है। आज वे आचार्यश्री हमारे सामने नही हैं। हमारे से उनका भौतिक शरीर ओझल हो गया है। ससार का यह नियम है कि जिन्होने ससार में जन्म लिया है, वे कोई आज, कोई कल, कोई घड़ी पलक में तो कोई कभी इस भौतिक शरीर को छोडेंगे। काल सबके सिर पर घूम रहा है।

अतः मनुष्य को धर्म मिला है तो खा-पीकर धीगामस्ती में गंवाने के लिये नही, बल्कि धर्म कमाने के लिये मिला है। अतः आचार्यश्री ने धर्ममय जीवन बिताने के लिये जो आदेश आदि दिये हैं, उनको सच्चे हृदय से अमल में लावें। आचार्यश्री ने कष्ट और वेदना के समय जिस प्रकार अपने जीवन को ऊपर उठाया, उस आदर्श को सामने रखकर हम भी अपने जीवन को साधनामय बनावें, ताकि हमारा जीवन भी एक दिन सफल हो।

आचार्य श्रीजी के तप-तेज से आकर्षित होकर गोंडल संप्रदाय के जनकमुनिजी और जगदीशमुनिजी ७०० मील का लम्बा विहार कर आचार्यश्री के चरणो मे पधारे है। आचार्य श्रीजी का मैं क्या गुण-गान करू। हमारे जैनाचार्य ने भगवान महावीर के शासन को दिपाया है। मेवाड़भूमि मे जन्म लिया है, वीर चारित्रचूड़ामणि है।

इन्द्र मुकुट समान दर्शन से चित्त रहै प्रसन्न वर्ते मंगलाचार।

आचार्य श्रीजी का जितना भी कीर्तन किया जाये पूरा नही होता।

वर्तमान आचार्य श्री नानालालजी म भी पूर्ण गुणो के भडार हैं। स्वर्गीय आचार्यश्री ने अपना वरदहस्त इन पर रखा है। अतः चतुर्विध सघ इनकी आज्ञा का बराबर पालन करे। धर्म क्या है, बडो की आज्ञा पालन करना ही धर्म है। अतः वर्तमान आचार्यश्री की आज्ञा का पालन कर, इसी में हमारा कल्याण है।

इसी प्रकार विदुषी महासती श्री नानूकवरजी म, विदुषी महासती श्री मनोहरकवरजी म, विदुषी महासती श्री कौशल्याजी म. ने भी सतीवृन्द की ओर से स्वर्गीय आचार्य श्रीजी के गुणगान करते हुए फरमाया कि स्वर्गस्थ आचार्य श्रीजी म. ने श्रमणसस्कृति की रक्षा के लिये जो आदेश आदि दिये, उनका हम पूर्णरूपेण पालन करेगी और वर्तमान आचार्य श्रीजी म. हमे श्रमणसस्कृति के उत्थान हेतु जो भी आज्ञा प्रदान करेंगे, उसको सहर्ष शिरोधार्य करती हुई पालन करने कराने में तत्पर हैं और रहेगी।

अनन्तर आचार्य श्री नानालालजी म. सा. ने स्वर्गीय आचार्य श्रीजी को श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए अपने उद्गार व्यक्त किये कि—

बधुओ! मैं आज विशेष रूप से कुछ कहूँ, ऐसी मेरी स्थिति नहीं है। महामुनिश्री सत्येन्द्रजी म. श्री जनकमुनिजी म. व स्थविर-पदविभूषित प. श्री सूरजमलजी म. ने तथा तीन महासतियो ने और बीच-बीच मे श्री कानमुनिजी ने स्वर्गीय आचार्यश्री के सम्बन्ध मे अपने हृदय के उद्गार सबके सामने रखे हैं।

मेरे सामने स्वर्गीय आचार्यश्री का जीवन-चरित्र है। वह मैंने देखा व अनुभव किया है, परन्तु उसको मैं आप लोगो के सामने हू-ब-हू रखू, यह मेरी क्षमता नही है।

आचार्य श्रीजी म. जैसी दिव्य विभूति ने शांत क्राति को जन्म देकर जो आदर्श समाज के सामने रखा, अनेक सकटो व बाधाओ का सामना कर सत्यमार्ग पर अटल रहे, उसका वर्णन करना मेरे जैसे के लिये बहुत ही कठिन है। मेरी जिह्वा मे इतनी क्षमता नही है कि मैं उसका सागोपाग वर्णन कर सकू।

आचार्य श्रीजी म. को एक ओर तो सारे स्थानकवासी समाज से मान-सम्मान मिलने का अवसर था और दूसरी ओर अनन्त तीर्थंकरो से आई हुई श्रमणसंस्कृति की पवित्रता को अक्षुण्ण रखने का प्रश्न था। श्रमणवर्ग मे प्रवेश पाई हुई शिथिलता को देखकर स्वर्गीय आचार्यश्री ने अनुभव किया, यदि प्रभाव मे आकर और प्रवाह में वह कर जो ठीक नही है, उसमे हा मे हां मिला दी गई तो इस शासन को ही नही अनन्त तीर्थंकरो की आशातना का भागीदार हो जाऊगा। यह सोचकर आचार्यश्री ने वही मार्ग अपनाया जो उनके जैसे युगद्रष्टा महापुरुष के लिये श्रेय था। मान-संमान उनको अपने श्रेयमार्ग से विचलित नहीं कर सके। भगवान की आज्ञा और उनका बताया हुआ मार्ग ही उनके लिये श्रेय था। इसीलिये अनेक विघ्न-बाधाओ के होते हुए भी आचार्यश्री श्रमणसस्कृति की पवित्रता हेतु आचार-विचार में दृढता लाने के लिये अन्त समय तक सतत प्रयत्नशील रहे।

श्रमणसघ का जो रूपक बना, उनके लिये आचार्य श्रीजी की यह भावना थी कि श्रमण-संस्कृति की पवित्रता के लिये एव उनके संरक्षण के लिये सभी साथियों को साथ लेकर चलू। तदनुसार आचार्य श्रीजी ने लगभग ८-९ वर्ष तक अनेक प्रयत्न किये। परन्तु आचार्य श्रीजी के सतत प्रयत्न के उपरान्त भी उनको ऐसा अनुभव हुआ कि अनुशासन मे रहकर उचित सलाह में सबके चलने की तैयारी कम है,

कुछ श्रमणो की तो विल्कुल ही नही । इससे उनके विश्वास को धक्का लगा । फिर भी प्रयत्नशील रहे और जो समस्याये सामने आई, उन पर आचार्य श्रीजी ने श्रमणसंस्कृति के सरक्षणार्थ जो व्यवस्थाये आदि दी, वे आज भी समाज के सामने खुले रूप मे मौजूद हैं । ऐसा करते समय आचार्य श्रीजी ने सहयोग की अपेक्षा रखी, परन्तु रुके नही । उन्होंने कभी यह नही सोचा कि मेरे पीछे कौन आता है और कौन नही । उन्होने सिर्फ यही देखा कि श्रमणसस्कृति मेरे सामने है और चल पड़े उसकी रक्षा के लिये । आचार्य श्रीजी के मार्ग का विरोध हुआ, कइयो ने भले-बुरे शब्द कहे पर आचार्य श्रीजी अपने सत्पथ से विचलित न हुए । धैर्य के साथ सब कुछ सहन करते रहे ।

विरोधियो के विरोध को एव सत्य को ठुकराया हुआ देखकर हमारे मन मे तो कभी-कभी उत्तेजना आ जाती थी कि क्यो न सयम-विपरीत दूषित प्रवृत्तियों को प्रगट कर दिया जाये ? पर आचार्यदेव फरमाया करते कि कोई कितना ही तिरस्कार करे, अनुचित शब्द कहे, उनका स्वागत करो और जिस प्रकार मैं सहन करता हूँ तुम भी सहन करना सीखो । अश्लीलतायुक्त सामग्री को प्रगट करने से विशेष कोई लाभ नही । इसलिये शात रहकर सयम मार्ग पर दृढता से चलो और शिथिलाचार को किसी भी प्रकार से प्रश्रय मत दो । इसके लिये आचार्य श्रीजी ने अपने आदेश आदि द्वारा जो कुछ फरमाया, वह मौजूद है । उन आदेशो को आचार्य श्रीजी म. मेरे तुच्छ जीवन के साथ सम्बन्धित कर चुके हैं । मैं उनकी आज्ञाओ एव धारणाओ के अनुसार चलने को दृढ़प्रतिज्ञ हूँ तथा इसके लिये कितने भी सकट उपस्थित हों, उनको झेलने के लिये कटिबद्ध हूँ, सब कुछ न्योछावर करने को तत्पर हूँ । मैं पहले कह चुका हूँ कि आचार्य श्रीजी ने सहयोग की अपेक्षा अवश्य रखी, मगर सहयोग की स्थिति सामने नही आई तो वे लक्ष्य की ओर आगे बढते गये । उस समय किसी को स्वप्न मे भी ख्याल नही था कि दूर देशान्तर से भी कोई अन्य मुनि प्रहरी बनकर श्रमणसस्कृति

की रक्षा के लिये आयेंगे। परन्तु महापुरुषों की शक्ति अदृश्य भी होती है। उनका प्रभाव कहां और किस ढंग से काम करता है, इसका सहज ही अनुमान नहीं लग पाता है। ठीक यही बात आचार्य श्रीजी म. सा. के श्रमणसंस्कृति रक्षा के कार्यों की हुई। उनके कार्यों की सुगध दूर-दूर तक फैली और ज्यो सुगध से आकर्षित होकर भ्रमर बिना आमंत्रण-निमत्रण स्वय खिचा हुआ चला आता है, उसी प्रकार मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि गुजरात, सौराष्ट्र जैसे दूरवर्ती देश से करीब ७०० मील का लम्बा विहार कर गोडल सप्रदाय के श्री जनकमुनिजी तथा श्री जगदीशमुनिजी आचार्य श्रीजी के चरणो मे आये हैं। न, ये मुनिवर श्रमणसघ के है और न इस सप्रदाय के, मगर गुणो के कारण ये उग्र विहार करके भी यहा आये हैं। श्री जनकमुनिजी ने कहा कि हम यह विश्वास दिलाते हैं कि हम आचार्य श्रीजी के आदेशो का पालन करेंगे और जहा भी जायेगे प्रचार करते हुए चलेगे।

सयमप्रेमी प. श्री सत्येन्द्रमुनिजी म. न भी फरमाया कि सत्पथ पर कितना भी विरोध हो, हमे उसका डटकर मुकाबला करना है और आचार्य श्रीजी ने हमारे लिये जो मार्ग रखा है, उस पर दृढता के साथ चलते हुए रास्ता तय करना है।

तपस्वी पं. मुनिश्री सूरजमलजी म. वृद्ध दिखते हैं और है। पर इनमे इतनी स्फुरणा है कि हर काम को करने के लिये तैयार रहते है। इस अवस्था में भी आदर्श सेवाभावी हैं। यह सब प्रेरणा-दायक है। उनके उद्गार भी आप सुन ही चुके हैं।

हमारे लिये अत्यन्त दुःख का विषय यह है कि हमारे आचार्य श्रीजी का भौतिक शरीर आज हमारे सामने नही है, वह हमारे से ओझल हो गया है लेकिन उनका उपदेश, आदेश हमारे सामने है। आचार्य श्रीजी म. ने प्रेरणा दी है कि श्रमणसंस्कृति की रक्षा का ठीक रूप से ध्यान रखना। किसी बात के मोह मे आकर सत्पथ से विचलित न हो जाना। मैंने जो निर्ग्रन्थ श्रमण-समाचारी बनाई है,

उसके अनुसार चलने वाला कही भी, किसी भी देश मे विचरने वाला मुनि हो, उसके साथ आत्मीय सम्बन्ध जोडकर चलना और यदि पास मे रहने वाला श्रमणवर्ग भी विपरीत प्रवृत्ति करे, अनुशासन मे न रहे, श्रमणसस्कृति के रक्षार्थ जो आदेश आदि दिये गये हैं, उनका पालन न करे तो उसके साथ कोई सम्बन्ध नही रखना आदि। आचार्य श्रीजी ने अपने जीवन् की साधना करते हुए जो समाचारी एवं आदेश दिये हैं, उनका हमे अन्तर्हृदय से पालन करना है।

मनुष्य जीवन की साधना का निष्कर्ष अन्तसमय में उपस्थित होता है। जिसकी साधना जीवन भर अच्छी चलती है, उसका अन्तिम समय मे पण्डितमरण होकर जीवन सुधर जाता है।

आचार्य श्रीजी म. की जीवनसाधना कठोर थी, अद्भुत थी। यही कारण है कि उसका भव्य पडितमरण हुआ। मैं उनके अन्तिम समय का क्या वणन करू।

यह बात आप सब जानते हैं कि एक तरफ तो विरोध चल रहा था और इधर कॅसर के कारण शारीरिक सघर्ष चल रहा था, जिसकी अत्यन्त वेदना थी। लेकिन आचार्य श्रीजी ने कभी उफ तक नही की। डाक्टर लोग यह देखकर चकित थे कि इस महापुरुप में ऐसी कौनसी शक्ति है कि जिससे इतनी दारुण वेदना होने पर भी चूं तक नही। डाक्टर सा. कहते थे कि रोग की ऐसी भीषण स्थिति मे साधारण मनुष्य तो डाक्टरो से मृत्यु की मांग करने लगता है। विष लेकर मर जाना चाहता है परन्तु धन्य है इन महात्मा को कि जिन्होने देह पर एक प्रकार से विजय पा ली है।

तपस्वी श्री लालचन्दजी म. ने तो यहा तक कहा कि मुझे कभी कभी ऐसा ख्याल होता है कि आचार्य श्रीजी की वेदना गजसुकमाल की वेदना का-सा दृश्य उपस्थित कर रही है। फिर भी जिस शान्ति और धैर्य के साथ वर्दाश्त कर रहे हैं, यह हमारे लिये एक अपूर्व आदर्श है।

जब अत्यन्त वेदना होती तब मनुष्य अपना भान भूल जाता है। फलतः अन्तसमय को बिगाड़ भी देता है, लेकिन आचार्य श्रीजी शान्तचित्त से वेदना को सहते रहे। आत्मा और शरीर के भेद को भली प्रकार समझकर चलते रहे।

आचार्य श्रीजी म. का मथारा सीझने के तीन दिन पूर्व डाक्टर रामावतारजी आचार्य श्रीजी म. की सेवा मे उपस्थित हुए और औषधि के लिये अज की। आचाय श्रीजी म. ने फरमाया—मुझे अब परमात्मा की दवा लेनी है, अन्य कोई दवाई नही। इसी तरह डाक्टर शूरवीर-सिंहजी आदि को भी ऐसा ही जवाब दिया।

उसी समय डाक्टर रामावतारजी ने मुझे एकान्त मे लेकर यह कहा कि इस महापुरुष के लिये अपन क्या सोचें। अपना सोचना सब व्यर्थ है। इस महापुरुष का ध्यान प्रभु मे लग चुका है। शरीर की तरफ इनका ध्यान कतई नही है। यह एक महान दिव्य अलौकिक मूर्ति है।

उन्ही दिनो की बात है कि एक दिन मैं आचार्य श्रीजी म. को 'अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे' आदि सुना रहा था। सुनाते-सुनाते दर्शनार्थियो की तरफ मेरा ध्यान चला जाने से भूल से मैं एक कड़ी का दुबारा उच्चारण कर गया। परन्तु आचार्यश्री तो आत्मरमण मे लीन एकाग्रचित्त से सुन रहे थे। उनको मेरी भूल मालूम हुई और उसी समय झट से आचार्य श्रीजी म. ने फरमाया, यह कड़ी तो बोल गये हो, आगे चलो। यह सुनकर मैं सोचता हूँ कि आचार्य श्रीजी को इस अत्यन्त वेदना में भी कितना ध्यान है। जब मैं चेहरे की तरफ देखता हूँ तो मुझे अपूर्व तेज नजर आता है, मानो आध्यात्मिक ज्योतिपुंज जल रहा है। उस समय मैंने सोचा, यह क्या ही अलौकिक विभूति है। मालूम होता है, आचार्यश्री ने अपने शरीर का ध्यान छोड़ दिया है और एकान्त समभाव मे लीन होकर आत्मचिन्तन में चल रहे हैं। आचार्य श्रीजी ने उसी दिन यानि ता. ६ के शाम को करीब ५-३० बजे से दूसरे दिन सुबह तक सागारी मथारा ग्रहण कर लिया और

लेट गये । ता १० को प्रातःकाल आगन्तुक दर्शनार्थियों को दर्शन देने के वाद शारीरिक चिन्ता से निवृत्त हुए । वाद मे मैंने थोड़ा पानी पिलाया और उन्होने कुछ विश्राति ली । इसके वाद दूध के लिये पूछा, क्योकि अन्न तो ७-८ दिन से वद था । आचार्य श्रीजी म. ने दूध के लिये मना कर दी कि रुचि नही है । आचार्य श्रीजी आत्मध्यान मे लीन थे । कुछ ही समय पश्चात फरमाया कि अब मुझे अपना कार्य करना उपयुक्त जान पडता है । अत. इस विषय में मैं अपने आप तो सावधान हूँ ही, तुम भी पूरी सावधानी रखना । डाक्टर सा. आ जाये तो उनसे भी कुछ वात करनी है । इतने मे डाक्टर शूरवीरसिहजी आ गये । डाक्टर सा. ने पास खडे होकर तबियत देखी और हमेशा की भाति चले गये । आचार्य श्रीजी ने डाक्टर सा. को वापस इशारा कराया । डाक्टर सा. वापस आये । आचार्य श्रीजी ने डाक्टर सा. को पूछा कि मैं अव सथारा लेना चाहता हूँ । इसमे आप क्या कहते हैं ? आप अपनी भौतिक दृष्टि भी कुछ कहिये । डाक्टर सा. ने कहा कि हमारा सिद्धान्त तथा विज्ञान आप जैसे महापुरुषो के लिये फेल-सा हो चुका है, फिर भी सावधान रहने की आवश्यकता है । डाक्टर सा. ने मुझे कहा कि केसर का बीमार जिसके सेकेन्ड्रीज फार्म हो जाती है, वह डेढ साल से अधिक जीवित नही रह सकता । परन्तु मैं तीन साल से महाराजश्री के शरीर की शक्ति देख रहा हूँ, पर अब ब्लडप्रेसर व नाडी की गति मे काफी अन्तर आ गया है । अतः सावधान तो रहना ही चाहिये ।

इसके वाद आचार्य श्रीजी ने मुझे फिर फरमाया कि निगरानी रखना । मैं तो सावधान हूँ ही । मैंने कहा, गुरुदेव क्या आज्ञा है ? गुरुदेव ने फरमाया कि संथारा करने के लिये इच्छाकारेणि आदि की पाटियें सुनाओ, फिर छह जीवनी, दशवैकालिक का चौथा अध्याय सुनाओ । तव मैंने क्रम से सवका उच्चारण किया । पाठ उच्चारण में आचार्य श्रीजी ने यह भी फरमाया कि अव बीच में किसी से बोलना

मत, फिर कहा ख्याल रखो। मैंने तीन दिन पूर्व स्थविर पं. मुनिश्री सूरजमलजी म. सा. के पास सब आलोचना कर ली है। अब फिर मैंने मेरी आलोचना करके छहजीवनी सुन ली है। अब मुझे कोई डाक्टर, वैद्य आदि गृहस्थ छुये नहीं। मैं अपने जीवन को आगे बढ़ाना चाहता हूँ।

उसी दिन प्रातः १०-२० बजे तिविहार संथारा ग्रहण किया और फरमाया कि अब यह कमरा खाली कर दो। मुझे एकान्त चाहिये। सब अलग हो जाओ। ऐसा कहकर आंखें बंद कर ली। थोड़ी देर बाद जब आंख खोली तो मैं देखता हूँ कि आंखों में अपूर्व प्रेम एवं विश्ववात्सल्य की भावना टपक रही थी। उस वक्त श्वास की गति थोड़ी जोर से चल रही थी, मगर चेतना पूरी थी। ता. ११ को प्रातः जब मैं कुछ नित्य-नियम सुना रहा था, उस वक्त भी मैं एक कड़ी चूक गया तो गुरुदेव ने फरमाया कि यह क्या करते हो। कहने का तात्पर्य यह है कि संथारा सीझने के दिन प्रातःकाल तक भी इतनी ताजा स्मृति एवं जागरूकता थी। प्रतिक्रमण के वक्त स्थविर पं. मुनिश्री सूरजमलजी म. ने मांगलिक कुछ धीरे सुनाई, जिससे आचार्य श्रीजी म. के कान में न पड़ी तो फरमाया कि मांगलिक क्यों नहीं सुनाते हो? फिर मैंने जोर से सुनाई। इतना ही नहीं, संथारा सीझने के अन्तिम समय तक दोपहर को करीब २ बजे महासतीजी श्री सोहन-कंवरजी पधारे तब श्री मानमुनिजी ने कहा कि महासतीजी खमत-खामणा करते हैं, तो आचार्य श्रीजी ने आंख खोलीं और उनके सामने देखकर गर्दन हिलाई। तब भी आचार्य श्रीजी म. जागरूक थे। इसके पूर्व करीब १२ बजे आचार्य श्रीजी म. चौविहार संथारा पचख चुके थे। इस तरह २९ घण्टा संथाराकाल व्यतीत होने के बाद ता. ११ को ३-२० बजे अन्त तक जागरूक अवस्था में संथारा सीझा। संथारा सीझने से पूर्व दर्शनार्थियों की भीड़ काफी संख्या में जमा थी। दर्शन के लिये सब आतुर थे। पर मैं सोचता था कि अन्तिम समय में समाधि के अन्दर किसी प्रकार व्यवधान न पहुंचे। बिल्कुल शांत वाता-

वरण रहे तो अच्छा है । इसलिये दर्शनार्थियों को कुछ रुकना भी पड़ा। चौविहार सथारे के दरम्यान आचार्य श्रीजी म. के शरीर मे जब खुजाल हुई तो स्वय खुजाल करने लगे । मुझे इन्कार कर दिया । शरीर के हाथ नही लगाने दिया। इसी जागरूक और पूर्ण चेतनावस्था में ही मस्तिष्क और नेत्र आदि की तरफ से आखिर इस भौतिक शरीर को छोड स्वर्ग सिधार गये । आचार्य श्रीजी म. सा. का अन्तिम दृश्य अलौकिक था, अपूर्व था । मैंने ऐसा दृश्य न कभी सुना और न देखा । आचार्य श्रीजी म ने जिस जागरूकता के साथ अपने जीवन का उत्कर्ष किया, वह उनकी साधना का प्रतीक है । आचार्य श्रीजी म. के जीवन मे साधना का जो स्थान रहा, उसका वर्णन शब्दों द्वारा व्यक्त करना मेरे लिये बहुत ही कठिन है । इतना अवश्य कहता हूँ कि निर्ग्रन्थ श्रमणसस्कृति के सरक्षणार्थ आचार्य श्रीजी ने आचार-विचार और उच्चार को दृढता के साथ समाज के सामने रखकर आदर्श उपस्थित किया । हमारा कर्तव्य है कि उसको हम श्रमणवर्ग आगे बढाते हुए चलें । श्रावक-श्राविकाओ का भी अपने आप मे एक महत्वपूर्ण स्थान है । अतः आप लोग भी कटिबद्ध होकर चलने की प्रतिज्ञा लेकर उठेंगे तो शिथिलाचार एव स्वेच्छाचार को दूर होने मे देर न लगेगी । आचार्य श्रीजी का भौतिक शरीर हमारे सामने नही है, लेकिन आध्यात्मिक शरीर हमारे सामने मौजूद है । उसको जीवन मे लाना है और जिस प्रकार सथारा-सलेखनापूर्वक पडितमरण से अपने को सफल बनाया, उसी प्रकार प्रतिदिन अभ्यास द्वारा हम भी अपने जीवन को आगे बढाते हुए अन्तिम समय मे उत्तम भावना द्वारा पाडित्यमरणपूर्वक जीवन को सफल बनायेगे । यही इनके प्रति सच्ची श्रद्धाजलि है । मैं आचार्य श्रीजी की आज्ञा आणा, धारणा के अनुसार चलने को कटिबद्ध हूँ, इन महात्माओ ने मेरे प्रति जिन शब्दो का प्रयोग किया है, उसकी रक्षा आपके हाथ मे है । मैं बच्चा हूँ, चतुर्विध सघ की गोद मे बैठा हूँ, मेरे ज्ञान-दर्शन-चारित्र की रक्षा का ध्यान रखना आपका कर्तव्य है ।

आचार्य श्रीजी के शुभाशीर्वाद से हम ज्ञान दर्शन-चारित्र में उत्तरोत्तर वृद्धि करते रहें और आचार्य श्रीजी म. की दिव्य आत्मा स्थायी एवं अखड पूर्णशांति के साथ शीघ्रातिशीघ्र मोक्ष मे पधारें, इस भावना के साथ मैं अपनी अटूट श्रद्धा व्यक्त करता हूँ ।

श्रद्धेय के प्रति जन-जन की श्रद्धांजलि

उदयपुर में उपस्थित जनसमूह ने तो अपने श्रद्धेय के प्रति श्रद्धांजलि समर्पित की ही थी, किन्तु जो अवसर पर उपस्थित नही हो सके, उन्होने अपने-अपने स्थानों पर सभाओ का आयोजन कर सामूहिक रूप में श्रद्धांजलि समर्पित की थी ।

श्रद्धांजलि समर्पण करने वालो मे साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकाओं ने व्यक्तिशः तथा श्रीसंघो ने सामूहिक रूप मे जो श्रद्धांजलि समर्पित की थी, श्रमणोपासक के 'आचार्यश्री श्रद्धाजलि अंक' के रूप में प्रकाशित हैं । जिनके पढने से स्पष्ट हो जाता है कि पूज्य आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. ने जीवन की महानता प्राप्ति के लिये प्रयत्नो का श्रीगणेश किया था और प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील रहते हुए महान-से-महान होते गये ।

उनकी महानता उनके जीवन के आदर्शों मे गर्भित है और वे सदैव महान रहे । आज उनकी महानता हमारे समक्ष है और उसका प्रकाश हम सबको भी महान बनाने के लिये प्रेरित करता रहेगा ।

पूज्य आचार्यश्री महान थे, हैं और रहेंगे एव हम उनके आदर्शों से शिक्षित, अनुशासित हों, महान बनें, यही हमारा लक्ष्य हो ।

लो महान अन्तिम प्रणाम

इन पृष्ठो मे पूज्य आचार्य श्रीजी की जीवनी और संयम-तप-त्याग-साधना से पूत पवित्रता का सक्षिप्त दिग्दर्शन कराया है। किन्तु यह सिन्धु मे बिन्दु के तुल्य है और एक महान व्यक्तित्व, ज्योतिपुंज महामना का सर्वांगीण जीवन चित्रण इन थोड़े से पृष्ठों मे करना अथवा कुछ एक घटनाओ का सकेत कर देना असीम को ससीम मे बाधना है।

इन पृष्ठो मे वही लिखा गया, जिसे दृष्टि देख सकी है। लेकिन जो देखा है, उसे व्यक्त करने मे अपने श्रम का गोपन नही किया है। इस विश्वास के साथ कि महापुरुषो का नामस्मरण ही विवेकोपलब्धि मे सहायक है। उनकी गभीरता, विराटता, उदारता के प्रति शत-शत वदन और अभिनन्दन करते हुए श्रद्धावनत हूँ। उनके वरद उपदेश प्रबुद्ध और प्रगतिशील बनायेगे, इस विश्वास के साथ पुनः पुनः श्रद्धाजलि समर्पित है।

स्मरणीय श्रीसंघ की सेवायें

कथावस्तु के नायक का जीवन-मंच उदयपुर है। अतः उसकी महत्ता का संक्षिप्त परिचय करा देना आवश्यक है।

पूज्य आचार्य श्री गणेशलालजी म. सा. ने उदयपुर में जन्म लिया, विकसित हुए और अन्त मे इसी भूमि में अपने भौतिक देह का परित्याग कर दिया। अर्थात् गगा का जल गंगा को ही समर्पित कर दिया, किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से दुनिया को बहुत कुछ दिया।

लेकिन इस लेने और देने के समय के अन्तराल में उदयपुर श्रीसंघ ने मान-अभिमान से परे रहकर सदैव अपने त्याग का परिचय दिया, वात्सल्य का दान दिया।

आज भी वह समय प्रत्यक्ष है जब अपने ही हाथों युवा गणेशलालजी को महानता के मार्ग का पथिक बनाकर 'शिवास्ते पथा सन्तु' की भावना का पाथेय अर्पित किया था एवं अपने स्वत्व को त्याग कर निधि के निधान को सौंप दिया था जनता को। सौंपा भी इस भावना के साथ था कि जन-जन के बीच शांति, समता और साधना का प्रसार प्रबल बने।

भावना सफल हुई। अपने आपको गौरवान्वित माना। भावना के साकार होने में हर्ष सीमा लांघ गया कि अकस्मात सजोये स्वप्नों को आघात लगा। सुना कि जन-जन के श्रद्धेय मेवाड़ी सपूत चतुर्दिक् संयम की सुवास फैलाते हुए भी शारीरिक अस्वस्थता से आक्रांत हैं। सेवा में उपस्थित हो गया अपने आंगन में आगमन की भावना और मनुहार भरी विनती को साथ लेकर। उसके विचारों में एक ही बात रम रही थी कि जन-जन को [illegible] सौंपा था और पुनः स्वस्थ, हृष्ट-पुष्ट एवं बलिष्ठ कर सौंप देंगे।

लेकिन दुर्भाग्य ! भावना की सफलता के आसार दिनोदिन क्रमशः क्षीण होने लगे। असातावेदनीय-कर्मोदय से श्रद्धेय का शरीर प्राणलेवा—कॅंसर—रोग से आक्रांत था।

सन् १९५६ में श्रद्धेय का पदार्पण हुआ और ११ जनवरी १९६३ तक विराजमान रहे। इस समयावधि में श्रद्धेय की शारीरिक स्थिति में अनेक अवसर आये जो चिन्ताजनक थे। आशंकाओं से घिरे मनो मे नई-नई शकायें पैदा हो जाती थी। लेकिन धन्य है उदयपुर श्रीसघ। अपने श्रद्धेय के शारीरिक रोग की विमुक्ति के लिये अच्छे-से-अच्छे साधन समुपलब्ध करने के लिये सचेष्ट रहा और प्राप्त साधनो का सदुपयोग किया।

श्रद्धेय के दर्शनार्थ आगत स्वधर्मी बंधु-बांधवो की सुविधा के लिये सतत प्रयत्नशील रहा। महलो मे रहने वालो ने आगतो की सुविधा के लिये महल छोड दिये, अट्टालिकायें छोड़ दी, घर के द्वार खोल स्वय ने कुटियाओ में बसेरा कर लिया लेकिन आगतों को असुविधा नही होने दी। यह क्रम एक दो दिन नही, ३६५ दिन रहा। यह ३६५ दिन एक बार के ही नही, ऐसे-ऐसे चार वर्ष के हैं।

उदयपुर श्रीसघ की प्रशंसा शाब्दिक परिधि मे प्रतिबंधित न कर संक्षेप मे कहेगे कि उसका-सा सौभाग्य सभी को प्राप्त हो, उससे स्पर्धा करने का अवसर अन्यान्य सघों को मिले। स्वर्णाक्षरो मे अंकित उसका विरुद विशेष श्लाघनीय है।

जब तक श्रद्धेय गणेशाचार्य स्मरणीय रहेगे तब तक उदयपुर सघ के कार्यकर्ता और कार्य स्मरणीय हैं। वर्तमान पीढी ही नही, वरन भावी पीढ़ी भी अपनी कृतज्ञता व्यक्त कर उऋण नही हो सकेगी।